साहित्य-सागर

साहित्य-सागर

(प्रथम भाग)

लेखक

कविभूषण, कविरत्न, कविराज
पं० बिहारीलाल भट्ट
(राजकवि, बिजावर)

संपादक

साहित्याचार्य पं० लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी साहित्य-रत्न

मिलने का पता
गंगा-ग्रंथागार
लखनऊ

हौं अनुसासन पाय हुजूर की
काव्य कौ ये नव-ग्रंथ बनायो,
आपुन ध्यान लगाय सुन्यो,
अरु प्रेम हिये भरि हौ हूँ सुनायो।
सादर सो अपनाइए याहि,
कवी निज रावरो लैकर आयो;
आपने जो गुन दीनो प्रभू,
वह आपकौ, आपको आय दिखायो।

भूमिका

कवि-मनु की उच्छिष्ट अहै यह मेरी बानी,
विविध विचार, सयुक्ति, प्रमानादिक सो सानी।

साहित्य और काव्य

आज सपूर्ण सभ्य ससार साहित्य का गौरव समझता है। मानव-जीवन के उत्कर्ष एवं मानवीय भावनाओ के परिष्कार के लिये साहित्य से बढ़कर अन्य कोई श्रेष्ठ एवं सुलभ साधन नही। जिस देश अथवा जाति का साहित्य जितना उन्नत होता है, उस देश अथवा जाति का उतना ही महत्त्व होता है। यथार्थ मे देश या जाति की उन्नतावस्था का चिह्न उसका साहित्य ही है। साहित्य पर ही भावी उन्नति का विशाल भवन बन सकता है। साहित्य हमे ज्ञान प्रदान करता और हमारी भावनाओ का परिष्कार करता है।

जो हित के साथ-साथ वर्तमान है, वह हुआ सहित, और जिसमे सहित का भाव हो, वह हुआ साहित्य। इस प्रकार साहित्य वह है, जिसमें हितकारी भावो का वर्णन हो। यद्यपि उक्त अर्थ में साहित्य की व्यापकता का पूर्णतया बोध हो जाता है, परंतु यथार्थ में किसी जाति अथवा राष्ट्र के पास ग्रथ-समूह का जो सग्रह उसके शताब्दियो से संचित ज्ञान एव उसकी भावनाओ को दिखलानेवाला होता है, वही उसका साहित्य कहा जाता है। ऐतिहासिक ग्रंथो मे साहित्य-शब्द का प्रयोग ऐसे ही अर्थ मे किया जाता है।

स्थूल रूप से साहित्य के दो मूल विभाग हैं—(१) विज्ञानमय और (२) आनंदमय। विज्ञानमय साहित्य ज्ञान-धारा-प्रधान होता है, और इसके अंतर्गत दर्शन, गणित, इतिहास, आयुर्वेद, ज्योतिष, अर्थशास्त्र आदि हैं। आनदमय साहित्य भाव-धारा-प्रधान होता है, और इसके अतर्गत महाकाव्य, खडकाव्य, नाटक, उपन्यास, चपू और मुक्तक आदि की गणना है। इस भाव-धारा-प्रधान साहित्य को हम काव्य-साहित्य भी कहते हैं। साहित्य के ये दोनो अंग भिन्न-भिन्न मार्गावलबी होने से इनके कार्य-क्षेत्र भी भिन्न-भिन्न हैं। यह यथार्थ है कि साहित्य की सृष्टि सत्य का रूप स्पष्ट कर ज्ञान प्रदान करने और संसार के रहस्य को उद्घाटित करने के उद्देश्य ही से होती है, पर विज्ञान की अपेक्षा काव्य में आनददायिनी शक्ति की विशेषता होने से काव्य-साहित्य को विज्ञान-साहित्य से श्रेष्ठतर माना है।

आजकल के अनेक वैज्ञानिक विद्वानो का मत है कि काव्य का युग बीत चुका। वर्तमान युग विज्ञान-युग है। ऐसे सज्जनो को यह स्मरण रखना चाहिए कि संसार में जब तक मनुष्य के शरीर-यंत्र में हृदय का पुर्ज़ा जुड़ा है, तब तक उसमें सद्भावो का संग्रह करके उसे स्निग्ध करने एवं कठोरता के मोरचे से रक्षित रखने के लिये काव्य की आवश्यकता है। स्मरण रहे, संसार मे विज्ञान की जितनी आवश्यकता है, उससे कहीं अधिक आवश्यकता काव्य की है।

विज्ञानमय साहित्य जहाँ ज्ञान प्रदान करता है, वहाँ काव्य-साहित्य आनंद प्रदान करता है। ज्ञान से कहीं भाव श्रेष्ठ होता है। सच तो यह है कि ब्रह्मज्ञानी भी जब तक ब्रह्म-भाव नहीं प्राप्त करता, तब तक वह यथार्थ आनद नहीं प्राप्त कर सकता। अंत में आनद भी तो एक भाव ही है। इसी से विज्ञानमय साहित्य से काव्य-साहित्य श्रेष्ठ है। विज्ञानमय साहित्य प्रायः आवश्यकता-वाद के सकीर्ण घेरे मे घिरा रहता है, एव आनदमय काव्य-साहित्य का सबध हृदय से है, और वह आवश्यकता-वाद से परे लोकोत्तर आनद का प्रदाता है। वैज्ञानिक लोग विज्ञान द्वारा ब्रह्माड मे जो शृंखला देखते हैं, उसका अनुभव कविजन अनुभूति द्वारा करते हैं। उस शृंखला मे जो विलक्षण आनददायक सौंदर्य है, वही कवियो का वर्णनीय विषय होता है। यथार्थ मे प्रीति, दया, करुणा, क्रोध और हास आदि ही सात्त्विक भावो की अवस्थाएँ है। इन भावों के प्रकाशन में प्रकृत काव्य ही हमारे सहायक होते है। आत्मा से प्राणित जो कोषत्रयात्मक सूक्ष्म शरीर है, उसमे हम श्रेष्ठ काव्यों के अनुशीलन द्वारा सद्भावो का सग्रह करने मे समर्थ होते हैं। काव्य ही शेष सृष्टि के साथ मनुष्य के रागात्मक सबध की रक्षा करता है, अतएव यही हमारा प्रधान और प्रकृत साहित्य है। यद्यपि ज्ञानमूलक (विज्ञानमय) साहित्य से ज्ञान का उपार्जन कर हम ज्ञानी बन सकते हैं, पर आनद की ओर काव्य ही ले जाता है। यद्यपि दर्शन और गणित आदि साहित्य के अतर्गत अवश्य हैं, पर वे हमारे प्रकृत साहित्य नहीं, क्योंकि ज्ञान की अपेक्षा आनद-जनक भाव ही प्रधान हैं। इसी से सभी ज्ञानी आनंद-प्राप्ति के हेतु प्रयत्न करते हैं। ज्ञानियों को भी भाव की शरण लेनी पड़ती है।

बात तो यह है कि विना भाव के आत्मा आनंद-पूरित हो ही नहीं सकती। सत्य ही भाव-रूप से हृदय में प्रस्फुटित होता है। अँगरेज़ी-भाषा के धुरंधर समालोचक मैथ्यू आरनोल्ड लिखते हैं—

"Poetry is nothing less than the most perfect speech of man in which he comes nearest to being able to utter the truth."

अर्थात् कविता मनुष्य के उस भाषा से कुछ भी न्यून नहीं, जो भाव की पूर्ण अवस्था में उसके मुख से निकलती है, और जिसमे वह सत्य कथन करने के नितांत निकट पहुँच जाता है। तात्पर्य यह कि जब मनुष्य उत्तम भाषा मे हृदय के सच्चे भावों का कथन करता है, तब वही भावमयी भाषा कविता हो जाती है।

जॉन्सन साहब का भी यही कहना है—

"Poetry, says Johnson, is metrical composition. It is the art of writing pleasure with truth by calling imagination to the help of reason and its essence is invention."

(An Introduction to the study of Literature by William Henry Hudson, Page 82)

अर्थात् जॉन्सन के मत से कविता छद-बद्ध निबध है। यह वह कला है, जिसमें कल्पना-शक्ति विवेक की सहायक होकर सत्य और आनद का परस्पर सम्मिश्रण करती है।

अँगरेज़ी-भाषा के सुप्रसिद्ध कवि शेली ने भी इसी से मिलता-जुलता मत प्रकट किया है। लिखा है—

"Poets are all who love, who feel great truths
And tell them; and the truth of truth is love"

अर्थात् कवि वे हैं, जो प्रेमी होते हैं, जो परम सत्यों का अनुभव करते और उन्हें प्रकट करते हैं। वह परम सत्य (सत्य का सत्य) है प्रेम।

सत्य ब्रह्म का—ईश्वर का—रूप है। सत्य 'शिव सुन्दरम्' है। जो कुछ सत्य, शिव, सुंदर है, उसका अनुभव भाव-मुग्ध मनुष्य अपने अंतर्हृदय में करता है। जिसकी प्राप्ति का उपाय ज्ञान बतलाता है, वह भाव के बिना प्राप्त नहीं हो सकता। इसी से भक्त पुकार-पुकारकर कहता है—

"बिना भाव रीझै नहीं नागर नंदकिशोर।"

भाव भीतर-ही-भीतर हमें लोकोत्तर ज्ञान की प्राप्ति के योग्य बनाता है, पर ज्ञान—केवल ज्ञान—यह नहीं कर सकता। ज्ञान का स्थान मस्तिष्क या बुद्धि है, और भाव का स्थान हृदय या मन। विज्ञानमय कोष के भीतर ही आनंदमय कोष है। उस आनंद का मूल कारण भाव है, इसी से भाव-व्यंजक काव्य को प्रधानता दी जाती है। दर्शन और इतिहास आदि की गणना उसके पीछे की जाती है। अपेक्षाकृत ये अप्रधान हैं ही। भाव की प्राप्ति के लिये भावना की आवश्यकता है। भावना के अनुरूप ही फल मिलता है। हमारे माननीय धर्माचार्यों ने कहा है—

"यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।"

तात्पर्य यह कि काव्य ही श्रेष्ठ और प्रधान साहित्य है।

कविता मानव-हृदय का वह सात्त्विक उद्‌गार है, जो मनुष्य की उस अवस्था में निकलता है, जब वह इस संसार की स्वार्थमयी उलझनों से अपनी संपूर्ण वृत्तियाँ समेटकर, शुद्ध सात्त्विक होकर एक अलौकिक आनंद में निमग्न होता है। उस समय कवि के हृदय-समुद्र में आनंद का ज्वार आता है, जिसके आवेग में उसकी वाणी से काव्यामृत झरने लगता है। उस काव्यामृत में अलौकिक सरसता होती है। ध्यान रहे, सात्त्विक आनंद विशुद्ध ज्ञान के अनंतर अथवा विशुद्ध ज्ञान के भाव के अनंतर होता है। इसीलिये शुद्ध, सात्त्विक, आनंदमय कवि की वाणी से भाव-विशेष से भावापन्न व्यक्ति के हृदय में अलौकिक रस उत्पन्न होता है, जो उसे आनंद देता है। काव्य एक कला है, और कला का आदर्श सत्य को कल्याणकारक, सुंदर रूप में उपस्थित करना होने से 'सत्यं शिव सुन्दरम्' होता है, जो सच्चिदानंद परमात्मा से मिलाता है। कला में सच्चे भावों का मनोहर वर्णन कल्याणकारक ढंग से रहता है। इटाली (रोम) के श्रेष्ठ कला मर्मज्ञ, महामति बेनदेत्तो ने कहा है—

"Arte rimane perfetle mante definita quando semplicemente si definisea come intuzione."

अर्थात् यदि कोई कहे कि कलाएँ अंतःकरण के विशुद्ध भाव हैं, तो वह उसकी पूरी परिभाषा दे चुका। यथार्थ में बात भी यही है।

कला में सौंदर्य का साम्राज्य रहता है। कविता भी कला है, इसमें कविता का राज्य भी सौंदर्य है। वह सौंदर्य बहिर्जगत् में भी है, और अंतर्जगत् में भी। जो बाह्य सौंदर्य है, वह चित्ताकर्षक अवश्य है, परंतु अंतर्जगत् अर्थात् हृदय के सौंदर्य की तो बात ही निराली है। वह कहीं बाह्य सौंदर्य से अधिक प्रभावोत्पादक, हृदयग्राही और रमणीय है। उदाहरण-

स्वरूप एक स्वार्थ में डूबा, कठोर-हृदय व्यक्ति गुलाब का सुंदर पुष्प देखकर उसकी उपेक्षा कर सकता है, उसकी ओर उदासीन भाव से देखता हुआ जा सकता है। उसके हृदय पर उस सौंदर्य का कुछ भी प्रभाव भले ही न पड़ सकता हो, पर उसी की असहाया, अबला नारी का सतीत्व-रक्षण करने के हेतु यदि कोई परोपकार-रत स्वार्थत्यागी पुरुष अपने प्राणों पर खेल जाय, तो स्मरण रखिए कि वह स्वार्थ मे डूबा, कठोर-हृदय भी हिल उठेगा। त्याग के इस अतर्जगत् के सौंदर्य से वह विना प्रभावित हुए रह ही नही सकता। यद्यपि काव्य दोनो में है—बहिर्जगत् का सौंदर्य दिखलाना भी कविता है, पर अतर्जगत् का सौंदर्य उससे सहस्रगुणित श्रेष्ठ होने से अत्यंत उच्च कोटि की कविता है।

मनुष्य जन्म से ही सौंदर्योपासक प्राणी है। सौंदर्योपासना का ही यह परिणाम है कि मनुष्य दिन-दिन उन्नति करता जाता है। यदि सौंदर्य-दर्शन की आकाक्षा मनुष्य-हृदय में न रहती, यदि मनुष्य सौंदर्योपासक प्राणी न होता, तो आज ताजमहल अपनी अनोखी छटा न छहराता। थेम्स का विचित्र पुल दिखाई न देता। कॉटन मिल्स न बनाई जातीं। बुनने के यत्रालय न दिखाई देते। सुंदर भवन न निर्माण किए जाते। सुदर उद्यान इस भू-मडल की शोभा न बढ़ाते। सुंदर चित्र न बनते। कविता का जन्म ही न होता। ससार कुछ का कुछ दृष्टिगोचर होता। आवश्यकतावादियों के सिद्धात के अनुसार सारे ससार के मनुष्य और नगर आदि ठीक वैसे ही होते, जैसे भील आदि जगली लोग और उनके जगली निवास-स्थान आदि। आवश्यकतावादियो से मेरा नम्र निवेदन है कि वे हठी बनकर, वितडावाद करके आवश्यकता को सुंदरता से ऊँचा आसन देने की निष्फल चेष्टा न करें। आवश्यकता और सुंदरता मे अंतर है। यदि हम गभीरता से विचार करें, तो हमें स्पष्ट विदित हो जाता है कि ससार की उन्नति का प्रधान कारण सौंदर्योपासना है। ध्यान रहे, सौंदर्योपासक न होकर ससार के संपूर्ण नर-नारी आवश्यकतावादी ही होते, तो बड़ा ही अनर्थ होता, ससार में मनुष्य-कृत सुंदरता के दर्शन दुर्लभ होते, कला का जन्म ही न होता, सब मतलबी होते। सतीत्व, परोपकार, सत्यवाद एवं दया और करुणा आदि के दर्शन दुर्लभ हो जाते। अत्यत असभ्य, जगली, बर्बर लोग भी तो अपनी आवश्यकता की पूर्ति कर लेते हैं। पशु भी तो आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। यथार्थ तो यह है कि आवश्यकता को सौंदर्योपासना से ऊँचा आसन देना दुराग्रह, हठ या वितंडावाद है। ब्रह्म सबसे अधिक सुदर है, ब्रह्म मे ही सच्चे सौंदर्य के पूर्णरूपेण दर्शन हो सकते हैं, इसी से ब्रह्मोपासकों को, जो सबसे बड़े सौंदर्योपासक होते हैं, संसार आदर की दृष्टि से देखता है, एव इसी कारण कला का उद्देश्य 'सत्य शिव सुन्दरम्' है।

कविता स्वयं हेतु है—"Knowledge is its own end" यह अन्य हेतुओं का साधन अवश्य है, इससे अनेक आवश्यक कार्य साध्य हो जाते हैं, परंतु यहीं सीमा-बद्ध न होकर यह स्वयं मनोरजक होता है। काव्यान द ब्रह्मान द-सहोदर कहा जाता है। पाशविक प्रवृत्तियों से निश्चित होकर मनुष्य साहित्य-संगीत-कलावाले ऊपरी मज़िल में पदार्पण करता है, साथ ही अनुभव करता है कि यह आन द पाशविक आन द के परे एवं उससे श्रेष्ठ है, जिसे बुद्धिवाला जीव ही भोग सकता है। यथार्थ में मनुष्य कहलाने का गौरव और सौभाग्य हमें तभी प्राप्त है, जब हम इन आन दों का अनुभव कर सकें। आवश्यकता की अवस्था के पश्चात् साहित्य जब मनोरजनवाली अवस्था में पहुँचता है, तब काव्य उसका अंग बन जाता है। अनेक विषय, जैसे नीति और राष्ट्रीयता आदि, कल्याण के

लिये आवश्यक हैं, पर काव्य को इस प्रकार सीमा-बद्ध करके उसका स्वत्व भ्रष्ट करना तथा उसे उसके पवित्र उच्चासन से पतित करना है। आवश्यकता-वाद के संकीर्ण क्षेत्र मे बॉधना तो मानो उसे संकीर्णता से दूषित कर पार्थिवकता से कलंकित करना है। कहने का तात्पर्य यह नही कि काव्य इन बातो के प्रतिकूल है, या इन विषयो पर काव्य-रचना न हो, किंतु यह है कि काव्य को इतने मे ही सीमा-बद्ध करना अनुचित है। काव्य मे विश्वविमोहिनी बुद्धि का कौतूहल है, जिसका संबंध हृदय से है, और प्रायः मनोरंजन ही काव्य को अभिप्रेत है। यथार्थ में काव्य में लोकोत्तर आनंद प्रदान करने की शक्ति है।

आजकल के स्वार्थ-परायण, दुर्बल-हृदय जन-समूह मे परोक्ष लाभ की ओर लोगों का ध्यान बहुत कम जाता है। वे तात्कालिक लाभ को ही लाभ मान बैठते हैं। वे कहते हैं, बोलो, कविता से क्या लाभ है? बिहारी के दोहे कौन-सी उत्तम शिक्षा देते हैं? कालिदास के मेघदूत से कौन-सी राजनीतिक, सामाजिक अथवा धार्मिक शिक्षा ग्रहण की जा सकती है? ऐसे लोग मानवीय हृदय के ज्ञाता तो होते नहीं, केवल मस्तिष्क को ही, तर्क-वितर्क को ही, प्रधानता दे डालते है। इनकी समझ ने नीति या उपदेश पर लिखे गए पद्यात्मक निबंध ही कविता के अंतर्गत हे। वे ऐसे पद्यो को ही उत्तम और उत्कृष्ट कविता समझ बैठते हैं। उनकी समझ से कविता वही है, जिससे उपदेश मिलता हो। परंतु अब ध्यान रहे कि कविता उपदेश नहीं देती। कवि कोई उपदेशक नहीं है। वह व्याख्यानदाता भी नहीं। सच्चे कवि को धर्म-प्रचार या सदुपदेश से कोई मतलब ही नहीं। वह सत्य और असत्य, धर्म और अधर्म एवं नीति और अनीति, सबसे परे, त्रिगुणातीत है। 'आबेहयात' के सुप्रसिद्ध विद्वान् उर्दू-लेखक प्रो० आज़ाद ने लिखा है—

"शेर खयाली बाते है, जिनको वाक़यात और असलियत से तअल्लुक नहीं। इस खयाल को सच की पाबदी नही होती। ··· मसलन् सूरज निकला, और किरन उसमे अभी पैदा नहीं हुई। वह (कवि) कहता है, सुनहरी गेंद हवा में उछाली है। सुबह तलाई थाल सर पर धरे आती है। कभी मुरग़ान सहर का ग़ुल और आलमे नूर का जलवा, आफ़ताब की चमक-दमक और शुआओ का खयाल करके सुबह की धूमधाम देखता है, और कभी बादशाह मशरक सब्ज खिंग पर सवार ताज मुरस्सअः सर पर रक्खे किरन का नेजा लिए मशरक से नमूदार हुआ।" (आबेहयात)

कभी-कभी तो काव्य सत्य बात का—वैज्ञानिक नियमो का—उल्लघन करके ही अपना स्वत्व स्थापित करता है। विज्ञान की दृष्टि से आजकल की लू का चलना प्रकृति का एक कार्य-विशेष हैं, जो समय-विशेष पर प्राकृतिक नियमानुसार होता है। पर कवि और ही दृष्टि से देखता है। महाकवि बिहारी कहते ह—

नाहिन ये पावक-प्रबल लुएँ चलति चहु पास,
मानहुँ बिरह बसंत के ग्रीषम लेति उसास।

कवि अपनी असीम सहृदयता से हमारे क्षुद्र एव छोटे-छोटे हृदयो को खींचकर अपने अनंत हृदय मे विलीन कर डालता है। सभी सुंदर वस्तुओ के समान कविता हमें निर्मल, अशारीरिक और आध्यात्मिक बनाती है। महामति पेटिसन ने लिखा है—

"The external forms of things are to be presented to us as transformed through the heart and mind of the poet".

(Mark Pattison)

अर्थात् बाह्य सृष्टि इंद्रियों द्वारा कवि के हृदय पर प्रभाव डालती है। यहाँ जो भाव उत्पन्न होता है, वह हृदय पर अधिकार जमाता हुआ विचार मे फलित होता है।

पुनः लिखते हैं—

"Description melts into emotion and contemplation bodies itself into imagery"

अर्थात् जो कुछ कवि कहना चाहता है, वह कथन तरग मे द्रवित होता हुआ, विचार में परिणत होकर चित्र के ठप्पे खाता हुआ छदो के सिक्को मे निकलता है।

यथार्थ में कवि का हृदय अत्यत सत्क्षोभ्य, अनेक उलझनो से भरा होता है। उसकी सहृदयता का कोई पारावार नहीं होता। वह तो हर जगह सभी वस्तुओं में विद्यमान रहता है। उसे पाप-पुण्य की परवा नहीं होती। वह सर्वत्र विराजमान है। वह प्रत्येक प्राणी के तन मे मन होकर नाच रहा है। उसमे घृणा का लेश भी नहीं होता। उसे मनुष्य-स्वभाव में विश्वास होता है। उसके हृदय मे प्रेम होता है। वह मानवीय भावनाओं और वासनाओं की उपेक्षा नहीं कर सकता। अपनी असीम सहानुभूति द्वारा उसने मनुष्य-हृदय के सभी भावो को अपने हृदय मे स्वय अनुभव किया है। वह प्रेम की सन-सनाहट, उद्वेग और आनद को पूर्णरूपेण जानता है। वह घृणा, ईर्ष्या और प्रतिहिंसा के तीव्र और पैशाचिक आवेश से परिचित होता है। उसने डाह के साँप को फुफकारते हुए सुना है, और साहस के बाज़ को आकाश में मँडराते हुए देखा है। आशा का कोई ऐसा नक्षत्र नहीं, जो उसके जीवनाकाश मे उदित न हुआ हो। स्नेह का कोई ऐसा इद्र-धनुष नहीं, जिससे उसका चित्त रजित न हुआ हो। ऐसा कोई आनद नहीं, जिससे उसका चेहरा न दमक उठा हो।

उपदेशादि का लाभ पाप से विरक्ति और पुण्य से अनुरक्ति कराने मे है। सो पाप की जड़ हमारी स्वार्थपरता, हमारे देहात्मवाद में है, और कविता आध्यात्मिक है। हम पाप उसी समय तक करते हैं, जब तक केवल अपने भौतिक शरीर की ही परवा करते हैं। सच्ची कविता हमारी अनुमान-शक्ति और भावना-शक्ति को भड़काती है। इसी-लिये हम दुखियों के दुःख से स्वय कातर हो उठते हैं; अनाथों को देखकर स्वय अपने आपको अनाथ अनुभव करने लगते हैं; अन्याय और अत्याचार देखकर अपने आपको अन्याय और अत्याचार से पीड़ित समझने लगते है। कविता हमारे हृदय को विशाल बनाती है। कविता द्वारा ही हमें यह अनुभव होने लगता है कि सृष्टि की संपूर्ण वस्तुएँ हमारे ही आनंद से आनंदित हो रही हैं। पक्षी हमारे लिये ही राग अलापते हैं। सूर्य, चंद्र, ग्रह और नक्षत्रादि हमारे हृदय की गति के अनुसार ही नाच रहे हैं। प्रकृति हमारे आनंद में आनंद और दुःख में दुःख प्रकट करती है। हमें जान पड़ता है कि यह शोभामय दृश्यमान जगत्, जिसके द्वारा हम अपने सौंदर्य के आदर्श को प्रत्यक्षीभूत कर रहे हैं, हमसे भिन्न नहीं। यदि हमसे इसका भिन्नत्व होता, तो फिर यह सागर अपनी लहरों से हमारी मन-नौका को चलायमान कैसे करता। इसी सौंदर्यमय कवित्वोपासना मे हमें यह देखने का सौभाग्य प्राप्त होता है कि यह दृश्यमान सुंदर संसार जिस आदर्श का अनुमान कर रहा है, वह आदर्श हमारे आदर्श से भिन्न नहीं। प्राकृतिक दृश्यों द्वारा समष्टि के आदर्श के साथ व्यष्टि के आदर्श की विलक्षण समानता हमें इसी उपासना में दृष्टिगोचर होने का सौभाग्य प्राप्त होता है। इससे मनुष्य मनुष्य के हृदय के निकट पहुँचकर विकास

को प्राप्त हो सकता है। व्यक्ति अपना व्यक्तित्व ब्रह्मांड मे निलय कर एकमात्र आनंद का अनुभव करता है।

काव्य और साहित्य-शास्त्र

हम इस सृष्टि की प्रत्येक बात मे एक शृंखला पाते हैं। प्रकृति की प्रत्येक बात में, सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ मे सुशृंखलता है, उच्छृंखलता कहीं भी नहीं। उत्पत्ति, जीवन और मरण में नियम है, वनस्पतियो मे नियम है, जड और चेतन सबमे नियम है। अनियम कही भी नही। कला मे भी नियम है, सगीत मे नियम है, चित्रकला मे नियम है, और नियम-बद्ध होने से ही उनकी विशुद्ध शोभा और उत्कर्ष है, जिससे उनका महत्त्व है। कविता भी कला है, और इसमें भी नियम है। अनेक सज्जन धृष्टता करके कहने लग गए हैं कि कवि तो निरकुश होते हैं, उन्हे नियम का बधन नहीं, पर ध्यान रहे कि यह इन लोगो की भयंकर भूल है। बॅगला के सुप्रसिद्ध नाटककार स्वर्गीय द्विजेंद्रलाल राय ने अपने 'कालिदास और भवभूति'-नामक आलोचनात्मक ग्रंथ के १६वें पृष्ठ में इसी का उल्लेख करते हुए लिखा है—"गान की ताल, नृत्य की भाव-भगी, कविता के छंद और सेना की चाल इत्यादि सभी बडी वस्तुओं के कुछ बॅधे हुए नियम होते हैं। यह बात नही है कि निरंकुश होने के कारण कवि लोग नियम के शासन को मानने के लिये सर्वथा ही बाध्य न होते हो। नियम होने के कारण ही काव्य और नाटक सुकुमार कला कहलाते हैं। नियम-बद्ध होने के कारण ही काव्य मे इतना सौदर्य है।" पृष्ठ १६।

तात्पर्य यह कि सृष्टि मे सर्वत्र एक विलक्षण शृंखला बॅधी है। प्रत्येक कला के कुछ स्थायी नियम हैं, फिर देश, काल और पात्र आदि के कारण इन नियमो में कुछ अंतर भी होता है। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न देशो और जातियो की सभ्यता एव कला में कुछ मार्के का अतर अवश्य रहता है, क्योकि प्रत्येक देश और जाति अपने अपनत्व को अक्षुण्ण रखना चाहती है। भारतीय आर्य-साहित्य मे काव्य-कला पर सहस्रो की संख्या मे रीति-ग्रथ है, जो बडे ही रहस्यमय और वैज्ञानिक सत्यो से परिपूर्ण हैं। इस शास्त्र को, जिसमें काव्य-कला के नियमो और उसके स्वरूप की मीमासा की गई है, साहित्य-शास्त्र या अलकार-शास्त्र कहते है। इसमे बडी ही उत्कृष्ट विवेचना है, जिसे समझकर पढने से बुद्धि में बल आता है, और जिससे कला का आदर्श प्रत्यक्षीभूत होता है। आर्य-साहित्य में इस शास्त्र की रचना का प्रारभ कब से हुआ, यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता, पर इतना तो निश्चित है कि भगवान् भरत मुनि से पूर्व ससार की किसी भी भाषा में साहित्य पर विचार नही किया गया। भगवान् भरत मुनि का काल महाभारत के काल से पहले का प्रमाणित होता है। इस प्रकार सन् इस्वी से ५००० वर्ष के पूर्व का समय ठहरता है। उनके पीछे तो सस्कृत और अन्य प्रादेशिक भाषाओ में रीति-ग्रंथो की अगणित रचना हुई। यह भी प्रायः निश्चित है, और सपूर्ण निष्पक्षपात सभ्य संसार ने मान लिया है कि दर्शन-शास्त्र और काव्य तथा अलकार-शास्त्र में भारत ने जो उन्नति हज़ारो वर्ष पहले कर ली थी, वह आधुनिक सभ्य संसार को अभी दुर्लभ है। ध्यान रहे, साहित्य-शास्त्र के विना तो फिर हमारे हाथ में काव्य-कला की कोई श्रेष्ठ कसौटी ही नहीं रह जाती। फिर विना कसौटी के काव्य-कला की उत्तमता या निकृष्टता का निर्णय ही कैसे होगा। तात्पर्य यह कि साहित्य-शास्त्र काव्य-कला का वैज्ञानिक विश्लेषण करने-

वाला होने से काव्य का संयोजक, नियामक और हितकारक है, एवं साहित्य की कसौटी पर काव्य परखा जाता है।

आधुनिक काल में हमारे सम्मान्य, अद्वितीय गवेषणा-पूर्ण साहित्य-शास्त्र की ओर से अनेक साहित्यिक विरक्त हो गए हैं। इसका कारण पाश्चात्य शिक्षा और साहित्य है। उन देशों में अभी तक काव्य कला की ऐसी विशद विवेचना नहीं हो सकी, जो शास्त्रीय संज्ञाओं को जन्म देकर, काव्य-रीति में प्रौढ़ता लाकर साहित्य को शास्त्र का रूप दे सकती। वहाँ तो अभी कैसी सरसता है, कैसी तड़प है, कैसी वेदना है, आदि कहकर ही आलोचना होती है। इससे आगे बढ़कर वे उस वेदना या तड़प की अभिव्यक्ति और पूर्णता के कारणों की शास्त्रीय विवेचना करने में नितांत असमर्थ ही हैं। मिठास का अनुभव कर सकना तो बालक के लिये भी सहज व्यापार है, पर उस पदार्थ-विशेष में मिठास के ढंग और उसकी उत्पत्ति के कारण आदि जाननेवाला स्वाद-वेत्ता जैसा आनंद उससे प्राप्त करने में समर्थ होता है, वह भला बालक के लिये कहाँ संभव है? इसी प्रकार साहित्य-शास्त्र का ज्ञान न होने से कोई भी व्यक्ति काव्य का आनंद लेने में समर्थ नहीं हो सकता, और न कोई कवि सर्वांग सुंदर उत्तमोत्तम रचना करने में ही समर्थ हो सकता है।

हम लिख चुके हैं कि आर्यों के साहित्य-शास्त्र का श्रीगणेश ब्रह्मदेव के शिष्य आद्य साहित्य संगीताचार्य भगवान् भरत मुनि से माना जाता है, जो आज से लगभग ५५०० वर्ष पूर्व, महाभारत-काल से पूर्व, हो गए हैं। इन्होंने 'नाट्यशास्त्र' की रचना करके साहित्य-मार्ग का सर्वप्रथम निरूपण किया था। इनके बाद तो फिर सहस्रों धुरंधर साहित्य-शास्त्र-निष्णात कवीश्वरों और आचार्यों ने साहित्य के सहस्रों रीति-ग्रंथ रचे हैं। हिंदी में भी सोलहवीं शताब्दी से अर्थात् श्रीकेशवदासजी के काल से आज तक साहित्य-रीति-ग्रंथों के प्रणयन का क्रम चला आ रहा है। पिछले पचास वर्षों में हिंदी राष्ट्र-भाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो चुकी है। उसका साहित्य भी बड़े झपाटे से बढ़ रहा है। ऐसी दशा में एक सर्वांग-सुंदर रीति-ग्रंथ की कितनी आवश्यकता है, इसे सहृदय सज्जन स्वयं ही विचार लें। आज तक हिंदी में जितने रीति-ग्रंथ लिखे गए हैं, उनमें से किसी में कोई अंश छूट गया है, तो किसी में कोई अंश। एक-दो संग्रह-ग्रंथ लिखे भी गए हैं, पर वे 'मक्षिकास्थाने मक्षिका' की कहावत को चरितार्थ करनेवाले होने से उपयोगी नहीं।

यही विचारकर श्रीमान् बिजावर-नरेश के कृपापात्र कविराज बिहारीलालजी भट्ट ने श्रीमान् की आज्ञा से यह 'साहित्य-सागर'-नामक ग्रंथ रचा है, जिसमें प्रायः संपूर्ण काव्य-विषय आ गया है। हाँ, यदि यह नाटक और गद्य-काव्य पर कुछ और विवेचना इस ग्रंथ में कर देते, तो फिर यह बड़ा अद्भुत ग्रंथ बन जाता, परंतु पद्यात्मक विचार-धारा में गद्य-काव्य एवं नाटक को समझाने की गुंजाइश न होने से यह कमी इसमें रह गई है।

साहित्य-सागर में प्रधान रूप से कवि ने पिंगल, काव्यार्थ और ध्वनि, शृंगार-रस, नायिका-भेद, नवरस, अलंकार और दान-प्रकरण का वर्णन किया है। अब तक के रीति-ग्रंथों में पिंगल के साथ-साथ अन्यान्य संपूर्ण काव्यांगों को वर्णन करने की परिपाटी नहीं पाई जाती। बाबू जगन्नाथप्रसाद 'भानुकवि' ने अपने संगृहीत 'काव्यप्रभाकर' में इसका क्रम अन्य काव्यांगों के साथ रक्खा है, पर उसमें पिंगल की स्थूल रूप से चर्चा-मात्र की गई है। ध्वनि के विषय में हम या तो आचार्य भिखारीदास के 'काव्य-निर्णय' में व्यवस्थित

स्थित रूप से विवेचना की छटा देखते हैं, या श्रीकन्हैयालालजी पोद्दार के गद्यात्मक ग्रंथ 'काव्य-कल्पद्रुम' में इसकी गद्यात्मक विवेचना की छटा पाते हैं। शेष हिंदी रीति-ग्रंथों में इनका अच्छा वर्णन नहीं है। प्रस्तुत ग्रंथ में कविराजजी ने पिंगल के साथ-साथ ध्वनि का भी समारोह से वर्णन किया है। मतिराम और पद्माकर आदि आचार्यों ने जो रीति-ग्रंथ हिंदी में लिखे हैं, उनमें रस और नायिका-भेद का वर्णन ही प्राप्त होता है। वह वर्णन भी अपने ढंग से शास्त्रीय विवेचना-पद्धति का आश्रय ग्रहण कर कविराज ने अपने इस रीति-ग्रंथ में यथोचित रीति से किया है।

आधुनिक काल में पिंगल, शृंगार-रस और नायिका-भेद पर कतिपय सज्जन गंदे-से-गंदे आक्षेप करने लगे हैं। इन्हें इन विषयों का न तो ज्ञान ही है, और न ये महाशय उसका परिचय ही प्राप्त करना चाहते हैं। इतने पर भी निंदा करने का कार्य करने में इन्हें लाज नहीं आती। अनेक कारणों से मैं यहाँ तीनों के विषय में अपने पाठकों के सम्मुख कुछ विचार-सामग्री उपस्थित करना उचित समझता हूँ। इन पर मैं यहाँ क्रमशः विचार करता हूँ।

पिंगल या छंद-शास्त्र

आर्य-साहित्य में छंद-शास्त्र का सदा से मान रहा है। वेद भगवान् के छ अंगों में (१) शिक्षा, (२) कल्प, (३) व्याकरण, (४) निरुक्त, (५) छंद और (६) ज्योतिष की गणना है। इसी से 'छन्दः पादौ तु वेदस्य' की घोषणा की गई है। चौदह विद्याओं में भी छंद-शास्त्र की गणना है। लिखा है—

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः;
धर्मशास्त्रं पुराणं च विद्या ह्येताश्चतुर्दशः।

अर्थात् चारो वेद, वेदों के छ अंग और मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण मिलाकर चौदह विद्याएँ हैं।

स्मरण रहे, चौसठ कलाओं में भी छंद-रचना एक प्रमुख कला है। तात्पर्य यह कि आर्य-साहित्य में छंद की बड़ी महिमा है। यहाँ तक कि धर्म-ग्रंथों से लेकर दर्शन-शास्त्र, न्याय, ज्योतिष, वैद्यक और साहित्य के इतिहास एवं कोष आदि पर जो ग्रंथ लिखे गए हैं, वे प्रायः छंदोबद्ध हैं।

काव्य में तो छंद से सौगुनी शोभा बढ़ जाती है। यद्यपि साहित्य के आचार्यों ने (१) पद्यात्मक और (२) गद्यात्मक काव्य मानकर काव्य के दो प्रधान खंड किए हैं, पर बहुमत से पद्यात्मक काव्य ही काव्य माना जाता है, और साधारण जनता तो गद्य काव्य को काव्य ही नहीं मानती। पाश्चात्य साहित्य-सेवियों ने भी प्रधानतया पद्यात्मक काव्य को कविता मानकर कविता के लक्षण में उसे पद्यात्मक होना स्वीकार किया है।

हिंदी के छंद-शास्त्र का आधार संस्कृत-भाषा का पिंगल-शास्त्र है। फिर भी हिंदी-भाषा में छंद-शास्त्र पर जैसी गवेषणा की गई है, वह अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है। छंद में प्रधान वस्तु उस छंद की लय या ध्वनि है। दोहा छंद के विषय में कहा जाता है कि यह १३, ११ के विश्राम से २४ मात्रा का होता है, और अंत में गुरु-लघु का नियम है। पर ध्वनि ठीक न रहने से उक्त नियम के पालन करने पर भी दोहा नहीं बन पाता। जैसे—

गोविंद नाम जाहि में संगीत भलो जान। (ध्वनि-हीन)
सीताबरै न भलिए, जौ लौं घट में प्रान। (ध्वनि-युक्त)

यथार्थ में सच पूछो, तो छंद-रचना प्रायः ध्वनि ही से होती है। जिसे छंद की ध्वनि या लय सिद्ध हो जाती है, उसे छंद-रचना करना एक स्वाभाविक बात हो जाती है। प्रस्तुत ग्रंथ साहित्य-सागर में कविराज श्रीबिहारीलालजी ने पिंगल पर अच्छी विवेचना की है, और उसी के विवेचन में गीत-निर्माण करने की विधि पर भी अच्छा प्रकाश डाला है।

शृंगार-रस

इन नौ रसों में शृंगार रसराज है, एवं शृंगार ही आदि रस कहकर पुकारा गया है। धुरंधर साहित्य-मर्मज्ञ आर्य-साहित्य-शास्त्र के प्रमुख आचार्यों ने साहित्य के रीति-ग्रंथों में शृंगार-रस को ही प्रधानता दी है। बात तो यह है कि तात्विक विवेचना से निष्कर्ष यही निकलता है कि शृंगार ही मानव-जगत् का आदि रस है, और इसी के द्वारा मनुष्य-जाति ने जीवन प्राप्त किया है, अपनी परंपरा रक्खी है, और उदार हृदय होकर इसी के विशुद्ध प्रेम से संसार के भक्तों और दार्शनिकों ने परमात्मा के प्रति जीवात्मा के प्रेम का परिचय प्राप्त किया है। इसी से संपूर्ण विश्व के प्रसिद्ध महाकवियों की रचनाओं में शृंगार-रस के सुंदर वर्णन प्रचुरता से प्राप्त होते हैं। इसका एक प्रधान कारण यह भी है कि कविता कला है, और भाव-धारा-प्रधान साहित्य के अंतर्गत। प्रत्येक कला का उद्देश्य सौंदर्य के आदर्श को प्रत्यक्षीभूत करना होता है। इस दृष्टि से काव्य में सौंदर्य का वर्णन रहता है। शृंगार ही एक ऐसा रस है, जिसमें बाह्य और अंतरंग प्रकृति के सर्वोत्कृष्ट सौंदर्य का वर्णन रहता है। इसी से आद्याचार्य भगवान् भरत मुनि ने आदेश किया है—

यत्किञ्चिल्लोके शुचिमेध्यमुज्ज्वलं दर्शनीयं वा तत्सर्वं शृंगारेणोपमीयते।

(नाट्यशास्त्रे)

इसके अतिरिक्त भाव-धारा-प्रधान साहित्य में प्रेम के समान अन्य कोई भी ऐसा श्रेष्ठ स्थायी भाव नहीं है, जिसमें संपूर्ण स्वार्थ विलय और द्वैतभाव-शून्यता का चमत्कार हो। अनुभावों के अंतर्गत भी हावों का वर्णन केवल शृंगार में ही होता है, और सात्त्विक भावों का भी जैसा उत्कर्ष शृंगार में होता है, वैसा अन्य रसों में सर्वथा दुर्लभ है। फिर शृंगार-रस में आश्रय और आलंबन का भी वास्तविक भेद नहीं रहता। इसमें—केवल इसी में—स्थायी भाव आलंबन की अनुभूति का विषय होता है। अन्य रसों में आश्रय और आलंबन दोनो स्थायी भाव की अनुभूति करते हुए स्वप्न में भी नहीं देखे जाते। दोनो में एकप्राणता का यह भाव केवल शृंगार में ही होता है। उद्दीपन भाव की दृष्टि से भी शृंगार सर्व-श्रेष्ठ है। अन्य रसों के उद्दीपन केवल मानुषी हैं, पर शृंगार-रस के उद्दीपन मानुषी और दैवी दोनो होते हैं। संचारी भावों की दृष्टि से भी शृंगार सर्व-श्रेष्ठ है, क्योंकि शृंगार के स्थायी भाव रति के प्रायः संपूर्ण संचारियों का वर्णन रहता है। यही नहीं, वरन् शृंगार का अंग बनाकर दूसरे रसों का वर्णन भी किया जाता है। इस प्रकार यह निर्विवाद है कि शृंगार ही रसराज है। यथार्थ तो यह है कि रस की आद्यंत संपूर्ण योजना की अभिव्यक्ति शृंगार-रस के अतिरिक्त और किसी रस में ऐसी पूर्णता और उत्तमता से नहीं होती। शृंगार-रस की इसी व्यापकता के कारण साहित्याचार्यों को रस-निरूपण करने में, साहित्य-ग्रंथों में रस योजना को पूर्णतया स्पष्ट रीति से समझाने में, शृंगार का ही आश्रय लेना पड़ा है। साहित्य-रीति-ग्रंथों के उदाहरणों में शृंगार-रस के छंदों और अवतरणों का बाहुल्य है।

अन्य संपूर्ण रस इसी एक शृंगार-रस के विवर्त, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार भँवर,

बुलबुले और तरंग आदि सब एक जल ही के विकार हैं। जैसे वायु-क्षोभ और आघातादि के कारण जल ही आवर्त आदि का रूप धारण कर लेता है, उसी प्रकार एक मूल रति भाव ही भिन्न-भिन्न रसों में परिणत हो जाता है। सर्व-श्रेष्ठ एवं आदि रस कौन है, इसका दार्शनिक समझौता भगवान् वेदव्यास ने अग्निपुराण में अत्युत्कृष्टतया किया है। इसका निरूपण अग्निपुराण के निम्न-लिखित श्लोकों में दर्शनीय है—

अक्षरं परमं ब्रह्म सनातनमजं विभुम्;
वेदान्तेषु वदन्त्येकं चैतन्यं ज्योतिरीश्वरम्।
आनन्दः सहजस्तस्य व्यंज्यते स कदाचन;
व्यक्तिः सा तस्य चैतन्यचमत्काररसाह्वया।
आद्यस्तस्य विकारो यः सोऽहंकार इति स्मृतः;
ततोऽभिमानस्तत्रेदं समाप्तं भुवनत्रयम्।
अभिमानाद्रतिः सा च परिपोषमुपेयुषी;
व्यभिचार्यादिसामान्याच्छृंगार इति गीयते।
तद्भेदाः काममितरे हास्याद्या अप्यनेकशः;
स्वस्वस्थायिविशेषोत्थपरिघोष स्वलक्षणाः।
सत्त्वादिगुणसन्तानाज्जायन्ते परमात्मनः;
रागाद्भवति शृङ्गारो रौद्रस्तैक्ष्ण्यात्प्रजायते।
वीरोऽवष्टम्भजः संकोचभूर्बीभत्स इष्यते;
शृङ्गाराज्जायते हासो रौद्रात्तु करुणो रसः।
वीराच्चाद्भुतनिष्पत्तिः स्याद्बीभत्साद्भयानकः;
शृङ्गारहास्यकरुणारौद्रवीर भयानकाः।
बीभत्साद्भुतशान्ताख्याः स्वभावाच्चतुरो रसाः।

(अग्निपुराण)

जिसे वेदांतदर्शन में नित्य, अजन्मा, व्यापक, अद्वितीय, ज्ञानस्वरूप, स्वतःप्रकाशमान और सर्वसमर्थ परब्रह्म कहा है, उसमें स्वतःसिद्ध आनंद (रस) विद्यमान है। वह आनंद कभी-कभी प्रकट हो जाया करता है, और उस आनंद की वह अभिव्यक्ति चैतन्य चमत्कार अथवा रस नाम से पुकारी जाती है। उसी आनंद की अभिव्यक्ति का जो प्रथम विकार है, उसे अहंकार (ममत्व) माना है। इस अहंकार से अभिमान अर्थात् ममता उत्पन्न होती है, जिसमें यह सारी त्रिलोकी समाप्त हो गई है। तात्पर्य यह कि त्रिभुवन में एक भी वस्तु ऐसी नहीं, जो किसी-न-किसी की ममता की पात्र न हो। उसी अभिमान अथवा ममता से रति भाव की उत्पत्ति होती है। वही रति (प्रेम) भाव व्यभिचारी आदि भावों की समानता से अर्थात् समान रूप में उपस्थित व्यभिचारी आदि भावों से परिपुष्ट होकर शृंगार-रस कहलाता है। उसी के हास्य आदि अन्य अनेक भेद हैं। वही रति सत्त्वादि गुणों के विस्तार से राग, तीक्ष्णता, गर्व और संकोच, इन चार रूपों में परिणत होती है। इनमें से राग से शृंगार की, तीक्ष्णता से रौद्र की, गर्व से वीर की और संकोच से बीभत्स की उत्पत्ति मानी गई है। स्वभावतः ये चार ही रस हैं, परंतु पीछे शृंगार से हास्य, रौद्र से करुण, वीर से अद्भुत और बीभत्स से भयानक की उत्पत्ति हुई। एवं रति के अभाव रूप

निर्वेद से शांत-रस की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार रसों के शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्‌भुत और शांत, ये नौ नाम हुए।

संस्कृत-भाषा के प्राय: संपूर्ण उद्भट साहित्याचार्यों ने बड़े समारोह से रसों का वर्णन करते समय शृंगार-रस को ही रसराज प्रमाणित किया है। इस रस के भेद-प्रभेद आदि का जैसा विस्तृत वर्णन रीति-ग्रंथों में प्राप्त होता है, उसका शतांश भी अन्य किसी रस का नहीं है। चौदहवीं शताब्दी के साहित्य-शास्त्र निष्णात कविवर विद्याधर ने जो 'एकावली'-नामक साहित्य-ग्रंथ लिखा है, उसके रस-प्रकरण मे उन्होंने महाराजा भोजदेव-विरचित 'शृंगार-प्रकाश'-नामक ग्रंथ का उल्लेख किया है। 'शृंगार-प्रकाश' की रचना शृंगार-रस की सर्व-श्रेष्ठता का दिग्दर्शन कराने के हेतु हुई थी। इस 'शृंगार-प्रकाश' का शृंगार-रस के विषय में दिया हुआ निर्णय पं० पद्मसिंह शर्मा ने अपने सतसई-सजीवन-भाष्य के ५वें पृष्ठ पर उद्धृत किया है। वह यह है—

वीराद्भुतादिषु च ये ह रसप्रसिद्धिः
सिद्धाः कुतोऽपि वटयक्षवदाविभाति ;
लोके गतानुगतिकत्ववशादुपेता-
मेतांनिवर्तयितुमेष परिश्रमो नः।
शृङ्गारवीरकरुणाद्भुतहास्यरौद्र-
बीभत्सवत्सलभयानकशान्तनाम्नः ;
आम्नासिषुर्दशरसान् सुधियो वयन्तु
शृङ्गारमेव रसनाद्रसमामनामः।

हिंदी के संपूर्ण साहित्याचार्यों ने शृंगार को ही रसराज माना है, और इसके भेदों-उपभेदों का बड़े समारोह से वर्णन किया है। इसके विषय में ब्रजभाषा-साहित्य में सबसे पीछे रचे गए उत्तम रीति-ग्रंथ 'साहित्य-सुधानिधि' में जो विवेचना की गई है, उसका सारांश पं० कृष्णविहारी मिश्र ने 'मतिराम-ग्रंथावली' की भूमिका में दिया है। उसी से मिलता-जुलता मत हिंदी के संपूर्ण साहित्य-रीति-ग्रंथकारों को मान्य रहा है, अतएव उसका उल्लेख प्रसंग-वश यहाँ करना उचित प्रतीत होता है—

"शृंगार-रस के देवता कृष्ण माने गए हैं। कृष्ण और विष्णु एक ही हैं, पर संसार की सृष्टि के सर्वस्व कामदेव के साथ विष्णु की अपेक्षा कृष्ण का अधिक संपर्क है। विष्णु से कृष्ण में इतनी अधिकता है। विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र सभी (त्रिदेव) समान प्रभाववाले हैं। फिर भी राजा वही बनाया जाता है, जिसका काम पालन हो। यह काम विष्णु और कृष्ण बराबर कर सकते हैं, परंतु कृष्ण में विष्णु से कुछ विशेषता है। इसलिये वे ही रसराज के देवता माने गए। शृंगार के देवता कृष्ण बनाए गए, इसका अभिप्राय यह है कि शृंगार का प्रभाव सृष्टि-स्थिति बनाए रखनेवाला माना गया है। यह एक बहुत बड़ी विशेषता है। इसी के कारण शृंगार रसराज मान लिया गया। शृंगार में सब संचारी पाए जाते हैं। इस कारण भी वह सबसे बड़ा है। सारा संसार प्रकृति और पुरुष की क्रीड़ा का रंगस्थल है। इसी के प्रतिबिंब के समान शृंगार-रस में नर-नारी की उचित प्रीति का वर्णन है, इसीलिये भी वह रसराज है। उद्दीपन दो प्रकार के होते हैं—(१) दैवी और (२) मानुषी। ऋतु-रमणीयता आदि दैवी उद्दीपन हैं। और रसों के उद्दीपन अधिकतर मानुषी हैं, पर शृंगार के

मानुषी और दैवी दोनो हैं। श्रृंगार के उद्दीपन सर्वत्र और बारहो मास सुलभ हैं। इसी से श्रृंगार रसराज है। श्रृंगार के विरोधी रसों का भी श्रृंगार के साथ मित्रवत् वर्णन किया जा सकता है। अन्य रस उसके अंगी बनाए जा सकते हैं। इससे भी श्रृंगार की प्रमुखता प्रमाणित होती है।" (पृष्ठ ३५-३६)

तात्पर्य यह कि सृष्टि में रति का भाव प्रधान है, और जिसकी छत्रच्छाया में संपूर्ण स्थायी और सचारी मनोभाव विचरण करते हैं, वह श्रृंगार-रस ही आदि रस और रसराज है।

नायिका-भेद

इस युग में नायिका-भेद के नाम से लोगों को चिढ़ सी हो गई है। इसके दो कारण हैं—एक तो हमारे यहाँ के साहित्याचार्यों ने नायिका-भेद को जटिल और कुछ गंदा बना डाला है, और दूसरे आजकल के लोग विना विचार किए निंदा करने में अभ्यस्त हो गए हैं। विशेषकर इस युग के पतित हिंदुओं को अपने पूर्व पुरुष मूर्ख जान पड़ने लगे हैं, पर बात कुछ और ही है। नायिका-भेद का विषय अत्यत आवश्यक है। हमारे यहाँ का नायिका-भेद मनोविज्ञान पर निर्भर है। मनोविज्ञान कितना आवश्यक है, इसे सभ्य संसार भली भाँति जानता है। हमारे साहित्यिको ने मनोविज्ञान पर जटिल ग्रंथ न लिखकर उसे साधारण रीति से सर्वोपयोगी बना डाला था। वे जानते थे कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का मन विशेष दुर्बोध्य है। इसी से उन्होंने स्त्रियों के मनोविकारों का खूब ही वर्णन किया है। फिर नारियों का मन पुरुषों की अपेक्षा कोमल होता है, इससे उस पर कोमल-से-कोमल धक्के शीघ्र ही लगते हैं, और उनका परिणाम हमारे देखने में आ जाता है। इसी कोमलता के कारण नारियों के मस्तिष्क शीघ्र ही उत्तप्त हो उठते हैं; अतएव मनोविज्ञान का अध्ययन करने मे नारी मन विशेष सहायक है।

मनोविज्ञान जानकर हम दूसरो पर किस प्रकार विजय प्राप्त कर सकते हैं, इसे अनुभवी विद्वान् खूब जानते हैं। व्यापारी, राजनीतिक कार्यकर्ता, समाज सुधारक तथा साहित्य-सेवियो को तो मनोविज्ञान का ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक है। इसके विना लोगों के मानसिक विकारों को न परख सकने के कारण अपने उद्योग में लोग आशा जनक सफलता नही प्राप्त कर सकते। विचारशील पाठकों को नायिका-भेद में मनोविज्ञान की सामग्री प्रचुर परिमाण मे प्राप्त होगी।

मनोविज्ञान मन और उसकी वृत्तियों का वैज्ञानिक पद्धति से विचार करता है। वह बतलाता है कि शरीर और मन एक दूसरे से सबधित हैं, एव मन का प्रभाव शरीर पर तथा शरीर का मन पर पड़ता है। जब कभी मन मे भय, लज्जा, शोक क्रोध आदि उठते हैं, तब इन मनोवृत्तियों का प्रभाव शरीर पर अविलंब पड़ता है, और शरीर में तदनुरूप क्रिया होने लगती है। इसी प्रकार जब शरीर पीड़ित तथा अस्वस्थ रहता है, तब मन साहस-हीन हो जाता है। यद्यपि मन के (१) ज्ञान (Cognition), (२) विकार (feeling) और (३) सकल्प(willing)-नामक तीन पृथक्-पृथक् व्यापार हैं, परंतु वास्तविक मानसिक जीवन मे उक्त तीनो एक दूसरे से अलग नही होते। प्रत्येक मानसिक क्रिया मे तीनो का समावेश पाया जाता है। यथार्थ तो यह है कि ज्ञान के विना विकार नही होता, और विकार के विना संकल्प नहीं होता। जब तक हमे किसी वस्तु

का ज्ञान न हो जाय, तब तक उससे अनुरक्ति या विरक्ति का भाव नहीं हो सकता, और जब तक अनुरक्ति या विरक्ति का विकार नही होता, तब तक किसी वस्तु या विषय के ग्रहण या त्याग का संकल्प नही हो सकता।

स्मरण रहे, विज्ञान में नियम होता है, जिसके लिये सामग्री की आवश्यकता होती है। विषय संबंधिनी घटनाओं के अभाव मे विज्ञान निर्मित नही हो सकता। सामान्य नियम जानने के लिये एक-दो घटनाओं से काम नहीं चल सकता। इसके (१) मनन (Introspection), (२) निरीक्षण (Observation) और (३) परीक्षा(Experiment)-नामक तीन साधन हैं। नायिका-भेद के साहित्य में इन तीनो साधनों की प्रचुरता है। इन संपूर्ण बातों का सविस्तर वर्णन यहाँ नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसमें एक पृथक् विशाल ग्रंथ अलग ही निर्मित हो जायगा, पर यह स्मरण रहे कि "जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठि।"

इसके अतिरिक्त नायिका-भेद हमे शरीर-विज्ञान का भी परिचय देता है। मन का बाह्य संसार से क्या संबंध है, और वह बाह्य संसार से सवेदन कैसे प्राप्त करता है, इस विषय को जानने के लिये ही शरीर-विज्ञान का अध्ययन आवश्यक है। इस बात को हम नायिका-भेद के साहित्य में निरीक्षण, मनन एवं श्रवण द्वारा सहज ही मे जान सकते हैं। इस प्रकार नायिका-भेद मानवीय प्रकृति से परिचय प्राप्त कराने मे अग्रसर होता हुआ हमारा महान् उपकार करता है, एवं उस विराट् परमात्मा की निखिल मानव-सृष्टि के रहस्य का ज्ञाता बनाकर विश्व-वैचित्र्य का द्रष्टा बनाता है।

नायक भेद की अपेक्षा नायिका-भेद का बाहुल्य होने का कारण यह है कि नारी प्रेम की मूर्ति है। प्रेम ही उसका ध्येय है, और प्रेम ही उसके जीवन का उद्देश्य। वह स्वयं प्रेममय होती है। पुत्र से पुत्री के, भाई से बहन के, पति से पत्नी के और पिता से माता के प्रेम में कैसी तीव्रता होती है, इसे सभी सहृदय जानते हैं। बाल्यावस्था में नारी के प्रेम का प्रस्फुटन पूर्णरूपेण नहीं हो पाता। उसका प्रेम-पुष्प पूर्णतया नहीं खिल पाता। यौवनारंभ में नारी के हृदय मे प्रेम की एक नवीन उद्दाम हिलोर उठती है। उस प्रेम में दो बातें होती हैं। एक तो पुरुष के गुण, उत्साह एवं ऐश्वर्य आदि के प्रति प्रशंसा और दूसरे ममता। वह चाहती है कि बाहर से तो पुरुष का मुझ पर आधिपत्य रहे, परंतु उसके हृदय पर मेरा राज्य हो। इसी भावुकता के वशीभूत होकर उसमें एक ऐसा आनंदोन्माद पैदा होता है, जो उसकी इच्छा और तर्क की सभी बाड़ों को तोड़ डालता है। वह उस पुरुष के हाथ, जिस पर वह मुग्ध हो चुकी है, या जिसने उस पर अपना मोहिनी मंत्र चलाया है, आत्मसमर्पण कर देती है। वह उसकी दासी होकर उसका अनुसरण करने और उसके लिये बड़ी-बड़ी मूर्खताएँ करने से भी नहीं हिचकिचाती। पुरुष का प्रेम कितना ही तीव्र और प्रचंड क्यों न हो, पर वह स्त्री की अपेक्षा इस प्रकार विवेक-बुद्धि को बहुत कम जवाब देता है। एक बार मन चंचल हो जाने पर फिर स्त्री के लिये अपने आपको सँभालना कठिन हो जाता है। परंतु पुरुष प्रायः किसी भी समय अपने को सँभाल सकता है। तात्पर्य यह कि स्त्री का काम निष्क्रिय होने पर भी उसमें पुरुष से विशेष भावुकता होती है, अतएव विशेष प्रेम होता है।

इसी से आर्य-साहित्य में नायिका-भेद का बाहुल्य है। फिर हिंदू-नारी का प्रेम तो विश्व

में सती का महत्त्व स्थापित कर चुका है। यथार्थ तो यह है कि आर्य-साहित्य में दांपत्य प्रेम का जैसा वर्णन है, वैसा अन्यत्र होना दुर्लभ है। आर्य कवियों ने आर्य सतियो के चरित्र मे जिस प्रेमादर्श की सृष्टि की है, वह एकदम अद्वितीय है। वह प्रेम मनुष्यत्व में देवत्व का दर्शन कराकर पृथ्वी पर स्वर्ग की अवतारणा करता है। सती अपने पति को सुखी बनाकर आप सुखी होना चाहती है, और उसी से उसकी परितृप्ति होती है। उसका प्रेम कामानुराग से भिन्न होता है। कामानुराग दूसरे के द्वारा आप सुख-सभोग करना चाहता है। इंद्रिय-लालसा की परितृप्ति करके काम चरितार्थ होना चाहता है, पर प्रेम परार्थपर होता है। वह कामानुराग के समान स्वार्थपर नहीं होता। प्रेम के परार्थपर होने के कारण ही सती अपने पति के गुण-दोष मे निरपेक्ष रहती है। गुण देखकर जो प्रेम करेगा, वह दोष देखकर घृणा भी करेगा। प्रेम के इस उच्च शिखर तक कामानुराग कभी नही पहुँच सकता। कामानुराग रूप और गुण के वशीभूत रहता है। रूप चिरस्थायी नहीं होता, और गुण अत्यत दोष विहीन हो ही नही सकता। सच तो यह है कि सती का प्रेम कोई व्यवसाय नही है, वह प्रेम का बदला नहीं चाहती। प्रकृत प्रेम से कामानुराग सर्वदा भिन्न होता है। कामानुराग रूप, गुण अथवा ऐश्वर्य आदि के कारण होता है, इससे उसके पात्र-अपात्र का परिवर्तन सदा ही संभव रहता है। आज जिसे सुंदर और गुणी समझ कामना ने अपनाया है, कल उससे अधिक सुंदर और गुणी को प्राप्त कर वह प्रेम चंचल हो उठेगा। ऐसा होते ही कामना की प्रबल प्रवृत्ति उसकी ओर झुक पड़ेगी। कामना चंचल होती है, किंतु प्रेम का धर्म है स्थिरता और एकनिष्ठता। पवित्र प्रेम की पूर्ण ज्योति आर्य हिंदुओं के सती-प्रेम से जगमगाती हुई आज भी अधिकांश हिंदू-घरों को पवित्र कर रही है। विवाह के बाद पत्नी पति से प्रेम करना अपना कर्तव्य समझती है। पति ही उसके प्रेम-पात्र और आराध्य हैं, एवं वे ही उसके परम प्रिय सखा होते हैं। यद्यपि अन्यान्य देशों में पति-पत्नी के सख्य प्रेम के चित्र अवश्य हैं, पर आर्य हिंदुओं मे पत्नी के सख्य प्रेम के साथ भक्ति का सयोग होने से वह सर्वथा अपूर्व और निर्मल हो गया है। उसमे प्रत्येक व्यवहार से प्रेम और भक्ति का परिचय मिलता है। उनका प्रेम भक्ति से समुन्नत और स्नेह से आर्द्र है। हिंदू स्त्रियाँ बड़े आदर की सामग्री हैं। वे गृह-लक्ष्मियाँ हैं। उन्ही से हिंदू-परिवार की मान-मर्यादा है।

अंत में इतना निवेदन कर देना और आवश्यक प्रतीत होता है कि नर-नारी के दांपत्य प्रेम का जैसा समुज्ज्वल वर्णन आर्य-साहित्य में हुआ है, और होता है, वैसा अन्यत्र होना सर्वथा दुर्लभ ही है। बड़े-बड़े कवियों ने 'जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि' की कहावत को चरितार्थ करनेवाली प्रखर प्रतिभा के द्वारा मानव-हृदय के न-जाने कितने गूढ़ रहस्यों को प्रकट किया है। इन महावीरों ने अपनी अप्रतिम प्रतिभा और आध्यात्मिक भावनाओं के बल से मानवीय हृदय के—अंतर्जगत् के—कितने निगूढ़ रहस्यों का आविष्कार किया है। उन पूज्य महानुभावो का मत है कि 'पतग और दीपक' का प्रेम आदर्श है। फिर केवल देववाणी संस्कृत या गुणागरी नागरी आदि भारतीय भाषावाले ही नहीं, फारसी आदि विदेशी भाषाओवाले भी 'शमा-परवाना' के इश्क को दर्जे-अव्वल का इश्क़—प्रथम श्रेणी का प्रेम—मानते है। लक्षावधि कवियो ने इस प्रेम को 'आदर्श प्रेम' (Ideal Love) माना है। पर हिंदू-सतियो का प्रेम इस आदर्श को भी मात देनेवाला है। उसने संसार-भर

के प्रेमी कवियों को दिखा दिया है कि तुम्हारी कल्पना जब प्रकृति से शतगुणित ऊँचे चढ़कर देखे, तब कहीं वह हिंदू-नारी (सनातनधर्मी हिंदू-नारी) के प्रेम को समझ सकती है।

माधुरी वर्ष ५, खंड १, भाग १, पृष्ठ ३६ पर पं० पद्मसिंह ने लिखा था—

'सर्वे आज़ाद'-नामक फ़ारसी-ग्रंथ के लेखक ने...भी खुसरो का उल्लेख किया है। उन्होंने अकबर बादशाह के समय की एक सती की घटना लिखी है कि अकबर के समय में एक नौजवान हिंदू वर की बरात आगरे मे छत्ते के बाज़ार होकर लौट रही थी। अचानक बाज़ार के छत्ते की कड़ी टूटकर वर के ऊपर गिर पड़ी, जिसकी चोट से बेचारे वर की वहीं मृत्यु हो गई। अभागी वधू (दुलहिन), जो अत्यंत रूपवती युवती थी, वर के साथ सती होने लगी। जब इस घटना की ख़बर अकबर को मिली, तो उसने दुलहिन को अपने सामने बुलाकर समझाया-बुझाया, और तरह-तरह के लालच देकर उसे सती होने से रोकना चाहा। पर सती वधू अपने व्रत से न डिगी, और पति के साथ चिता मे जलकर सती हो गई। इस घटना पर शाहज़ादा दानियाल की आज्ञा से नौयी शायर ने मसनवी 'सोज़ो गदाज़' लिखी थी। इस घटना का उल्लेख करके मीर गुलामनबी 'आज़ाद' लिखते हैं—

अज़ाईं जास्त कि शोअराए ज़बान हिंद दर अशआर खुद इश्क़ अज़ जानिबे ज़न बयाँ मी कुनद व ओरा सरमायए-ज़िंदगी मी शुमारद व बाद मुर्दने शौहर-खुदरा बा मुर्दा शौहर मी सोज़द। अमीर खुसरो मी गोयद—

> ख़ुसरवा दर इश्कबाज़ी कमज हिंदू-ज़न मबाश;
> कज़बराए मुर्दा सोज़द ज़िंदा जाने खेश रा।

अर्थात् यही बात है कि हिंदी-भाषा के कवि अपनी भाषा में स्त्री की ओर से प्रेम का वर्णन करते हैं, क्योंकि हिंदू-स्त्री बस एक ही पति को वरती है, और उसे ही अपना जीवन-सर्वस्व समझती है। पति के मरने पर मृत पति के साथ वह भी जल मरती है। अमीर ख़ुसरो ने कहा है—

ऐ ख़ुसरो, प्रेम-पंथ—इश्क़बाज़ी—में तू हिंदू-नारी से पीछे मत रह, उसकी बराबरी कर कि वह मुर्दा पति के साथ अपनी ज़िंदा जान जला देती है।

इसी भाव को एक और फ़ारसी-कवि ने इन शब्दो में प्रकट किया है—

> हम चु हिंदू-ज़न कसेदर आशिक़ी मरदाना नेस्त;
> सोख्तन् बर शमा मुर्दा कार हर परवाना नेस्त।

यानी प्रेम में हिंदू-स्त्री की तरह कोई मर्द मर्द-मैदान नहीं। मरी (बुझी) हुई शमा (मोमबत्ती) के ऊपर जल मरना हर परवाने का काम नहीं।

एक उर्दू-कवि ने इसी भाव को और भी चमत्कृत कर दिया है—

> निसबतें न 'सती' से दो पतंगों के तईं;
> इसमें और उसमें इत्तफ़ाक़ भी कहीं।
> आग में जल मरती है मुर्दे के लिये;
> यह गिर्द बुझी शमा के फिरता भी नहीं।

अफ़सोस है, भारतवर्ष की एक बहुत बड़ी विशेषता, जिसे शत्रु भी मुक्त कंठ से सराहते थे, ज़माने के हाथों मिट रही है! 'सिविल मैरिज' प्रचलित हो गया। तलाक़ की प्रथा के लिये प्रस्ताव हो रहे हैं। पाश्चात्य शिक्षा की आँधी ने सबकी धूल उड़ा दी।

ता सहर वह भी न छोड़ी तूने ऐ बादेसबा!
यादगारे-रौनक़े-महफ़िल थी परवाने की ख़ाक।

ये एक विद्वान् आर्यसमाजी सज्जन के विचार हैं। इसी सिलसिले में मैं भी इसी के संबंध के चार प्राचीन दोहे अपने सहृदय पाठकों की भेंट करता हूँ। उन्हें भी देखिए, कैसे हृदयतल को हिला देनेवाले हैं।

कोई विवाहित युवक मर रहा है, उसकी पतिव्रता पत्नी उससे अंतिम भेंट करने उसके निकट जाती है। वह युवक सतृष्ण और सशंकित नेत्रों से उसकी ओर देखता है। वह चतुर नारी अपने पति की व्यग्रता ताड़ जाती है। पति की ओर निश्शंक, दृढ़ भाव से देखती हुई, मरणासन्न पति को सांत्वना देती हुई वह संबोधित करके कहती है—

का मुख हेरो साइयाँ, सुख सो छाँड़ो प्रान;
मैं तुव संग सिधारिहौं सुर-पुर चढ़ी विमान।

कैसी अपूर्व सांत्वना है, कितना प्राणस्पर्शी भाव है।

युवक मर जाता है। युवक की माता पुत्रवधू की ओर कातर दृष्टि से देखती है। वह उसके सौभाग्य-चिह्न—उसकी चूड़ियों—की ओर देखकर लंबी साँस लेती है। वह देखती है कि हाय, अब इस नवयौवना की चूड़ियाँ फोड़ना पड़ेंगी! आज इस अपनी पुत्र-वधू के सौभाग्य-चिह्नों को उतारना पड़ेगा। हाय, अब इसका जीवन कैसा व्यतीत होगा! वधू सास को अपनी चूड़ियों की ओर निहारती हुई देखकर दृढ़ गंभीर भाव से सास को नमन कर कहती है—

अमर रहें ये चूड़ियाँ सास, असीसो आज;
जो मैं जाई मातु-पितु, राखौं कुल की लाज।

इसमें पति की मृत्यु पर पतिव्रता का आत्मशासन और उसकी दृढ़ता एवं तेज दर्शनीय हैं। चूड़ियों के अमरत्व का आशीर्वाद माँगना सती होने की आज्ञा मानने के उद्देश्य से है। इसमें कितनी गंभीर उक्ति है।

जब शव को दरवाज़े के बाहर निकाल चुके, तब प्रथा के अनुसार सती शृंगार करके घूँघट काढ़े हुए दरवाज़े पर आई। अभागिनी सास को उसका घूँघट उठाना पड़ा, क्योंकि सती के दर्शन करने को दरवाज़े पर नर-नारियों की भीड़ हो गई। सती के दर्शन बड़े ही पवित्र माने जाते थे, लोग उसे माता कहकर आदर देते थे। सती माता के दर्शनों को आई हुई भीड़ के सम्मुख कुल की सबसे बड़ी बूढ़ी सास वधू का घूँघट उठाती हुई लज्जाशीला वधू से कहती है—

अब तक राख्यो कुलबधू, मुख घूँघट में गोय,
आजु दिखावन जोग ये दुहुँ कुल-दीपक होय।

पितृकुल और पतिकुल के सम्मान को बढ़ानेवाली सती का जब घूँघट उलटा जाता है, तब लोग सती का दर्शन कर अपने आपको धन्य मानते हैं। इसके पश्चात् सती के साथ जाने के कारण बाजे बजते हैं, और लोग शव को उठाकर श्मशानाभिमुख ले चलते हैं। सती जब शव के साथ जाने लगती है, तब उसकी समवयस्का उससे अंतिम भेंट करके खेदित होती हैं। तब वह सती उनसे कहती है—

पिया बजावत बाजने मोहिं गए थे लैन ;
आज बजावति हौं चली पी को बदलौ दैन ।

सखियो ! सहेलियो !! पहले मेरे प्राणपति विवाह के समय बाजा बजाते हुए मुझे लेने गए थे । उस समय वह मुझे वरण कर ले आए थे, पर आज मै उनके उस कृत्य का बदला बाजा बजाते हुए जाकर देती हूँ । आज मैं उन्हें अभिन्न रूप से प्राप्त करूँगी । आज हमारे दोनो स्थूल शरीरों के परमाणु परमाणु से और प्राण प्राण से मिलेंगे, एवं हमारी आत्माएँ अभिन्न रूप से मिल जायँगी । अपने प्रियतम को आज मै अनत काल तक के लिये प्राप्त करूँगी । वह मुझे छोड़कर जा नहीं सकते ।

कहने का तात्पर्य यह कि आर्य-साहित्य में नारी का प्रेम सर्वथा पवित्र और रमणीय होने से नायिका-भेद का बाहुल्य है, जो अनेक दृष्टियों से उच्च कोटि का एवं लाभदायक है । इस प्रकार के साहित्य का प्रारंभ आद्याचार्य भगवान् भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र' में ही हज़ारों वर्ष पूर्व हो चुका था । नायिका-भेद के ग्रंथो में जो त्रिविध नायिकाएँ मानी गई हैं, उसका आधार नाट्यशास्त्र के २२वें अध्याय का यह श्लोक है—

सर्वासामेव नारीणां त्रिविधा प्रकृतिः स्मृता ,
उत्तमा मध्यमा चैव तृतीया चाधमा स्मृता ।

अर्थात् सपूर्ण नारियाँ (नायिकाएँ) त्रिविध प्रकृति की होती हैं – (१) उत्तमा, (२) मध्यमा और (३) अधमा ।

इसी अध्याय मे आठ प्रकार की नायिकाओं का भी वर्णन है, जो नायिका-भेद के ग्रंथों को सर्वमान्य है । वे ये हैं —

तत्र वासकसज्जा वा विरहोत्कण्ठितापि वा ;
खण्डिता विप्रलब्धा वा तथा प्रोषितभर्तृका ।
स्वाधीनपतिका वापि कलहान्तरितापि वा ,
तथाभिसारिका चैव इत्यष्टौ नायिकाः स्मृताः ।

इसी में वियोग की दस दशाओं और दस हावों का भी वर्णन है । इससे यह स्पष्ट है कि नायिका-भेद का उद्गम-स्थान नाट्यशास्त्र ही है । फिर हम साहित्यदर्पण में इसका विकसित रूप देखते हैं, और महाकवि भानुदत्त-विरचित रस-मजरी में तो हमें इसका अत्यंत विकसित रूप दिखाई देता है । स्मरण रहे, स्वकीया और उसके भेदोपभेदों का संपूर्ण वर्णन तो आदर्शवादी और धर्म-प्रेमी सज्जनों को विमोहित करने की पूर्ण सामर्थ्य से युक्त है ही । फिर पिता के अधीन रहनेवाली कन्या और विवाहिता परकीया का वर्णन भी ऐसा है, जिसका प्रथम अर्थात् कन्यारूपिणी अनूढ़ा का वर्णन तो पवित्रतामय है ही, क्योंकि वह विवाह कर शुद्ध स्वकीया हो जाती है, परंतु ऊढ़ा का वर्णन भी प्रकृष्ट प्रेम से परिपूर्ण कलात्मक होता है । विवाहिता परकीया एवं गणिका का वर्णन कई लोग भले ही अवर्णनीय समझते रहें, पर संसार में जब तक परकीया नारियाँ और गणिकाएँ हैं, और जब तक उपपति और वैसिक नायक हैं, तब तक निस्संदेह उनके वर्णन से साहित्य का संबंध रहेगा । इसमें विभिन्न मानवीय भावों और विचारों का मनोवैज्ञानिक वर्णन रहता है । हमारे कविराज ने भी साहित्य-सागर में इस विषय को भली भाँति स्पष्ट किया है ।

इस नायिका-भेद के सिवा कविराज ने अपने इस ग्रंथ में शृंगार-भक्ति-पूर्ण आध्यात्मिक नायिका-भेद का भी वर्णन किया है। यद्यपि भक्ति-शास्त्र के आचार्यों ने श्रीराधिका को कांतासक्ति-भक्ति में मानकर उनका अनेक नायिकाओं के रूप मे वर्णन किया है, जिसका आदर्श संस्कृत में जयदेव-विरचित गीतगोविंद और कृष्ण-भक्ति-शाखा के वैष्णव कवियों की रचनाओ मे पाया जाता है, तथा जिस आध्यात्मिक नायिका-भेद का वर्णन रहस्यवादियो एवं सूफ़ियों के वर्णनों में भी पाया जाता है, परंतु अभी तक साहित्य के रीति-ग्रंथ में इसका वर्णन किसी ने नहीं किया। इस वर्णन को रीति-ग्रंथ मे स्थान देनेवाले सबसे पहले साहित्याचार्य हमारे कविराज बिहारीलालजी ही हैं।

इनके अतिरिक्त साहित्य-सागर मे अलंकार और ध्वनि का भी विवेचनात्मक वर्णन देखने योग्य है। मैं अब यहाँ कवि का संक्षिप्त परिचय लिखने के पश्चात् ग्रंथ का कुछ विशेष परिचय देना आवश्यक समझता हूँ।

कवि-परिचय

प्रस्तुत ग्रंथ के लेखक कविराज प० बिहारीलालजी ब्रह्मभट्ट कविभूषण का जन्म वीरभूमि बुंदेलखंड के अंतर्गत बिजावर-राज्य की राजधानी बिजावर मे, संवत् १९४६ विक्रमाब्द आश्विन शुक्ला विजया-दशमी के दिन ब्राह्म मुहूर्त में, हुआ था। आपका वंश कवि के नाते प्राचीन काल से प्रसिद्ध रहा है। आपके स्वर्गीय पितामह श्रीदलीप कविजी को बुंदेलखंड के साहित्य-प्रेमी अभी भूले नहीं हैं। आपके पिता श्रीबसंतरामजी भी काव्य-प्रेमी और साहित्य-रसिक हैं। आप सरल स्वभाव के सत्य-प्रेमी पुरुष हैं।

कविराजजी की बाल्यावस्था इनके पितामह की देख-रेख में व्यतीत हुई, और वहीं से आपके हृदय मे कविता का अंकुर जम गया। प्रारंभिक शिक्षा भी उन्हीं के द्वारा दी गई। पीछे बिजावर-राज्य के सम्माननीय मुसाहब श्रीहनुमतप्रसादजी-जैसे विद्वान् द्वारा शिक्षा प्राप्त करने का इन्हे सौभाग्य प्राप्त हुआ। यथार्थ मे वही आपके काव्य-गुरु थे। आपने प्रारंभिक शिक्षा के साथ-ही-साथ काव्य की शिक्षा प्राप्त की है, और इसी कारण दस वर्ष की बाल्यावस्था ही से यह महाशय काव्य-रचना करने लगे; परंतु वह रचना प्रौढ़ नहीं होती थी। इसी समय आपने हिंदी और संस्कृत की शिक्षा प्राप्त करने में मन लगाया। सोलह वर्ष की अवस्था मे कवि बिहारीलालजी अपने पिता के साथ मैहर की शारदादेवी के दर्शनार्थ गए। वहीं हमारे भावुक कवि ने भगवती शारदादेवी के सम्मुख काव्य-रचना की प्रतिभा की प्राप्ति के लिये विनय की। वही आपने भगवती की स्तुति मे दो दिन में एक विनय-पचीसी रची, जिसमें पचीस कवित्त थे। उसके मगलाचरण का छंद यह है—

जै जै चंड अखंड-ज्योति-धरणी जग सर्वसंरक्षिणी,
जै जै शुद्धस्वरूपिणी अकथनी जै जै जगद्व्यापिनी;
जै जै निर्गुण नित्य शक्ति सुखदा जै लोकत्रयकारिणी,
जै सत्-चित्-आनंद-रूप जननी जै वेद-विस्तारिणी।

इसी के पश्चात् आदि शक्ति की अनुकंपा से आपकी काव्य-प्रतिभा जाग्रत् हुई, और आप काव्य रचना की ओर प्रवृत्त हुए। इसी वर्ष विजया-दशमी के दिन बिजावर-राज्य के वर्तमान अधिपति बुंदेलवंशावतंस भारत-धर्मेंदु श्रीमान् सवाई महाराजा सावंतसिंहजू देव बहादुर के० सी० आई० ई० के दरबार में हमारे नवयुवक कवि को भी श्रीमान् के

अनुग्रह से काव्य-रचना सुनाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। ब्रजभाषा-साहित्य के अनन्य प्रेमी और काव्य-मर्मज्ञ श्रीमान् बिजावर-नरेश ने नवयुवक कवि विहारीलालजी की उस रचना में प्रतिभा का चमत्कार देखकर स्वयं इनकी सराहना की, और अपने काव्यशास्त्र-निष्णात बहुदर्शी विद्वान् मुसाहब श्रीहनुमतप्रसादजी को आपका काव्य-गुरु नियत किया, और इस कार्य के लिये उन्हें मासिक वृत्ति का उचित प्रबंध भी कर दिया। कविराज विहारीलालजी अत्यंत मनोयोग-पूर्वक साहित्य-शास्त्र का अध्ययन करने में संलग्न हुए। समय-समय पर आप अपनी काव्य-रचना द्वारा श्रीमान् महाराजा साहब को प्रसन्न करते रहे, और श्रीमान् भी इन्हे उत्साहित करने को पारितोषिक प्रदान करते रहे। इस प्रकार श्रीमान् बिजावर-नरेश द्वारा वारंवार उत्साहित और पुरस्कृत होते हुए कविराज साहित्य-क्षेत्र में आगे बढ़ते गए। इस समय की बनाई स्फुट रचनाओं में से बहुतेरी तो असावधानी के कारण विलुप्त हो गईं, और शेष यहाँ-वहाँ पड़ी हुई हैं।

अब आपकी योग्यता बढ़ जाने पर गुणज्ञ श्रीमान् ने आपको अपना दरबारी कवि बनाया, और आपकी जीविका का भी समुचित प्रबंध कर दिया। उस समय से आप श्रीमान् की छत्रच्छाया में निर्विघ्नता-पूर्वक रहते आ रहे हैं। श्रीमान् की छत्रच्छाया में रहते हुए आप अनेक सम्माननीय नरेशों से समादृत होते आए हैं। इनमें स्वर्गवासी श्रीमान् ओरछा-नरेश, श्रीमान् पन्ना-नरेश, श्रीमान् चरखारी-नरेश, श्रीमान् अजयगढ़-नरेश, श्रीमान् छतरपुर-नरेश और श्रीमान् धौलपुर-नरेश आदि हैं। इन नरेशों के दरबारों में कविराजजी ने अपनी काव्य-प्रतिभा का चमत्कार भली भाँति दिखलाकर सम्मान और पुरस्कार प्राप्त किया।

अनेक बार अनेक स्थानों के कवि-सम्मेलनों और कवि-समाजों ने आपकी उपस्थिति पर हर्ष प्रकट किया है, और आपको पदक तथा पुरस्कार देकर सम्मानित किया है। लोग इन्हें कवि मानते हैं, और कविता ही इनका धंधा है। कहने का मतलब यह कि यह दिन-रात, तीस दिन, बारहो महीने काव्य के रंग में ही रहा करते हैं। लगातार अनेक वर्षों तक इनकी योग्यता का प्रमाण प्राप्त करने के अनंतर काव्य-मर्मज्ञ श्रीमान् बिजावर-नरेश ने इन्हें 'साहित्य-सागर'-नामक यह रीति-ग्रंथ लिखने की आज्ञा दी, और साधन जुटा दिए। हमारे कविराज विहारीलालजी ने भी तीन वर्ष के लगातार अथक परिश्रम से लगभग दो हजार से अधिक छंदों का रीति-ग्रंथ दशांग काव्य पर लिखकर प्रस्तुत किया है।

राजकवि विहारीलालजी की रचना कैसी होती है, इसका प्रमाण इनके रचे सहस्रों छंदों में से जो कतिपय श्रेष्ठ छंद हैं, उनकी परीक्षा करने से सहज ही प्राप्त हो सकता है। हम पाठकों के अवलोकनार्थ एवं विद्वानों द्वारा परीक्षा के हेतु ऐसे अनेक छंद यहाँ उद्धृत करते हैं, क्योंकि एक-दो से कोई सामान्य सिद्धांत का निर्णय नहीं किया जा सकता।

(१)

सखि, गोरस बेचन कठिन, मग छेड़त ब्रजनाथ ;
लोक-लाज, कुल-कानि सब लूटत दधि के साथ। (सहोक्ति)

किसी नवेली व्रजांगना को प्रेम की मूर्ति रसिक श्रीकृष्ण ने उस समय छेड़ा था, जब वह मोहन श्रीकृष्ण के प्रेम में माती व्रजबाला व्रज की सकरी गलियों में गोरस बेचने के बहाने अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के अलौकिक रूप-सौंदर्य का दर्शन करने के लिये लाला-यित होकर गई थी। वहाँ से लौटकर वह अपनी प्रेम-लीला का वृत्तांत, अपनी रीझ-खीझ का

समाचार अपनी अतरंगिणी सखी को स्वयं सुनाती है। इसी समय का वर्णन कवि ने सहोक्ति-अलंकार में लपेटकर दोहा-छद में सुंदरता से किया है। भावानुगामिनी भाषा में कहनेवाली के सरल हृदयोद्‌गार दोहे में निर्मल दर्पण की नाईं प्रतिबिंबित हो रहे हैं।

(२)

चंप-लता, सुकुमार तू, धनि तुव भागु बिसाल ;
तेरे ढिग सोहत सुखद, सुंदर स्याम तमाल। (समासोक्ति)

किसी ऐसे उद्यान में, जो सहेट के सर्वथा योग्य है, जहाँ तमाल-वृक्ष से सुकुमार चंपकलता परिवेष्टित है, श्याम वर्णवाले रसिकशिरोमणि श्रीकृष्ण और चपे के समान वर्ण-वाली गौरांगी प्रेम-मूर्ति श्रीराधिका का मिलन हुआ है, अतरगिणी दूती दोनो के मिलन की वह अपूर्व शोभा निरखकर मुग्ध होती है। ऐसी ही मुग्ध अवस्था में श्रीराधिका को संबोधन कर दूती श्रीकृष्ण की ओर इंगित कर मिलन की शोभा कहती है। कवि ने इस वर्णन में, भाषा और भाव दोनो में, कवि-कर्म-कुशलता का अच्छा परिचय दिया है।

(३)

धार प्रबल, पानी बिमल, उपजति तरल तरंग ;
किधौ तेग सावंत की, किधौ विराजति गंग। (अर्थ-श्लेष)

वर्तमान बिजावर-नरेश श्रीमान् महाराजा सावंतसिहजू देव की तेज धार और उत्तम पानी की प्रशंसा में कवि ने प्रस्तुत तलवार के साथ अप्रस्तुत गंग का वर्णन जिस सुंदरता से अर्थमय श्लेष में किया है, वह अत्यंत सराहनीय है।

(४)

सेस सहस फन बिस धरै, नहिं अभिमान अतंक ;
बीछू एकै बिदु पै चलत उठाए डंक। (विशेष निबंधना)

विशेष निबंधना-अलकार में कवि बिहारीलालजी ने थोड़े-से वैभव अथवा अल्प शक्ति पर मद से फूल उठनेवाले लागों पर बड़ी ही ज़ोरदार फबती कसी है। दिखलाया है कि वे क्षुद्र हैं, जो थोड़े पर फूल उठते हैं, और शिष्ट मर्यादा का उल्लंघन करने बैठ जाते हैं। हज़ार फणो में विष धारण करनेवाले फणींद्र शेषनाग का सिर झुकाकर रहना और एक बिंदु-मात्र विष रखनेवाले वृश्चिक का डंक उठाकर चलना सचमुच में कितना उपहासास्पद है, पर यथार्थ संसार में नित्यप्रति के व्यवहार में यही तो देखा जाता है। इसी पर तो कवि-हृदय मचल पड़ा है।

(५)

एरे सर, रावरे समीप इहि औसर में
आए हम जान कै यहाँ से नीर पावैंगे ;
कहत 'बिहारी' ऐसे समै मे कदाचित तू
करै उपकार तो तिहारौ जस गावैंगे।
बीतै यहि ग्रीषम अवाई बरसा की होत,
देख फेर मेघ-बृंद नीर झर लावैंगे ;
एही जल कूप हो तला हो पोखरीन ह्वैकैं
गाँव हो गलीन हो नदीन हो बहावैंगे। (सारूप्य निबंधना)

कवि ने इस छंद में सारूप्य निबंधना का अद्भुत चमत्कार दिखलाया है। कोई समर्थ व्यक्ति कारण-वश दरिद्रता के चक्कर मे पड़ गया है, वह किसी ऐसे धनी के पास जाता है, जिसका द्रव्य सचित है, व्यय होने के मार्ग नही हैं, सरोवर के समान चारो ओर से बँधा है, वह कहता है कि हे धनी मनुष्य, मै इस समय सकटापन्न अवस्था में तुझसे कुछ द्रव्य-याचना करने आया हूँ। इस समय मुझे द्रव्य-दान देने में तुझे पुण्य प्राप्त होगा, एवं मैं आभारी होकर तेरा यश गाता रहूँगा। इस संकटापन्न अवस्था के व्यतीत हो जाने पर फिर मुझे द्रव्य की कमी न रहेगी, वह हर ओर से आता दिखाई देगा। सरोवर को द्रव्यवान्, ग्रीष्म को आपत्ति-काल और सुखद अनुकूल ग्रह-योगों को मेघ-वृंद बनाकर जिस सारूप्यता का निबंधन बिहारीलालजी ने इस छद में किया है, वह काव्य-रसिकों को प्रसन्नता प्रदान करनेवाली एवं कवि की कुशलता दर्शित करनेवाली है।

(६)

पूरन प्रेम - प्रसून - पराग के गाहक हौ रसिया न नए हौ,
बात 'बिहारि' बिचारत हौ नहि, कौन हौ, कौन की कुंज छए हौ।
कैसी मलिंद भई मति बावरी, भूल-से का वे सुभाव गए हौ;
छोड़ कै सौनजुही कौ जहूर बमूर के नूर पै चूर भए हौ। (प्रस्तुतांकुर)

उत्तम, पवित्र मार्ग को त्यागकर ओछी नीति ग्रहण करके निंद्य मार्ग का अवलम्बन करनेवाले किसी विवेकशील, कुलीन व्यक्ति के हेतु इस छद मे बड़ी सुंदर, चुटीली चेतावनी है। भाषा सरल और मुहाविरेदार है।

(७)

जाकौ जौन दैव नैं प्रमान रच दीनौ जेतौ,
ताकी भाग रेखैं उही पंथ पाँव धरतीं;
कहत 'बिहारी' यामैं काहुवै न दोष कछू,
कर्म अनुसार सबै सासा फूलि-फरतीं।
चारों ओर नभ में अखंड भुवमंडल पै
सलिल की धारैं धुरा बाँध-बाँध ढरतीं;
नौऊ तेरे प्यास-भरे मुख मे पपीहा, देख
दो या तीन बूँद से अगारूँ नहीं परतीं।

इस छंद में कवि ने भाग्य की प्रधानता प्रदर्शित की है। अखंड वर्षा होने पर भी चातक प्रारब्ध-वश सिर्फ़ दो-तीन बूँद जल पाता है। तात्पर्य कर्म प्रधान है; सब साधन उपस्थित होने पर भी सफलता कर्मानुसार मिलती है।

(८)

ज्यों-ज्यों बँधि रह्यौ गोरी-गति को नियम नीकौ,
त्यों-त्यो छुटि रह्यौ उन्हैं खेलन खयाल कौ;
उठिबौ चहैं जे ज्यों-ज्यों उन्नत उरोज तेरे,
बैठिबौ चहैं वे त्यों-त्यों भवन बिसाल कौ।
कहत 'बिहारी' बढ़ रहे री नितंब ज्यों-ज्यों,
घटि रह्यौ त्यों-त्यों उन्हैं प्रेम पर-बाल कौ;

ज्यों-ज्यों तेरौ निरखिबौ नैनन कौ नीचौ होत,
त्यों-त्यों मन ऊँचौ होत मदन-गुपाल कौ। (विरोधाभास)

यह विरोधाभास-अलंकार का उत्कृष्ट उदाहरण है। भावार्थ स्पष्ट और सरल है।

(९)

नजर तिहारी मे नृपति, राजत रमा-निवास ,
जिहि दिसि देखत दया भर, दारिद रहत न पास। (काव्यलिंग)

इस दोहे में कवि ने विजावर-नरेश की दया-दृष्टि तथा दान-शूरता का उत्तमता के साथ वर्णन किया है। रमा-निवास शब्द इस छंद का प्राण है।

(१०)

अति सूधे रहिए न जग, लीजे बन बिच जोय ,
सरल वृक्ष छेदत सबै, टेढे छुवत न कोय । (अर्थांतरन्यास)

वर्तमान समय के लिये उपयुक्त शिक्षा है, क्योंकि अब अधिक सीधेपन का समय नहीं है।

(११)

लैन चही चित-चोर कौ सपनै रस अधरान ;
नींद निगोड़ी बीच ही दगा दई सखि, आन। (विषादन)

नायिका अंतरंगिणी सखी से कह रही है कि स्वप्न में प्रियतम का अधरामृत पान करना चाहती थी कि नींद टूट गई। विषादन-अलंकार स्पष्ट है।

(१२)

चैत - चाँदनी - रैन पाय प्रीतम नहिं पाऊँ ,
बिरह-बीच यदि प्राननाथ बिन प्रान गमाऊँ।
तौ प्रभु जन्म जु देव व्याध कोकिल हित कीजौ ;
पूर्णचंद्र-हित ग्रसन राहु कौ रूप सु दीजौ।
कह कवि 'बिहारि' इहि मदन-हित शिव-दृग-ज्वाल जनाइयौ ;
अरु प्रीतम मोहन मदन-हित मो कहँ मदन बनाइयौ । (अनुज्ञा)

प्रोषितपतिका नायिका ईश्वर से प्रार्थना करती है कि हे प्रभु, यदि चैत्र की चाँदनी रात्रि में प्रियतम से भेंट न हो, और विरह-व्यथा से मेरे प्राण-पखेरु पयान न कर जायँ, तो दया कर अगले जन्म में मुझे कोकिल से बदला लेने के लिये व्याध, पूर्णचंद्र के हेतु राहु, कामदेव के लिये कामारि के तीसरे नेत्र की ज्वाल तथा प्रियतम के लिये मुझे कामदेव बनाना, जिसमें प्रत्येक से पूरा-पूरा बदला ले लूँ। कविवर बिहारीलालजी ने विरहिणी की मनोव्यथा का प्रत्यक्ष दिग्दर्शन कराया है, क्योंकि वियोग में वसंत ऋतु, चैत्र की चाँदनी, कोकिल, पूर्णचंद्र आदि काम-व्यथा बढ़ानेवाले हैं।

(१३)

सबसें सनेह रीति तब सें गई री टूट,
जब सें बिलोकी छबि मुकुट मरोर की ;

कहत 'बिहारी' आठ जाम नाम रट लागी,
कौन को खबर काम धाम धन ओर की।
चारो ओर चरचा सुहावै वही स्यामले की,
आँखिन में झूलै वही मूरति किसोर की;
बासी ब्रज केरे करै केती हँसी मेरी, हौं तौ
एरी सौंह तेरी भई चेरी चित-चोर की।

गोपिका अपनी सखी से कहती है कि जब से त्रिभंगी छवि का दर्शन हुआ है, तब से रात-दिन उन्हीं का नाम रटती हूँ, धन, धाम आदि की कुछ खबर नहीं। श्यामसुंदर ही की चर्चा अच्छी लगती है, और निरंतर उनकी अति कमनीय, किशोर मूर्ति नेत्रों में झूलती रहती है। व्रजवासी भले ही हँसी करें, परंतु मैं तो चित-चोर की दासी हो गई।

(१४)

पिय पालीं चकोरी भली, पर ये पिंजरान मे का सुख साजती हैं;
खिरकीन को खोल खिलाओ 'बिहारी', बिलोकहु क्या छबि छाजती हैं।
उड़ि जायबे कौ भ्रम भारी तुम्हैं, सो बृथा है, कहे हम लाजती हैं;
छन छोड़के ही किन देखौ लला, भला भाजती हैं कि न भाजती हैं।

रूपगर्विता नायिका प्रियतम को अपने मुख-चंद्र की करामात दिखलाने के लिये चकोरियों को पिंजरों से मुक्त करने के लिये कह रही है। तात्पर्य यह कि मेरे चंद्रानन को विलोककर चकोरियाँ कहीं नही भागेंगी; यदि विश्वास न हो, तो पिंजरों की खिरकियाँ खोल परीक्षा कर लो।

(१५)

साज स्वेत अंबर अभूषन सम्हार स्वेत,
बैनी सजी सोभा स्वेत सुमन नवीन की;
स्वेत सर्वरी में यों सिधारी पिया-पास प्यारी,
कहत 'बिहारी' संग सुखमा सखीन की।
चालत ही चंद्र-बदनी तौ मिली चाँदनी में,
काहुवै न सूझी भई कौन धौं गलीन की;
कुंदन-कलीन साथ अवली अलीन चली,
अवली अलीन साथ अवली अलीन की। (शुक्लाभिसारिका)

चंद्रवदनी नायिका चाँदनी रात्रि में श्वेत वस्त्र, आभूषण आदि से सुसज्जित हो सखियों-सहित अभिसार करने जा रही है। वह चाँदनी में इस तरह मिल गई कि सखियों को भी दृष्टिगोचर नहीं हुई। जो वह कुंद की कलियों के गजरे पहने थी, उनकी सुगंध पाकर पराग-प्रेमी भ्रमरों की पंक्ति दौड़ी, और उन्हें देख सखियाँ भी साथ-साथ चलने लगीं। छंद में शुक्लाभिसारिका की उत्तम छटा दिखाई गई है।

(१६)

पावत ही पाँयन परौंगी प्रगटाय प्रीति,
आवत ही आदर - समेत अनुकूलौंगी;

कहत 'बिहारी' नेह राख नव नागर सों
नित नव नैनन भुलैहौं और भूलौंगी।
ध्यान धरिबे की सदाँ धारना धरौंगी आली,
मान करिबे की अब कसम कबूलौंगी;
प्यारौ प्रेम-चेरौ मिला दै री मोहिं मेरौ, तेरौ
एते काम केरौ जस जनम न भूलौंगी। (कलहांतरिता)

नायिका ने अपने प्रियतम का आदर नहीं किया, और मान किए बैठी रही; नायक वापस चला गया। तब नायिका अपने किए का पश्चात्ताप करती हुई अपनी सखी से कह रही है—मैं उनके आदर के साथ प्रेम-पूर्वक पाँव परौगी, नेत्रों से कभी अलग न होने दूँगी, न कभी मान करूँगी, इस बात की सौगंद खाऊँगी। यदि प्यारे को मिला देगी, तो तेरा यश जन्म-भर न भुलाऊँगी। नायिका कलहांतरिता है।

(१७)

तुम्है जोबन जोर मरोर करै, भए सौक सिंगार सिंगारिबे के;
कछू जान परै दृग प्यासे तुम्हारे रहैं नव-रूप-निहारिबे के।
इन्है रोकौ 'बिहार' न जोरौ कहूँ, न उपाय रचौ तन-गारिबे के;
फिर आगे न एती बिबूच सखी, दिन ये ही हैं साँचे सम्हारिबे के। (शिक्षा)

नवयुवक तथा युवतियों के लिये अति उत्तम शिक्षा है, क्योंकि इसी अवस्था में सुधार की अतीव आवश्यकता है।

(१८)

पावस ने आपनी समाज सो बुलाय कही,
करै कौन काम को बियोगिन सतैबे कौं;
चौंकिबे कौं चंचला औ दूँदिबे कौं दादुर ने,
घेरिबे कौं घनन, पपीहा पीव कैबे कौं।
कही पीर दैबे कौं 'बिहारी' पौन बात जबै,
कही है मयूर ने अनोखौ काम लैबे कौं;
बोलीं तन फूँकै हम जाकै कुंज दूँकैं और
ऐसी उत कूकैं कै न चूकै प्रान लैबे कौं। (पावस-वर्णन)

इस छंद में पावस का वर्णन है। यह ऋतु वियोगियों को अत्यंत दुःखदायी है। घन, चंचला, दादुर, पपीहा, मयूर, पवन आदि सब काम उत्तेजित करते हैं। कवि ने अनूठे ढंग से उनके कार्यों का दिग्दर्शन किया है।

(१९)

दौर-दौर दलन दिसान दिसि दाबि-दाबि
मंडै मंड मंडल मदांध मतवारी-सी;
कहत 'बिहारी' भानु बिबहि बिलोप ओप
कोप-सी करति पग रोप भट भारी-सी।
जोर-जोर प्रबल प्रभंजन झकोर जोर
घोर-घोर घुमड़ घनेरी घटा कारी-सी;

ओर-ओर उमड़ अरोर अंबु अंबर नैं
अंधाधुंध आवति अँधाति अँधियारी-सी।

पावस-काल में जब नभमंडल मेघों से आच्छादित हो जाता है, उस समय सूर्य छिप जाता है, प्रबल वायु के झकोरे चलते हैं, पृथ्वी पर अंधकार छा जाता है। कवि-कृत छंद में प्राकृतिक छटा का सराहनीय वर्णन है।

(२०)

भौंर अनेकन थाह गँभीर, जहाँ जल-जंतुन जोर गह्यौ है;
काम नहीं सब ही को यहाँ, इहि बाट 'बिहारि' कोऊ निबह्यौ है।
नेह कौ पंथ नदी कौ प्रवाह है, या बिच चैन न काहु लह्यौ है;
पार किनार गह्यौ सो गह्यौ, जो रह्यौ सो रह्यौ, जो बह्यौ सो बह्यौ है।

सरिता में गहराई, भँवरें और अनेक भयानक जल-जंतु रहते हैं। उसे तैरकर पार करना हरएक का काम नहीं है। उसी तरह प्रेम का पथ भी कठिन है, इसका निबाहना साधारण व्यक्तियों का कर्तव्य नहीं है। कवि ने नदी-प्रवाह तथा प्रेम-पंथ की समानता दर्शित की है।

ये छंद भिन्न-भिन्न दृष्टियों से दिए गए हैं। इनकी परख गुणवान् मर्मज्ञ साहित्यिक करेंगे ही, पर मेरा यहाँ इतना निवेदन करना अप्रासंगिक न होगा कि उपर्युक्त छंदों में काव्य है, और ये मुक्तक उच्च कोटि के हैं।

इन छंदों से यह निर्विवाद है कि श्रीबिहारीलालजी की कविता उच्च कोटि की होती है। उसमें भाषा और भाव दोनो उत्तम होते हैं। यद्यपि रीति-ग्रंथ के लिखे उदाहरणों में लक्षण के अनुसार विषय रखने के झंझट के कारण सभी छंद संपूर्णतया सर्वांग-सुंदर नहीं बन सके हैं, पर उनमें भी उस लक्षण-विशेष का सही वर्णन है। थोड़े में तात्पर्य यह कि कविराज बिहारीलालजी ने मनन करने योग्य दशांग काव्य पर एक पठनीय उत्तम रीति-ग्रंथ में अपनी कवित्व-शक्ति का भी कहीं-कहीं अच्छा परिचय दिया है। ऐसे वर्णनों में साहित्य-मर्मज्ञों एवं काव्य-रसिकों को मोहित करने की पर्याप्त सामग्री है। कविराज बिहारीलालजी इस समय बुंदेलखंड के यशस्वी कवियों में से हैं।

इनकी यह 'साहित्य-सागर'-नामक कृति इनके सतत अध्ययन और अनुशीलन का फल है। इस विस्तृत ग्रंथ का कुछ विस्तृत परिचय देना आवश्यक प्रतीत होता है। इससे ग्रंथ के मूल विषय का स्थूल परिचय प्राप्त होगा, एवं ग्रंथ के अंतरंग का बहुत-सा विषय स्थूल रूप में स्पष्ट हो जायगा। साथ ही उसके महत्त्व आदि के विषय में भी विदित हो ही जायगा।

साहित्य-सागर

यह लगभग २००० छंदों में पूर्ण और लगभग ६०० पृष्ठों का विशालकाय रीति-ग्रंथ है, जो १५ तरंगों में पूर्ण है। यहाँ इनका संक्षिप्त, परंतु आलोचनात्मक परिचय लिखा जाता है, जिससे ग्रंथ में प्रवेश करना सुगम हो सके, और उसके बहिरंग एवं अंतरंग का परिचय प्राप्त हो सके।

प्रथम तरंग

इस तरंग से ही ग्रंथ का प्रारंभ होता है। इसके आदि में कवि ने आर्य हिंदुओं की

मान्य प्रणाली के अनुसार मगलाचरण के छंद कहे हैं। इसमें द्वादश छंदों में पंच-देव-स्तवन करके कवि ने राजवंश का संक्षेप में वर्णन किया है, जिससे अपने आश्रयदाता नरेश के प्रति कवि का कृतज्ञता-भाव प्रकट होता है। तत्पश्चात् कवि ने ग्रंथ-निर्माण-हेतु कहा है, जिसमें साहित्य-मर्मज्ञ, काव्य-प्रेमी बिजावर-नरेश श्रीसावंतसिंहजू देव बहादुर की आज्ञा से ग्रंथ-निर्माण का प्रारंभ होना लिखा है। इसके अनंतर कवि ने प्रश्न-प्रकरण में लिखा है—

कौन वस्तु साहित्य है ? काव्य कहावत काह ?
ताके कारण कौन हैं ? कौन छंद की राह ?
भेद गणागण कौ कहा ? कह शब्दारथ वृत्ति ?
कौन लक्षणा-व्यंजना ? कह ध्वनि-मार्ग प्रवृत्ति ?
कहा भाव अनुभाव कह ? कह विभाव अनुरूप ?
कह रस ? कह रँग, देवता ? कौन श्रेष्ठ रस-रूप ?
कितौ नायिका-भेद है ? केते नायक नाम ?
किती सखीं दूती किर्ती ? कहा कौन कौ काम ?
किती भाँति शृंगार है ? कहा दशा ? कह हाव ?
कह षड्ऋतु कौ रूप रुचि अरु किहि भाव-प्रभाव ?
किती भाँति गुण काव्य के ? दोष कहावत काह ?
कह तुकांत की रीति है ? कह उत्तम तिहि राह ?
अनुप्रास कासौ कहत ? अलंकार कह नाम ?
किते भेद ताके कहत ? कह लक्षण अभिराम ?
अंतर केतौ कौन मे भूषण किते अनूप ?
चित्र-काव्य काकों कहत केतिक ताके रूप ?
भेद नायिका मे जगत रस-सिंगार की जोत,
सो प्रवृत्ति कौ पक्ष है, कस निवृत्ति मे होत ?
वह निवृत्ति मे है अभय कौन देश अभिराम ;
जहाँ जीव सुखमय रहै लहै अचल विश्राम।

उपर्युक्त उद्धरणों से भली भाँति विदित हो जाता है कि ग्रंथ के प्रणेता कविराज बिहारीलाल ने पद्यात्मक साहित्य के प्रायः संपूर्ण अंग इस रीति-ग्रंथ में कहे हैं। इस तरंग के अंत में कविराज ने विनम्रता दिखलाते हुए निवेदन किया है—

इहि बिधि कहे प्रकर्ण बहु सूक्षम सुमति सदृश्य ;
भूल जहाँ, कविजन तहाँ करिहैं छमा अवश्य।
धन्य-धन्य कविजन गहत सदा हंस की रीति ;
बारि-बिकार न ताकहीं, पयगुण गहहिं सप्रीति।

समाप्ति पर लिखा है—

देवस्तुति नृप-कुल-कथन ग्रंथ-हेतु शुभ अंग,
साहित-सागर की भई पूरण प्रथम तरंग।

द्वितीय तरंग

इस तरंग के प्रारंभ में साहित्य के विषय में भिन्न-भिन्न प्रधान साहित्याचार्यों के मत दिए हैं, जिनमें साहित्य शब्द समझाया गया है। लिखा है—

अर्थ शब्द साहित्य के निकसत विविध प्रकार;
कछु समुझावत हौं यहाँ, समुझहिं सुकवि विचार।
सहित शब्द में कीजिये यण् प्रत्यय को योग;
बनत शब्द साहित्य है, जानत सत कवि लोग।
शब्द अपेक्षा परसपर तुल्य रूप पद जान;
अन्वित एकहि क्रिया में सो साहित्य बखान।
अन्वित एकहि क्रिया में पद समता कौ भाव;
विषय सुबुद्धि विशेष कौ सो साहित्य गनाव।
वर्तमान हित-साथ जो सहित शब्द सो आय;
सहित शब्द को भाव जो सो साहित्य कहाय।
शब्दऽरु अर्थ अदोष रस गुण भूषण वर वृत्य;
सामग्री यह काव्य की कहत काव्य-साहित्य।

इन दोहों में भिन्न-भिन्न आचार्यों के मत से साहित्य के स्वरूप को अत्यंत संक्षेप में दिखलाकर फिर काव्य का लक्षण कहा है। प्रथम कवि ने माननीय साहित्याचार्यों के मतों का उल्लेख किया है, इसके पश्चात् अपना यह मत लिखा है—

शब्दहु महँ अरु अर्थ महँ चमत्कार कछु होय;
कवि 'बिहारि' अस कथन जहँ काव्य कहावत सोय।

इससे यह विदित होता है कि इनके मत से शब्द और अर्थ दोनो में चमत्कार हो, तभी काव्य होता है। इनका यह मत समीचीन जान पड़ता है, क्योंकि काव्य में शब्द और अर्थ दोनो की आवश्यकता है। इसी से 'काव्य सुना' और 'काव्य समझा' दोनो का लोक में व्यवहार है। स्मरण रहे, सुनना शब्द का होता है, और समझना अर्थ का। इसी से काव्य-शब्द का प्रयोग शब्द और अर्थ दोनो के सम्मिलित रूप के लिये ही मानना आवश्यक है। काव्य को दोनो ही अभिप्रेत होने से कवि-कुल-गुरु कालिदास ने भवानी और शंकर की वंदना रघुवंश महाकाव्य के आदि में करते हुए लिखा है—

वागर्थाविवसम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये;
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ।

मैं शब्द और अर्थ की प्रतिपत्ति के लिये शब्द और अर्थ के समान अभिन्न रूप से संपृक्त (संयुक्त) हुए उन भवानी और शंकर की वंदना करता हूँ, जो जगत् के पिता-माता हैं।

फिर दृश्य-काव्य में तो काव्य का उपर्युक्त लक्षण ही घटित हो सकता है; क्योंकि दृश्य-काव्य-नाटक में पात्रों के सम्मुख आवश्यक सामग्री उपस्थित करने का आयोजन अपरोक्ष रूप से कवि ही करता है, इसी से उस अर्थ का निर्माता भी वही कवि होता है। तात्पर्य यह कि शब्द और अर्थ दोनो को सम्मिलित रूप में ही काव्य में मानना आवश्यक है। इसी के साथ कवि ने 'चमत्कार' का होना लिखा है। इस चमत्कार में ध्वनि, अलंकार,

रस आदि की व्याप्ति हो जाती है। इस प्रकार रसमय काव्य रस-चमत्कार होने से मान्य हो जाता है, और रस-हीन एवं अलंकार-चमत्कार-पूर्ण अथवा ध्वनि-पूर्ण काव्य भी काव्य बना रहता है। जैसे—

कनक कनक तें सौगुनी मादकता अधिकाइ;
वह खाएँ बौरात है, यह पाएँ बौराइ। (बिहारी)

इस दोहे में रस नहीं है, पर अलंकार-चमत्कार है। शब्द और अर्थ दोनो मे चमत्कार होने से यह काव्य अवश्य है, पर साहित्यदर्पणकार आदि के मत से यह काव्य ही नहीं ठहरता। तात्पर्य यह कि कविराज बिहारीलाल का काव्य-लक्षण बहुत ही समीचीन है।

काव्य-कारण

काव्य-कारण के विषय में प्रस्तुत ग्रंथ के लेखक का मत यह है—

संसकार परिपूर्ण प्रथम पूरब कौ जानौ,
दूजें बहु सदग्रंथ कर्ण-गोचर कर मानौं।
तीजैं हो अभ्यास कहूँ विस्मृति नहि जोवै;
ये त्रय कारण होयँ काव्य-कारज तब होवै।
कह कबि 'बिहारि' कविता कोऊ इन कारण बिनही करैं;
तिहि अवश होय उपहास जग बुधजन नहि आदर धरैं।

इससे यह स्पष्ट है कि आप शक्ति (प्रतिभा), निपुणता और अभ्यास तीनो की काव्य-रचना में आवश्यकता मानते हैं। इनका यह मत भी मुझे उचित जान पड़ता है। कविराज ने शक्ति अथवा प्रतिभा को 'पूरब कौ ससकार' कहा है। यह प्रतिभा पूर्वजन्म के पुण्य कर्मों का ही फल है, और जन्मजात होती है। इस प्रतिभा-शक्ति के विना काव्य का अकुर हृदय मे उत्पन्न ही नही हो सकता। यह प्रतिभा वह शक्ति है, जिसके कारण कवि के सम्मुख काव्य-रचना के अनुकूल शब्द एव अर्थ तत्काल स्वयमेव उपस्थित हो जाते हैं। जिनमे यह जन्मजात प्रतिभा नही होती, उन्हें काव्य-रचना करना दुर्लभ ही है। प्रतिभा के अतिरिक्त निपुणता की प्राप्ति के हेतु उत्तम साहित्य-ग्रंथों का अनुशीलन और अध्ययन भी अनिवार्य रूप से आवश्यक होता है। साहित्य-ग्रंथों से काव्य-सामग्री के यथायोग्य उद्भावन कर सकने की क्षमता प्राप्त होती है, और उत्तम काव्य-ग्रंथों के अवलोकन से रचयिता अपने हृदय में सद्भावों का संग्रह करने में समर्थ हो सकता है। श्रीअभिनव गुप्त पादाचार्य के मत से सहृदयता के हेतु सतत काव्यानुशीलन आवश्यक है। लिखते हैं—

येषां काव्यानुशीलनाभ्यासवशाद्विशदीभूते मनोमुकुरे वर्णनीयतन्मयीभवनयोग्यता ते हृदयसंवादभाजः सहृदयाः। (ध्वन्यां पृष्ठे ७७)

अर्थात् काव्य के अनुशीलन के अभ्यास से जिनका मनोमुकुर विशद हो जाता है, और इस कारण वर्णनीय विषय या वस्तु से तन्मय हो जाने की जिनमें योग्यता होती है, ऐसे हृदय-संवाद-भाजन व्यक्ति (अर्थात् वे व्यक्ति, जिनके हृदय मे किसी प्रकार का विकास या व्यापकता पैदा हो जाती है) सहृदय हैं।

इसके बाद कविराज बिहारीलाल के मत से अभ्यास की भी आवश्यकता

होती है। अभ्यास से ही काव्य रचना में उत्कर्ष आता है। अभ्यास के बिना किसी भी कार्य में दक्षता प्राप्त हो सकना असंभव ही है। इसी से काव्य-रचना का अभ्यास कवि को आवश्यक है, जिससे वह झटिति सुंदर रचना करने मे समर्थ हो सके।

काव्य-प्रयोजन

काव्य किस प्रयोजन से रचा जाता है, एव इससे लाभ ही क्या है? इसके विषय में प्रस्तुत ग्रंथकार का मत है—

इक यश, दूजे द्रव्य, तृतिय ब्योहार बिचारी;
चौथे अशुभ-विनष्ट उदाहरणहु निरधारी।

आपने अपने इस मत का उदाहरण भी अच्छा कहा है। देखिए, चारो बातों का उल्लेख निम्न-लिखित उदाहरण में कैसी सुंदरता से घटित होता है—

आगरे मे जाय बीरबर को सुनाय काव्य
एक कोटि षष्ट लक्ष आयौ लै बिदाई है;
कहत 'बिहारी' इंद्रजीत की सभा में बैठ
राज-धर्म, नीति-धर्म, धर्म-प्रथा गाई है।
कविप्रिया सिद्ध कै अनेक सनमान पायौ,
अस्तुति प्रयोग सर्व कामना पुजाई है;
गाय रामचंद्रिका सप्रेम पाठ ताको कर
केशव कवींद्र ने मुनीद्र - गति पाई है।

यहीं से आपने पिंगल या छंदशास्त्र को लिया है। इस विषय का वर्णन इस ग्रंथ में सविस्तर है, और द्वितीय तरंग का तीन चौथाई तथा तृतीय तरंग और चतुर्थ तरग छंद-शास्त्र के निरूपण ही से परिपूर्ण हैं। द्वितीय तरंग में कविराज बिहारीलाल ने प्रथम छंद का स्वरूप कहा है, और तत्पश्चात् मात्रा, वर्ण एवं गण का विचार किया है। तदनंतर प्रत्यय, प्रस्तार, सूची और उद्दिष्ट एव नष्ट के स्वरूप का निर्णय कर उनका गणित दिया है। यह अंश पिंगलशास्त्र की दृष्टि से अच्छा बन पड़ा है। यहाँ विस्तार-भय से केवल एक उदाहरण दिया जाता है—

नष्ट

जिती कला की प्रश्न होय, तेती लघु लिक्खहु;
धर सूची के अंक अंत कौ अंक निरक्खहु।
तामें कर भेदांक घटित जो बाकी पाओ;
ता मधि जे-जे अंक सकैं घट तिनहिं घटाओ।
जे घटैं तिन्हें तिन गुरु धरौ आगे लघु रेखा हरौ;
इहि भाँति क्रिया कर नष्ट की दै उत्तर आनँद भरौ।

इसका स्पष्टीकरण ग्रंथकार ने गद्य में भी किया है, जो ग्रंथ में दर्शनीय है। इतना लिखने के बाद इस तरग में कुछ मात्रिक छदों का वर्णन किया गया है, जिनके लक्षण और उदाहरण ग्रंथ में ही द्रष्टव्य हैं।

तृतीय तरंग

इस तरंग में पिंगल का ही वर्णन है। इसमें पचासों मात्रिक और वर्णिक छंदों के

लक्षण और उदाहरण दिए गए हैं, जिनमें निर्माण करने की रीति और काव्य दोनो की छटा है। इसका यहाँ एक उदाहरण देखिए—

शोभन छंद

लक्षण—कला चौबिस चतुर्दस दस यती शोभन साज।

टीका—१४, १० के विश्राम से चौबीस मात्रा का शोभन छद होता है। अंत में जगण अवश्य आना चाहिए। उदाहरण—

धन्य हैं जग जनम उनके छोड़ जे जग आस;
धरत निसि-दिन ध्यान हरि को, करत ब्रज में बास।

सूचना—इस छद के अत में जगण होने से यह शोभन तथा सिंहका कहलाता है, और अंत में गुरु-लघु होने से रूपमाला कहलाना है, तथा अंत में त्रिलघु होने से कलाधर कहा जाता है। जैसे—

(१) शोभन, अंत में (। ऽ ।)—एक दीपक ज्योति से ज्यों जरत दीप अनेक;
कौन दीपक न्यून भासत करहु बुद्धि विवेक।

(२) रूपमाला, अत में (ऽ ।)—रंग रंगारंग है, है असल एकै रंग;
रंग तज जो रंग देखै, है उसी का रंग।

(३) कलाधर, अंत में (।।।)—धन्य वे बन-कुंज कुसुमित सोह मंडित अलिन;
धन्य वे, जिन दृगन देखे श्याम ब्रज की गलिन।

विशेष—उक्त शोभन छद के आदि में यदि सुलक्षण छंद का एक चरण स्थायी से जोड़ दिया जाय, तो गीत बन जाता है। उदाहरण—

राग देश—ताल झप

सुलक्षण—अवसर जात बातन बीत।
शोभन -समझ सोच विचार मूरख करत क्यों अनरीत;
पाय नर-तन जतन कर कछु मिटहि यह भव-भीत।
मोह-माया को प्रबल दल सकै तू नहि जीत;
शरण ले हरि - शरण ले तू मान रे मन मीत।
स्वाँस बूँदन झिरत यह घट रात-दिन रहो रीत,
यह बिचार 'बिहारि' कर तू श्यामने सँग प्रीत।

राग बिहाग—ताल झप

नाहक रह्यो भ्रम मे भूल।
बासनावस फिरत भटकत चलत पथ प्रतिकूल;
कपट बातन ठगत जग को डार आँखिन धूल।
करत पातक डरत नाहीं सहत बहु दुख सूल;
खेल खेलहिं खोयँ बैठत रतन जन्म अमूल।
ब्रज-निकुंज 'बिहार' चलकर बिचर जमुना-कूल;
भागवस लख परहि कबहूँ श्याम जीवनमूल।

उक्त कलाधर छदों के आदि में यदि ब्रजमोहन छंद का एक चरण स्थायी रूप से जोड़ दिया जाय, तो एक और गीत बन जाता है। यथा—

राग बिहाग—ताल रूपक

ब्रजमोहन—भज मन जनकजा के चरन।

कलाधर—जिनहिं ध्यावत जोगि जन-गन बिपन रच गृह परन ;
तीन होत सरूप निज महँ छुटत जीवन-मरन।
जिहि नवल नख ज्योति लै भए चंद्र रवि तमहरन ;
जाहि बल पद पूर्ण पायौ शेष धरनीधरन।
जो कदाच प्रयास बिन तू चहै भव-निधि-तरन ;
तो 'बिहारि' बिहाय मृग-जल चल सिया के सरन।

उक्त रूपमाला छंद के आदि में भी सुलक्षण का प्रयोग कर दिया जाय, तो एक दूसरे ढंग का गीत बन जाता है। उदाहरण—

रूपमाला—ले मन हरि चरण विश्राम।

सुलक्षण—तोड़ि बंधन विषय के सब छोंडि सिगरे काम ;
प्रीति-युत परमात्म मे रख सुरत आठों याम।
पवन पावन सलिल संयुत गगन धरनी धाम ;
विपिन बाग 'बिहारि' गिरि तरु निरख सबमे राम।

इस उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि कविराज ने छंद-वर्णन में पहले किसी छंद का लक्षण कहा है, फिर उसका उदाहरण लिखा है। इसके पश्चात् उससे किंचित् भेद से बननेवाले दूसरे छंदों को दिखलाया है। फिर उस छंद-विशेष से दूसरे छंदों से मिश्रित होने पर जो राग रागिनी के गीत हैं, उनके निर्माण की रीति और उसके उदाहरण लिखे हैं।

तृतीय तरंग में एक और विशेषता है। वह यह कि कवि ने गीत-विवरण भी लिखा है। इसके विषय में कवि ने स्वयं यह सूचना लिखी है—

"जो गीत गाए जाते हैं, उनकी छंद-संज्ञा समविषमांतर्गत छंदों में समझना चाहिए। अतः छंद-संबंध के कारण उनका भी कुछ विवरण यहाँ किया जाता है।"

यह विषय प्राचीन पिंगल-ग्रंथों मे या तो आया ही नहीं है, या आया है, तो बहुत ही संक्षिप्त और स्थूल रूप में। कविराज ने राग-रागिनी और छंदों का अभिन्न सामंजस्य-निरूपण करके छंदों द्वारा गीत बनाने की विशुद्ध रीति का कुछ निरूपण किया है। उसका एक उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है।

निम्न-लिखित ठुमरी की स्थायी चौपाई का एक चरण रख देने से बन जाती है, और अंतरे इसके चौपाई के दो चरण रखने से बन जाते हैं। यह चीज़ तिताला में गाई जा सकती है।

गीत (ठुमरी)

स्थायी (चौपाई का एक चरण)—रसिक रसीली बनसी तेरी।

पलटा ,, के दो चरण—रसिक रसीली, मन उरझीली, रंग रँगीली बनसी तेरी॥ र०

अंतरा ,, ,, दो चरण—तान भरत मन हरत 'बिहारी' पियत अधर-रस अधिक छबीली।

आभोग ,, ,, दो चरण—अधिक छबीली गरब गरीली गुण गरबीली बनसी तेरी।

इसके बाद गायन-विधि के संबंध में कहा गया है।

चतुर्थ तरंग

इसमें गणागण और वर्णवृत्त छंदों का प्रकरण है। इसमें पहले गण-विचार है, जिसमें शुभाशुभ आदि का निरूपण है। फिर वर्णिक छदों का विवरण, जिसमे छंदो के लक्षण और उदाहरण कहे गए हैं। इस तरंग के उदाहरणो मे एक विशेषता है। वह यह कि सभी उदाहरण धर्म-नीति-वर्णन के हैं। जैसे—

इंद्रवज्रा

जो ज्ञानि होके गति ना सम्हारै,
मातंग - कैसी तन धूरि डारै,
तो ज्ञान वाकौ इमि है असारं,
ज्यो भार रूप विधवा - शृँगारं।

चामर

त्रास की सदैव त्रास मानिए तहाँ लगै,
त्रास खास पास मे न आइ है जहाँ लगै;
त्रास हाेय पास फेर त्रास नाहि आनिए,
त्रास होय ह्रास सो उपाय शीघ्र ठानिए।

इसमें साधारण और मुक्तक-दंडक छंदों का भी विस्तृत विचार किया गया है।

पंचम तरंग

इसमे काव्य के शब्द, अर्थ, पद, वाक्य-शक्ति, अभिधा, लक्षणा, व्यंजना एवं ध्वनि का निरूपण किया गया है। इसमे पहले शब्द के लक्षण कहकर उसके (१) ध्वन्यात्मक और (२) वर्णात्मक भेदो पर विचार है। फिर वर्णात्मक शब्दो को सार्थक मान उन्हे ग्रहण किया है। वर्णात्मक के तीन मुख्य भेद माने हैं—(१) रूढ़ि, (२) यौगिक और (३) योगरूढ़ि। फिर अर्थ पर आए हैं। अर्थ के विषय मे लिखा है—

श्रवण परत ही शब्द को चित्त ग्रहण कर लेत,
ताको अर्थ पदार्थ कह कवि-कोविद जग हेत।

यह अर्थ-बोध शक्तिकारण से ८ प्रकार की शक्तियों में विभाजित है—कोष, आप्त, उपमान, व्याकरण, व्यवहार, वाक्य-शेष, सन्निधि और विवृति। इनका निरूपण किया है। इसके बाद पद-वाक्य का निरूपण है। फिर शब्दार्थ और वृत्ति को लिया है। वृत्ति में ही आपने अभिधा, लक्षणा और व्यजना का सूक्ष्म रीति से यथोचित वर्णन भेद-उपभेदों-सहित किया है। व्यंजना-वृत्ति के बाद ध्वनि को लिया है, और इसके कुछ अंग बतलाए हैं।

इस तरंग में रसगत व्यंग्य का वर्णन किया गया है, जिसके अतर्गत भाव, विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव और सचारी भाव के रूप, भेद, लक्षण और उदाहरण दिए हैं। इसी तरंग में रस-चर्चा का प्रारंभ हो गया है।

षष्ठ तरंग

इस तरंग में शृंगार-रस विशेष रूप से लिया गया है। प्रारंभ में ही लिखा है—

यह शृंगार सरस रस जिनके आश्रय सों सरसानो ;
ते प्रियतम अरु प्यारी यामें आलंबन पहिचानो।
उद्दीपन हैं षट ऋतु सुषमा भूषन फूलन-माला,
सुंदर सखा, सखी अरु दूता बोलन बचन रसाला।
कबिता आदि राग-रागिनि बहु उपबन-गवन जनायो ;
सर-सरिता, सरसीरुह-सुखमा, सुखद समीर सुहायो।
चंदन, चंद्र, चाँदनी-चमकन, अतर सुगंध निहारी ;
जे सिंगार-रस के उद्दीपन बरनैं त्रिबिध 'बिहारी'।

शृंगार-रस के विषय में आपने लिखा है—

रति स्थायी रँग स्याम है कृष्णदेव शृंगार ;
संचारी प्रगटत दोऊ समय-समय-अनुसार।
दुहूँ दुहुँन तन हेर प्रगट होत रति-भाव है ;
आलंबन-रस केर ते नायक अरु नायिका।

इतना वर्णन करने के बाद आपने नायिका-भेद लिया है। इसे कविराज ने विस्तार से कहा है। नायिका के लक्षण मे लिखा है—

जाकी झाँकत झलक के झनक उठै रति-भाव ;
ताहि बखानत नायिका जे प्रबीन कबिराव।

इसके बाद इस तरंग में आदर्श नायिका के अष्टांग का वर्णन है, जिनमें (१) यौवन, (२) गुण, (३) कुल, (४) शील, (५) रति, (६) वैभव, (७) भूषण और (८) रूप की गणना है। यहाँ पद्मिनी, चित्रिणी, संखिनी और हस्तिनी-नामक चतुर्विध नायिकाएँ कही हैं। फिर स्वकीयादि भेदों पर विस्तार से लिखा है। इस तरंग में नायिकाओं के भेद, उनके लक्षण और उदाहरण हैं। यहाँ कविराज ने धीराऽधीरादि भेद ज्येष्ठा-कनिष्ठा के अतर्गत माने हैं। आप भगवान् भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में वर्णित अष्ट प्रकार के नायिका-भेद को प्रधानता देते हैं, जिनके नाम क्रम से (१ स्वाधीनपतिका (२) वासकसज्जा, (३) उत्कंठिता, (४) अभिसारिका, (५) विप्रलब्धा, (६) खंडिता, (७) कलहांतरिता और (८) प्रोषितपतिका हैं। इसके अतिरिक्त (१) प्रवत्स्यत्प्रेयसी और (२) आगत्पतिका एवं (१) अन्यसुरतदुःखिता, (२) मानिनी और (३) गर्विता-नामक पाँच भेद और हैं। साहित्य-सागर के रचयिता ने इन्हें उक्त आठ भेदों में समाविष्ट करके इनका वर्णन किया है। इस प्रकार नायिकाओं की गणना तो आठ ही रक्खी है, पर भेद त्रयोदश किए गए हैं।

इस ग्रंथ में नायिका-भेद के वर्णन में एक विशेषता है। वह यह कि आपने नायिका-भेद के वर्णन में एक अपूर्व क्रम रक्खा है, जो शृंखला-बद्ध है। जैसे, प्रथम स्वाधीनपतिका का लक्षण और उदाहरण लिखा है। फिर उसी के अंतर्गत क्रम से (१) वक्रोक्तिगर्विता [जिसमें (१) रूपगर्विता, (२) प्रेमगर्विता और (३) गुण-गर्विता], (२) वासकसज्जा, (३) उत्कंठिता, (४) अभिसारिका, (५) विप्रलब्धा और (६) खंडिता [जिसमें (१) अन्यसंभोगदुःखिता और (२) मानिनी] का वर्णन किया गया है। फिर (१) उत्तमा, (२) मध्यमा और (३) अधमा दूती कही गई हैं। तद-

नंतर कलहांतरिता और उसके बाद प्रोषितपतिका कही हैं। प्रोषितपतिका के अंतर्गत ही प्रवत्स्यत्प्रेयसी का वर्णन करके फिर आगतपतिका वर्णन किया गया है।

इसके बाद कविराज ने नायिका भेद की गणना की है, और फिर नायक-भेद लिखा है। नायक के उदाहरण में आपने लिखा है—

तानदार बाँसुरी प्रमानदार बात जाकी,
सानदार साहिबी न ऐसी लोक लखियाँ;
कहत 'बिहारी' छबिदार मूर्ति मोहिनी पै
बिना मोल बिबस बिकानी ब्रज-सखियाँ।
जोरवारै जोबन सुरूप चितचोरवारौ,
मोरवारै मुकुट मयूरवारी पँखियाँ;
जंगभरी जुल्फैं उमगभरी चाल बाँकी,
रंगभरी हेरन अनंगभरी अँखियाँ।

नायक-भेद में पति, उपपति और बसिक, तीन मुख्य मानकर उनके भेदों का निरूपण किया गया है। इसके बाद पूर्वानुराग के अंतर्गत चार प्रकार के दर्शन कहे हैं। तदनंतर उद्दीपन-विभाव का विषय लिया गया है। इसमें सखी, दूती, चंद्र-वर्णन या सूर्योदय कहकर फिर षड्ऋतु का विस्तृत वर्णन है।

इस अध्याय के उदाहरण काव्य-कला की दृष्टि से उच्च-कोटि के हुए हैं। ऋतु-वर्णन में प्रकृति-वर्णन का कौशल दर्शनीय है। यहाँ नायिका-भेद और ऋतु-वर्णन के दो-चार छंद उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा। देखिए—

अभिसारिका

कैसी अंग-अंग तै सुगंध की तरंग उठै,
कैसी मुख-चंद्र-प्रभा पूरन प्रमान की;
कहत 'बिहारी' कैसी बानक बनी है बैनी,
बरनि न जावै छटा छिति छहरान की।
जाति चली सुंदरी सहेट स्याम के पै, पर
चलिबो बिलोकौ कैसी साहिबी समान की;
आसपास भौरें चलैं, आगै है चकोर चलैं,
पीछे-पीछे मोर चलैं बीबैं बृषभानु की।

शुक्लाभिसारिका

धारि सेत अंबर अभूषन सँभारि सेत,
बेनी हू सजाई सोभा सुमन नबीन की;
सेत सर्वरी में सो सिधारी पिया-पास प्यारी,
कहत 'बिहारी' संग सुखमा सबीन की।
चालत ही चंद्रबदनी तौ मिली चाँदनी में,
काहुवै न सूझी भई कौन धौं गलीन की;
कुंदन कलीन साथ अवली अलीन चली,
अवली अलीन साथ अवली अलीन की।

सूर्योदय

नाम हरि लैन लागे, अर्घ्य द्विज दैन लागे,
चहूँ दिसि चैन लागे चिरीगन चुहचान,
तारागन गौन लागे, चंद्र मंद हौन लागे,
सीतल सु पौन लागे देव लाग दिखरान।
कहत 'बिहारी' संग चकवा चकोही लागे,
बाटन बटोही लागे चलन मुमुदवान;
वृंद लागे खगन, अनंद अरबिंद लागे,
बंद लागे खुलन, मलिंद लागे मड़रान।

ऋतु-वर्णन—वसंत

टेसू लहरान लागे, धुजा फहरान लागे,
बेलिन बितान लागे पवन प्रवाह के;
कहत 'बिहारी' किए कुंजन कदंब कीर
कोकिल सुभट सोर सहित उछाह के।
कंजन के कोपन तैं, सुमन सुघोषन तैं
भौंर लागे उड़न अनेकन उमाह के;
मानो मानिनीन के गुमान-गढ़ टूटन को
गोला लागे छूटन बसंत-बादसाह के।

फाग

उड़त गुलाल लाल-लाल चहुँओर देखें,
भोरिन अबीर धुंध धूँधर मचावै है;
कहत 'बिहारी' कोउ नाचै, कोउ गावै गीत,
कोऊ देत तारी, कोउ कुंकुम चलावै है।
प्यारी को बिलोकि पिया पिचक सुरंग मारि
उरज उतंगन पै रंग बरसावै है;
संकर के सीस राग-नीर ढार-ढार मैन
बदला बदी को मनौ नेकी कै चुकावै है।

ग्रीष्म

ग्रीषम-तपन-तप्यौ केसरी क्षुधित भयौ,
बिक्रम-बिहीन दीन-हीन सौ दिखावै है;
कहत 'बिहारी' परयौ तापित तपा के लक्ष,
खोलै अर्द्ध अक्ष अर्द्ध पलक झपावै है।
बदन पसार बार-बार लेत स्वाँसन को
रसना लपात औ' हफात सिथिलावै है;
बिपिन-बितान में प्रमान हाथ हाथ के पै
हाथिन को हेरै तौऊ हाथ न उठावै है।

सप्तम तरंग

इस तरंग में शृंगार-रस के भेदों पर विचार किया गया है। इसी मे संयोग-शृंगार के अंतर्गत दस हाव कहे हैं। प्रत्येक के लक्षण और उदाहरण दिए हैं। जैसे—

किलकिंचित् हाव

लक्षण—श्रम, अभिलाषा, लाज, भय, रस, रिस, गर्व लखाय,
नाम कहैं तिहि हाव कौ किलकिंचित कविराय।
उदाहरण—आय अचानक अँगन विच अंक चही तिय लैन;
हँसी, खिसी, रूसी, रसी, लजी, भजी सुख दैन।

विचारकर देखने से उपर्युक्त लक्षण और उदाहरण, दोनो ही शुद्ध और उत्तम बने जान पड़ेंगे।

यहाँ कविराज ने हेला और बोधक हाव नहीं माने हैं। मेरा इसके विषय मे यह मत है कि जहाँ नायिका लाज बिसारकर ढिठाई करती है, वहाँ हेला हाव होता है। यह संयोग-शृंगार मे बहुधा होता ही है। बोधक हाव मानना तो मुझे अत्यंत आवश्यक जान पड़ता है; क्योकि इसके विना फिर क्रियाविदग्धा नायिका का वर्णन ही न हो सकेगा, क्योकि वह गूढ भाव का बोध हाव द्वारा ही करती है।

इसके बाद इस तरंग में वियोग-शृंगार का निरूपण किया गया है। वियोग-शृंगार मे पूर्वानुराग, मान और प्रवास कहकर फिर विरह की दस दशाओं का वर्णन किया गया है। इसके बाद यह तरंग समाप्त होती है।

अष्टम तरंग

इस तरंग में शृंगार-रस को छोड़कर अन्य आठ रसों के लक्षण और उनके उदाहरण दिए गए हैं। इसमे वीर-रस के (१) युद्ध-वीर, (२) दान-वीर, (३) दया-वीर और (४) धर्म-वीर-नामक चार भेद मानकर प्रत्येक का वर्णन किया गया है। इसके अनेक सुंदर उदाहरण हैं। विस्तार-भय से यहाँ उद्धृत करने मे असमर्थ हूँ। रसों को कहकर फिर इस तरंग में भाव-ध्वनि, भाव-शांति, भावोदय, भाव-संधि और भाव-सबलता पर विचार किया गया है।

नवम तरंग

इस तरंग में सर्वप्रथम गुण-वर्णन है, जो भाषा से संबंध रखनेवाला विषय है। पहले माधुर्य, ओज और प्रसाद-नामक तीन प्रधान गुणों का निरूपण किया गया है, और फिर दस गुण कहे हैं।

तदनंतर रीति और वृत्ति की चर्चा की गई है। इसके बाद इस तरंग में काव्य के दोषों की चर्चा की गई है, जिसमे गूढ़ार्थ, अर्थ-हीन, भिन्नार्थ, न्याय-हीन, ग्राम्य, छंदोभंग और अपुष्टार्थ आदि पर प्रमुख रूप से लिखा गया है। इसमें प्रधानतया दंडी और भामह के मतों का अनुसरण किया गया है।

दशम तरंग

इस तरंग में शब्दालंकारों का निरूपण है। इसमें लक्षण और उदाहरण लिखने में विचारशीलता का प्रवाह झलकता है।

एकादश तरंग

इस तरंग मे अर्थालंकारों के लक्षण और उदाहरण हैं, जो प्रायः चंद्रालोक अथवा कुवलयानंद के अनुसार हैं। इस विषय के आचार्यों मे मत-विभिन्नता का आधिक्य होने के कारण इसकी विवेचना मे मत-भेद की काफ़ी गुंजाइश है।

द्वादश तरंग

इस तरंग में उभयालंकार का वर्णन किया गया है, फिर सदृश अलंकारों के सूक्ष्म अंतर पर विचार किया गया है। इससे विद्यार्थियों को विशेष लाभ होने की सभावना है। इसी तरंग में चित्र-काव्य का भी कुछ वर्णन संक्षेप में किया गया है। इसमे कविराज ने 'अन्यस्त्रबंध' आदि नवीन चित्र निर्माण किए हैं, जिनका रचना-कौशल ग्रंथ में दृष्टव्य है।

त्रयोदश तरंग

इस तरंग मे आध्यात्मिक नायिका-भेद का वर्णन है। इसमे प्रथम अधिभूत, अधिदैव और अध्यात्म का वर्णन करके फिर अध्यात्म रामायण में राम-कथा और तदनंतर कृष्ण-कथा का त्रिभाव दिखलाया है। इसमें अधिभूत मे काम, अधिदेव मे भक्ति और अध्यात्म मे वेदांत का भाव झलकाया गया है। इसमे गोपीगण की वृत्ति और श्रीकृष्ण को आत्म-रूप मे वर्णन किया है। इसमे स्वकीया, परकीया और गणिका को क्रमशः सतोवृत्ति, रजो-वृत्ति और तमोवृत्ति मानकर वर्णन किया गया है। यह वर्णन देखकर मुझे श्रीभगवत-रसिक का निम्न-लिखित पद स्मरण हो आता है। देखिए—

यह रसरीति प्रिया-प्रियतम की दिव्य दृष्टि जल जैसे री,
विषयी ज्ञानी भक्त उपासक प्राप्त सघन को तैसे री।
कदली-खंभ पपीहा सीपी स्वाँति-बूँद जल जैसे री;
भगवत कछू विषमता नाहीं भूमि भाग्य फल तैसे री।

इस आध्यात्मिक नायिका-भेद की तरंग में कुछ उदाहरण भी दिए गए हैं। इसका कुछ अंश यहाँ उदाहरण-सहित उद्धृत करना आवश्यक प्रतीत होता है। लिखा है—

जिनको स्वकिया परकिया गनिका कहत सिंगार,
ते सुचि अंतःकरण की वृत्ति तीन निरधार।

स्वकीया

स्वकिया है सत वृत्ति शुद्ध जिहि रीति है;
आत्म पुरुष प्रति प्रेम वाहि प्रति प्रीति है।
मुग्धा अरु मध्या बहुरि प्रौढ़ा परम प्रवीन;
सब वृत्तिन की जानिए यहै अवस्था तीन।
आठ अवस्था वृत्ति की कहियत यों समुझाय;
कथत सूक्ष्म समुझत वहुत जिनहि लक्ष्य अधिकाय।

यहाँ वासकसज्जा का एक उदाहरण देखिए—

अंतःकरण पवित्र वृत्ति जब चहत है;
काम क्रोध मद मोह विकारन तजत है।

सतगुन-दीप-प्रकास दंभ-तम मेटिकै;
लैन चहत प्रिय दर्स पर्स-सुख भेटिकै।
भूपन-सत्त्व समस्त धारि चित चाह सों,
रहत पिया लौ लाय अधिक उतसाह सों।
चहुँदिसि संपति दिव्य दिव्य दरसाय के,
को कहि बरनैं पार वही छवि छाय के।
जेतौ फिरि आनद वृत्ति हिय ज्ञात है;
सो वह धनि-धनि समै कह्यो नहि जात है।
यों सब साज सजाय बद्धि थिर करत है;
मिलै मोहि पिय आज चित्त यों चहत है।
जो मुमुक्षु पद लेन लेत अधिकार है;
इहि विधि ताकी वृत्ति होत जग सार है।
वासकसज्जा-तत्त्व वास्तविक है यही,
समुझत वे तत्त्वज्ञ बुद्धि जिनकी सही।

चतुर्दश तरंग

इस तरग में निर्वाण का निरूपण है। इसमें प्रारभ में आत्मब्रह्म की स्तुति की गई है। अनंतर इसी मे निर्गुण-सगुण की स्तुति है। इसी मे कवि ने अवतार, ऋषि, तीर्थ, ज्ञानी, महात्मा और नरेश का भक्ति-भाव-पूर्ण वर्णन किया है। इसी तरग के अत में स्वरूप-ज्ञान-विधि और ज्ञान की सप्तभूमिका का वेदातमतानुसार वर्णन है।

पंचदश तरंग

पचदश तरग मे 'दान-प्रकरण' है। इसमे श्रीमान् महाराजा सावतसिंहजू देव बहादुर ने कविराज बिहारीलालजी को साहित्य-सागर-ग्रथ निर्माण करने पर जो विपुल मान-सम्मान और दान दिया है, उसका वर्णन आपने बड़ी ही ओजस्विनी भाषा में, मधुर छंदो मे, किया है। यहीं यह ग्रंथ भी समाप्त हो गया है।

उपसंहार

इस प्रकार साहित्य-सागर का सक्षिप्त परिचय प्राप्त करके इसकी विशालता और इसके अतरग का भली भाँति अनुमान किया जा सकता है। इस रीति-ग्रथ का निर्माण कराने के लिये श्रीमान् महाराजा साहब का हिंदी-ससार आभारी रहेगा। इस ग्रंथ के निर्माता कविराज बिहारीलालजी भी धन्यवाद के पात्र हैं। अत में एक निवेदन और करना है। वह यह कि इस ग्रंथ के अनेक विषयों से अनेकों को मत-विभिन्नता होगी, क्योंकि 'नैको मुनिर्यस्य मत न भिन्नं' और 'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्नः' का भाव तो इस वैचित्र्य-पूर्ण सृष्टि मे रहेगा ही। फिर भी मैं यह आशा करता हूँ कि हिंदी-संसार के मनीषी विद्वान् इसका उचित आदर करेंगे।

सागर (मध्यप्रांत)
वसंत-पंचमी, ८—२—३५

विनीत
लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी
साहित्याचार्य

संपादकीय दो शब्द

मुझे अपने मित्र कविराज श्रीबिहारीलालजी भट्ट के इस ग्रंथ साहित्य-सागर का परिचय प्राप्त होने के पूर्व ही इनसे परिचय प्राप्त हो गया था। समय-समय पर मैं इनकी रचनाएँ भी पढ़ता रहा हूँ। जब जबलपुर से प्रकाशित होनेवाली हिंदी मासिक पत्रिका 'प्रेमा' के संचालक और संपादक श्रीरामानुजलालजी श्रीवास्तव ने मुझे स्नेह और प्रेम के कारण विशेषज्ञ समझकर शृंगार-रस-विशेषांक का संपादक बनाया, तब मैंने कविराज श्रीबिहारीलालजी की रचना प्रकाशित करते हुए अपनी संपादकीय टिप्पणी में इनकी प्रशंसा करते हुए इन्हें बुंदेलखंडी का प्रतिनिधि कवि लिखा था।

इसके पश्चात्, साहित्य-सागर संपूर्ण होने पर, ग्रंथकर्ता के अनुरोध से, श्रीमान् बिजावर-नरेश श्रीसवाई महाराजा सावतसिंहजू देव बहादुर के० सी० एस० आई० ई० ने मुझे इस ग्रंथ की भूमिका लिखने का आदेश दिया। इस ग्रंथ की भूमिका लिखते समय मुझे इस ग्रंथ में भाषा और विषय, दोनो में संपादन की आवश्यकता प्रतीत हुई। मैंने अपना यह मत कविराज बिहारीलालजी पर प्रकट किया, और उन्हें ग्रंथ के ऐसे कुछ स्थल दिखलाए, जिनमें संपादन की नितांत आवश्यकता को उन्होंने भी स्वीकृत करके तदनुसार श्रीमान् बिजावर-नरेश से प्रार्थना की। श्रीमान् ने मुझे इस विशाल ग्रंथ के संपादन का आदेश दिया। मैंने यथासाध्य परिश्रम करके ग्रंथ का बड़े मनोयोग-पूर्वक संपादन किया।

इस ग्रंथ की भाषा में बुंदेलखंडी और ब्रजभाषा का सम्मिश्रण है, जिसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग प्राकृत के शब्दों के साथ-साथ पाया जाता है। अनेक कारणों से मैंने ग्रंथकर्ता की भाषा के स्वरूप को उन्हीं की शैली पर संपादित किया है। विषय-विवेचन में भी ग्रंथकर्ता के मतों पर विचारकर उनमें केवल आवश्यक संपादन ही किया गया है, क्योंकि ग्रंथकर्ता के मतों को बदलने का अधिकार संपादक को नहीं है। अनेक स्थलों पर आवश्यक टिप्पणियाँ और कठिन पद्यों के संकेत एवं शब्दार्थ भी मैंने दे दिए हैं।

आशा है, विद्वानों को यह ग्रंथ संतुष्ट करेगा।

विनम्र

लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी

संपादक

ग्रंथकर्ता का वक्तव्य

वदनद्युतिनिर्जितेन्दुबिम्बा, चरणप्रान्तनताऽमरीकदम्बा ;
पुरुषोत्तमनागराविलम्बा, जगदम्बा वितनोतु मङ्गलं वः ।

विदित हो कि यह अखिल ब्रह्मांड समष्टिरूप सर्वेश्वर की चैतन्य सत्ता से सत्य रूप प्रतीत हो रहा है । चैतन्य सत्ता का यह विकासरूप आश्रय आदि-रहित और अत-रहित है । यह अखिल दृश्य का दृश्य संतत एवं सहज स्वभाव से संदीप्त रहता है । यह सत्य का ही विचित्र चित्रण है, इसी से सत्य-सा प्रतीत होता है ।

कवींद्र केशव का कथन है कि "झूठौ रे झूठौ जग, राम की दुहाई ! काउ साँचे कौ बनायौ, तासौ साँचौ-सौ लगत है ।" जब यह सत्य प्रतीत होने से सत्य बन जाता है, तो इसकी व्यवहार-सत्ता भी सत्य भाव से ही संचालित रहती है । इसी व्यवहार-सत्ता से संसार के व्यवहार और परमार्थ, दोनो की सिद्धि होती है ।

इसी कारण व्यवहार और संसार कारण-कार्य के भाव से दोनो एक साथ ही प्रकट होते हैं, जैसे चंद्र और चाँदनी संग ही उदय होते हैं । शास्त्र में यह व्यावहारिक कर्म के दो भाग कर दो श्रेणी में विभक्त कर दिए हैं—एक श्रेणी उत्तम और दूसरी अनुत्तम है । उत्तम श्रेणी ही दैवी सपदा है, और अनुत्तम आसुरी सपदा । ये दोनो संपदाएँ गीतादि शास्त्रों में कही गई हैं । दैवी संपदा के कर्म दिव्य वृत्ति से और आसुरी के कर्म आसुरी वृत्ति से संबंध रखते हैं ।।

आसुरी कर्म परिणाम में दुःखद होते हैं, और दैवी कर्म परिणाम में सुखद होते हुए संसार में कीर्ति-उत्पादक होते हैं । अतएव विद्या-युक्त पुरुष उत्तम कर्म का अनुसंधान किया करते हैं, और अविद्यामय अधजन इस तत्त्व को न जानकर इसके विपरीत प्रवाह में बहा करते हैं ।

दैवी संपदा के कर्मों में सर्वश्रेष्ठ कर्म परोपकार (कर्म) है । इससे बढ़कर कोई पुण्य नहीं है । इसको महामुनि व्यासदेवजी साफ़-साफ़ कह रहे हैं—

अष्टादशपुराणानां व्यासस्य वचनद्वयम् ;
परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीडनम् ।

गोस्वामीजी भी इसी पर-हित का समर्थन कर रहे हैं—

पर - हित - सरिस धर्म नहि भाई ,
पर - पीड़ा - सम नहि अधमाई ।

उपर्युक्त प्रमाणों से यह सिद्ध हो गया कि मनुष्य के लिये परोपकार से बढ़कर अन्य कोइ कर्तव्य नहीं है ।

परोपकार के प्रकार अनेकानेक हैं, किंतु श्रेष्ठतम परोपकार और पुण्य कार्य चिर काल से भगवत् से विमुख हुए इस जीवात्मा को परमात्मा के सम्मुख कर देने में है । किंतु इस सम्मुखता के लिये जान-पहचान की ज़रूरत है—

जाने बिन न होय परतीती,
बिन परतीत होय नहि प्रीती।

जब पहचान का ज्ञान हो जाता है, तब विश्वास बढ़ जाता है। जब विश्वास विशेष रूप धारण करता है, तब प्रीति का प्रकाश होता है। जब प्रीति में एकता की झलक आने लगती है, तब स्वरूप का बोध होने लगता है। जहाँ स्वरूप का बोध हुआ कि फिर कर्म नहीं रहता है। रामायण में कहा है —

कर्म कि होइँ स्वरूपहि चीन्हे।

अब प्रश्न होता है कि स्वरूप-ज्ञान का सहारा क्या है? तब उत्तर आता है कि इसका सहारा शास्त्र है, तथा शास्त्र का बोध सुशक्ति से होता है, और सुशक्ति का कवित्व से और कवित्व का विद्या से और विद्या का मनुष्यत्व से होता है। इसी से शास्त्र में कहा है—

नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा;
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा।

सारांश यह कि शास्त्रीय तत्त्व जिस शक्ति से जाना जाता है, उस शक्ति का उपादेय कारण कवित्व है, और कवित्व की कारणमूला दैवी कल्पना है। वास्तविक कवित्व का सूक्ष्म रूप कल्पना है। कल्पना उस चैतन्य का स्पदन है। जैसा स्पंदन होता है, तदनुसार इच्छा होती है; और तदनुसार इंद्रिय-व्यापार, तदनुसार कार्य तथा तदनुसार फल प्राप्ति होती है। यथा—

यथा संवेदने चेतस्तत्रस्पन्दमिच्छति;
तथैव कायश्चलति तथैव फलभोक्तृता।

तात्पर्य यह कि कवित्व (काव्य) कल्पना का प्रकट रूप है। अब यह देखना है कि यह संसार क्या है? शास्त्रों से विदित होता है कि उस चैतन्य की विश्व कल्पना है। जब यह ब्रह्मांड कल्पना है, तो यह सर्वजगत् काव्य है, जब यह काव्य है, तो इसका रचयिता (ईश्वर) कवि है। इसी से वेदों ने ईश्वर को कवि कहकर अभिवदन किया है। यथा—

कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः

इसी प्रकार महाभारत में "वेदाङ्गो वेदवित्कविः"। इसी प्रकार गीता में "कविम्पुराण-मनुशासितारम्" इत्यादि वाक्यों में परमात्मा के लिये कवि-पद का प्रयोग किया है।

कवि, काव्य, कवित्व, इन शब्दों का महत्त्व बहुत ऊँचा है। हम-ऐसे अल्प बुद्धिवालों की शक्ति नहीं है, जो इसकी व्याख्या करें। किंतु इतना हम अवश्य कहते हैं—

जा पर कृपा करहि जन जानी;
कवि-उर-अजिर नचावहिं बानी।

कवि-महत्त्व को महाराणा राजसिंहजी ने अच्छी दृढ़ता के साथ कहा है। आप कहते हैं—
कहाँ राम कहँ लखन नाम रहिया रामायण, कहाँ कृष्ण बलराम कथा भागौत पुराण।
बाल्मीक, मुनि व्यास कथा कविता न करंता; गुण सुरूप देवता ध्यान मण कवण धरंता।
जग अमर नाम चाहौ जिके सुनौ सजीवन अक्खरौं;
'राजसी' कहै जगराणरौ पूजौ पायँ कवीश्वरौं।

हमारे मत से कवियों की चार कोटियाँ हैं—(१) ब्रह्म-कोटि, (२) ईश-कोटि, (३) जीव-कोट और (४) विश्व-कोटि। तपःशक्ति जिनमें विद्यमान है, और जिन्हें ब्रह्म-साक्षात्कार है, वे बाल्मीकि, व्यासादि कवि ब्रह्म-कोटि के हैं।

मल-विक्षेप-रहित जिनका अंतःकरण है, और ईश्वर का जिनको साक्षात्कार है, वे कालिदास, चद, सूर, तुलसी आदि कवि ईश-कोटि के हैं।

दिव्य रूप का जिनको लक्ष्य रहता है, और जीव जिनकी वाणी के वशवर्ती हैं, वे केशव, भूषण आदि कवि जीव-कोटि के हैं।

जिनमें धर्म-बल और शास्त्र-बल विद्यमान है, और जिन्हें विद्या-साहित्यादि का साक्षात्कार है, वे जगत् को जाग्रत् करनेवाले अनेक कवि विश्व-कोटि के हैं। इसके अतिरिक्त विद्या-हीन कवि कवि-मात्र हैं। यथा—

विद्वत् कवयः कवयः, कवल कवयस्तु केवलं कपयः ;
कुलजा या सा जाया, केवल जाया तु केवलं माया।

उपर्युक्त चारो कोटि के कवि पूर्व समय में भी थे, और अब भी विद्यमान हैं। प्रत्येक कोटि का कवि प्रत्येक कोटि में पहुँच सकता है ; क्योकि यह कर्म पर निर्भर है। चींटी से इंद्र हो जाता है, और इंद्र से चींटी बन जाता है। "क्षीणे पुण्ये मृत्युलोके विशन्ति" और "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" इन प्रमाणो से उन्नति-अवनति दोनो से दोनो का होना पाया जाता है। इसलिये किसी कवि के लिये कोई कोटि खास नियत नहीं है। यह कर्तव्य एवं पुरुषार्थ पर ही निर्भर है।

साधारण मनुष्य से कवि हो जाना तो बात ही क्या है, कर्म में वह शक्ति है कि नर से नारायण हो जाय, तो कोई आश्चर्य नही। गोसाईंजी कहते हैं—"जानत तुमहिं तुमहि ह्वै जाई।" भाव यह है कि कर्मानुसार प्रत्येक कवि प्रत्येक कोटि का अधिकारी बन जाता है। यह भारतवर्ष कवि-समाज का केंद्र है। यह कवि-समाज से पहले भरा हुआ था, और अब भी भरा है, और आगे भी भरा रहेगा ; क्योंकि यह खास भगवत् की अवतार-भूमि है, और कवि उसकी कला का कलेवर है। जहाँ से मनुष्य की वाणी का प्रभाव जीवों पर पड़ने लगता है, वहाँ से वह मनुष्य कवि-कोटि मे जाता है। फिर जैसे-जैसे कर्म-बल बढ़ता जाता है, वसी-वैसी कोटि बढ़ती जाती है। जब वह ऊँची कोटियों में पहुँचने लगता है, तब ईश्वरेच्छा से उसकी इच्छा का पालन प्रकृति करने लगती है। देखिए, एक कवि महात्मा ने अंतरिक्ष में कुंत स्थापित कर, उस पर बैठ व्याख्यान दिया। एक कवि महात्मा ने अपनी वाणी द्वारा बदरो से दिल्ली को तुड़वा दिया। एक कवि महोदय ने मंदिर के फाटक खुलाए। एक महात्मा ने विना नैन के नैन लगाए। इसी प्रकार अनेकों महाकवियों के (कोटि के अनुसार) अनेकों उदाहरण इस विस्तृत वसुंधरा पर विद्यमान हैं। मुझमें इतनी शक्ति कहाँ कि जो भक्त कवियों के आदर्श, पवित्र चरित्र वर्णन कर सकूँ। परंतु इतना अवश्य ही कहूँगा कि इस कवित्व-सत्ता का प्रकाश-पूर्ण विकास इस ससार-मात्र मे अनादि काल से एकरस चला आ रहा है। उसमे विशेषतर भारतवर्ष में, उसमें विशेषतर मध्य प्रांत में, उसमें विशेषतर बुंदेलखंड में पाया जाता है, जिसके प्रमाण के लिये कविता-कानन-केसरी गोस्वामी तुलसीदास एवं केशवदासजी आदि महाकवियों की रचना-रत्नावली की चारुता अभी तक चमचमा रही है। भर्तृहरिजी ने सत्य ही कहा है—

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः ;
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम्।

बुंदेलखंड में अब भी यह बात विद्यमान है कि सुबोध समाज के अतिरिक्त यहाँ के

निरक्षर ग्रामीण व्यक्तियों के साधारण बोलचाल में भी स्वभावतः अलंकार प्रकट हुआ करते हैं। इस प्रांत में ग्रंथ-निर्माण की परिपाटी पूर्व से अद्यावधि बराबर चली आ रही है। जिसमें अनेक साहित्य-संबंधी पुस्तकें मौलिक तथा अनेक संगृहीत पाई जाती हैं।

किंतु मौलिक पुस्तकें जो देखी गई हैं, उनमें काव्य के कुछ-कुछ अंग निर्माण किए गए हैं, तथा कुछ-कुछ अग छोड़ दिए गए हैं। किसी में नायिका-भेद, रस-भाव आदि का विवरण है, तो अलंकार-प्रकरण का अभाव है। यदि किसी में अलकार-भाव आदि आ गए हैं, तो लक्षणा, व्यजनादि विषय रह गए हैं। यदि किसी में लक्षणादिक अंग ले लिए गए हैं, तो छंदादि प्रकरण छोड़ दिए गए हैं। और, यदि किसी ग्रंथ में उपयुक्त सभी अंगों का आयोजन हो ही गया है, तो वह मौलिक न होकर संगृहीत पाया गया है। इस कारण मेरे अंतःकरण मे यह संकल्प-विकल्प चिर काल से उठ रहा था कि बुंदेलखंड से सर्वांग काव्य-साहित्य का कोई मौलिक ग्रंथ ऐसा निकलना चाहिए, जिसमे सभी प्रकार के नवीन-नवीन लक्षण और उदाहरण हों, तो परमोत्तम हो। किंतु इतना बृहत् कार्य हम-ऐसे अल्प-बुद्धि मनुष्य से किस प्रकार हो सकेगा, यह विकल्प भी हृदय से बार-बार उठता था। किंतु कोई अतर से फिर-फिर साहस बँधाता था। सत्य कहा है—"उर-प्रेरक रघुवंश-विभूषण" और पुनः—"जो इच्छा करिहौ मन माहीं, राम-कृपा कछु दुर्लभ नाहीं" के प्रमाण ने विशेष दृढ़ता उत्पन्न की। एक दिन दैवात् ऐसा ही योग प्राप्त हुआ कि प्रजा-हितकारी, धर्म-वृत्तिधारी श्रीमान् बिजावर-राज्याधिपति की राज-सभा में श्रीमान् के समक्ष काव्य पढ़ने का शुभावसर प्राप्त हुआ, किंतु हृदय में उल्लिखित भाव का विचार चल ही रहा था कि उसी समय श्रीमान् के श्रीमुख से वही सरस वचन नवीन ग्रंथ-निर्माण के लिये प्रकट हुए, जो मेरे मनोरथ के अनुकूल थे। इस प्रहर्षण एवं निजानंद में मग्न होते हुए उक्त आज्ञा को शिरोधार्य किया, जिसकी विशेष व्याख्या प्रथम तरंग में की गई है। इस ग्रंथ में विद्वान् महापुरुषों की दृष्टि से कुछ विशेषताएँ हों या न हों, किंतु मैंने गुरुप्रसादात् विशुद्ध मतिः के धारणानुसार अपनी तुच्छ बुद्धि से निम्न-लिखित विशेषताएँ इसमें रक्खी हैं। एक तो यह कि काव्य के संपूर्ण आवश्यक अंग, जो भिन्न-भिन्न ग्रंथों में पाए जाते हैं, यहाँ एक ही ग्रंथ में, सर्वांग-सहित, बतलाए गए हैं। दूसरी बात यह है कि सब अंगों की परिभाषा छंदबद्ध रक्खी गई है, जिसमें विद्यार्थियो के लिये कंठस्थ होने की सुविधा रहे। तीसरी यह है कि संपूर्ण अंगों के लक्षण एवं उदाहरण नए-नए ही निर्माण कर लिखे गए हैं। चौथी बात यह है कि नायिका-भेद का क्रम अन्य प्राचीन ग्रंथों में भिन्न-भिन्न प्रकार से पाया गया है, किंतु इसमें संपूर्ण नायिकाओ का क्रम शृंखला-बद्ध रक्खा है, जैसे एक नायिका उत्कंठिता है, गमन करने पर वही अभिसारिका हुई, पुनः संकेत पर विप्रलब्ध योग से वही विप्रलब्धा हुई, इत्यादि। जैसी-जैसी उसकी अवस्था बदलती गई, उसी प्रकार उसके क्रम-पूर्वक नाम भी बदलते गए, और उसका वैसा ही कारण लक्षणों के साथ ही प्रदर्शित किया गया है। पाँचवीं बात यह है कि इसमें लक्षण और उदाहरण जो बतलाए गए हैं, वे जहाँ तक हो सके, सरलता-पूर्वक प्रसाद-गुण में ही प्रणीत किए गए हैं। छठी बात यह है कि इसमें चित्र-काव्य के रूप और अलंकार के नाम-लक्षण कुछ नवीन निर्माण किए गए हैं। सातवीं बात यह कि अधिकांश में कतिपय कवियों एवं पाठकों का नायिका-भेद की पुस्तकों के

पढ़ने से बहिरंग जगत् की ओर ही लक्ष्य जाता है। यद्यपि उसमें काव्यानंद पर्याप्त मिलता है, किंतु वह निर्मल आनंद विषयात्मक आनंद हो जाता है। इस कारण नायिका-भेद का वास्तविक तत्त्व अध्यात्म के रूप में बतलाया है। ग्रंथ में इसकी एक तरंग ही हमने अलग लिखी है, और उसमें नायिका-भेद के ही समान लक्षण और उदाहरण इसके स्थापित किए हैं। यह वेदांत का गहन विषय है, इस कारण इसकी टीका-रूप विस्तीर्ण विवेचना मुंशी देवीप्रसादजी 'प्रीतम' ने बड़ी ही मार्मिकता के साथ की है। आठवीं बात यह है कि काव्य-साहित्य के अतिरिक्त इसमें अनेक विषयों की अनेक बातें छंद-बद्ध लिखी हैं, जो विशेषतर जानने योग्य हैं। नवीं बात यह कि मनुष्य ने अनेक शास्त्रों का श्रवण, मनन, अध्ययन किया, और यदि जिस परमतत्त्व को जानना चाहिए, वह नहीं जाना, तो सब पढ़ने का श्रम व्यर्थ ही गया समझो। कहा है —

अविज्ञाते परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला ;
विज्ञातेऽपि परं तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला।

अर्थात् सब कुछ पढ़ा, किंतु तत्त्वज्ञान नहीं हुआ, तो सब शास्त्रों का पढ़ना निष्फल है, और यदि तत्त्वज्ञान हो गया, तो भी शास्त्र पढ़ना निष्फल है। इस कारण इस ग्रंथ के अंत में निर्वाण-निरूपण-शीर्षक वेदांत का प्रकरण रक्खा है, जिसमें प्रिय पाठकों को लौकिक साहित्य के अतिरिक्त ईश्वरीय ज्ञान का भी बोध प्राप्त हो, और भक्ति-ज्ञान, दोनो का तत्त्व जान सकें, क्योंकि ज्ञान-प्राप्ति से बढ़कर संसार में अन्य कोई पदार्थ नहीं है।

ज्ञानचर्चा परं तीर्थं ज्ञानचर्चा परं तपः ;
ज्ञानचर्चा परं श्रेयः ज्ञानचर्चा परं पदम्।
स्नाता तीर्थेषु सर्वेषु कृतं सर्वं च साधनम् ;
पूजिता देवताः सर्वे विचारा ब्रह्मणि क्षणम्। इत्यादि।

इसी प्रकार के प्रकरण इसमें विशेष रूप से वर्णन किए गए हैं।

उपर्युक्त विशेषताएँ जो इसमें बतलाई हैं, वे हमारे ही मन की मानी हुई हैं, क्योंकि "निज कविता किहि लाग न नीकी, सरस होय अथवा अति फीकी," किंतु जब हिंदी-संसार के प्रौढ़, प्राज्ञ पुरुष इन विशेषताओं को विशेषता मानें, तब हम इनको विशेषता मानेंगे, और अपने परिश्रम को सफल जानेंगे। मनुष्य के अंतर्गत प्रत्येक कार्य का प्रेरक वही एक परमात्मा है। उसी की इच्छा से इस ग्रंथ का भी जन्म हुआ हम समझते हैं, अतएव उस सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को अगणित बार नमस्कार करते हैं। तत्पश्चात् उन्हीं ईश्वर की दिव्य विभूति हमारे सनातन-धर्म-संरक्षक भारतधर्मेंदु बुंदेल-वंशावतंस श्रीमान् सवाई महाराजा साहब बहादुर बिजावर-नरेश के विषय में, जिनकी आज्ञा से यह ग्रंथ बनाया गया है, ईश्वर से प्रार्थना है कि श्रीमान् को वह संपूर्ण ऐश्वर्य-संयुक्त सदैव सानंद रक्खें। हमें इस ग्रंथ-निर्माण करने में जगद्विनोद, रसराज, रूपविलास, कविप्रिया, छंदार्णव, छंदप्रभाकर, भाषाभूषण, भारती-भूषण, द्वितीय भारती-भूषण, अलंकार-मंजूषा, संस्कृत-साहित्य-दर्पण, कुवलयानंद, मार्कंडेय-पुराण, मेघदूत, ऋतुसंहार आदि ग्रंथों से पर्याप्त सहायता मिली है, अतः हम इनके रचयिताओं के विशेष आभारी हैं। इनके अतिरिक्त सागर-निवासी साहित्याचार्य, साहित्यरत्न पं० लोकनाथजी द्विवेदी सिलाकारी को, जो कि दुलारे-दोहावली की भूमिका, बिहारी-दर्शन और सूर-दर्शन आदि के रचयिता एवं हिंदी-संसार के उद्भट लेखक हैं, हम हार्दिक धन्यवाद

देते हैं। इन्होंने श्रीमान् बिजावर-नरेश का संक्षिप्त परिचय एवं ग्रंथ की भूमिका लिखने की कृपा की है, तथा संपादन का कार्य बड़ी गंभीरता और विज्ञता के साथ किया है। तदनंतर हमारे सरस सनेही मुंशी देवीप्रसादजी 'प्रीतम' को, जो कि गुलदस्तए-बिहारी के प्रसिद्ध प्रणेता हैं, हम अनेकानेक धन्यवाद देते हैं। उन्होंने द्वादश तरंगांतर्गत आध्यात्मिक रहस्य की प्रौढ़ परिभाषा प्रकट भाव से उल्लिखित की है। पुनः पं० राज्य-प्रतिष्ठित व्याकरण-शास्त्री हनुमतप्रसादजी अग्निहोत्री को, जिनसे कि हमने गुरुत्व भाव से मंत्रादि प्रयोग की प्राप्ति की है, हम विशेष धन्यवाद देते हैं। आपने ग्रंथ-रचना के समय अनेक परामर्श एवं सम्मति देते हुए सहृदयता प्रकट की।

पुनः हम दुलारे-दोहावली के प्रणेता पंडित दुलारेलालजी भार्गव को अनेकशः धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने श्रीमान् बिजावर-नरेश के आज्ञानुसार इस ग्रंथ को सुंदर रूप से छपाकर निज प्रेस से प्रकाशित किया है। इनके अतिरिक्त हम अपने अक्षरगुरु कविकुलरत्न दलीपजी एवं काव्यगुरु कवि-मणि-मुकुट-मुसाहब पं० हनुमतप्रसादजी को नम्रता-पूर्वक नमस्कार करते हैं, जिनकी कृपा से हमें यह काव्य-शक्ति का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अंत में हिंदी-संसार के प्रवीण पंडित-कविगण महानुभावों से हमारा निवेदन है कि जीव का अल्पज्ञ होना, भूल जाना स्वाभाविक धर्म है, पर आप-ऐसे परम प्रवीण पुण्य-रूप पंडितों से संभव है, भूल न होती हो। किंतु हम ऐसे तुच्छ जीवों से भूल का हो जाना कोई आश्चर्य जनक नहीं है। अतः जो विषय इस ग्रंथ में कहते ठीक बन पड़े हों, वह ईश्वरीय कृपा समझिए, और जो इसमें भूल आ गई हो, वह मेरी भूल समझिए। अतः उसे आप सज्जन कृपा-भाव से शुद्ध पाठ बनाकर पठन-पाठन कीजिए, और हमें क्षमा का पात्र समझिए।

जहँ गुन कछु, तहँ दोष कछु, जहाँ दोष, गुन द्वंद;
दोष और गुन सों रहित एक सच्चिदानंद।
मंडित कों खंडित करैं, ते दंडित नर अन्य;
खंडित को मंडित करैं, ते पंडित जग धन्य।
पढ़हिं पढ़ावैं ग्रंथ यह जे सज्जन सुख-धाम;
तिनहिं हमारी हर्ष-युत जय श्रीराधेश्याम।

बिजावर
(बुंदेलखंड)

नम्र निवेदक—
बिहारी

श्रीमान् बिजावर-नरेश का संक्षिप्त परिचय

[साहित्याचार्य पं० लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी साहित्य-रत्न]

बिजावर-राज्य बुंदेलखंड के प्रधान रक्षित राज्यो में है। इसका क्षेत्रफल ६७३ वर्गमील है। यहाँ का पार्वत्य प्रदेश अपने सुंदर झरनो, तरु-कदंब एवं तृणावली को अक में लिए हुए अत्यत मनोहर है। इस प्रदेश के सघन वनों में आज भी सूर्य-किरण पत्र-रंध्रों से कदाचित् ही छन पाती है।

राजधानी बिजावर-नगर के दुर्ग के महल की सबसे ऊँची छत पर खड़े होकर चारो ओर दृष्टि दौड़ाने पर इस राज्य के वन्य प्रदेश की प्राकृतिक छटा दिखाई देती है। चारो ओर पर्वत-श्रेणियो का बड़ा ही सुंदर जाल बिछा हुआ है। ये पर्वत-श्रेणियाँ समुद्र की सतह से १३०० फ़ीट के लगभग ऊँची होने से बड़ी ही नयनाभिराम हैं। प्रकृति की इस रंग-भूमि में केन, सुनार, बैरमा और धसान-नामक नदियाँ अपने धीर-गंभीर प्रवाह से तीरों को सींचती हुई लहरा रही हैं। इन्हीं में छोटे-छोटे नालों का संगम बड़ा ही हृदयहारी दृष्टिगोचर होता है। इनके सिवा गोरा-ताल, भगवान-ताल, रगोली-ताल, पठारकुआँ-ताल, भरतपुरा-ताल और कसार-ताल तो बडे ही सुहावने सरोवर हैं। सुंदर दृश्यावली से घिरे अनेक कुंड बड़े ही सुंदर हैं, जिनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध भीम-कुंड है। यह स्थान राजधानी बिजावर-नगर से २१ मील दक्षिण-दिशा में है, और सुंदर पर्वत-मालाओं से चारो ओर से परिवेष्टित है।

बिजावर-राज्य की भूमि यथार्थ मे रत्न-गर्भा है। इस राज्य की भूमि में आज भी हीरे निकलते हैं, जो प्राय: सिमरा, झंडा और घनौजा-नामक ग्रामों के निकट की भूमि में प्राप्त होते हैं। ये चार फ़ीट से लेकर तीस फ़ीट की गहराई तक खुदाई करने से प्राप्त होते हैं। इसके सिवा खनिज पदार्थों में यहाँ का लोहा अधिक प्रसिद्ध है। यहाँ इमारती लकड़ी भी प्रचुरता से प्राप्त होती है।

सन् १७३२ ई० मे महाराजा छत्रसाल ने अपना सपूर्ण राज्य तीन प्रधान भागों में बाँट दिया था—प्रथम भाग अपने ज्येष्ठ पुत्र हिरदेशाह को, द्वितीय भाग अपने कनिष्ठ पुत्र जगतराज को और तृतीय भाग बंगस के युद्ध मे सहायक होने के कारण बाजीराव पेशवा को दे दिया था। महाराजा जगतराज के तृतीय पुत्र दीवान वीरसिंहजू देव ने बिजावर की जागीर प्राप्त की थी। इनका शासन-काल १७६६ से १७९३ ई० तक माना जाता है। यह गुसाईं हिम्मतबहादुर और बाँदा के नवाब अलीबहादुर से युद्ध करने में, सन् १७९३ ई० में, चरखारी में, वीर-गति को प्राप्त हुए। इनके पश्चात् इनके पुत्र केसरीसिंहजू देव गद्दी पर बैठे, जो सन् १७९३ से १८१० तक राज्य करते रहे। इनका काल भी समय की गति-विधि के अनुसार अपने पड़ोसी राज्यो से युद्ध करने में ही व्यतीत हुआ। इनके स्वर्गारोहण करने के बाद इनके पुत्र राजा रतनसिंहजू देव सिंहासनासीन हुए। इन्होंने सन् १८१० ई० से सन् १८३२ ई० तक राज्य किया। सन् १८११ ई० में इन्होंने

ब्रिटिश गवर्नमेंट से संधि कर ली, और इस प्रकार बिजावर-राज्य की गणना मित्र राज्यों में हो गई। संधि के अनुसार तत्कालीन महाराजा के वंशधरों को अँगरेज़ सरकार ने सदैव अपना मित्र बनाए रखने का प्रण किया, और बिजावर-नरेश ने भी अँगरेज़ सरकार को सदैव सहायता करने और मित्रता निभाने का वचन दिया। सन् १८३२ ई० में इनका स्वर्गवास हो गया। राजा रतनसिंहजू देव के पुत्र-हीन होने के कारण राज्याधिकार के लिये गृह-कलह मचा, जिसमें अनेक प्रमुख व्यक्तियो का रक्त-पात हुआ। अंत में भारत-सरकार ने हस्तक्षेप करके स्वर्गीय राजा रतनसिंह के सहोदर बधु दीवान खेतसिंह के पुत्र लक्ष्मणसिंह को यथार्थ उत्तराधिकारी मानकर गद्दी पर बैठाया। इस प्रकार कलह शांत हो गया।

राजा लक्ष्मणसिंहजू देव का स्वर्गवास सन् १८४७ में हो गया। उनके स्वर्गारोहण करने के समय उनके पुत्र रावराजा भानुप्रतापसिंहजू देव की अवस्था केवल पाँच वर्ष की थी, अतएव शासन-प्रबंध उनकी मातामही करती थीं। सन् १८५७ ई० में, जब सिपाही-विद्रोह हुआ, तो उस समय बिजावर-राज्य ने अपनी मित्र अँगरेज़ सरकार को प्रगाढ़ मैत्री का भली भाँति परिचय दिया। इसी अवसर पर ब्रिटिश सरकार ने भानुप्रतापसिंह को सवाई महाराजा की पदवी और ग्यारह तोपों की सलामी का सम्मान वंश-परपरा के लिये प्रदान किया।

महाराजा भानुप्रतापसिंह स्वधर्मनिष्ठ और दानशील नरेश थे। उनके अत्यधिक दानी होने एवं पूजा-ध्यान आदि में सलग्न रहने के कारण राज्य में शासन-प्रबंध की सुव्यवस्था न रह सकी, और अर्थाभाव के कारण राज्य ऋण-भार से दब गया। परिणाम यह हुआ कि सन् १८६७ ई० में शासन-प्रबंध की देख-रेख भारत-सरकार द्वारा की गई। महाराज भानुप्रतापसिंहजू देव के कोई पुत्र न होने से वह गोद लेना चाहते थे। अँगरेज़ सरकार ने बिजावर-राज्य की बलवे के समय की सेवाओं का विचार कर उक्त महाराजा को गोद लेने की सहर्ष अनुमति दे दी।

महाराजा भानुप्रतापसिंह ने बिजावर के वर्तमान नरेश श्रीसावंतसिंहजू देव बहादुर को गोद लिया।

महाराजा सावंतसिंहजू देव बहादुर का जन्म ओरछा-राज्य की वर्तमान राजधानी टीकमगढ़ के राजमहलों में, विक्रम-संवत् १९३४, कार्त्तिक-शुक्ल गोपाष्टमी के शुभ दिन, हुआ था। आप ओरछा के स्वर्गीय महाराजा सर प्रतापसिंहजू देव जी० सी० एस० आई०, जी० सी० आई० ई० के द्वितीय पुत्र हैं। यह बालपन ही से व्यायाम-प्रेमी और वीर-प्रकृति के हैं। घोड़े की सवारी और पोलो के खेल से आपको विशेष अभिरुचि है। अश्वारूढ़ होने की कला में आपकी दक्षता की अत्यंत प्रसिद्धि है। सन् १८९५ ई० में १५ मार्च को ओरछा-राज्य की राजधानी टीकमगढ़ में घुड़दौड़ (Horse Race) का विराट् आयोजन हुआ था। उस समय प्रतिद्वंद्विता में सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होने पर पुरस्कार में रक्खे 'कप' को आपने ही जीता था।

लक्ष्य-बेध में, सूक्ष्म-से-सूक्ष्म निशाना बेधने में आप बड़े ही सिद्ध-हस्त हैं। इनके इस गुण का लोहा बड़े-बड़े सिद्ध-हस्त लक्ष्य-बेध करनेवालों ने मान लिया है। आप इस संबंध में बंदूक और धनुष-बाण, दोनो में समान रूप से कुशल हैं। लक्ष्य कैसा भी सूक्ष्म और चल हो, आप उसे सहज ही लक्ष्य कर बेध लेते हैं, यहाँ तक कि आकाश में फेंके हुए मोती को आप गोली से अंतरिक्ष ही में उड़ा देते हैं। इसमें भी विशेषता यह है कि आप

दाहने तथा बाएँ, दोनो हाथो से निशाना बेधने मे समान रूप से प्रवीण हैं। इन्हे शिकार खेलने का व्यसन है, पर अधिक अभिरुचि शेर के शिकार से है। आप शेर के शिकार में पारछों (?) या वृक्षों का आश्रय न लेकर प्रायः पृथ्वी पर खडे होकर ही शेर को सम्मुख ललकारकर मारते हैं। इन्हे मल्ल-विद्या से भी विशेष प्रेम है।

यह हँसमुख, मिलनसार और मिष्टभाषी हैं। प्राचीन क्षत्रिय नरेशो के समान ही आप धार्मिक प्रकृति के हैं। वैदिक सनातन धर्मानुयायी होने से आपकी वेद-शास्त्र पर अटल श्रद्धा और भक्ति है। आप श्रीराधाकृष्णोपासक अनन्य वैष्णव हैं। साथ ही वैदिक यज्ञ-यागादि पर भी आपकी पूर्ण श्रद्धा है। प्रतिदिन ब्राह्म मुहूर्त में उठकर मानसिक पूजा करना, पश्चात् नित्यकर्म आदि से निवृत्त हो स्नान करना, फिर पूजन और देव-दर्शन करना, आपका नित्य-नियम है। निषिद्ध वस्तुओं का सेवन आप प्रबलतम दबाव मे पड़कर भी नहीं करते। यद्यपि आप प्राचीन आर्य-धर्म और भारतीयता के समर्थक हैं, पर नवीन प्रगति की ओर से भी आप एकदम उदासीन नही हैं। हिंदू-धर्म के दृढ, अनन्य प्रेमी होते हुए भी आप अन्य धर्मों और सप्रदायो को आदर की दृष्टि से देखते हैं। आप प्राचीन क्षत्रिय नरेशों के आदर्शानुसार गो ब्राह्मण-प्रतिपालक हैं। इनके राज्य मे गायो पर चरू नही ली जाती।

आपके सिंहासनासीन होने के पूर्व बिजावर-राज्य की आर्थिक दशा अच्छी न थी। राज्य-कोष मे द्रव्याभाव था, और राज्य क़र्ज़ के बोझ से लद गया था। शासन की बागडोर आपके हाथो मे आते ही आपने ऐसा उत्तम प्रबंध किया कि थोड़े ही काल में राज्य को ऋण-भार से मुक्त कर दिया। आपने प्रायः सभी मुहकमो में योग्य और परिश्रमी कर्मचारी रक्खे, तथा पुलिस और सेना का सुसंगठन किया। इनके गद्दी पर बैठने के पूर्व जेल, अस्पताल और शिक्षा का राज्य मे यथोचित प्रबंध न था। शासनाधिकार लेते ही आपने इन तीनो की ओर विशेष ध्यान देकर इनका सुधार बड़ी उत्तमता से किया है।

इस राज्य की जेलें भी आदर्श हैं। जेल मे सर्वप्रथम तो क़ैदियो के स्वास्थ्य का पूरा ध्यान रक्खा जाता है। राज्य की ओर से डॉक्टर प्रतिदिन नियमित रूप से उनके स्वास्थ्य देखते और रोग-पीड़ितो के लिये ओषधि आदि का उचित प्रबंध करते हैं। उनके वस्त्रों की स्वच्छता के विषय मे भी श्रीमान् राजा साहब निगरानी रखते हैं। उन्हें स्वास्थ्यप्रद, पवित्र भोजन दिया जाता है, और कला-कौशल के काम सिखलाए जाते हैं, जिनमे ग़लीचा, फ़र्श, दरी और चिके आदि की बुनाई का काम मुख्य है।

प्रजा के स्वास्थ्य की ओर भी बिजावर-नरेश का बड़ा ध्यान है। बिजावर-नगर मे एक बड़ा अस्पताल है, जहाँ योग्य डॉक्टर की नियुक्ति रहती है। इसके अतिरिक्त गश्ती शफ़ाख़ाने भी है, जिनकी देख-रेख के लिये अनुभवी वैक्सीनेटर और कपाउंडर रक्खे गए हैं। ये लोग राज्य-भर मे दौरा करते रहते और लोगो के लिये ओषधि की योजना करते हैं। महाराजा सावंतसिंहजू देव की अभिरुचि आयुर्वेद की ओर अधिक है। राज्य की ओर से आयुर्वेद-शास्त्र के प्रवीण, अनुभवी वैद्य की नियुक्ति है।

शिक्षा की भी राज्य मे अनुकूल व्यवस्था है। राजधानी मे एक अँगरेज़ी-मिडिल स्कूल है, जिसे हाईस्कूल में परिणत करने का विचार हो रहा है। राज्य मे हिंदी और उर्दू के अनेक स्कूल हैं। प्रत्येक परगने मे हिंदी-मिडिल स्कूल हैं, और प्रति तीन गाँव पीछे एक देहाती

पाठशाला। शिक्षा-विभाग की देख-भाल के लिये एक डाइरेक्टर हैं। इनकी सहायता के लिये एक इंस्पेक्टर ऑफ् स्कूल्स हैं। प्रत्येक स्कूल में गरीब विद्यार्थियों को बिना मूल्य पाठ्य पुस्तकें दी जाती हैं। छात्रवृत्तियों का भी समुचित प्रबंध है। होनहार विद्यार्थी हाईस्कूल और कॉलेज की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के हेतु राज्य की ओर से सहायता प्राप्त कर सकता है।

प्रजा-हित के हेतु महाराजा सावतसिंह ने अपने राज्य में आवागमन के मार्गों को विशेष सुविधा-जनक बनवा दिया है। राज्य-भर में पक्की सड़कें बनवा दी हैं, और उनके किनारे छाया देनेवाले सुंदर वृक्ष लगवा दिए हैं। श्रीमान् राजा साहब प्रजावत्सल भी हैं। सायंकाल जब कभी आप मोटर पर घूमने निकलते हैं, और मार्ग में कोई प्रार्थी मिल जाता है, तो आप मोटर ठहराकर प्रार्थी की प्रार्थना पूर्ण सहानुभूति प्रदर्शित करके सुनते, और उसका यथोचित प्रबंध करते हैं। आपका व्यवहार अपने राज्य के किसानों से बड़ा ही सहृदयता-पूर्ण है। किसानों को बीज और बैल आदि की आवश्यकता की पूर्ति के लिये थोड़े ब्याज पर उचित तकावी दिए जाने का उत्तम प्रबंध है।

महाराजा सावतसिंहजू देव के सिंहासनासीन होने के पूर्व बिजावर-राज्य में कोई अच्छा राजमहल न था। आपने सर्वप्रथम राजधानी बिजावर-नगर के दुर्ग का पुनरुद्धार किया, जिससे अब यह दर्शनीय हो गया है। दुर्ग के भीतर आपने सावत-भवन, लालमहल और श्रीविहारीजी का मंदिर आदि अनेक दर्शनीय इमारतें बनवाई हैं। ये भवन संपूर्ण बुंदेलखंड के दर्शनीय स्थानों में से हैं। इनमें नक्क़ाशी और पच्चीकारी का कलात्मक काम मनोहर है। इनके सिवा आपने वन्य प्रांत के सुंदर, प्राकृतिक स्थानों पर भी अनेक छोटे-मोटे भवन निर्माण कराए हैं। इनमें 'भीमकुंड' सर्वापेक्षा सुंदर है। इन्हें देखने से स्थापत्य-कला और प्राकृतिक दृश्यों के प्रति आपके प्रेम का पता चलता है।

आप अत्यंत साहित्यानुरागी भी हैं। आपको साहित्य-शास्त्र का यथोचित ज्ञान है। आप व्रजभाषा-काव्य के मर्मज्ञ हैं। आपके यहाँ वैसे तो अनेक कवि-कोविद हैं, पर कविराज श्रीविहारीलालजी और श्रीदेवीप्रसादजी 'प्रीतम' विशेष उल्लेखनीय हैं। श्रीविहारीलालजी बुंदेलखंडी भाषा के प्रतिनिधि सुकवि और साहित्य के दशांगों के मर्मज्ञ हैं। इनका लिखा साहित्य सागर-नामक विशाल रीति-ग्रंथ प्रकाशित हो रहा है। यह ग्रंथ श्रीमान् महाराजा साहब की आज्ञा से लिखा गया है। इस ग्रंथ पर श्रीमान् ने कविराज को जागीर, वस्त्राभूषण और भवन देकर पूर्णतया सम्मानित किया है। साहित्य-सागर की पंद्रहवीं तरंग में श्रीविहारीलालजी ने दान-प्रकरण में उसका सविस्तर वर्णन किया है। 'प्रीतम'जी हिंदी-संसार के परिचित प्राचीन साहित्यिक हैं। इनका 'गुलदस्तए-बिहारी' खूब प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है।

श्रीमान् महाराजा सावतसिंहजू देव बहादुर ने अपने यहाँ एक साहित्य-समाज की भी स्थापना की है, जिसके सभापति बिजावर-राज्य के दीवान सरदार श्रीविश्वेश्वरस्वरूपजी महोदय हैं, और मंत्री कविराज श्रीविहारीलालजी। इस समाज में अनेक योग्य सुकवि हैं, जिनमें महाराजा साहब के पेशकार श्रीद्वारकाप्रसादजी रंगमणि की रचनाएँ भक्ति-पक्ष में विशेष सुंदर हैं। इनके सिवा श्रीशारदा बाबू, श्रीरमेशजी और श्रीगोविंदप्रसाद श्रीवास्तव की रचनाएँ भी अच्छी होती हैं। ईश्वर करे, श्रीमान् के द्वारा यह साहित्य-समाज उत्साह पाकर दिन-दिन उन्नत हो।

विषय-सूची

* मंगलाचरण *

श्लोक

नमस्ते नित्यरूपायै नमस्ते विश्वकारिणि ।
नमस्ते सर्वसाक्षिण्यै नमस्ते त्रिगुणात्मिके ॥ १ ॥

सरस्वतीस्तवन

जयति अखिल-जग-जननि चतुर्करकंज प्रथम गनि;
वीणा-पुस्तक हस्त, अपर कर फटिक-माल-मनि ।
शित-शुक-शंख-मयंक-स्वच्छ-सुंदर छवि छाजहि ;
सुमन-कुंद-द्युति दिव्य विशद वर वसन विराजहि ।
कह कवि 'बिहार' दीजिय सुबुधि, करिय कृपा विश्वेश्वरी ;
बंदौं सरोज-पद-युगल तव, पाहि-पाहि परमेश्वरी ।

❀ ❀ ❀

अखिल भुवन चर अचर भवति तव भृकुटिविलासं ;
जग अंतर बस ब्रह्म, ब्रह्म अंतर जिहि वासं ।
संचित क्रिय प्रारब्ध कर्म कहवे जिहि तेही ;
उत्पति-पालन-प्रलय सहज इच्छा पर जेही ।
कह कवि 'बिहार' जिहि नमत सब सुर-सुरपति-विधि-हर-हरी ;
ॐकार चंद्र पर बिंदु यं तं वंदे परमेश्वरी ।

❀ ❀ ❀

गणपतिस्तवन

सिद्धि-सदन गज-वदन सुंड सिंदूर सुसज्जित ;
इक्क दशन द्युति दिव्य चंद्र चंदन छवि छज्जित।
पाशांकुश वर अभय भूरि भूषित भुजदंडन ;
मनवांछित फल करन विघ्नखंडन मनमंडन।
कह कवि 'बिहार' वेदन विदित बंदनीय तर त्रैभुवन ;
बंदहुँ समस्त मंगल-करन श्रीगणपति गौरी-सुवन।

❀ ❀ ❀

दीपत दिव्य ललाट चंद्र-मंडित सुखमावलि ;
शुंड-दंड कुंडलित डुलत श्रुति कलित वृंद अलि।
दसन लसन मृदु हँसन असन दूर्वांकुर तुष्टति ;
बाहु-दंड बल चंड कंध उन्नत उर पुष्टति।
उपवीत ललित लंबोदरं कवि 'बिहार' सुखदायकं ;
पद्मासनस्थ शंकरसुतं तं वंदे गणनायकं।

सूर्यस्तवन

जय विधि-विष्णु-महेश-रूप त्रिगुणात्मक-रंजन ;
उत्पति - पालन - प्रलय-हेतु, भव-भीति-विभंजन।
जयति प्रताप प्रत्यक्ष रक्ष जग-चक्षु प्रकाशक ;
जयति घोर तम-हरन भरन सुख प्रभा-प्रभासक।
कह कवि 'बिहार' जय भासकर महिमा सुख वेदन भनी ;
बंदहुँ अखंड द्युति दिव्य वर आदि देव श्रीदिनमनी।

❀ ❀ ❀

अखिल खमंडल मंड तेज तारा तारापति ;
सर्वाश्रय जिहि लेत देत दीपति जग दीपति ।
जिहि कर-निकर-प्रभाव प्रकृति परिवर्तन प्रगटत ;
सतयुग त्रेता द्वापरं च कलि क्रमशः पलटत ।
कह कवि 'बिहार' दैत्यन-दलन, देवन सहज सहायकं ;
जिहि वंश राम रघुपति भवं, तं वंदे दिननायकं ।

शिवस्तवन

जय अमंद जगवंद चंद्रशेखर गंगाधर ;
जय विश्वंभर देव शंभु शंकर जय हर हर ।
जय त्रिनयन जोगीश जयति रघुवर गुण-ज्ञाता ;
जय गिरिजा-प्राणेश जयति वांछित वर-दाता ।
कह कवि 'बिहार' कैलासपति पाहि-पाहि करुणा-अयन ;
बंदौं महेश मंगल-करन मुनि-मंडन मर्दन-मयन ।

❀ ❀ ❀

योग-युक्त योगीश दिव्य देवेश निरंजन ;
स्वयं सिद्धि शशि-मौलि महामनमथ-मद-मर्दन ।
आशुतोष, अमृतेश, देश अच्युत अबिनासी ;
सर्व-ज्योति-जुत ज्वलित कलित कैलास-निवासी ।
कह कवि 'बिहार' भाषित भुवन भू, कं, रं, अं, खं, करं ;
सर्वेश सर्व संकटशमं तं वंदे शिव शंकरं ।

❀ ❀ ❀

विष्णुस्तवन

सजल जलद-तन श्याम कांति सुरगण-सुखकारी ;
शंख - चक्र कर गदा - पद्म - धारी, भय - हारी ।
रूप सच्चिदानंद शेष - शायी छवि - राशी ;
सर्व-लोक - जन - रत्त लक्ष्मी - हृदय - विलासी ।
कह कवि 'बिहार' जय ईश-मणि महिमा निगमागम भरी ;
बंदौं सदैव पद-पद्म-युग श्रीमन्नारायण हरी ।

* * *

कहूँ शंख कहुँ चक्र, कहूँ वज्रायुध-सज्जित ;
कहूँ लियें धनु-बान, कहूँ रतिपति-छबि-छज्जित ।
कहूँ मुकुट वर लकुट, कहूँ वंशी वर धारिय ;
कहूँ रुचिर रथ-चक्र, कहूँ वर बाज सम्हारिय ।
कह कवि 'बिहार' नामादि वपु विष्णु राम कृष्णात्मनं ;
यं नरोत्तमं नारायणं तं वंदे परमात्मनं ।

व्रज-विभूति

गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ

❀ श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ❀

* श्रीराधाकृष्ण-पंचक *

दोहा

जय राधा चंद्राननी कृष्णचंद्र - चित - चोर ;
विश्व-भरन मंगल-करन, जय जय जुगल-किशोर ।

षट्पदी

जय मनमोहन मृदुल मूर्ति मुद-मंगल-कारी ;
जय भव भूषण भरन, दोष-दूषण-अपहारी ।
जयति निवारण कुमति, सुमति-दाता यश-मंडन ;
जयति विश्व-बस-करन, जयति खल अखिल बिखंडन ।
कह कवि 'बिहार' जय सुख-सदन, शुभ-दायक संकट-शमन;
शृंगार-रूप, बाधा-दमन, जय जय श्रीराधा-रमन ॥ १ ॥

❀ ❀ ❀

श्याम सजल घन ओप❀, अंग आभा अभिरामं ;
मृदुल मनोहर रूप, लखत लज्जत शत कामं ।

❀ आब ।

मधुर हास हिय-हरन, दमक दाड़िम-दशनावलि ;
लोचन लोल, कपोल गोल, मंडित अलकावलि ।
कह कवि 'बिहार' छवि अकथ अति, पीत बसन दामिनि-दमन;
जय जयति सच्चिदानंद जय, जयति कृष्ण राधा-रमन ॥ २ ॥

❀ ❀ ❀

तरुण अरुण अम्भोज प्रभा पूरण पद राजत ;
नवल नखावलि विमल, ओप उडुपति छवि छाजत ।
भूषण मणिगण चमक, चारु चितवन चित चोरत ;
जक जक छक छक छटन, अतन तक तक तृन तोरत ।
कह कवि 'बिहार' इन चरण रति देव दयानिधि दुख-दमन;
जय जयति कृष्ण जय कृष्ण जय, जयति कृष्ण राधा-रमन ॥ ३ ॥

❀ ❀ ❀

जय ब्रजेश ब्रज-चंद, जयति त्रैलोक्य-लुभावन ;
जय परिपूरण परम पुरुष पद्मा-पति पावन ।
जय भवपति भगवंत, भक्त - भावन भुवनेशं ;
जय अनंत अज अमर, अकथ अच्युत अखिलेशं ।
कह कवि 'बिहार' करुणालयं, कलि-कंदन केशी-शमन ;
जय रमानाथ राजिवनयन, रंग - रसिक राधा - रमन ॥ ४ ॥

❀ ❀ ❀

चित्त रूप चैतन्य, चराचर चित्रण चारी ;
खा समान खम अखम, अखिल खुल खेल खिलारो ।
निर्विकार निःसंग, नित्य निर्लेप निरंजन ;
जगदीश्वर जदुनाथ, जगत - जीवन जन - रंजन ।

कह कवि 'बिहार' सर्वाधिपति, सत्य सच्चिदानंद घन ;
गोविंद कृष्ण गोविंद जय, जयति कृष्ण राधा-रमन ॥ ५ ॥

छंद

छबि श्याम ताम-रस-पुंज प्रभा, नित निरख-निरख आनंद लहौ ;
गोविंद कृष्ण, गोविंद कृष्ण, गोविंद कृष्ण, गोविंद कहौ ॥ १ ॥

❀ ❀ ❀

लोचन विशाल, छबि तिलक भाल, मकराकृत कुंडल झूम रहे ;
चंचल चितौन चख चलन गोल, जनु कमल लोल अलि घूम रहे ।
मुसक्यान माधुरी चंद्र-कला यह ध्यान 'बिहार' निहार रहौ ;
गोविंद कृष्ण, गोविंद कृष्ण, गोविंद कृष्ण, गोविंद कहौ ॥ २ ॥

❀ ❀ ❀

तन नील निचोल प्रकाश पीत, घन दामिनि सी द्युति दीप रही ;
बनमाल चारुता चित्त हरै, मुरली लग पंचम टीप रही ।
केली बन कुंज कलिंद तीर चल प्रेम विनोद 'बिहार' लहौ ;
गोविंद कृष्ण, गोविंद कृष्ण, गोविंद कृष्ण गोविंद कहौ ॥ ३ ॥

❀ ❀ ❀

चंद्रावलि चंपक चित्रकला, ललिता सब साज सम्हार रहीं ;
ब्रजराज माधुरी रंग छकीं, राधा मुख चंद्र निहार रहीं ।
यह युगल प्रिया प्रीतम 'बिहार', छबि देख-देख आनंद लहौ ;
गोविंद कृष्ण, गोविंद कृष्ण, गोविंद कृष्ण, गोविंद कहौ ॥ ४ ॥

* प्रथम तरंग *

राजवंश-वर्णन

दोहा

कमल-चरन चिंता-हरन करन सफल सब काज ;
सिव-नंदन सिंधुर - बदन बंदहुँ श्रीगनराज ।

छप्पय

पचम बीर बुँदेल-बंस छतसाल उजागर ;
सोह बिजावर-राज्य राजधानी जग-जाहर ।
जहाँ बसत द्विजबृंद सुकबि बिद्याधर पंडित ;
चतुर्बर्न सुभ कर्म महज्जन गुन - धन - मंडित ।
कह कबि 'बिहार' नृप-कुल-तिलक सावँतसिंह नरेस तहँ ;
धर्मोपयुक्त पालत प्रजा ध्यान राधिका - कृष्ण महँ ।

दोहा

पंचम कुल बुंदेल - मनि गहरवार कासीस ;
भूप बिजावर बिदित जग हंस बंस अवनीस ।
काव्य सरुचि सांगीत गुन नीति - निपुन युत नेम ;
अरि-भंजन रंजन सुजन पालत प्रजा सप्रेम ।
के० सी० आई० ई० सहित सरस सवाई भूप ;
छत्रमाल-कुल-कलस हुय मृदुल मनोहर रूप ।

श्रीराधा बाधा-हरन कृष्ण कृपा - निधि मान ;
उक्त युगल रुचि रूप कौ भूप धरत नित ध्यान ।
सोभित सावँतसिंह इमि धर्मवीर बलवान ;
जिहि कुल भौ कुल-कलस यह सो इत करत बखान ।
आदि पुरुष परमातमा पुरुषोत्तम भगवान ;
तिन प्रभु के अतिरिक्त कहुँ प्रथम न कोऊ आन ।
तिन नारायन-नाभि से पद्म प्रगट अवतार ;
तिनसें फिर ब्रह्मा भए, तिनसें सब संसार ।
बिधि से भए मरीचि पुनि कस्यपादि गिन लेव ;
जगत - चक्षु प्रगटे बहुरि भानु भासकर देव ।
ब्रह्मा विष्णु महेस के गुन सुरूप सुख दान ;
प्रथम भए यह बंस में सूर्यदेव भगवान ।
आदि बंस भगवान रवि तिनसें भे इक्ष्वाक ;
पुनि बिकुक्ष काकुत्स्थ भे जिनकी जग में साक ।
बहुरि अनेना प्रथु कहिय बिस्वरंधि पुनि चंद ;
यवनास्वरु सावस्त पुनि प्रगट भए सुखकंद ।
सावस्ती बस्ती करी नाम भयौ सावस्त ;
तिनसें पुनि बृहदास्व भे जानत जगत समस्त ।
कुबलयास्व तिनकें भए धुंध दैत्य कौं मार ;
धुंधमार यह नाम सें बिदित भए संसार ।
बहुरि भए दृढ़आस्व पुनि हर्यआस्व पहचान ;
पुनि निकुंभ ब्रहनास्व युत पुनि कृसास्व मन मान ।
पुनि प्रसेन युवनास्व कह धातामान बखान ;
सात द्वीप के राज्य में जिनकौ जगत निसान ।

अंबरीष तिनकै भए यौवनास्व पुनि जान ;
पुनि कहिए हारोति कहुँ संभूतं पहिचान।
अन्यरण्य प्रियद्दस्व कह हर्यस्व गन लेव ;
सुमन त्रिधन्वा त्रै अरुन सत्यव्रत्त चित देव।
हरिस्चंद तिनसें भए रोहितास्व हरितास्व ;
चंचुबिजय कहिए भरुक कृत्यबीर्य असितास्व।
सगर भए तिनकें प्रबल असमंजस पुनि जान ;
अंसुमान तिनकें भए पुनि दिलीप पहचान।
भागीरथ तिनसें भए भागीरथी प्रमान ;
बेंदसेंन पुनि नाभि कह सिंधुद्वीप पहिचान।
अयुतायू ऋतुपर्ण लख सर्बकाम सुखदास ;
अस्मक तिनकें जानिएँ नारिकवच जसभास।
पुनि दसरथ पुनि ऐडविड बिस्वासह जसदीप ;
पुनि तिनकें षट्वांग भे जिन गुन दीप-प्रदीप।
दीर्घबाहु तिनकें भए तिनकें भे रघु भूप ;
तिनकें अज तिनकें भए दसरथ अवनि अनूप।
तिन दसरथ महराज कें अवधपुरी सुख-सार ;
रामचंद्र प्रगटे प्रभू पूर्न ब्रह्म अवतार।
श्रीलछमन अरु श्रीभरत श्रीरिपुहन अवतंस ;
इन अंसन युत राम भे पूर्न ब्रह्म रघुबंस।

छप्पय

जय रबि - बंस - सरोज - सूर्य पूरन प्रतापबर ;
जयति सकल संसार - सेतु रच्छक करुनाकर।

जयति लोक अभिराम राम जय दसरथ - नंदन ;
जय रावन-दल-दलन जयति खल अखिल निकंदन ।
कह कबि 'बिहार' स्तुति सारदा नेति नेति कह निज मती ;
जय जयति देव इंद्रादिपति सियपति जगपति रघुपती ।

दोहा

तिनसें श्रीलव-कुस भए बिक्रम बीर बिचित्र ;
छप्पन पीढ़ी पर भए कुस सें भूप सुमित्र ।
तिनकें सिंहध्वज भए तिनकें रूप मयंक ;
भुवनपाल तिनकें भए बीर बली निरसंक ।
पुनि भे मान्य नरेंद्रजू तिनकें दो सुत जान ;
गगनसैन इक जानिए कनकसैन इक मान ।
कनकसैन गुजरात गे सज निज सकल समाज ;
गगनसैन ने आय इत तक्षव पूरब-राज ।
गगनसैन सें जब भए कीर्तिराज सिरताज ;
इननैं गादी अवध सें किय कासी-बिच राज ।
कुस सें छप्पन पीढ़ि पर भे सुमित्र महिपाल ;
इन लग गादी अवध पर नियमित रहे भुवाल ।
इनसें पुनि इहि बंस में भे नृप बीर अनेक ;
तिनके नामन सें भईं साखा-पुंज प्रत्येक ।
पंचम पीढ़ि सुमित्र सें गगनसैन सिरताज ;
तिनके कीरतराज ने किय कासी - बिच राज ।
कासी वह दिवदास नृप सानी सें लई छीन ;
तब से कासीराज की पदवी भइ प्रबीन ।

ग्रह निवार इक यज्ञ तब कीन्हों नृप बलवान ;
पदवी लई ग्रहदेव की जानत सकल जहान।
जब सें पद ग्रहदेव लिय तब सें ये बलवान ;
ग्रहरवार के नाम सें जाहिर भए जहान।
महीराज तिनसें भए मूर्धराज पुनि नाम ;
उदयराज तिनसें भए ग्रहरसैन सुख-धाम।
समरसैन हरदेव पुनि, पुनि जयदेव बिसाल ;
पृथ्वीपाल महीप कें मदनपाल महिपाल।
पुनि बिचित्र प्रहलाद दिव धीरदेव सुखदान ;
पाल महींद्र नरेंद्र कें रामदेव जग जान।
बिमलदेव नलचंद भे गोरखचद नृपाल ;
तिहुनपाल तिनकें भए करनपाल महिपाल।
जुग रानी तिनकें रहीं, तिनकें भे सुत पाँच ;
छोटी के सुत छोट पर नृप सनेह अति साँच।
हेमकरन जिहि नाम है, सब भाइन सिरताज ;
बुधि-बल-बिद्या देखकर नृपति कियौ युवराज।
सह न सके इहि बात कौं चारौं राजकुमार ;
नृप पीछें हिमकर्न कौं पद्द सें दियौ उतार।
हेमकरन आनँदकरन बिंध्यक्षेत्र में जाय ;
बिंध्यबासिनी देबि के सरन गहे चित लाय।
किय अराधना बैठ तहँ तन-मन दृढ़ता आन ;
आसन दृढ़ आहार दृढ़ निद्रा दृढ़ बलवान।
मनसा बाचा कर्म सें त्रिकुटी ध्यान लगाय ;
ब्रतधारी क्षत्री प्रबल रहु समाधि मन लाय।

जाग्रत ह्वै जगदंब के इक दिन वह अवनीस ;
लै कृपान कर कंठ धर लग्यौ चढ़ावन सीस ।
ज्यों कृपान कंठह दई, भई प्रगट जगदंब ;
झपट हाथ गह मातु ने दियौ भक्त अवलंब ।
कंठ-रक्त असि-रक्त गह खड़ो बीर कर जोर ;
बीर जान जननी कह्यौ धन्य महीप-किसोर ।
ह्वै प्रसन्न बर दीन तब तूँ भाइन कौं जीत ;
करिहै राज्य निसंक भुवि पालि धर्म अरु नीति ।
चारहु भाइन कौं तुहीं जीत अकेलौ जाय,
कासीराज दराज कर पंचम बीर कहाय ।
बिंध्याचल जेती इला तेती ही तुहि ठाम ;
पंचम युत तव आज सें भौ बिंध्येला नाम ।
पंचम बीर बुँदेल बर जीत अरिन रन-धीर ;
करन लग्यो जाकर नृपति कासी राज सुबीर ।
नवमी के दिन हेम नृप लई बिजय कर जीत ;
तब सें इनकें दसहरा नवमी के दिन होत ।
बिजयदसमि पूजन प्रथम नवमी के दिन होत ;
दसमी को फिर सास्त्र-बिधि पूजत पुहुमि उदोत ।
अभयकरन तिनकें भए कासी सूर समृद्ध ;
कुंड रच्यौ मनिकर्निका अब लग जगत प्रसिद्ध ।
तिनसें कन्हर सा भए गए इलाहाबाद ;
रजपूतन सें तिन कियौ अंतरबेद अबाद ।
रजपूतन सन जीत उत राज कियौ महराज ;
तिनसें सौनकदेव भे सूरबीर - सिरताज ।

जाय कालपो पर कियो कबजा कन्हर साह ;
सामन साह उदोत कौ मेंट दियौ नर-नाह ।
अभयदेव तिनके भए राज महौनी कीन ;
तुरकन सें लर युद्ध में लियौ जतारा छीन ।
संबत सर बसु युग्म ससि लियौ जतारा धाम ;
अभयदेव अरु मान यह द्वैबिध इनके नाम ।
लियौ देस यह पेलि अरि अर्जुनपाल बुँदेल ;
तबहीं सें इहि देस कौं कहियत खंड बुँदेल ।
कारन खंड बुँदेल के थापक बीर बिसाल ;
कोऊ बीर बखान ही कोऊ अर्जुनपाल ।
अधिक लेख परमान सें कहियतु अर्जुनपाल ;
गढ़कुँडार कीनों फतै यही बीर महिपाल ।
खगंन कौं जीत्यौ तहाँ राज कियो चित-चाह ;
संबत बिक्रम ता समय तेरा सौ तेराह ।
तिनकें साहन पाल भे सहज इंद्रपति नाम ;
तिनकें नानकदेव पुनि पृथ्वीराज गुन-धाम ।

❀ ❀ ❀

चौपाई

तिनके रामसिंह मन भाए, रामचंद्र तिनके छबि छाए ;
तिनके मल्लमेदिनी जानों, तिनके अर्जुनदेव बखानों ।

दोहा

तिनकें दिव मलखान भे, तिनकें रुद्रप्रताप ;
तिनकें पुनि नव पुत्र भे, जिनकी जग जस-छाप ।

यों राजै महिइंद्र भूप सत्रुन - दल - खंडन ;
तिहि सुत त्यों सावंतसिंह सोभित जस-मंडन ।
सुदि असाढ़ गुरु दोज सिंधु सर निधि ससि* साजौ ;
त दिन बिजावर - बीर राजगादी पर आजौ ।
कह कबि 'बिहार' धनि-धन्य नृप सकल प्रजा-उर सुख दयौ ;
अरु नग्र सकल थल रम्य रुचि रूप राजसी निर्मयौ ।

दोहा

नगर मार्ग बिस्तृत रचे हाट-बाट बहु बाग ;
बनवाए बहु बन बिषै कोठो - कूप - तड़ाग ।
स्वर्न-सिँहासन, स्वर्न-रथ, स्वर्न-सदन किय त्यार ;
लिए और बहु द्रब्य दै गज-तुरंग-हथियार ।
यों बहुबिधि सोभा सजी श्रीसावँत अवनीस ;
चिरजीवहु धनि-धनि नृपति कबि द्विज देत असीस ।

छप्पय

धरहु मोद भरपूर, भरहु भारत-भुवि-मंडन ;
निज भुज-दंड प्रचंड करहु अरि-झुंड - बिहंडन ।
सुख-संतति संपत्ति साहबी सिद्ध सु जित्तिय ;
श्रीहरि - कृपा सुदृष्टि भूप भोगहु तुम तित्तिय † ।
कह कबि 'बिहार' नृप-कुल-तिलक सावँतसिंह नरेस तुव ;
तब लग ‡ राज्य राजै सुखद, जब लग गगन उदोत § ध्रुव ।

कवित्त

कबहुँ कृपालु बैठ सुनत सँगीत - राग,
कबहूँ बिनोद बाग छेम छाइयतु हैं ;

---

* संवत् १९२७ विक्रमाब्द । † उतनी । ‡ तक । § प्रकाशमान ।

कबहूँ कबिंद बृंद पंडित बिबाद होत,
बिबिध सवाद ग्यान-भक्ति भाइयतु हैं।
कहत 'बिहारी' बैठ तरनि तड़ाग मध्य,
कबिता-तरंग संग रंग लाइयतु हैं;
ऐसे महराज, ऐसो रसिक समाज,
ऐसो प्रेम-अनुराग बड़े भाग पाइयतु हैं।

❀ ❀ ❀

कबहूँ प्रजा के हित-साधन बिचार करैं,
कबहूँ सुसिच्छा देय धर्म-रखवारी की;
साधुन कौ संग गान-तान की तरंग सुनैं,
कबहूँ सुरावट सरोद बीनकारी की।
कबहूँ अखेट ताक, कबहूँ बिनोद बाक,
कबहूँ सहर्ष सुनैं कबिता 'बिहारी' की;
पद्म-पत्र कैसो जोग भोग छबि छाजै सदा,
ऐसी रुचि राजै सावँतेस छत्रधारी की।

❀ ❀ ❀

प्रात उठि आसन पै बैठि पद्मासन सें,
मानसिक पूजा करै कृष्ण जदुराई की;
रोप भुज-दंड डंड-बैठक लगाय, फेर
आय इजलास राजकाज की भलाई की।
कहत 'बिहारी' कर मज्जन असन आदि
साँझ-सभा ग्यान-गीत बात कबिताई की;
साम-दाम-दंड-भेद नीति जहाँ जैसी, ऐसी
साहबी सुहावै सिंह सावँत सवाई की।

❀ ❀ ❀

राजसभा-वर्णन

छंद

इक दिवस श्रीसावंत नृप - कुल - चंद्र मोद अपार में ;
ससि दोज दुति लख बिमल भ्राजत भयौ नृप दरबार में।
रनबीर छत्रिय - बृंद इक दिसि दच्छ सुखमा सोहहीं ;
गुन-सोल सभ्य सुभाव बुधि-बल भूप रुख मुख जोहहीं।
अरु द्वितिय दिसि अध्यक्ष बहु गुनि ठौर निज - निज राजहीं ;
द्विजबृंद पुनि पंडित कबीस्वर योग्य स्रेणिय साजहीं ।
तहँ राग रंग संगीत गायन राग रागिनि गावहीं ;
सुर-ताल द्रुति गति नियम-युत निज कुसलता दिखरावहीं।

दोहा

बात-बात बिच काव्य की चरचा चली नवीन ;
होन लगी कबिता कछुक कही कबिन प्राचीन।
स्वकृत काव्य हौं तिहि समय कह कछु सरस सिंगार ;
व्यंग भाव भूषन समुझ नृप लिय मोद अपार।
हरषि हुकुम पुनि दीन्ह मुहिँ मुदमंडन महिपाल ;
काव्य-ग्रंथ रुचि रचहु इक सुंदर सरस बिसाल।
बस्तु काव्य साहित्य में अति आवस्यक जोय ;
सो सब बिधि बरनन करहु बोध पाठकन होय।
मानुष कौ तन पाय नर करै सदा सुभ काम ;
जामें पर - उपकार हो, रहै अमर जग नाम।
जिन कबियन पुस्तक रचीं, जिन-जिनके गुन-ग्राम ;
तिन - तिनके जग चल रहे आज-आज लौं नाम।

यहि बिधि श्रीसावँत नृपति कहे बचन रस-सार ;
सो सुन मेरे हृदय महँ प्रगटो प्रेम अपार ।

छंद

नृप हुकुम श्रीमुख भाखियं ;
हौं ताहि निज सिर राखियं ।
धर ध्यान श्रीहरि - चर्णयं * ;
'साहित्य-सागर' वर्णयं † ।

दोहा

गुरु - सिच्छा अरु इष्ट-बल जौन लखाई चाल ;
तौन रीति चल ग्रंथ की रचना रचत बिसाल ।
मुख्य अंग जे काव्य के बरनत सकल बिचार ;
जहाँ भूल हो, छमा कर लीजो सुकबि सम्हार ।

* * *

प्रश्न-प्रकरण

दोहा

कौंन बस्तु साहित्य है, काव्य कहावत काह ;
ताके कारन कौन हैं, कौंन छंद की राह ।
भेद गनागन कौ कहा, कह ‡ सबदारथ बृत्ति ;
कौंन लच्छना-व्यंजना, कह ध्वनि मार्ग प्रबृत्ति ।
कहा भाव-अनुभाव कह, कह बिभाव अनुरूप ;
कह रस कह रँग देवता कौंन श्रेष्ठ रस रूप ।
कितौ नायिका-भेद है, केते नायक - नाम ;
कितीं सखीं, दूती कितीं, कौंन काह कौ काम ।

---

* चरण में । † वर्णन करता हूँ । ‡ कहा, क्या ।

किती भाँति सिंगार है, कहा दसा, कह हाव ;
कह षट ऋतु कौ रूप रुचि अरु किहि भाँति प्रभाव ।
कौन भाँति गुन काव्य के दोष कहावत काह ;
कह तुकांत की रीति है, कह उत्तम तिहि राह ।
अनुप्रास कासों कहत, अलंकार कह नाम ;
किते भेद ताके कहत, कह लच्छन अभिराम ।
अंतर केतौ कौंन में, भूषन किते अनूप ;
चित्र काव्य काको कहत केतिक ताके रूप ।
भेद नायिका में जगत रस सिँगार की जोत ;
सो प्रबृत्ति कौ पच्छ है कस निबृत्ति में होत ।
वह निबृत्ति में है अभय कौंन देस अभिराम ;
जहाँ जीव सुखमय रहै, लहै अचल बिसराम ।
यह बिधि कहे प्रकर्न बहु सूछम सुमति सदस्य ;
भूल जहाँ कबिजन तहाँ करिहैं छमा अवस्य ।
धन्य-धन्य कबिजन गहत सदा हंस की रीति ;
बारि-बिकार न ताकही, पय-गुन गहहिं सप्रीति ।
धृक् खलजन गुन छोड़ कें ढूँढ़त दोष लखाय ;
ज्यों पिपीलका मनि-सदन छिद्र चहत मिल जाय ।
देव-स्तुति नृप-कुल-कथन ग्रंथ-हेतु सुभ अंग ;
भई सिंधु साहित्य की पूरन प्रथम तरग ।

स्वस्ति श्रीमन्महाराजाधिराज काशीश्वर ग्रहनिवार पंचम विंध्येलवंशावतंस
श्रीमत्सवाई महाराजा साहब भारत-धर्मेंदु सर सावंतसिंहजू देव बहादुर
के० सी० आई० ई० बिजावरनरेशस्य कृपापात्र ब्रह्मभट्ट-
वंशोद्भव कविभूषण कविराज पं० विहारीलालविरचिते
साहित्यसागरे देवस्तुति-राजवंश-ग्रंथहेतुप्रकरण-
वर्णनो नाम प्रथमस्तरंगः ।

---

* द्वितीय तरंग *

साहित्य

दोहा

अर्थ सब्द साहित्य के निकसत बिबिध प्रकार ;
कछु समुझावत हौं यहाँ समुझहिं सुकबि बिचार ।
सहित सब्द में कीजिए 'यण्' प्रत्यय कौ जोग ;
बनत सब्द साहित्य * है जानत सत कबि लोग ।
सब्द अपेक्षा परस्पर तुल्य रूप पद जान ;
अन्वित एकहि क्रिया में सो साहित्य बखान ।

---

* साहित्य अर्थात् सहित शब्द से यण् प्रत्यय आने पर साहित्य शब्द बन जाता है ।

(१) पुनः "सहितस्य भावः साहित्यम्" अर्थात् साथ का जो भाव है, उसका नाम साहित्य है, अथवा "साहित्य मेलनम् ।"

(२) "परस्परसापेक्षाणां तुल्यरूपाणां युगपदेकक्रियान्वयित्वं साहित्यम् ।" तुल्य रूप परस्पर सापेक्ष्य शब्दों का युगपत् अर्थात् एक ही समय एक क्रिया में जो अन्वित होना है, उसे साहित्य कहते हैं ।

(३) "पुनः तुल्यपदैकक्रियान्वयित्वं बुद्धिविशेषविषयत्वं वा साहित्यम् ।" तुल्य हैं पद जिसके, और एक क्रिया में अन्वित बुद्धि-विशेष का जो विषय है, उसे साहित्य कहते हैं । अस्तु । जो सम्मिलित, सहगामी, संयुक्त, परस्परापेक्षित है, उस भाव का नाम साहित्य है । पुनः और अर्थ यह भी हो सकता है कि जो हित के साथ वर्तमान है, उसें कहते हैं सहित; और सहित का जो भाव है, उसे कहते हैं साहित्य ।

"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" अर्थात् "वाक्य रसात्मक राखिए भावादिक से पुष्ट ; भाविक उर आनँद करै काव्य कहत संतुष्ट ।" पुनः "शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली ।" अर्थात् जिस पदावली मे अभीष्ट अर्थ विद्यमान हो, उसी से काव्य-शरीर संगठित होना है । अभीष्ट अर्थ क्या है । "सुहृदयहृदयवेद्योऽर्थः" अर्थात् सहृदयों के हृदय जिसका अनुभव करें, उसका नाम अर्थ है; उससे जो इष्ट-साधन हो, वह अभीष्ट है । अभिप्राय यह कि अभीष्ट अर्थ विद्यमान पदावली को काव्य कहते हैं । अन्य कविमत "रमणीयार्थप्रतिपादकं शब्दं काव्यम् ।" अर्थात् रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य कहते हैं । रमणीय शब्द का

अन्वित एकहि क्रिया में पद-समता कौ भाव ;
बिषय सुबुद्धि बिसेष कौ सो साहित्य गनाव ।
बर्तमान हित साथ जो सहित सब्द सो आय ;
सहित सब्द कौ भाव जो, सो साहित्य कहाय ।
जड़-चेतन जितनौ रचौ प्रकृति बिस्व-बिस्तार ;
कियौ सर्ब साहित्यमय देखै देखनहार ।
सब्दरु अर्थ अदोष रस गुन भूषन बर बृत्य ;
सामग्री अस काव्य की कहत काव्य - साहित्य ।
इते अर्थ साहित्य के सूछम दिए बताय ;
आगे लच्छन काव्य के कहियत कछु समुझाय ।

❀ ❀ ❀

काव्य

दोहा

जिहि पद-अवली में रहै रुचिकर अर्थ अनूप ;
काव्य अंग सुंदर सजै काव्य कहत कबिभूप ।
इस्थित अर्थ अभीष्ट जहँ पद-रचना-बिच होय ;
सहृदय हिय अनुभव करैं काव्य कहावत सोय ।
देय अर्थ रमनीय अति जाकौ सब्द सुरूप ;
ऐसी रचना कौं कहत कबिजन काव्य अनूप ।

तात्पर्य यह है कि अत्यंत रमणीयोग (अलौकिक) आनंद के मंडन करनेवाले अर्थ जिस शब्दावली के द्वारा प्रदर्शित किए जावें, उन्हीं शब्दों के संगठन को काव्य कहते हैं । वह गद्य या पद्य दोनों में से किसी में भी हो सकता है ।

अर्थात् वाक्य-रसात्मक तथा अलंकृत शब्दार्थ वृत्ति लक्षणा से जो परिपूर्ण है, उसे काव्य कहते हैं । "काव्यो उक्ति विशेष:, भाषा जाहो ताहो ।" अर्थात् भाषा चाहे जो हो, परंतु जिसमें उक्ति विशेष हो, उसी को काव्य कहते, हैं । पुनः "सरससालंकारः सुपदन्यासः सुवर्णमयमूर्तिः । आर्य्या तथैव भार्य्या न लभ्यते क्षीणपुण्येन ।"

जामें प्रति पद पाइयतु लोकोत्तर आनंद ;
ताको काव्य बखानहीं जे कबि कबि-कुल-चंद ।
रमन जोग प्रगटें अरथ सब्द-सब्द प्रति जोय ;
गद्य-बद्ध या पद्य हो काव्य कहावत सोय ।
बाक्य रसात्मक काव्य है सरस अलंकृत जोय ;
बृत्ति-रीति लच्छन-सहित काव्य कहावत सोय ।
सब्दहु महँ अरु अर्थ महँ चमत्कार कछु होय ;
कबि 'बिहार' अस कथन जहँ काव्य कहावत सोय ।

अर्थात् शब्दो मे तथा अर्थ में साधारण वाच्यार्थ के अतिरिक्त विशेष चमत्कार जहाँ प्रकट हो, उसे काव्य कहते हैं ।

या बिधि लच्छन काव्य के बरनन किए 'बिहार' ;
अब याके कारन कहत, लीजौ सुकबि बिचार ।
प्रथमहि कारन काव्य के जानो चहिय अवस्य ;
काव्य-कार्य जासों सकल प्रगटत भाव रहस्य ।

❁ ❁ ❁

काव्य-कारण

छप्पय

संसकार परिपूर्न प्रथम पूरब कौ जानों ;
दूजें बहु सद्ग्रंथ कर्नगोचर कर मानों ।
तीजें हो अभ्यास कहूँ बिस्मृति नहिं जोवै ;
ये त्रय कारन होयँ काव्य-कारज तब होवै ।
कह कबि 'बिहार' कबिता कोऊ इन कारन बिन हो करै ;
तिहि अवस होय उपहास जग बुधजन नहिं आदर धरै ।

अर्थात् काव्य का पहला कारण है पूर्व का संस्कार । जब तक सस्कारी जीवात्मा न हो, तब तक विचित्र कल्पना-जनक प्रतिभा का हृदय में पूर्ण प्रकाश प्रकट नहीं होता है ।

दूसरा कारण है बहुश्रुत होना, अर्थात् दर्शन, पुराण, इतिहास आदि के अनेक प्रकरण अविचल बुद्धि से श्रवण किए हुए हों। जब तक बहुश्रुत न होगा, तब तक वह पूर्वोक्त प्रतिभा का प्रकाश किसी उपयोग में संयोजित न हो सकेगा।

तीसरा कारण है अभ्यास। यदि यह न होगा, तो पूर्व-कथित प्रतिभा का प्रकाश तथा दर्शनादि का प्रकरण समस्त न होने के बराबर ही होगा। जो सिद्धि-प्राप्ति होती है, वह अभ्यास-साधन ही से होती है। कुछ समय-पर्यंत मनुष्य साधक अवस्था में रहता है, फिर वही साधन सहज रूप से स्वभाव में सम्मिलित हो जाता है। जैसा महात्मा अनन्यजी ने कहा है—"कछु दिन साधन कीजिय उपाय ; परजात बहुर मनसा सुभाय।" अतएव अभ्यास की परमावश्यकता है।

इस प्रकार उपर्युक्त तीनो कारण विद्यमान होने से उत्तम काव्य-कार्य प्रकट होता है। पूर्वोक्त कारण बिना भी कविता हो सकती है, परंतु वह कविता कवि-समाज में आदरणीय न होकर उपहासास्पद होती है।

❀ ❀ ❀

काव्य-प्रयोजन

छप्पय

कबिता, काव्य, कबित्व नाम तीनों यह जानों ;
तासु प्रयोजन चार सकल बुधजन अनुमानों।
इक जस दूजे द्रव्य तृतिय ब्योहार बिचारो ;
चौथे असुभ बिनष्ट उदाहरनहु निरधारो।
इमि बिनस्यौ असुभ मयूर कौ भारवि लह ब्यवहार है ;
कबि धावक कों धनगन मिलो कालिदास जस-सार है।

कविता चार प्रयोजन के अर्थ की जाती है—(१) यश के अर्थ, (२) द्रव्य के अर्थ, (३) व्यवहार के अर्थ और (४) अशुभ-निवारणार्थ। उसके उदाहरण देते हैं—महाकवि मयूरजी ने अशुभ-निवारणार्थ कविता की, महाकवि भारवि ने व्यवहार-ज्ञानार्थ कविता की, महाकवि धावक ने धनोपार्जन के अर्थ कविता की, और महाकवि कालिदासजी ने यश के अर्थ कविता की। उक्त कवियों के पूर्ण समाचार उनके जीवन-चरित्र पढ़ने से विदित होंगे। इन्हीं चार प्रयोजन के अंतर्गत अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष भी आ जाते हैं। इसके उदाहरण खोजने में यों तो अनेक कवियों के चरित्र प्राप्त हो सकते हैं, परंतु हम अनेक न कहकर एक महाकवि केशवदास का ही उदाहरण देते हैं, और एक कवित्त नीचे उद्धृत करते हैं, जिसे पढ़कर पाठकों को यह विदित हो जायगा कि कविता द्वारा एक ही कवि ने चारों पदार्थों को प्राप्त कर लिया। यथा—

कवित्त

आगरे में जाय बीरबर को सुनाय काव्य
एक कोटि षष्ठ लच्छ आयौ लै बिदाई है ;
कहत 'बिहारी' इंद्रजीत की सभा में बैठि
राज-धर्म नीति-धर्म धर्म-प्रथा गाई है।
कबिप्रिया सिद्धि कै अनेक सनमान पायौ,
अस्तुति प्रयोग सर्बकामना पुजाई है ;
रचि रामचंद्रिका सप्रेम पाठ ताकौ कर
केसव कबींद्र ने मुनींद्र*-गति पाई है।

दोहा

तुलसी सूर कबीर यह भए भक्त निष्काम ;
तासें चार पदार्थ में लिखे न इनके नाम।
तुलसी, सूर, कबीर यह हैं कबियन के भूप ;
इनके चार पदार्थ हैं राम, स्याम, सतरूप।
इहि बिधि कबिता के किए कथन प्रयोजन चार ;
अब आगे बरनन करत पिंगल मत कौ सार।

* * *

पिंगल

दोहा

भयौ काव्य साहित्य के सब्दारथ कौ ग्यान ;
अब कबिता - हित चाहिए पिंगल की पहिचान।
भोग नहीं बिन कोक के, मोक्ष नहीं बिन ग्यान ;
कबिता बिन पिंगल नहीं, करें ते महा अजान।

---

* श्रेष्ठ मुनि।

ऋषि पिंगल आचार्य ने कियौ जितो बिस्तार ;
तितौ न कोऊ कह सकत निज मति के अनुसार।
ऐसे हू बहु छंद हैं, पढ़त लगत नहिं नीक ;
रोचकता राजत नहीं, लय-प्रबाह नहिं ठीक।
जित चहियत बिस्राम है तित हू से बढ़ि जात ;
ऐसे छंदन कहन कों मन नाहीं पतियात।
जे जु कहत लागत ललित जिनके सरस सुढार ;
तिन छंदन की रीति इत बरनत कछुक बिचार।
वह महर्षि आधार से पिंगल बने अनेक ;
हौंहू कछु सूछम कहत समुझहिं बुद्धि-बिबेक।
बिद्यार्थिन-हित सो प्रथम पिंगल ऋषि-पद बंद ;
ताकी परिभाषा कहत जाको कहियत छंद।

❀ ❀ ❀

छंद-लक्षण

दोहा

मात्रा कौ वा वर्ण कौ नियम चरन प्रति होय ;
समता होय तुकांत में छंद कहावत सोय।
सममात्रा सब चरन में मात्रावृत्त सो जान ;
गुरु लघु वर्णन कौ नियम वर्णवृत्त पहचान।

❀ ❀ ❀

मात्रा-लक्षण

दोहा

वर्णोच्चारण करत में जो हो समय ब्यतीत ;
मात्रा ताको कहत हैं छंदसास्त्र की रीत।

लघु अक्षर जिहि ह्रस्व कहँ ताकी मात्रा एक ;
गुरु अक्षर जिहि दीर्घ कहँ सो द्वै मत्त बिबेक।
त्रै मात्रा को पुलित कह गान सास्त्र में होय ;
अर्धमात्र ब्यंजन कहत जानहु सब कबि लोय।
हो अनुस्वार बिसर्ग जहँ ताकी द्वै कल जान ;
अर्धचंद्र बिंदी जहाँ तहाँ मत्त इक मान।
द्वित्व वर्ण के आदि कौ वर्ण दीर्घ लग्व लेव ;
उदाहरन क्रमसः सकल सुकबि सरुचि चित देव।

❀ ❀ ❀

उदाहरण

दोहा

जिहि पद-पंकज-ध्यान से मिटत दुःख भव-सूल ;
सोई कृष्ण चर्चित चँदन बिहरत जमुना-कूल।

अर्थात् यहाँ पंकज शब्द के पकार पर अनुस्वार है, और दुःख शब्द मे दुः के आगे विसर्ग है, अतः पं की और दुः की दो मात्रा गिनी जाती है, और दोहा के उत्तरार्ध मे जो चँदन शब्द आया है, उसमे च के ऊपर अर्धचंद्र बिंदी है ; इसलिये उस चँ की मात्रा लघु अर्थात् एक ही मानी जाती है। और जो कृष्ण शब्द है, उसमे ष और ण का योग है, इस कारण आदि का अक्षर जो कृ है, वह गुरु माना जाता है, और उसकी मात्रा भी दो गिनी जाती हैं। इसी प्रकार 'विश्व', 'वृत्त', 'धर्म' इत्यादि और भी शब्दों में जानो। इनमें भी वि, वृ, ध अक्षर गुरु माने जाते हैं, परंतु यह ध्यान रहे कि संयोगी शब्द का आदि का अक्षर वहीं गुरु माना जायगा, जहाँ उसे गुरुत्व प्राप्त हो, और जहाँ गुरुत्व प्राप्त न हो, वहाँ वह लघु ही माना जायगा ; यथा—

नीर धसति, निकसति बहुरि चरन घिसति इठलाति ;
मीत-मिलन-हित लाडिली रह रह जमुन अन्हाति।

उक्त दोहे में अन्हाति शब्द आया है। इस शब्द में 'न' और 'ह' का संयोग है, तथापि इसके आदि का अक्षर जो 'अ' है, वह लघु ही माना जायगा, क्योंकि उसे गुरुत्व प्राप्त नहीं हुआ। इसी प्रकार और भी जानो।

मात्रा गुरु-लघु वर्ण को यह बिधि कियो बखान ;
अब आगे प्रत्यय करत छंद-हेतु निर्मान ।

❀　❀　❀

प्रत्यय

दोहा

जासें बहुबिधि छंद के भेद परें पहिचान ;
ताकों प्रत्यय कहत हैं कोबिद सुकबि सुजान ।
ताके षटबिध नाम हैं प्रथम लखो प्रस्तार ;
नष्टोद्दिष्ट पताक पुनि मेरु मर्कटी सार* ।

❀　❀　❀

मात्रिक प्रस्तार

दोहा

जितनी मात्रा के जिते होयँ भेद बिस्तार ;
ते सब रूप दिखाइए ताहि कहत प्रस्तार ।
यह मात्रा प्रस्तार के भेद द्विबिध कबि जोय ;
सम कल एक कहावहीं एक बिषम कल होय ।

अर्थात् मात्रिक प्रस्तार के दो भेद होते हैं, एक सममात्रिक, जैसे २, ४, ६, ८, १०, १२ और दूसरा बिषममात्रिक, जैसे १, ३, ५, ७, ९, ११ इसी प्रकार और भी जानो।

सम कल के प्रस्तार में लिखिए गुरु गुरु रूप ;
बिषम मत्त में प्रथम लघु शेष गुरू अनुरूप ।

सममात्रा के प्रस्तार में प्रथम सर्वगुरु के रूप लिखना चाहिए । गुरु का रूप है वक्र रेखा (ऽ)। जैसे किसी ने कहा कि आठ मात्रा का प्रस्तार करो, तो यह प्रस्तार

---

* कई लोग इससे अधिक संख्या मानते हैं। 'भानु' कवि ने अपने छंदप्रभाकर में ९ प्रत्यय माने हैं—१ प्रस्तार, २ सूची, ३ पाताल, ४ उद्दिष्ट, ५ नष्ट, ६ मेरु, ७ खंडमेरु, ८ पताका और ९ मर्कटी। (छंदप्रभाकर पृष्ठ ६)

सम कल का हुआ, अतएव इसका रूप प्रथम यों लिखा जायगा—ISSSS वक्र रेखा से यदि विषम कल का प्रस्तार करना हो, तो प्रथम एक लघु वर्ण का रूप अर्थात् सरल रेखा ऐसी (I) लिखो। पुनः शेष गुरुवर्ण का रूप लिखो। जैसे किसी ने कहा कि नौ मात्रा का प्रस्तार लिखो, तो यह प्रस्तार विषम कल का हुआ, अतएव इसका रूप यों लिखा जायगा—I SSSS

अब प्रस्तार बढ़ाने की रीति कहते हैं—

प्रथमहिं गुरु तर लघु धरौ फेर सुरूप समान ;
बचैं बाम गुरु लघु लिखौ यह प्रस्तार प्रमान।

अर्थात् जितनी मात्रा का प्रस्तार करना हो, उतनी ही मात्राओं का रूप प्रथम लिखो। फिर गुरु (S) मात्रा के नीचे एक लघु मात्रा (I) धरो, फिर आगे अर्थात् दाहिनी ओर जैसा गुरु-लघु का रूप ऊपर हो, वैसा ही नीचे लिख लो। शेष जो गुरु-लघु बचें, उससे बाईं ओर गुरु लिखो। यदि शेष लघु बचे, तो फिर लघु लिख दो। इसी क्रिया से वहाँ तक लिखते जाओ, जहाँ तक सर्व लघु न आ जायँ।

उदाहरण को कुछ प्रस्तार नीचे दिये जाते हैं—

मात्रिक प्रस्तार

मात्रिक विषम कल

प्रस्तार १ मात्रा का

पहिला भेद	I
	१

प्रस्तार ३ मात्रा का

पहिला भेद	I S
दूसरा भेद	S I
तीसरा भेद	III
	३

प्रस्तार ५ मात्रा का

पहिला भेद	I S S
दूसरा भेद	SIS
तीसरा भेद	IIIS
चौथा भेद	SSI
पाँचवाँ भेद	II S I
छठा भेद	I S II
सातवाँ भेद	S III
आठवाँ भेद	IIIII
	८

मात्रिक सम कल

प्रस्तार २ मात्रा का

पहिला भेद	S
दूसरा भेद	II
	२

प्रस्तार ४ मात्रा का

पहिला भेद	S S
दूसरा भेद	II S
तीसरा भेद	I S I
चौथा भेद	S II
पाँचवाँ भेद	IIII
	५

प्रस्तार से यह विदित हुआ कि एक मात्रा का एक ही भेद हुआ, और २ मात्रा के २ भेद, ३ मात्रा के ३ भेद, ४ मात्रा के ५ भेद, ५ मात्रा के ८ भेद हुए। इसी प्रकार और भी जानो।

❀ ❀ ❀

सूची

दोहा

सूची अंकन योग से बिना किए प्रस्तार ;
भेद बतावै छंद के देय सूचना सार ।
जेतीं मात्रा के जबै भेद जानिबौ चाहु ;
तेती लघु कन थाप सिर सूचो अंक जमाहु ।
एक धरौ पुनि दोय धर दो इक मिल धर तीन ;
तीन दोय मिल पांच धर यह बिधि आगे चीन ।
गुरु होवें तौ शीर्ष अरु पग तल दुहुँ बिधि साज ;
यह बिधि सूची-अंक-बिधि बरनत सब कबिराज ।
नष्ट और उद्दिष्ट में सूची देवै काम ;
उदाहरन में रूप कछु नीचें लिखत ललाम ।

छ मात्रा की सूची

१ २ ३ ५ ८ १३
। । । । । ।

नौ मात्रा की सूची

१ २ ३ ५ ८ १३ २१ ३४ ५५
। । । । । । । । ।

दोहा

सुगम रीति सूची लिखो तासें अर्थ न कौन ;
नष्ट और उद्दिष्ट-बिधि आगे लखहु प्रबीन ।

❀ ❀ ❀

मात्रिक नष्ट

दोहा

प्रस्न करै कल अमुक में अमुक भेद किहि रूप ;
उत्तर देवै क्रिया कर प्रत्यय नष्ट अनूप ।

❀ ❀ ❀

रीति

छप्पय

जिती कला की प्रस्न होय तेती लघु लिक्खहु ;
धर सूची के अंक अंत कौ अंक निरक्खहु ।
तामें कर भेदांक घटित जो बाकी पाओ ;
तामहिं जे-जे अंक सकैं घट तिनहिं घटाओ ।
जे घटें तिन्हें तिन्ह गुरु करौ आगे लघु रेखा हरौ ;
यहि भाँति क्रिया कर नष्ट की दै उत्तर आनँद भरौ ।

अर्थात् जितनी मात्रा का प्रश्न हो, उतनी ही मात्रा लघु रूप अर्थात् सरल रेखा में लिखो, फिर उन रेखाओं के शीर्षक पर सूची के अंक धरो । जो अंक अंत में आया हो, उसमें पूछे हुए भेद के अंक को घटा दो, जो शेष बचे, उसमे बाईं ओर सूची के अंको को घटाओ । जो-जो अंक घटे, उसकी रेखा को गुरु रूप कर दो, और उसके आगे की रेखा जो दक्षिण ओर को है, उसे मिटा दो । इस प्रकार से जो रूप बन जाय, वही प्रश्न का उत्तर होगा । जैसे किसी ने पूछा कि १० मात्रा के प्रस्तार मे सत्रहवें भेद का कैसा रूप होगा, तो प्रथम दस मात्रा की सरल रेखा खींचो, और उन पर सूची के अंक धरो । यथा—

१	२	३	५	८	१३	२१	३४	५५	८९
|	|	|	|	|	|	|	|	|	|
S	०	S	०		S	०		S	०

अब ध्यान-पूर्वक देखो कि इसका अंत्यांक ८९ है और प्रश्नांक १७ है । इस १७ को ८९ में घटा दो, शेष बचे ७२ । अब देखना है कि ७२ में से कौन-कौन संख्या घट सकती है । पहला अंक जो घट सकता है, वह ५५ है । अब ५५ के नीचे की लघु मात्रा को गुरु कर दो, और उसके दाहनी ओर जो ८९ के नीचे की लघु मात्रा है, उसे मिटा दो । अब ७२ मे से ५५ घट गए, शेष बचे १७ । अब १७ में से कौन-सा अंक घट सकता है, अर्थात् १३, तो इस १३ के नीचे की लघु मात्रा को गुरु कर दो, और उसके आगे जो २१ के नीचे की लघु मात्रा है, उसे मिटा दो । अब १७ में से १३ घट गए, शेष बचे ४ । इस ४ के अंक मे ३ को घटा दो, और ३ के नीचे की लघु मात्रा को गुरु कर दो, और उसके आगे जो ५ के नीचे की मात्रा है, उसे मिटा दो । अब ४ में से ३ घट गए शेष रहा १, तो १ में और कौन-सा अंक घट सकता है । १ मे १ ही घट सट सकता है, अतः १ के नीचे

की मात्रा को गुरु कर दो, और उसके आगे २ के नीचे की जो मात्रा है, उसे मिटा दो। अब उसका रूप ऐसा हो जायगा—

पहला रूप	। । । । । । । । । ।	यह ऽ ऽ । ऽ । ऽ शुद्ध रूप सिद्ध हुआ।
क्रिया का रूप	ऽ०ऽ० ऽ० ऽ०	इसी की १० मात्राओं के छंदों का
शुद्ध रूप	ऽ ऽ । ऽ । ऽ	१७वां भेद जानो, यही उत्तर हुआ।

❀ ❀ ❀

मात्रिक उद्दिष्ट

दोहा

रूप लिखै पूछै बहुरि कौन भेद यह होय;
उत्तर देय उदिष्ट सों समुझैं सब कबि लोय।

छप्पय

लिख्यौ भेद अवलोक अंक सूची के डारो;
लघु के केवल शीर्ष शीर्ष पग गुरु के धारो।
धारत सूचो अंक अंत को अंक बनाओ;
गुरु सिर अंकन जोड़ बहुर तिहि माँझ घटाओ।
कह कबि 'बिहार' जो सेस हो उत्तर सोई जानिए;
यह पिंगल-मत-सिद्धांत की रीति उदिष्ट बखानिए।

प्रश्नकर्ता ने पूछा कि ७ मात्राओं के छंदों में (ऽ । ऽ । ।) यह कौन-सा भेद है, तो प्रथम उक्त रीति से सूची के अंक स्थापित करो। यथा—

१	३	५	१३	२१
ऽ	।	ऽ	।	।
२		८		

अब अंत का अंक २१ है, इस २१ में बाईं ओर के गुरु के शीर्षांकों का योग कर अर्थात् १ और ५ के योग ६ को २१ में घटाया, तो शेष बचे १५। यही प्रश्न का उत्तर हुआ कि ७ मात्राओं के छंदों में यह १५वाँ भेद है। ध्यान रहे, कभी-कभी

अंत का अंक पगतल में भी आ जाता है। जब अंत्यांक पगतल में आवे, तब विद्यार्थियों को चाहिए कि उसी में से घटाने की क्रिया करें। यथा—

	१	२	५	८
नं० १	।	S	।	S
		३		१३

	१	३	८	२१
नं० २	S	S	S	S
	२	५	१३	३४

नं० १—यहाँ अंत्यांक १३ है, तो शीर्षांक ८ और २ के योग १० को अंत्यांक १३ में घटाया। शेष बचे ३। यह ६ मात्रा के प्रस्तार का तीसरा भेद है, यही उत्तर हुआ।

नं० २—इसका अंत्यांक ३४ है, उसमें गुरु के शीर्षांक २१—८—३—१ के योग ३३ को घटाया, शेष बचा १। यह ८ मात्रा के प्रस्तार का पहला भेद है, यही उत्तर हुआ।

❀ ❀ ❀

मात्रिक मेरु

दोहा

जेती मात्रा के जिते होयँ भेद प्रस्तार ;
जिते-जिते गुरु-लघु तिते रूप मेरु कह सार।

❀ ❀ ❀

मेरु की रीति

छप्पय

प्रथम लिखौ इक कोष्ठ, लिखौ नीचे दो दुहरे ;
दो तिहरे पुनि लिखौ, लिखौ दो चुहरे-चुहरे।
या बिधि लिखौ अभीष्ट प्रथम गृह में इक लिक्खव ;
पुनि दच्छिन के कोष्ठ एक एकहि लिख दिक्खव।
दिस बाम एक दो एक त्रै एक चार यह बिधि धरहु ;
गृह मध्य बक्र गति जोड़ सब भरहु मेरु यह बिधि करहु।

विद्यार्थियो के बोधार्थ १२ मात्रा का मेरु उदाहरणार्थ लिखा जाता है—

❀ ❀ ❀

१२ मात्रा का मेरु

एक मात्रा का रूप	१							१
दो ,, ,,	१	१						२
तीन ,, ,,	२	१						३
चार ,, ,,	१	३	१					५
पाँच ,, ,,	३	४	१					८
छ ,, ,,	१	६	५	१				१३
सात ,, ,,	४	१०	६	१				२१
आठ ,, ,,	१	१०	१५	७	१			३४
नौ ,, ,,	५	२०	२१	८	१			५५
दस ,, ,,	१	१५	३५	२८	९	१		८९
ग्यारह ,, ,,	६	३५	५६	३६	१०	१		१४४
बारह मात्रा का रूप	१	२१	७०	८४	४५	११	१	२३३
	SSSSSS	SSSSSII	SSSSIIII	SSSIIIIII	SSIIIIIIII	SIIIIIIIIII	IIIIIIIIIIII	

❀ ❀ ❀

मात्रिक पताका-लक्षण

दोहा

जेते छंदन में जिते गुरु-लघु मेरु लखाय ;
संख्या तिनकी भिन्न कर देत पताक बताय ।

❀ ❀ ❀

रीति

दोहा

एक रेख खैंचौ खड़ी पिंगल बोध बिचार;
तामें तेते गृह करौ कल्पित कल अनुसार।
नीचे से ऊपर तलक सूची अंक जमाव;
ऊपर से तीजौ भवन दच्छिन ओर बढ़ाव।
तीजें तीजें यही बिधि जाव बढ़ावत गेह;
तिनके भरिबे की क्रिया सीखौ सरल सनेह।
सूची ऊपर अंक में तीजौ अंक घटाव;
सेस बचे वह अंक कौं दच्छिन गृह पधराव।
पुनि ऊपर के अंक में चौथो अंक घटाव;
सेस बचे वह अंक कौं दच्छिन गृह पधराव।
इक लग सूची अंक सब येहि प्रकार घटाव;
सेस बचे तब अंक कौं दच्छिन गृह पधराव।
प्रथम पताका अंक सें तीजौ अंक घटाव;
पूरब क्रम की क्रिया कर द्वितिय पताका बनाव।
दुतिय पताका अंक से तीजौ अंक घटाव;
पूरब क्रम की क्रिया कर तृतिय पताक बनाव।
पंक्ति पताका श्रेणि में अंक जौन आ जाय;
सों पुनि फेर न दीजियौ, यही पताक सुभाय।
घटे अंक पंक्तिन सजौ ये ही मुख्य बिचार;
भूल गणित में लख परै लीजौ सुकबि सम्हार।

❀ ❀ ❀

यहाँ उदाहरणार्थ ६ मात्रा एवं ७ मात्रा की पताका देते हैं
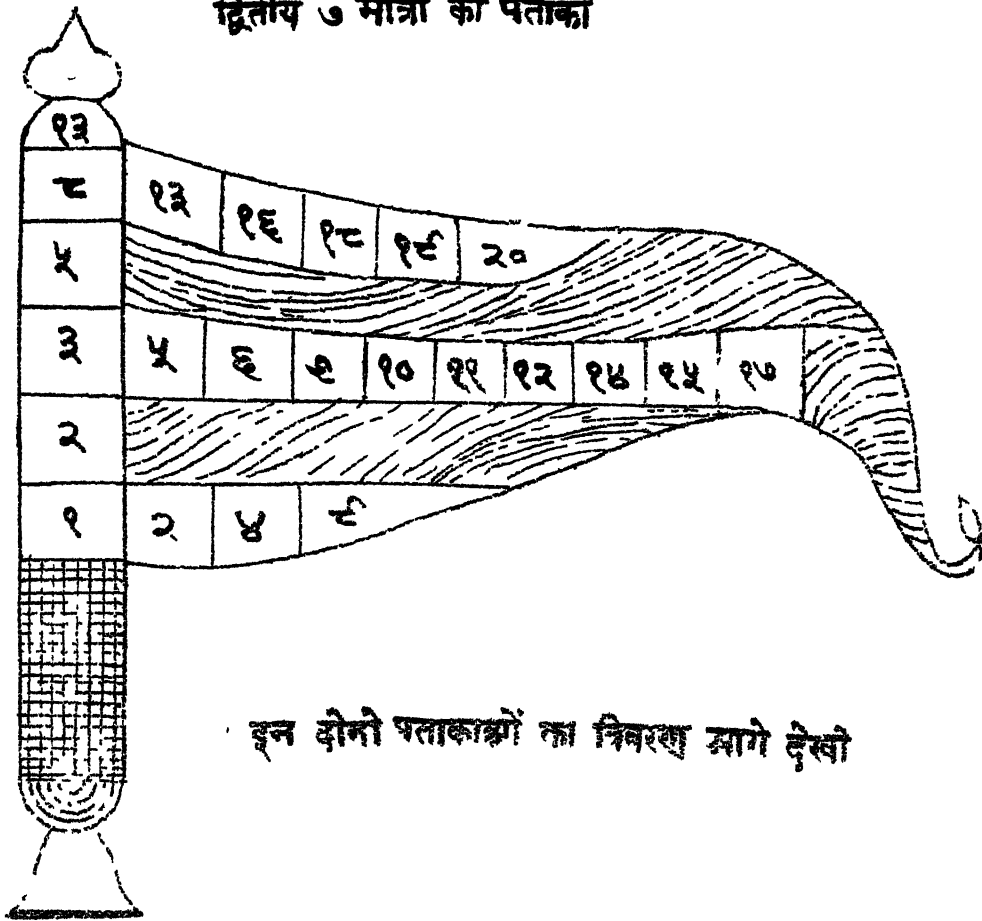
द्वितीय ७ मात्रा की पताका
१३
८ १३ १६ १८ १९ २०
५
३ ५ ६ ९ १० ११ १२ १४ १५ १७
२
१ २ ४ ७
इन दोनो पताकाओं का विवरण आगे देखो

यहाँ ६ मात्रा की पताका से यह ज्ञात हुआ कि ६ मात्राओं के छंदो मे १ छंद ऐसा होगा, जो सर्वलघु का होगा, अर्थात् १३वाँ भेद। और ५ छंद ऐसे होंगे, जिनमें ।।।। लघु और १ गुरु होगा, अर्थात् ५वाँ ८वाँ १०वाँ ११वाँ १२वाँ भेद; और ६ छंद ऐसे होंगे, जिनमें २ लघु और २ गुरु होंगे; अर्थात् २, ३, ४, ६, ७, ९वाँ भेद। और एक छंद ऐसा होगा, जो सर्वगुरु का होगा, अर्थात् पहला भेद।

❋ ❋ ❋

पुनः

यहाँ ७ मात्रा की पताका से यह जाना गया कि ७ मात्रा के संपूर्ण छंदो में १ छंद ऐसा होगा, जो सर्वलघु का होगा, अर्थात २१वाँ भेद। और ६ छंद ऐसे होंगे, जिनमें ५ लघु और १ गुरु होगा; अर्थात ८वाँ १३वाँ १६वाँ १८वाँ १९वाँ २०वाँ भेद। और १० छंद ऐसे होगे, जिनमें ३ लघु और २ गुरु होंगे, अर्थात् ३, ५, ६, ७, १०, ११, १२, १४, १५, १७ वाँ भेद। और ४ छंद ऐसे होंगे, १ लघु और ३ गुरु होंगे, अर्थात् १, २, ४, ९वाँ भेद। इसी प्रकार और भी जानो।

❋ ❋ ❋

मात्रिक मर्कटी लक्षण

दोहा

मात्रा के प्रस्तार में जे लघु गुरु कल वर्ण;
सबकी संख्या लख परै ताहि मर्कटी वर्ण।

❋ ❋ ❋

रीति

दोहा

आड़ी पंक्तिन से प्रथम कोठा सात सजाव;
खड़े रचौ खाने उते जेती कला बनाव।
पहिले खानन एक, दो, तीन आदि लिख लेव;
दूजे खानन पंक्ति में सूची अंकरु देव।

तीजे गृह, गृह प्रथम के अरु दूजे गृह अंक ;
लिखौ गुणनफल दुहुन को पंक्ति भरौ निरसंक।
चौथे गृह लिख सून्य पुनि आगे इक पुनि दोय ;
पुनि आगे के घरन की क्रिया भाँति यह होय।
वाके पिछले कोष्ठ कौ अंक दून कर देव ;
वाही के सिर अंक में घटा घटा लिख लेव।
यही रीति से सकल गृह चौथे के लिख लेव ;
चौ गृह अंकन सून्य तज पंचम गृह भर देव।
पंचम गृह के अंत कौ गृह इहि क्रम से धार ;
चौथे गृह के अंत की संख्या दुगुन निकार।
अंतिम तीजे कोष्ठ की संख्या माँहिं घटाव ;
सेस बचै तिहि अंक कों सो घर बीच सजाव।
छठयँ कोष्ठ में चतुर अरु पंच घरन के अंक ;
जोड़ जोड़कर सज्जिए षष्ठम पंक्ति निसंक।
सातयँ गृह में तृतिय के अर्ध अंक भर देव ;
प्रथम कोष्ठ में सून्य लिख, सज्ज मर्क्कटी लेव।

उदाहरणार्थ ९ मात्रा की मर्क्कटी लिखते हैं—

१	२	३	४	५	६	७	८	९	कला
१	२	३	५	८	१३	२१	३४	५५	संख्या
१	४	९	२०	४०	७८	१४७	२७२	४९५	सर्वकला
०	१	२	५	१०	२०	३८	७१	१३०	गुरु
१	२	५	१०	२०	३८	७१	१३०	२३५	लघु
१	३	७	१५	३०	५८	१०९	२०१	३६५	वर्ण
०	२	४½	१०	२०	३९	७३½	१३६	२४७½	पिंड

उदाहरणार्थ १२ मात्रा की मर्क्कटी लिखते हैं—

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	मात्रा
१	२	३	५	८	१३	२१	३४	५५	८९	१४४	२३३	संपूर्ण भेद
१	४	९	२०	४०	७८	१४७	२७२	४९५	८९०	१५८४	२७९६	सर्वमात्रा
०	१	२	५	१०	२०	३८	७१	१३०	२३५	४२०	७४४	सर्वगुरु
१	२	५	१०	२०	३८	७१	१३०	२३५	४२०	७४४	१३०८	सर्वलघु
१	३	७	१५	३०	५८	१०९	२०१	३६५	६५५	११६४	२०४२	सर्ववर्ण
०	२	४½	१०	२०	३९	७३½	१३६	२४७½	४४५	७९२	१३९८	पिंड

९ मात्रा की मर्क्कटी का विवरण

इस ९ मात्रा की मर्क्कटी से यह विदित हुआ कि ९ मात्राओं के संपूर्ण छंदों के भेद ५५ हैं, और सर्वकला ४९५ है, उनमें से १३० गुरु और २३५ लघु हैं। संपूर्ण वर्ण ३६५ हैं, और सर्वकला के आधे २४७½ पिंड हैं।

इसी प्रकार और भी जानो। यहाँ षट् प्रत्ययों की गणित रीति सरल प्रयोग कर छंदबद्ध ही कही गई है, इसी सरलता के कारण कहीं-कहीं वाचनिका नहीं लिखी गई।

❀ ❀ ❀

१२ मात्रा की मर्क्कटी का विवरण

इस १२ मात्रा की मर्क्कटी से यह प्रकट हुआ कि १२ मात्राओं के संपूर्ण छंदों के भेद २३३ हैं, और सर्वकला मात्रा २७९६ हैं। उनमें से ७४४ गुरु हैं, और १३०८ लघु हैं, और संपूर्ण वर्ण २०४२ हैं, और १३९८ पिंड हैं। इसी प्रकार और भी जानो। अब आगे वर्णिक प्रत्ययों का वर्णन करते हैं।

❀ ❀ ❀

वर्ण-प्रत्यय

दोहा

जैसहि मात्रिक छंद में षट प्रत्यय कौ रूप;
तैसहि वर्ण प्रकर्ण में जानहु सुकवि सरूप।

❀ ❀ ❀

प्रस्तार-लक्षण

दोहा

जितने बर्णन के जिते भेद रूप बिस्तार ;
ते सब जासे' लख परैं, ताहि कहत प्रस्तार ।

❀ ❀ ❀

रीति

दोहा

जितने बर्णन कौ जहाँ करन चहौ प्रस्तार ;
तितने के गुरु रूप लिख प्रथमहिं धरौ बिचार ।
प्रथमहिं गुरुतर लघु धरौ आगे समताधार ;
बाएँ गुरु पूरित करौ, सब लघु लौं प्रस्तार ।

जितने वर्णों का प्रस्तार करना हो, उतने ही वर्ण प्रथम गुरु रूप से लिखो। फिर गुरु के नीचे एक लघु रूप लिखो। फिर आगे ऊपर के रूप-सदृश रूप लिखो। पुनः जो वर्ण शेष बचे, उसे वाम ओर को वर्ण-पूर्ति के लिये गुरु रूप से लिखो। इसी प्रकार प्रस्तार वहाँ तक बढ़ाते जाओ, जहाँ तक सर्वलघु न आ जावें। जब सर्व लघु आ जावें, तब समझो कि अब प्रस्तार-भेद पूरे हुए। यहाँ नीचे कुछ वर्ण-प्रस्तार उदाहरणार्थ देते हैं—

(१) वर्ण का प्रस्तार

रूप	भेद
ऽ	१
।	२

एक वर्ण के २ भेद समझो, इससे अधिक नहीं।

(२) वर्णों का प्रस्तार

रूप	भेद
ऽ ऽ	१
। ऽ	२
ऽ ।	३
। ।	४

दो वर्ण के ४ भेद जानो, इससे अधिक नहीं।

(३) वर्ण का प्रस्तार

रूप	भेद
ऽ ऽ ऽ	१
। ऽ ऽ	२
ऽ । ऽ	३
। । ऽ	४
ऽ ऽ ।	५
। ऽ ।	६
ऽ । ।	७
। । ।	८

तीन वर्ण के ८ भेद हुए। गणागण इसी प्रस्तार से रचे गए।

(४) वर्णों का प्रस्तार

रूप	भेद
ऽ ऽ ऽ ऽ	१
। ऽ ऽ ऽ	२
ऽ । ऽ ऽ	३
। । ऽ ऽ	४
ऽ ऽ । ऽ	५
। ऽ । ऽ	६
ऽ । । ऽ	७
। । । ऽ	८
ऽ ऽ ऽ ।	९
। ऽ ऽ ।	१०
ऽ । ऽ ।	११
। । ऽ ।	१२
ऽ ऽ । ।	१३
। ऽ । ।	१४
ऽ । । ।	१५
। । । ।	१६

इसके कुल भेद १६ होते हैं।

(५) वर्णों का प्रस्तार

रूप	भेद
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ	१
। ऽ ऽ ऽ ऽ	२
ऽ । ऽ ऽ ऽ	३
। । ऽ ऽ ऽ	४
ऽ ऽ । ऽ ऽ	५
। ऽ । ऽ ऽ	६
ऽ । । ऽ ऽ	७
। । । ऽ ऽ	८
ऽ ऽ ऽ । ऽ	९
। ऽ ऽ । ऽ	१०
ऽ । ऽ । ऽ	११
। । ऽ । ऽ	१२
ऽ ऽ । । ऽ	१३
। ऽ । । ऽ	१४
ऽ । । । ऽ	१५
। । । । ऽ	१६
ऽ ऽ ऽ ऽ ।	१७
। ऽ ऽ ऽ ।	१८
ऽ । ऽ ऽ ।	१९
। । ऽ ऽ ।	२०

रूप	भेद
ऽ ऽ । ऽ ।	२१
। ऽ । ऽ ।	२२
ऽ । । ऽ ।	२३
। । । ऽ ।	२४
ऽ ऽ ऽ । ।	२५
। ऽ ऽ । ।	२६
ऽ । ऽ । ।	२७
। । ऽ । ।	२८
ऽ ऽ । । ।	२९
। ऽ । । ।	३०
ऽ । । । ।	३१
। । । । ।	३२

३२ से अधिक भेद नहीं होते।

यहाँ एक से लेकर पाँच वर्ण तक के प्रस्तार द्वारा यह प्रकट हुआ कि एक वर्ण के दो भेद, दो के चार, तीन के आठ, चार के सोलह, और पाँच के बत्तीस भेद होते हैं, अर्थात् यह समझना चाहिए कि जितने वर्णों के प्रस्तार के जितने भेद होते हैं, उसके उतने ही छंद बन सकते हैं।

❀ ❀ ❀

वर्ण-सूची

दोहा

सूची अंकन जोग से बिना किए प्रस्तार ;
भेद बतावै छंद के देय सूचना - सार ।
जितने बर्णन के जबै भेद जानिबौ चाव ;
तितने ही गुरु रूप कर सूची अंक जमाव ।

प्रथम धरौ दो-चार पुनि आठरु षोडस लाव ;
पुनि बत्तिस, चौंसठ इबिधि दूनैं दून जमाव।
बर्ण अंत में जेतिनों संख्या अंक लखाय ;
उतने भेद पिछानियौ सुकबिन के समुदाय।

❀ ❀ ❀

उदाहरण

४ वर्ण की सूची

२	४	८	१६
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

यहाँ सूची का अंत्यांक १६ है, इससे यह बिना प्रस्तार के ही ज्ञात हो गया कि ४ वर्णं के प्रस्तार के १६ भेद होते हैं।

५ वर्ण की सूची

२	४	८	१६	३२
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

यहाँ भी सूची का अंत्यांक ३२ है, इससे विदित हुआ कि ५ वर्ण के प्रस्तार के ३२ भेद होते हैं। इसी प्रकार और भी जानो।

अब आगे उद्दिष्ट लिखते हैं। इसकी क्रिया मे जो अंक धरे जाते हैं, उन्हे उद्दिष्टांक कहते हैं, और उन्हीं को अर्ध-सूची के अंक कहते हैं।

❀ ❀ ❀

वर्ण-उद्दिष्ट-लक्षण

दोहा

अमुक बर्ण कौ रूप लिख पूछन चाहै भेद ;
सो उत्तर उद्दिष्ट है, जानत बुद्धि अभेद।

❀ ❀ ❀

रीति

दोहा

बर्ण रूप लिखकर कोऊ पूछै भेद निसंक ;
एक दोय चौ आठ इमि धर सूची अधअंक।

लघु रेखा के शीर्ष पर जो-जो अंक लखाय ;
तिन्हैं जोड़ पुनि जोड़ इक दीजे भेद बताय ।

❀ ❀ ❀

उदाहरण

१ २ ४ ८
जैसे किसी ने पूछा कि चार वर्णों के प्रस्तार में । । ऽ ऽ यह कौन-सा भेद है ? इस पर अर्ध-सूची के अंक स्थापित करो—इस प्रकार कि प्रथम लघु रेखा पर १, फिर २—४—८ धरो, जैसे ऊपर रख दिए हैं । अब लघु के शीर्षांक पर १ और २ के जोड़ में १ और मिला दो, तो ४ हुए अर्थात् यह चौथा भेद है । यही प्रश्न का उत्तर हुआ । इसी प्रकार और भी जानो ।

❀ ❀ ❀

वर्ण-नष्ट-लक्षण

दोहा

बिना रूप लिख पूछबै कोउ भेद कौ रूप ;
ताके उत्तर कौं कहत वर्ण-नष्ट कवि भूप ।

❀ ❀ ❀

रीति

दोहा

पूछै जितने वर्ण कौ जौन भेद कौ रूप ;
तेते वर्णन की तहाँ धर लघु रेख सुरूप ।
अधि-सूची के अंक पुनि पूरब क्रम से देय ;
अंत अंक जो आवही, ताहि दून कर लेय ।

तामें पूछे भेद के अंकहि देय घटाय ;
सेस बचै ताकी क्रिया इहि बिधि फेर लगाय।
सेस अंक बन सकत हो जिन-जिन अंकन जोग ;
तिन्ह लघु रेखा गुरु करै उत्तर देय सुजोग।

किसी ने प्रश्न किया कि ४ वर्ण के प्रस्तार में चौथे भेद का रूप किस प्रकार का होता है, तो ४ लघु रेखा खींचकर उनके शीर्ष पर पूर्वोक्त उद्दिष्ट की

१ २ ४ ८

भाँति अध-सूची के अंक स्थापित करो। यथा। । । । अब समझो कि इसका अंत्यांक ८ है, तो इसको दूना करो। दूना करने पर १६ का अंक हुआ। अब प्रच्छक का जो प्रश्नांक ४ है (चौथा भेद), वह १६ में घटाओ। शेष १२ बचे। यह १२ का अंक यहाँ ४-८ के ही योग से बनता है। अतएव ४-८ के नीचे की जो लघु रेखाएँ हैं, उन्हें गुरु कर दो। तब उसका ।।ऽऽ यह रूप हो जायगा ; यही चौथे भेद का रूप है। यही उत्तर हुआ। इसी प्रकार और भी समझो।

❀ ❀ ❀

वर्ण-मेरु

दोहा

बर्ण-भेद जिनके जिते, जिनके जितने रूप ;
गुरु लघु तौं जिनमें जिते, बोलहि मेरु सुरूप।

❀ ❀ ❀

रीति

छप्पय

प्रथम लिखो दो कोष्ठ, लिखो पुनि तीन, चार पुनि ;
जेते बर्णन कर चहौ, ते पंक्ति धरौ गुनि।
आदि अंत के कोष्ठ माँहि इक-इक लिखिए कर ;
दोइ तरफ के घरन दोय त्रिन चार आदि धर।
पुनि जुग-जुग गृह के अंक कों जोड़, सेस गृह सारिए ;
कह कबि 'बिहार' यह रीति पढ़ बर्ण-सुमेरु सम्हारिए।

❀ ❀ ❀

उदाहरण

उदाहरण के लिये यहाँ १० वर्ण तक का मेरु लिखते हैं—
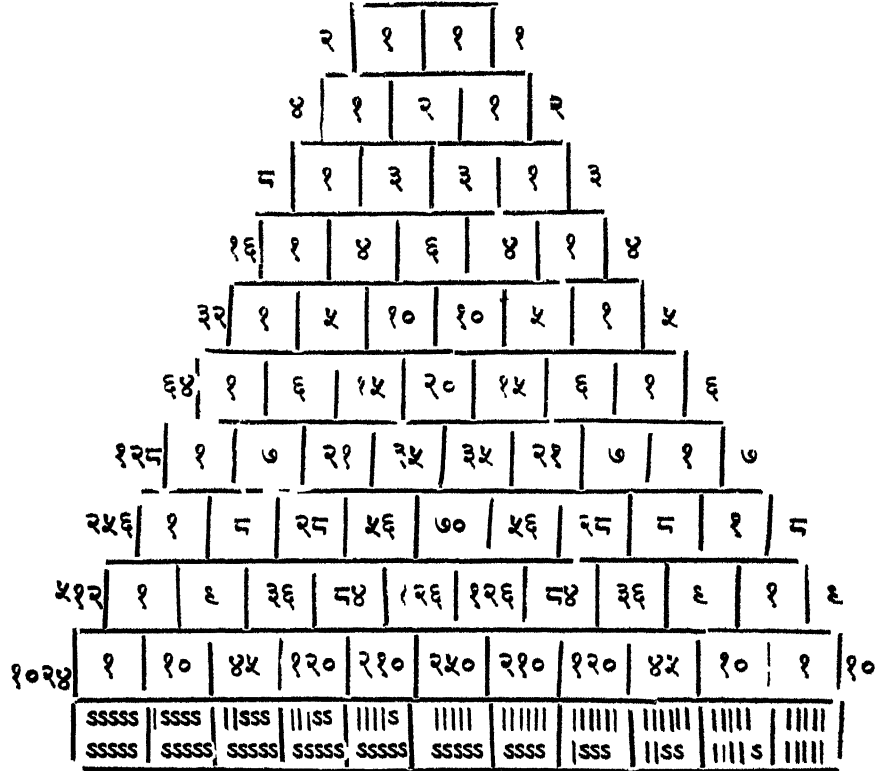
इस वर्ण-मेरु से यह विदित हुआ कि दस वर्णों के छंदों में से एक भेद ऐसा है, जिसमे सर्व गुरु है। १० भेद ऐसे होंगे, जिनमें १ लघु और ९ गुरु होंगे। ४५ छंद ऐसे होंगे, जिनमे २ लघु और ८ गुरु होगे। १२० छंद ऐसे होंगे, जिनमें ३ लघु और ७ गुरु होंगे, और २१० छंद ऐसे होंगे, जिनमें ४ लघु और ६ गुरु होंगे। २५२ छंद ऐसे होंगे, जिनमे ५ लघु और ५ गुरु होंगे। २१० छंद ऐसे होंगे, जिनमें ६ लघु और ४ गुरु होंगे, और १२० छंद ऐसे होंगे, जिनमें ७ लघु और ३ गुरु होंगे, और ४५ छंद ऐसे होंगे, जिनमें ८ लघु और २ गुरु होंगे, और १० छंद ऐसे होंगे, जिनमें ९ लघु और १ गुरु होगा, और एक छंद ऐसा होगा, जिसमें सर्व लघु होंगे। इसी प्रकार और भी जानो।

❀ ❀ ❀

वर्ण-पताका-लक्षण

दोहा

मेरु बतावत छंद के गुरु लघु भेद तमाम ;
भिन्न-भिन्न बतरायबौ करत पताका काम ।

❀ ❀ ❀

रीति

दोहा

प्रथम रेख खंच खड़ी घर सिरजौ निरसंक ;
तामें तर सें सिखर लग थापौ सूची अंक ।
ऊपर गृह तज दुतिय सें दिस दच्छिन को धार ;
प्रथम पताका खेंचियौ मेरु - भेद - अनुसार ।
अंतिम सूची अंक है तामें तीसर अंक ;
घटा देव बाकी बचै भरौ पताक निसंक ।
सूची अंक प्रकार यह इक लग देव घटाय ;
सेस बचै दच्छिन तरफ भरौ पताक बनाय ।
एक पताका जब भरै, दूजी फेर बढ़ाव ;
सूची दूसर अंक में तीसर अंक घटाव ।
इहि बिधि इक के अंक लग अंक घटावत जाव ;
फेर पताका दूसरी पूरब रीति बढ़ाव ।
याही क्रम से दूसरी तीजी चौथी जान ;
जिती पताका चाहिए, समझ करौ निर्मान ।
ध्यान राखियौ अंक जो एक बेर लिख जाय ;
दूजें फेर न दीजियो, यही पताक सुभाय ।

❀ ❀ ❀

उदाहरणार्थ यहाँ ६ वर्णों की पताका देते हैं

यहाँ षट्वर्णों की पताका

से यह विदित हुआ कि षट्वर्णों के छंद जिनके ६४ भेद हैं, उनमें १ छंद ऐसा होगा, जो सर्व लघु का होगा अर्थात् ६४वाँ भेद। ३२वाँ, ४८वाँ, ५६वाँ, ६०वाँ ६२वाँ, ६३वाँ, ये ६ छंद ऐसे होंगे, जिनमें ५ लघु और १ गुरु होंगे। १६वाँ, २४वाँ, २८वाँ, ३०वाँ, ३१वाँ, ४०वाँ, ४४वाँ, ४६वाँ, ४७वाँ, ५२, ५४, ५५, ५८, ५९, ६१वाँ ये १५ छंद ऐसे होंगे, जिनमें ४ लघु और २ गुरु होंगे। ८, १२, १४, १५, २०, २२, २३, २६, २७, २९, ३६, ३८, ३९, ४२, ४३, ४५, ५०, ५१, ५३, ५७वाँ ये २० छंद ऐसे होंगे, जिनमें ३ लघु और ३ गुरु होंगे। ४, ६, ७, १०, ११, १३, १८, १९, २१, २५, ३४, ३५, ३७, ४१, ४९वाँ ये १५ छंद ऐसे होंगे, जिनमें २ लघु और ४ गुरु होंगे। २, ३, ५, ९, १७, ३३वाँ ये ६ छंद ऐसे होंगे, जिनमे १ लघु और ५ गुरु होंगे। और १ अर्थात् पहला भेद ऐसा होगा, जो सर्व गुरु का होगा। इसी प्रकार और भी जानो।

वर्ण-मर्कटी-लक्षण

दोहा

संख्या बर्णिक छंद की गुरु लघु आदि प्रबोध ;
बर्ण पिंड गुरु लघु कला देत मर्कटी बोध।

❀ ❀ ❀

रीति

दोहा

सप्त कोष्ठ नीचें तरफ लिखौ मक्कटी ग्यान ;
लंबित गृह उतनें रचौ जितौ चरन परमान।
लंबित गृह बीचन भरौ, एक दोय अरु तीन ;
चार पाँच षट आदि लग, जस चहु निर्मित कीन।
पुनि दूजो पंक्ती भरौ, बर्ण सूचिका अंक ;
तीजी पंक्ती में भरौ, दूजी के अध अंक।
पहिली दूजी कोष्ठ के अंक गुनित कर लेव ;
होय गुनन-फल पंक्ति सो चौथी में भर देव।
पंचम पंक्ती में भरौ चौथी के अध अंक ;
चतुर पंच कौं जोंड़कर छठवीं भरौ निसंक।
सप्तम पंक्ती में भरौ षट के आए अंक ;
कबि 'बिहार' इहि बिधि लिखौ बर्ण-मक्कटी हंक।
प्रथम पंक्ति अंत्यांक सो संख्या बर्ण लखाय ;
दूजी कौ अंत्यांक सो छंद-भेद दरसाय।
तीजी कौ अंत्यांक सो गुर्वादिक कह देत ;
चौथी के अंत्यांक सें सर्ब बर्ण लख लेत।

पंचम के अंत्यांक से सर्व वर्ण लो जान ;
छठईं पंक्ति अंत्यांक से होत कलन कौ ग्यान ।
सप्त पंक्ति अंत्यांक से होत पिंड कौ बोध ;
धन्य मर्क्कटी देत यह पिंगल बोध सुबोध ।

उदाहरण में ८ वर्ण की मर्क्कटी लिखते हैं—

१	२	३	४	५	६	७	८	वर्ण
२	४	८	१६	३२	६४	१२८	२५६	छंद-संख्या
१	२	४	८	१६	३२	६४	१२८	गुर्वादि गुर्वंत लघ्वादि लघ्वंत
२	८	२४	६४	१६०	३८४	८९६	२०४८	सर्ववर्ण
१	४	१२	३२	८०	१९२	४४८	१०२४	गुरु-लघु
३	१२	३६	९६	२४०	५७६	१३४४	३०७२	सर्वकला
$१\frac{१}{२}$	६	१८	४८	१२०	२८८	६७२	१५३६	पिंड

उदाहरणार्थ १० वर्ण की मर्क्कटी लिखते हैं—

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	वर्ण
२	४	५	१६	३२	६४	१२८	२५६	५१२	१०२४	छंद-संख्या
१	२	४	८	१६	३२	६४	१२८	२५६	५१२	गुर्वादि गुर्वंत लघ्वादि लघ्वंत
२	८	२४	६४	१६०	३८४	८९६	२०४८	४६०८	१०२४०	सर्ववर्ण
१	४	१२	३२	८०	१९२	४४८	१०२४	२३०४	५१२०	गुरु-लघु
३	१२	३६	९६	२४०	५७६	१३४४	३०७२	६९१२	१५३६०	सर्वकला
$१\frac{१}{२}$	६	१८	४८	१२०	२८८	६७२	१५३६	३४५६	७६८०	पिंड

८ वर्ण की मर्क्कटी से यह विदित हुआ कि ८ वर्णों के छंदों की संख्या कुल २५६ है। १२८ छंद ऐसे हैं, जिनके आदि में गुरु है। १२८ छंद ऐसे हैं, जिनके अंत में गुरु है। १२८ छंद ऐसे हैं, जिनके आदि मे लघु है। १२८ छंद ऐसे है, जिनके अंत में लघु है। संपूर्ण छंदो में कुल वर्ण २०४८ हैं। सर्व छंदो में १०२४ गुरु हैं, और १०२४ लघु हैं। ३०७२ कला हैं, और ५३६ पिंड है (एक पिंड द्विकल का होता है)।

द्वितीय मर्कटी की व्याख्या

१० वर्ण की मर्क्कटी से यह ज्ञात हुआ कि दस वर्णों की संपूर्ण छंद-संख्या १०२४ है। ५१२ छंद ऐसे है, जो गुर्वादि हैं, और उतने ही गुर्वंत हैं, और उतने ही लघ्वादि है, और उतने ही लघ्वंत हैं। सपूर्ण छंदों मे संपूर्ण वर्ण १०२४० हैं। संपूर्ण छंदों मे ५१२० गुरु हैं और ५१२० ही लघु। संपूर्ण मात्राएँ १५३६० हैं और ७६८० पिंड।

भाषा-छंद-ग्रथो मे प्रत्ययों का वर्णन कई भेद बढ़ाकर लिखा गया है, किंतु यहाँ पूर्व-प्रथानुसार षट् प्रत्ययों का ही निरूपण किया है।

रूप काव्य साहित्य कौ षट प्रत्यय कौ अंग;

भई सिंधु - साहित्य की पूरन द्वितिय तरंग।

स्वस्ति श्रीमन्महाराजाधिराज काशीश्वर अहनिवार पंचम बिंध्येलवंशावतंस श्रीमत्सवाई महाराजा साहब भारतधर्मेंदु सर सावंतसिंहजू देव बहादुर के० सी० आई० ई० बिजावरनरेशस्य कृपापात्र ब्रह्मभट्ट-वंशोद्भव कविभूषण, कविराज पं० बिहारीलालविरचिते साहित्यसागरे साहित्य-काव्य-कारणादि षट्प्रत्यय-प्रकरणवर्णनो नाम द्वितीयोस्तरंगः।

* तृतीय तरंग *

छंद-वर्णन

लौकिक

७ मात्राओं के छंद—भेद २१

(१) सुगती

लक्षण—मुनि कल गती ; छंद सुगती ।

टीका—सुगती छंद के प्रति चरण मे ७ मात्राएँ होती हैं। अंत में गुरु अवश्य होता है। इसी को सुभ गति भी कहते हैं ॥ १ ॥

उदाहरण

हरि हरि भजौ; सब भ्रम तजौ ।
यहि सुमति है; यहि सुगति है ।

वासव

८ मात्राओं के छंद—भेद ३४

(१) छवि

लक्षण—वसु कल लसंत; छवि जगन अंत ।
टीका—इस छंद में ८ मात्राएँ होती हैं। अंत में जगण होता है।

उदाहरण

पिय तजहु गैल ; छवि छंद छैल ।
जिन करहु रार ; मुहि भइ अबार ।

आँक

९ मात्राओं के छंद—भेद ५५

(१) गंग

लक्षण—नव गंग मत्ता ।

उदाहरण

धर मुकुट सिर कर चोप; कस पीत पट कटि कोप।
जदुबंस-मनि रन - धीर; कूदौ कलिंदी - नीर।

(भागवत)

१३ मात्राओं के छंद—भेद ३७७

(१) उल्लाला

लक्षण—तेरह कल पर ध्वनि जँचौ; उल्लाला छंदह रचौ।

टीका—इस उल्लाला-नामक छंद में १३ मात्राएँ होती हैं। गुरु-लघु का नियम विशेष नहीं है। ध्वनि जँचौ अर्थात् लय की जाँच ठीक कर लो।

उदाहरण

पर-हित-साधन कीजिए; जग - जीवन-जस लीजिए।
संत सुरन सिर नाइए; नंद - नँदन-गुन गाइए।

मानव

१४ मात्राओं के छंद—भेद ६१०

(१) सखी

लक्षण—कल चौदा मय अभिलाखौ; तिहि सखी छंद गुन भाखौ।

टीका—इस सखी छंद में १४ मात्राएँ होती हैं। अंत में मगण अथवा यगण आना आवश्यक है।

उदाहरण

यह खेल समझ सब झूँटौ; चल बृंदाबन सुख लूटौ।
जग के सब काम बिहाई; दिन-रैंन भजौ जदुराई।

(२) सुलक्षण

लक्षण—सुलछन सात सात गलंत।

टीका—७-७ मात्रा के विश्राम से सुलक्षण छंद होता है। इसके अंत में गुरु-लघु अवश्य होता है।

उदाहरण

जग में काम कछु कर लेव; हिय भर हर्ष हरिजन सेव।

(३) व्रजमोहन ❀

लक्षण—मुनि-मुनि मत्त अंतहु नगण।

टीका—यह ७-७ के विश्राम से व्रजमोहन छंद होता है। अंत में नगण (।।।) अवश्य आना चाहिए।

उदाहरण

अब तौ लगी प्रभु सें लगन; मेरौ रह्यौ मन ह्वै मगन।

तैथिक

१५ मात्राओं के छंद—भेद ९८७

(१) चौबोला

लक्षण—आठ सात कल पंद्रह सचौ; अंतहु लग चौबोला रचौ।

टीका—इस चौबोला छंद मे ८-७ के विश्राम से १५ मात्राएँ होती हैं। अंत में लग अर्थात् लघु-गुरु आना चाहिए।

उदाहरण

धर्म-पंथ पर दृढ़ ह्वै चलौ; ईश्वर तुम्हरौ करिहै भलौ।
जो तुम जीवन कौ फल चहौ, तौ मेरी यह शिक्षा गहौ।

(२) गोपी

लक्षण—आदि में त्रिकल गोपि गुरु अंत।

टीका—इसके आदि में त्रिकल तीन मात्रा का शब्द रखकर अंत में गुरु का प्रयोग करे।

उदाहरण

आज मन मेरौ मुदित भयौ; नयन भर प्रभु को देख लयौ।

(३) चौपई

लक्षण—गुरु लघु अंत पंच दस मत्त; चौपई नाम जयकरी सत्त।

टीका—इस चौपई अथवा जयकरी छंद में १५ मात्राएँ होती हैं। अंत में गुरु-लघु होते हैं।

उदाहरण

पर-हित-सम नहिं साधन और; कृष्ण-चरन-सम और न ठौर।
सत्य बचन-सम तप नहिं आन; जे साधें ते परम सुजान।

❀ इस छंद का नाम 'भानु' ने छंदप्रभाकर में 'मनमोहन' दिया है।—संपादक

संस्कारी

१६ मात्राओं के छंद—भेद १५९७

(१) पद्धरी

लक्षण—पद्धरि सुमत्त सज अष्ट-अष्ट।

टीका—यह छंद १६ मात्रा का होता है। विश्राम आठ-आठ मात्रा के पश्चात् होता है। यह अंत में नगन-सहित होना चाहिए।

उदाहरण

निस-दिवस भजहु नँद-नंद-नाम ; हिय धरहु ध्यान यह अष्टजाम।
श्रीकृष्ण कहैं कटिहैं कलेस ; श्रीकृष्ण - कृष्ण कहिए हमेस।

(२) शृंगार

लक्षण—आदि में त्रिकल द्विकल गल अंत।

टीका—सुगम।

उदाहरण

लखौ री नटवर नंद - कुमार ;
जमुन - तट रोक रह्यो ब्रज - नार।

(३) मात्रासमक

लक्षण—खोड़स कल गुरु अंतहि देई; मात्रासमक भेद बहुतेई।
तामें मत्तसमक यह सोई; नवम मत्त जाकी लघु होई।

टीका—सुगम।

उदाहरण

सत्य नियम-सम और न नेमा ; निछल प्रेम-सम और न प्रेमा।
मधुर मानसिक-सदस न पूजा ; राम-नाम-सम भजन न दूजा।

(४) चौपाई

लक्षण—सोरह कल जत अंत न दीजे।

टीका—इस छंद में सोलह मात्रा हों, अंत में जगण व तगण न पड़ें। अभिप्राय यह कि अंत में गुरु-लघु न पड़ें, और एक लघु कदापि न पड़े, एक से अधिक लघु अवश्य हो सकते हैं।

उदाहरण

काम क्रोध मद मोह बिधाना ; तृष्णा लोभ दंभ अभिमाना ।
जब लग यह बिकार नहिं जावैं ; तब लग राम हिए नहिं आवैं ।

सूचना—उक्त चौपाई छंद की लय पर सोलह मात्रा के छंदों में कई छंद ऐसे हैं कि उनके मात्रिक क्रम छंदशास्त्रानुसार यद्यपि भिन्न-भिन्न हैं, परंतु उनका पठन अर्थात् ध्वनि उनकी चौपाई छंद से मिलती-जुलती रहती है। उनके नाम ये हैं—

१	२	३	४	५	६	७	८
मत्तसमक	विश्लोक	चित्रा	वनवासिका	अरिल्ल	डिल्ला	उपचित्रा	पज्झटिका

इत्यादि। इनके विशेष लक्षण तथा उदाहरण भानुकृत छंदप्रभाकर में बतलाए गए हैं।

(५) पदपादाकुलक

लक्षण—पदपादाकुलक द्विकल आदौ।

टीका—यह १६ मात्रा का पादाकुलक छंद है। इसके आदि में द्विकल अनिवार्य है।

उदाहरण

सिय राम भजौ मन चित लाई ; यह औसर कब पैहौ भाई !

महासंस्कारी

१७ मात्राओं के छंद

(१) राम

लक्षण—निधि बसु कला रच राम यचंते।

टीका—इस छंद में ९-८ के विश्राम से १७ मात्राएँ होती हैं। यचंते अर्थात् अंत में यगण होता है। इसके पढ़ने में कर्ण-माधुर्य नहीं है। इसका उदाहरण नहीं दिया। विद्यार्थी लक्षण ही में उदाहरण समझ लें।

पौराणिक

१८ मात्राओं के छंद—भेद ४१८१

(१) शक्ती

लक्षण—अठारह कला अंत शक्ती सरत्न।

टीका—यह अठारह मात्रा का छंद है। इसके अंत में सगण या रगण अथवा नगण अवश्य आना चाहिये।

उदाहरण

पढ़ौ भाई बिद्या भला कर्म है; करौ देस-सेवा यही धर्म है।
अगर काम ऐसा न कुछ भी किया; बृथा जन्म दुनिया में तुमने लिया।

नोट—इस ध्वनि पर उर्दू-शेर अनेक पाए जाते है।

महापौराणिक

१६ मात्राओं के छंद—भेद ६७६५

(१) सुमेरु

लक्षण—सुमेरु मत्त दै उनईस राच्यौ।

टीका—इसमे १२-७ के विश्राम से १६ मात्राएँ होती है। अंत में यगण रखने में अत्यंत कर्ण-प्रिय होता है।

उदाहरण

तुम्हें कर जोर के बिनती सुनाऊँ;
तुम्हें तज पास काके और जाऊँ।
निहारौ जू निहारौ जू निहारौ;
बिहारीजू भरोसौ है तुम्हारौ।

महादैशिक

२० मात्राओ के छंद—भेद १०६४६

(१) हंसगति

लक्षण—ग्यारह नव कल ठहिर हंसगति जानहु।

टीका—११ और ६ के विश्राम से इसमें २० मात्राएँ होती हैं।

उदाहरण

फूल-बाटिका बीच आज हम आली!
निरखे राजकिसोर रुचिर रसजाली।
वह मनमोहनि मूर्ति निरख भई चेरी;
सुधि-बुधि हू गइ भूल, थकी मति मेरी।

त्रैलोक

२१ मात्राओं के छंद—भेद १७७११

(१) प्लवंगम

लक्षण—इकइस मत्त समेत प्लवंगम रचिए।

टीका—इस छंद में इक्कीस मात्राएँ होती हैं। आदि का वर्ण गुरु होता है। अंत में रगण और एक गुरु होता है। ८ और १३ मात्रा पर यति होती है।

उदाहरण

साहब सच्चा राम रमा दिल बीच है ;
ढूँढ़ रहा क्यों यहाँ-वहाँ मति-नीच है।
जा 'बिहार' गुरु पास छोड़ जग का विभू ;
तेरे ही में मिलै तुझे तेरा प्रभू।

सूचना—इसी छंद को आदि में त्रिलघु या चतुर्लघु वर्ण देकर प्रारंभ करे, और ११ तथा १० मात्रा पर विश्राम दे, तो चांद्रायण नाम का छंद हो जाता है।

उदाहरण चांद्रायण

कर कछु पर-उपकार बृथा वय खोवहीं ;
नर-तन जीवन जनम बड़े फल होवहीं।
सब भ्रम तज मन मूढ़ करै मति हार है ;
कलि महँ केवल राम-नाम भज सार है।

नोट—चांद्रायण और प्लवंगम के मेल को 'त्रिलोकी' कहते हैं।

महारौद्र

२२ मात्राओं के छंद—भेद २८६५७

(१) राधिका

लक्षण—तेरा नव पर विश्राम राधिका कहिए।

टीका—१३ और ९ के विश्राम से राधिका छंद होता है।

उदाहरण

जय-जय गोबिंद गुपाल गुबर्धनधारी ;
जय हृषीकेश हरिदेव सुजन-हितकारी।

जय-जय जग-पावन-करन कृष्ण बनवारी ;

जय बसुधापति बलबीर ब्रजेस बिहारी ।

नोट—यही छंद लावनी की तर्ज में गाया जाता है।

(२) कुंडिल

लक्षण—द्वादस षट चार कलन कुंडिल छबि छाई।

टीका—१२-६-४ मात्रा मिलकर १० के विश्राम से कुंडिल छंद बन जाता है। अंत में २ गुरु अवश्य आना चाहिए।

उदाहरण

जय कृपालु कृष्णचंद फंद के कटैया ;

बृंदाबन कुंज-कुंज-खोर के खिलैया।

मोर-मुकुट, हाथ लकुट, बेनु के बजैया ;

कबि 'बिहार' कृपा करहु नंद के कन्हैया।

सूचना—इस छंद को प्रभाती की ध्वनि में भी गाते हैं।

प्रभाती

अजहूँ नहिं आए अली प्रानपिया प्यारे।

जगत-जगत रैन गई, तकत नैन हारे ;

कौन भवन रमन कियो कान्ह बंसीवारे ॥ अजहूँ० ॥

बंद भए कुमुद-बदन नेह फंद डारे ;

चंद्र भए तेज-हीन, मंद भए तारे ॥ अजहूँ० ॥

पूरब दिस भाल जगे लाल रंग धारे ;

मद-मंद चलत पवन मदन बान मारे ॥ अजहूँ० ॥

कबि 'बिहार' बिकल भई बिरह अंग जारे ;

तापर छल-छंद किए नंद के दुलारे ॥ अजहूँ० ॥

रौद्रार्क

२३ मात्राओं के छंद—भेद ४६३६८

(१) हीर

लक्षण—तेइस कल आदि गुरू अंत रगण हीर में।

टीका—इसमें २३ मात्राएँ होती हैं। आदि वर्ण गुरु और अंत में रगण तथा ६-६-११ पर विश्राम होता है।

उदाहरण

रीति चहौ प्रीति चहौ गीत रचौ हेम से ;
धर्म-हेतु बित्त लखौ चित्त लखौ छेम से।
ग्यान करौ ध्यान धरौ नित्य यही नेम से ;
राम कहौ श्याम कहौ कृष्ण कहौ प्रेम से।

अवतारी

२४ मात्राओं के छंद—भेद ७५०२५

(१) रोला

लक्षण—ग्यारह तेरा यती मत्त चौबिस कह रोला।

टीका—११ और १३ के विश्राम से इसमें २४ मात्राएँ होती हैं।

उदाहरण

उद्धव तुम अति जोग्य जोग-पाती ले आए ;
नटनागर नँद-नँदन कहे तस बचन सुनाए।
जिहि मन को तुम कहत अचंचल या कहँ कीजे ;
सो मन है हरि हाथ जोग चित कैसें दीजे ?

नोट—इसी को काम्य भी कहते हैं, और चारो पदों में ११वीं मात्रा लघु होने पर काव्य भी कहते हैं।

(२) दिगपाल

लक्षण—कल भानु भानु भावैं, दिगपाल छंद गावै।

टीका—१२-१२ के विश्राम से २४ मात्रा का यह दिगपाल छंद होता है। इसकी पाँचवीं और सत्रहवीं मात्रा लघु करने से अति उत्तम लय रहती है।

उदाहरण

गिरिराज हाथ लीनें ब्रजराज आज देखे।

सूचना—इसी छंद को ग़ज़ल की तर्ज़ पर ठेका क़व्वाली में गा सकते हैं। यथा—

मुरली मुकुंदजी को बैरिन भई हमारी।
बाजै कभी कुंजन में, कबहूँ बिनोद-बन में ;
कबहूँ जमुन के तट पै, कबहूँ कदम की डारी ॥ मुरली० ॥
कबहूँ बिसाख गावै, ललितै कभी बुलावै ;
कबहूँ तौ राधे-राधे कह-कह मचावै रारी ॥ मुरली० ॥
ऐसौ उपाय कीजे, मुरली चुराय लीजे ;
रखिए न बाँस बन में, बजिहै न बंसी प्यारी ॥ मुरली० ॥
यहि भाँति मोद भरकें, बनिता बिचार करके ;
डगरीं वही बिपिन को बिहरैं जहाँ बिहारी ॥ मुरली० ॥

(३) शोभन

लक्षण—कला चौबिस चतुर्दस दस यती सोभन साज।

टीका—१४-१० के विश्राम से २४ मात्रा का यह शोभन छंद होता है। अंत में जगण अवश्य आना चाहिए।

उदाहरण

धन्य हैं जग जनम उनके छोड़ जे जग - आस ;
धरत निसि-दिन ध्यान हरि कौ, करत ब्रज में बास।

सूचना—यह छंद अंत में जगण होने से शोभन तथा सिंहका कहलाता है, और अंत में गुरु लघु होने से रूपमाला कहलाता है, और अंत में त्रिलघु होने से कलाधर हो जाता है। क्रमश. उदाहरण—

(१) शोभन अंत में (।ऽ।) एक दीपक ज्योति से ज्यों जरत दीप अनेक ;
कौन दीपक न्यून भाषत करहु बुद्धि बिबेक।

(२) रूपमाला अंत में (ऽ।) रंग रंगा रंग है, है असल एकै रंग ;
रंग तज जो रंग देखै, है उसी को रंग।

(३) कलाधर अंत में (।।।) धन्य वे बन-कुंज कुसुमित सोह मंडित अलिन;
धन्य वे जिन दृगन देखे स्याम ब्रज की गलिन

विशेष—उक्त शोभन छंद के आदि में यदि सुलक्षण छंद का एक चरण स्थायी रूप से जोड़ दिया जाय, तो एक गीत बन जाता है। यथा—

राग देश—ताल झप

सुलक्षण—अवसर जात बातन बीत।

शोभन—समझ सोच बिचार मूरख करत क्यों अनरीत ;
पाय नर-तन जतन कर कछु मिटहि यह भव-भीत।
मोह - माया को प्रबल दल सकै तूँ नहिं जीत ;
सरन ले हरि सरन ले तू मान रे मन मीत।
स्वाँस बूँदन झिरत यह घट रात-दिन रहो रीत ;
यह बिचार 'बिहार' कर तूँ स्यामले सन प्रीत।

उक्त रूपमाला छंद के आदि में भी सुलक्षण का योग कर दिया जाय, तो एक गीत बन जाता है। यथा—

रागबिहाग—ताल झप

सुलक्षण—ले मन हरि-चरन बिसराम।

रूपमाला—तोड़ बंधन बिषय के सब छोड़ सिगरे काम ;
प्रीतयुत परमात्म में रख सुरत आठौ जाम।
पवन पावक सलिल संयत गगन धरनी धाम ;
बिपिन बाग 'बिहार' गिरि तरु निरख सबमें राम।

पुनः

नाहक रह्यौ भ्रम में भूल।
बासना-बस फिरत भटकत चलत पथ प्रतिकूल ;
कपट बातन ठगत जग को डारि आँखिन धूल।
करत पातक डरत नाहीं, सहत बहु दुख सूल ;
खेल खेलहिं खोय बैठत रतन जन्म अमूल।
ब्रज-निकुंज 'बिहार' चलकर बिचर जमुना-कूल ;
भाग्य-बस लख परहिं कबहूँ स्याम जीवन - मूल।

उक्त कलाधर छंद के आदि में यदि व्रजमोहन छंद का एक चरण स्थायी रूप से जोड़ दिया जाय, तो एक गीत बन जाता है। यथा—

राग बिहाग—ताल रूपक

व्रजमोहन—भज मन जनकजा के चरन।

कलाधर—जिनहिं ध्यावत जोगिजनगन बिपिन रचि गृह-परन ;
लीन होत स्वरूप निज महँ छुटत जीवन-मरन।
जिहि नवल नख-ज्योति लै भए चंद-रबि तमहरन ;
जाहि बल पद पूर्ण पायौ सेस धरनी धरन।
जौ कदाच प्रयास बिन तूँ चहहि भवनिधि तरन ;
तौ 'बिहार' बिहाय मृग-जल चल सिया के सरन।

महावतारी

२५ मात्राओं के छंद

(१) मुक्तामणि

लक्षण—बारह-तेरह कलनधर मुक्तामणि रच नीकौ।

टीका—तेरह-बारह के विश्राम से २५ मात्रा का यह मुक्तामणि छंद होता है। अंत में दो गुरु। इस छंद के बनाने की एक सहज क्रिया यों है कि दोहे के अत मे अंतिम अक्षर को गुरु कर दिया जाय, मुक्तामणि हो जायगा।

उदाहरण

जब से निरखो नंद - सुत बनसी-बट-तट जाई,
तब से भूलत दृगन छबि भूलत नहीं भुलाई।

महाभागवत

२६ मात्राओं के छंद—भेद १९६४१८

(१) विष्णुपद

लक्षण—खोड़स दस कल अंत गुरू कर रचिए विष्णु पदै।

टीका—१६-१० के विश्राम से इसमें २६ मात्राएँ होती है। अंत मे एक गुरु अवश्य होना चाहिए।

उदाहरण

केतक पढ़ै पुरान, बेद - मग केतिक बुद्धि जगै ;
जौ लग निज सुरूप नहिं चीन्हें, तौ लग भ्रम न भगै ।

इसी छंद के आदि मे यदि गोपी छंद का एक चरण स्थायी रूप से जोड़ दिया जाय, तो एक गीत बन जाता है । यथा—

राग जंगला—ताल धीमा कहरवा

गोपी—आज हम गुरु की कहन करी ।
विष्णुपद—बैठे साधु समाधि ग्यान की सुंदर सोध घरी ;
गगन-पंथ ह्वो सगुन सुमरिकें निरगुन गैल धरी ।
मारग चलत समय नें झगरो शंका चित्त परी ;
तब गुरु सन्मुख आय दरस दै सिगरी ब्याधि हरी ।
एक रंग में दो लय कीन्हों दो की तरल तरी ;
दो कों छोड़ तीसरे रँग में अमरित गगर भरी ।
चौथौ रंग ढंग जब देखौ एकहि डोर डरी ;
चार तीन दो एक मिटे जब तब भई मौज खरी ।
कहिए कहा बनत नहिं कहतन ऐसी ढरन ढरी ;
ग्यान - बृच्छ की डार 'बिहारी' उलटे फरन फरी ।

(२) झूलना

लक्षण—धर सप्त सप्तरु सप्त कल पुनि पंच झूलन साज ।

टीका—७-७ ७ पुनः ५ के विश्राम से २६ मात्रा का यह झूलना छंद होता है। अंत में गुरु-लघु अवश्य होना चाहिए ।

उदाहरण

भज दिवस-निसि नँद-नंद हरि सुखकंद श्रीब्रजराज ;
प्रभु दीन-प्रन राखत सदा निज सुहृद जन की लाज ।

(३) हरपद

लक्षण—अंत विष्णुपद में इक गुरु है, दो गुरु हरपद कीजे ।

टीका—उक्त विष्णुपद के समान १६-१० का विश्राम देकर अंत में दो गुरु देने से २६ मात्रा का हरपद छंद होता है।

उदाहरण

इस दुनिया में कोई एक सा नहीं दिखाना है ;
दिन-दिन छिन-छिन बीच बदलता रंग जमाना है ।

सूचना—इसी छंद को गीत-रूप में भी गा सकते हैं । यथा—

राग कान्हरा—ठेका क़व्वाली

झूठा है संसार इसे सच मत समझौ भाई !
जैसे कोई बादीगिर अपनी रचना बगराई ;
देख-देख चक्कृत भई दुनिया हाथ न कछु आई ।
लख हिरनी सूरज की किरनी जल का भ्रम खाई ·
प्यासी फिरत बूँद पानी की तनक न कहुँ पाई ।
हरिश्चंद, नल, बल-से राजा तज गए दुनियाई ;
उनकी खबर लौटकर फिरकें काहु न बतलाई ।
सच्चा वहि परमेश्वर जिसकी सच्ची सच्चाई ;
जिसने क्या प्रह्लाद भक्त को लीला दिखलाई ।
उस नगरी की गैल 'बिहारी' उसने ही पाई ;
जिसने दौर-दौर सतगुरु की कीनी सिवकाई ।

नाक्षत्रिक

२७ मात्राओं के छंद—भेद ८३२०४०

(१) सरसी

लक्षण— सोरह ग्यारह पै बिराम कर सरसी छंद बखान ।

टीका—१६ और ११ पर विश्राम देकर २७ मात्रा का सरसी छंद बनता है । अंत में गुरु-लघु हो ।

उदाहरण

दीनानाथ दयाल देव हरि भय - भंजन भगवान ;
आयौ सरन बिलोक रावरौ, कृपा करहु जन जान ।

सूचना—इसी सरसी छंद के आदि में यदि ५ और ११ के विश्राम से शृंगार छंद का एक चरण स्थायी रूप से जोड़ दिया जाय, तो एक प्रकार का गीत बन जाता है । यथा—

शृंगार—(ॐ) ओम् को करौ भाई पहिचान ।
सरसी—याही कौ अधार रच प्रभु ने कियौ सृष्टि निर्मान ;
सब मंत्रन कौ बीज मंत्र यह जानत बेद पुरान ।
या ऊपर इक चंदु चंदु पर है इक बिंदु प्रमान ;
जो जानत यह ध्यान 'बिहारी' पावत पद निर्वान ।

यौगिक

२८ मात्राओं के छंद—भेद ५१४२२६

(१) सार

लक्षण—षोड़स और द्वादस कल अंतै द्वै गुरु सार बनाओ ।

टीका—१६ और १२ के विश्राम से २८ मात्रा का सार छंद होता है । अंत में २ गुरु अवश्य रखना चाहिए ।

उदाहरण

आज बीर बंसी-बट तट पर मिलो जसोमति-लाला ;
मुकुट मोर-पंखन सिर धारैं, उर बैजंती माला ।
हँस-मुसक्याय, नचाय नैंन नव मो मन मोह लियौ री ;
ता छिन सें मति भई बावरी बिरह बिहाल कियौ री ।

सूचना—प्रभाती और बारामासा इसी ढंग पर गाई जाती है, और इसे नरेंद्र ललित पद और दोवै भी कहते हैं । किसी-किसी कवि ने इसके अंत में ३ गुरु माने हैं । वस्तुतः इसकी लय पर ध्यान अवश्य रखना चाहिए ।

इसी छंद के आदि में यदि चौपाई का एक चरण स्थायी रूप से जोड़ दिया जाय, तो एक गीत बन जाता है । यथा—

राग बिहाग—ताल झपताला

मन तुम बहुत चले मनमाने।
हम तुम मित्र जनम के प्रेमी प्रेम प्रीति पहिचाने;
तुम हौ निठुर आपने बस के रस में रहत लुभाने।
इंद्रिन के तुम इंद्रदेव हौ सुर-नर - मुनि - सनमाने;
नित नए खेल खिलावत खेलत रसिया अजब दिखाने।
बसीकरन सतगुरु से सीखो मंत्र तुम्हारे लाने;
बिन पूछैं कहुँ पॉव न दीजो अब कर पाए ठिकाने।
जहँ हम कहैं तहाँ ही रमियो गुन निर्गुन गुन जाने;
सगुन अगुन दोउ अगम 'बिहारी' समुझत सुघर सयाने।

(२) हरगीतिका

लक्षण—सोरह दुआदस बिरति रचि हरगीतिका निर्मित करौ।

टीका—१६ और १२ के विश्राम से २८ मात्रा का हरगीतिका छंद होता है। इसके अंत मे लघु-गुरु होते हैं।

उदाहरण

श्रीकृष्णचंद कृपालु नटवर नंदसुत भुवि-नायकं;
सर्बेस सर्वहृदस्थ सुभकर सर्बसुचि सुख-दायकं।
मनि मुकुट पक्ष मयूर मंडित स्रवन कुंडिलधारनं;
कर लकुट बेनु बिलास बल कर कंस-मुर-मद-गारनं।
जय जयति जय जोगीसपति जय जगतपति जगबंदनं;
जदुनंद श्रीसुखकंद जय ब्रजचंद श्रीनँदनंदनं।
गुन बंद बेद 'बिहार' भूषित भाव भूरि भजाम्यहं;
नख धरन गिरि गोबिंद नित निर्वानरूप नमाम्यहं।

पुनः

जय जयति रबिकुल-मुकुट-मनि जय जयति रघुबर नायकं ;
जय जयति निमि-कुल-चंदनी जय जुगल जग सुख-दायकं ।
इक ओर दमकत कीटमनि, इक ओर चमकत चंद्रिका ;
दुहुँ ओर स्यामल गोर तन, अँग-अंग ओप अमंदिका ।
इक ओर कुंडिल स्रवन सुचि, इक ओर तरुक बिराजहीं ;
इक ओर अधर बुलाक छबि, इक ओर बेसर राजहीं ।
इक ओर कंठन कंठ-मनि, इक ओर छुट बँदसार है ;
इक ओर मोतिन - माल-मनि, इक ओर हीरन - हार है ।
इक ओर तन पर पीत पट, इक ओर नील सुहावहीं ;
इक ओर लिय सर-चाप कर, इक ओर कंज खिलावहीं ।
दुहुँ ओर परम प्रकास प्रगटत लसत जनु घन दामिनी ;
धनि धन्य धनि धनि धनुषधारी धन्य श्रीसिय स्वामिनी ।
निज जन 'बिहार' निहारकैं यह बिनय प्रभु सुन लीजिए ;
निज कमल - चरनन बीच दंपति सरन स्वामी दीजिए ।

महायौगिक

२६ मात्राओं के छंद—भेद ८३२०४०

(१) मरहट्टा

लक्षण—दस आठ इकादस यह बिधि कल बस रचिय मरहट्टा छंद ।

टीका—१०-८-११ के विश्राम से इसमें २६ मात्राएँ होती हैं । अंत में गुरु-लघु होता है । १०वीं और ८वीं मात्रा पर अंत्याक्षर (अनुप्रास) मिलने से इसकी विशेष शोभा बन जाती है ।

उदाहरण

जय-जय ब्रज-मंडन खल-दल-खंडन गो-पालक गिरधारि ;
जय - जय जदुनायक देव-सहायक जग-कारन कंसारि ।

जय त्रिभुवन - स्वामी अंतरयामी मोहन मदन मुरारि ;
सुर-मुनि गुन गावत, पार न पावत, सेवत चरन बिहारि।

सूचना—इसी की अंतिम मात्रा गुरु कर देने से चौपैया छंद बन जाता है। यथा—

महासैथिक

३० मात्राओं के छंद—भेद १३४६२६६

(१) चौपैया का उदाहरण

जय-जय सुखधामा छबि अभिरामा सुंदर स्याम सुरूपा ;
लोचन रतनारे जग उजियारे उपमा अंग अनूपा।
कुंडिल जुग जोहत लख मन मोहत नासा चिबुक सुहाई ;
रुचि बाहु बिसाला हिय बनमाला आनँद उर न समाई।
बसुदेव प्रमानी निश्चय जानी आदि ब्रह्म प्रभु आए ;
घट-घट के बासी लख अबिनासी बिनवत बचन सुहाए।

(श्रीकृष्णजन्मचरित्रे)

(२) ताटंक

लक्षण—षोड़स चौदह पर बिराम कर यो ताटंकै गावौ जी।
टीका—१६-१४ के विश्राम से इसमें ३० मात्राएँ होती हैं। अंत में मगण होता है।

उदाहरण

आदि सक्ति लीला अपार जिहि ध्याय सुरन टारी बाधा ;
कृष्णचंद्र अर्धांगरूपिनी जयति-जयति जय श्रीराधा।
जाकर नाम रटत ही मुख से कटत सकल भव कौ जाला ;
जाकी लगन मगन मन निसि-दिन गुन गावत श्रीगोपाला।

सूचना—ख्याल तथा लावनी इसी छंद में गाए जाते हैं। लावनी के लिये अंत मे गुरु-लघु का कोई नियम नहीं है।

अंबावतारी

३१ मात्राओ के छंद—भेद २१७८३०६

(१) वीर

लक्षण—आठ-आठ पंद्रह पर यति कर भाषौ वीर छंद अभिराम।

टीका—८-८-१५ के विश्राम से इस वीर छंद में ३१ मात्राएँ होती हैं। अंत में गुरु-लघु होते हैं। इसी छंद को मात्रिक सवैया कहते हैं, और आल्हा इसी छंद में गाया जाता है।

उदाहरण

प्रथम सारदा के पद ध्यावों जिनकी जोति जगै दिन-रात ;
जिनके सुमिरन नाम किए ते मनसा सबै सुफल हो जात।
तुमरौ बल मैं निसि-दिन राखौं चाहौं सदा कृपा की कोर ;
बिनय सुनाऊँ मैं कर जोरें माता लाज राखियौ मोर।

लाक्षणिक

३२ मात्राओं के छंद—भेद ३५२४५७८

(१) त्रिभंगी

लक्षण—दस बसु-बसु लक्खिय पुनि षट रक्खिय छंद त्रिभंगी अंत गुरू।

टीका—१०-८-८ और ६ के विश्राम से इस त्रिभंगी छंद में ३२ मात्राएँ होती हैं। अंत में गुरु होता है। इसमें जगण न आना चाहिए, जगण आने से इसकी लय बिगड़ जाती है। इस छंद में तीन यमक होते हैं।

उदाहरण

सुरपति जब कोप्यौ अतिबल रोप्यौ घन नभ लोप्यौ अनख धरी ;
ब्रज चहहि बहावन नीर डुबावन प्रलय मनावन बृष्टि करी।
ग्वालन भय मानी तिय अकुलानी सारँगपानी ध्यान दियौ ;
प्रभु सैल उठायौ ब्रजहि बचायौ सुर जस गायौ मोद लियौ।

सूचना—इसी छंद को तीन बार यमक के प्रयोग से तथा वीर और रौद्ररस के वर्णन से कवियों ने शुद्धध्वनि नाम का छंद माना है। यथा—

जदुबीर बीर रनधीर बीर अतिबल गम्हीर हठ कोप करै ;
कर शब्द घोर गजदंत टोर रन रंग रोर नहिं रंच डरै।
मंडवहु रार असुरन संहार केसह पछार भुज ठोक ठनैं ;
किन्नय प्रहार गे दैत्य हार कह कबि 'बिहार' सुर जयति भनैं।

(२) समानसवया

लक्षण ~खोड़स-खोड़स कला ललित सज रचहु समानसवैया नीकौ ।

टीका—१६-१६ के विश्राम से इस छंद मे ३२ मात्राएँ होती हैं। यह छंद चौपाई छंद का दूना होता है।

उदाहरण

बंसीबट तट नव निर्मल थल अनुपम अति रमनीक सुहायौ ;
स्याम सलिल कालिंद कलित जहँ लोल लहर हरि चितहिं लुभायौ ।
स्रवनन मधुर कीर कोकिल कल कुंजन कुंज पुंज छबि छायौ ;
धन ब्रजबास 'बिहार' भाग्य-बस पुण्यवान काहू नर पायौ ।

सूचना—यहाँ ३२ मात्रा तक के छंद उपर्युक्त वर्णन किए गए है। अब ३२ से आगे अधिक मात्रा के जो छंद हैं, उनकी दंडक संज्ञा है, अर्थात् वे मात्रिक दंडक कहलाते हैं। उनका वर्णन संक्षिप्त रीति से आगे करते हैं।

इति सममात्रांतर्गत संक्षिप्तछंदवर्णनं शुभं भूयात्

—:-०-:—

अथ मात्रिक दंडक छंदवर्णनम्

दोहा

बत्तिस मात्रा से अधिक जामें मत्त प्रमान ;
मात्रिक दंडक कहत हैं ताहि सकल बुधिवान ।

३७ मात्राओ के छंद

(१) द्वितीय झूलना

लक्षण—कला दस धारिए फेर दस धारिए फेर दस फेर मुनि झूलना यो ।

टीका—१०-१०-१० और ७ के विश्राम से ३७ मात्राओ का यह झूलना छंद होता है। यों से अभिप्राय है कि अंत में यगण आना चाहिए।

उदाहरण

जयति श्रीजानकी भक्तिदा ग्यान की सिद्धि सनमान की दानवारी ;
बिस्वप्रनपालिनी दैत्यकुलघालिनी हंसगतिचालिनी राम-प्यारी ।

ग्यानऽखिल ग्यापिनी लोकसबथापिनी सर्बथलब्यापिनी दुःखहारी ;
बसै तुव ध्यान उर देव बरदान यह जोर जुग पानि बिनवै 'बिहारी'।

४० मात्राओं के छंद

(१) मदनहर

लक्षण—दस आठ चतुर्दस आठ बिरति धर
द्विलघु मदनहर आदि करौ गुरु अंत धरौ।

टीका—१०-८-१४-८ के विश्राम से इस मदनहर छंद मे ४० मात्राएँ होती हैं। आदि मे २ लघु और अंत मे १ गुरु होता है।

उदाहरण

बंसीबट तरुतर सखि पनघट पर
मो मन नटवर मोह लियौ हँस हेर दियौ ;
दृग सैंन चलाकर मोहिं बुलाकर
अति इठलाकर छैल छियौ मन चाह कियौ।
जसुमत ढिग जैहौं तिहि गुन कैहौं
ब्रज नहिं रैहौं ठान लई कुल-कान गई।
इहि बिधि गिरिधारी करहिं 'बिहारी'
लीला प्यारी मोदमई नित नित्त नई।

(२) सुभग

लक्षण—दस दसहु विश्राम चालीस कल ठाम
रच सुभग सुखधाम है तगन पुनि अंत।

टीका—१०-१० के ४ विश्राम से ४० मात्रा का यह सुभग छंद होता है। इसके अंत में गुरु-लघु होता है। इस छंद में १०-१० मात्रा के ४ विश्राम होना चाहिए।

उदाहरण

अवधेस-सुत बंक कर क्रोध धनु टंक
सुन कंप गढ़ लंक खल जूथ बिचलंत ;
सनमुक्ख अरि आहिं, ते तार तन खाहिं,
लुट भूमि भहराहिं, झट स्वाँस सटकंत।

चहुँ ओर उद्भट्ट कविभट्ट समघट्ट
 अरिकट्ट जयशब्द सु 'बिहार' भापंत ;
सर छोड़ अति चंड, दममोस गिर खंड,
 रघुबीर बलबंड रनजीत राजन ।

(३) विजया

लक्षण—दसन दस मत्त ही छंद विजया कही
 रगण जिहि अंत ही अधिक छवि छावही ।

टीका—१०-१० मात्राओ के ४ विश्राम से ४० मात्राओ का यह विजया छंद होता है । इसके प्रत्येक विश्राम के अंत मे रगण आने से अत्यंत कर्णप्रिय होता है ।

उदाहरण

संत गुन गावहीं, नित्य प्रति आवहीं,
 पूर्ण फल पावहीं सिद्धि सुभ काज की ;
कथा कोउ बाँचहीं, मोद मन माचहीं,
 कोउ सखि नाचहीं लोल गति लाज की ।
गाय गुनधार यों कोउ सु 'बिहार' यों,
 अवध बिच चारु यों सोभ सिरताज की ;
संभु - सुर - जोहिनी, स्वर्ग - गृह - सोहिनी,
 मूर्ति मन - मोहिनी राम-रघुराज की ।

इति मात्रिक समांतर्गत दंडकवर्णनं शुभं भूयात्

——:०:——

अथ मात्रिकार्द्धसम-प्रकरण

सूचना—जिन मात्रिक छंदो के विषम से विषम और सम से सम चरणों के लक्षण मिलते हो, उन छंदों को मात्रिकार्द्धसम कहते हैं ।

चारो चरण मिलकर ३४ मात्राओं के छंद

(१) नवीन

लक्षण—विषम सम निधि सिधि छंद नवीनं ।

टीका—इस नवीन छंद के विषम चरणों में निधि (६) और सम चरणो में सिद्धि (८) मात्राएँ होती हैं । इसके अंत में दो गुरु अवश्य होना चाहिए ।

उदाहरण

सजन सुखदाई ; स्याम कन्हाई ।
लली सँग राजों रूप जुन्हाई ।

चारो चरण मिलकर ३८ मात्राओं के छंद

(१) बरवै

लक्षण—प्रथम तृतिय पद रवि कल धरकर साज,
द्वितिय चतुर मुनि कल रच बरवै साज ।

टीका—पहले और तीसरे चरण मे १२ और दूसरे तथा चौथे चरण मे ७ मात्राएँ रखकर बरवै छंद बनता है। साज से अभिप्राय है कि अंत मे जगण आना चाहिए।

उदाहरण

जुगल रसिक बर सुंदर प्रिय अनुकूल ;
बिचरत दै गल बाहीं जमुना - कूल ।

सूचना—इस छंद की रचना प्राचीन कवियों ने पूर्वीय भाषा के रूप मे अधिक की है। या यों कहना चाहिए कि इस छंद का ढार ही इस प्रकार है। यथा—

आय झपट पनघटवाँ तक हँस देत ;
सखि मोहन मनहरिया मन हर लेत ।

चारो चरण मिलाकर ४८ मात्राओं के छंद

(१) दोहा

लक्षण- विषम चरन तेरह कला सम ग्यारह निरधार ;
प्रथम तृतिय बरजित जगन दोहा बिबिध प्रकार ।

टीका—इस छद के विषम चरणों में १३ और सम चरणा में ११ मात्राएँ होती हैं, और पहले तथा तीसरे चरण मे जगण वर्जित है।

उदाहरण

पीत बसन कटितट कसन मंद हँसन सुखकंद ;
मधुर बयन नीरज-नयन नमो - नमो नँद-नंद ।

दोहा-भेद

दोहा बिबिध प्रकार के तेइस मुख्य प्रधान ;
तिनके लच्छन नाम - युत हौं इत करत बखान ।

हरगीतिका ❀

है भ्रमर भ्रामर शरभ श्येन मँडूक मर्कट जानिए ;
पुनि करभ अरु नर नाम हंस गयंद पयधर मानिए ।
बल और बानर त्रिकल कच्छप मच्छ शार्दूलहिं गनौं ;
अहिबर सुब्याल बिडाल स्वानहु उदर सर्पहिं को भनौं ।
यह भाँति तेइस भेद दोहा नाम पृथक प्रमानहीं ;
लख शास्त्र पिंगल-रीति रुचिकर कबि 'बिहार' बखानहीं ।

पूर्व-लिखित २३ भेदो के पहचानने की सरल रीति—

जानहु प्रथमहि भ्रमर कों बाइस गुरु लघु चार ;
आगे के पुनि भेद कौ यह बिधि करौ बिचार ।
यह बिधि करौ बिचार भेद कौ क्रम चित दीजे ;
क्रमशः भेदन माँहि गुरू इक इक कम कीजे ।
कबि 'बिहार' लघु वर्ण तहाँ द्वै द्वै बढ़ आनौं ;
तेइस दोहुन केर रूप यह बिधि पहिचानौं ।

अर्थात्—प्रथम दोहा भ्रमर नाम का जो होता है, उसमे २२ गुरु ४ लघु होते है। अवशेष भ्रामरादिक भेद हैं। उन सबमे क्रमशः एक-एक गुरु घटाते जाइए और दो-दो लघु क्रमशः बढ़ाते जाइए। इस प्रकार २३ भेदों के गुरु-लघु का ज्ञान हो जायगा। जैसे—२२ गुरु ४ लघु का भ्रमर है, तो २१ गुरु ६ लघु का भ्रामर होता है। यहाँ भ्रमर से भ्रामर मे एक गुरु घट गया और दो लघु बढ़ गए। निम्न-लिखित कोष्ठ को देखो—

❀ भानुकवि ने छंदप्रभाकर के पृष्ठ ६७ से ६९ तक इन तेइस प्रकार के दोहों के विषय मे लिखते हुए प्रत्येक के उदाहरण दिए हैं। परंतु इस ग्रंथ में लेखन-प्रणाली सरल और स्पष्ट विशेष है। साथ ही विषय अत्यंत संक्षेप मे कहा है।—संपादक

संख्या	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२२
नाम भेद	भ्रमर	भ्रामर	शरभ	श्येन	मंडूक	मर्कट	करभ	नरसिंह	हंस	गयंद	पयधर	बल	वानर	त्रिकल	कच्छप	मच्छ	शार्दूल	अहिवर	व्याल	विडाल	श्वान	उंदुर	सर्प
गुरु	२२	२१	२०	१९	१८	१७	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९	८	७	६	५	४	३	२	१	०
लघु	४	६	८	१०	१२	१४	१६	१८	२०	२२	२४	२६	२८	३०	३२	३४	३६	३८	४०	४२	४४	४६	४८

(२) सोरठा

लक्षण—प्रथम तृतिय पद रुद्र, द्वितिय चतुर तेरह कला ;
विरचित बुद्धि समुद्र, दोहा उलटें सोरठा ।

टीका—पहले और तीसरे चरण में रुद्र (११) मात्रा और दूसरे तथा चौथे चरण में १३ मात्रा रखने से सोरठा छंद बन जाता है ।

उदाहरण

जे नर चीन्हहिं धर्म, भर्म छोड़ हरिपद भजैं ;
करहिं सदा सतकर्म, तिनके जग जीवन सफल ।

चारो पद मिलकर ५२ मात्रा के छंद

(१) दोही

लक्षण—पंद्रह विषमन सम शिवकला दोही लघु दे अंत ।

टीका—जिसके विषम चरणो में १५ और सम चरणों में ११ एकत्र चारो चरणो में ५२ मात्राएँ और अंत में लघु हो, उसे दोही नाम का छंद कहते हैं ।

उदाहरण

जमुना-तट नवल निकुंज में बेणु बजावत स्याम ;
वह मुरली श्रीब्रजराज की भूलत आठो जाम ।

चारो पद मिलकर ५४ मात्रा के छंद

(१) हरिपद

लक्षण—हरिपद प्रथम तृतिय पद सोरह द्वितिय चतुर कल ग्यार ।

टीका—हरिपद छंद उसे कहते है, जिसके पहले व तीसरे अर्थात् विषम चरणों में १६ और दूसरे व चौथे अर्थात् सम चरणों में ११ मात्रा हों ।

उदाहरण

दया छमा संतोष सील सुचि जिनके ग्यान बिबेक प्रमान ;
सच्चरित्र सद्भाव सत्य बल धन वे पुरुष महान।

चारो चरण मिलकर ५६ मात्रा के छंद

(१) उल्लाल

लक्षण—उल्लाल विषम पंद्रह कला सम पद तेरह धारिये।

टीका—जिसकी पहले व तीसरे चरण मे १५ और दूसरे व चौथे चरण मे १३ मात्राएँ हो, उसे उल्लाल कहते हैं।

उदाहरण

भज कृष्णचंद नँदनंद हरि जसुमत सुत संकट समन ;
ब्रजचंद विष्णु बावन बिमल बाधाहर राधारमन।

अथ विषममात्रिक छंद

जिनके चारो चरणो के नियम व मात्रा भिन्न-भिन्न हो, अथवा चार चरणों से अधिक चरण जिनमे हो, उन छंदो की विषम संज्ञा है।

६ पद मिलकर १४४ मात्रा के छंद

(१) अमृतध्वनि

लक्षण—रचिय पद अम्मृतध्वनी प्रथमहि दोहा सज्ज ;
चौबिस कल प्रति पद रख छंदद्ध्वनि छबिछज्ज।
छज्जिय ध्वनिय धरिय कल मुनिय बहुर सिधिनिधिकर ;
रक्खिय जमक निरक्खिय झमक सुलक्खिय गुणधर।
मंडिल सबद सुकुंडिल सरिस महाँ मुदमच्चिय ;
शुद्धद्धरन सुयुद्धव्वरन प्रबुद्धन रच्चिय।

टीका—इस अमृतध्वनि-नामक छंद मे प्रथम एक दोहा रखकर पुनः चौबीस मात्राओं के चार चरण निर्मित करो। प्रतिचरण में मुनि (७), सिद्धि (८), निधि (९) मात्राओं के तीन विश्राम देकर २४ मात्रा की पूर्ति करो और यमक अर्थात् अनुप्रास की झमकावट तीन बार लाओ और कुंडलिया के समान आदि-अंत के शब्दो को एकसा मिलाओ। किसी-किसी कवि ने इसमे ८-८-८ मात्रा का भी विश्राम माना है, अतएव दोनो प्रकार के छंद दिए जाते हैं।

उदाहरण

चढ़िढय अरि-दल-दलन-हित राम भूप रन-रंग ;
दसकंधर पर कुप्पयन रघुकुल-मनि जुर जग ।
जंगज्जुर कपि संगग्गन रन रंगग्गन मन ;
हंकक्कर धर वंकक्कर अरि अंकक्कर हन ।
पग्गन मल कछु खग्गन घन खल भग्गन बढ़िढय ;
संकह तजक्कर डंकह ध्वनि इमि लंकह चढ़िढय ।

पुनः

भुव पर भूप बलिष्ठ अति सावंतसिंह नरेंद्र ;
घघ्घघ्घोघर बन हन्यौ दद्दद्पट मृगेंद्र ।
दद्दद्पट मृगेंद्रभ्भपट भ्कमंकक्कर वर ;
जंपहिं जुवल उपंचहिं उरत्त सुकंपहिं तरुवर ।
चल्लिय चुपक भरल्लिय तुपक सुघल्लिय तिहि पर ;
हंकत हिरव भभक्कत गिरित्र दुँड़क्कत भुव पर ।

(२) कुंडलिया

लक्षण—धरिए चौबिस मत्त के षट पद बुद्धि प्रमान ;
दो पद दोहा के करौ चौपद रोला मान ।
चौपद रोला मान छंद की लय पहिचानों ;
आदि अंत के शब्द एक सम हो छबि आनो ।
कबि 'बिहार' यह माँहि रीति कुंडल की करिए ;
जुरह गूँज से गूँज नाम कुंडलिया धरिए ।

टीका—इस छंद मे ६ पद और प्रतिपद मे २४ मात्राएँ रक्खो । ६ पद इस प्रकार रक्खो कि २ पद दोहा के और ४ पद रोला के । छंद के आदि और अंत का शब्द समान रूप का होना चाहिए । कुंडलवत् अर्थात् जैसे कुंडल की एक गूँज दूसरी गूँज से मिल जाती है । कुंडलवत् होने से इसको कुंडलिया कहते हैं ।

उदाहरण

जानै यह नर-तन दियौ कियौ सबन सिर-मौर ;
अन्न प्रान मन ग्यान सुख पंचकोष तिहि ठौर ।
पंचकोष तिहि ठौर और किय बुद्धि प्रकासा ;
तिहि प्रभु कों उठि प्रात भजै नित कर बिस्वासा ।
कबि 'बिहार' हरि-कृपा हृदय अपने मैं आनें ;
इहि बिधि होवै बृत्ति सफल जीवन तब जानें ।

६ पद मिलकर १४८ मात्रा के छंद

(१) छप्पय

लक्षण—कोउ छप्पय कोउ छप्प कहत कोउ षटपदि भाखै ;
यामें रोला चार चरण चौबिस कल राखै ।
पुनि अट्ठाइस मत्तकेर उल्लाला लखिये ;
ताके दो पद अंत माहिं तामें मिलि रखिये ।
कह कबि 'बिहार' छप्पय यहै भाँति इकत्तर जानिये ;
सो पृथक नाम उन भेद के सीख कबित्त बखानिये ।

टीका—इस छप्पय छंद मे २४-२४ मात्रा के चार चरण रोला के रक्खो और दो चरण २८-२८ मात्रा के रोला के अंत में रक्खो। इस छंद की रचना इस प्रकार करो। इसके लघु-गुरु के क्रम से ७१ भेद होते हैं, उनके पृथक्-पृथक नाम नीचे दिए जाते हैं—

कवित्त

१ २ ३ ४ ५ ६
अजय बिजय बल कर्ण बीर बैतालहु ,
७ ८ ९ १०
बिहंकर मरकट हरी हर आनिए ;
११ १२ १३ १४ १५ १६
ब्रह्म इंद्र चंदन सुभंकर औ' स्वान सिंह ,
१७ १८ १९ २०
सारदूल कच्छ कोकिलहु खर मानिए ।

२१ २२ २३ २४ २५ २६*
कुंजर मदन मत्स्य ताटकहु शेष साङ्ग,

२७ २८ २९ ३०
पयधर कमल कद वारण प्रमानिए ;

३१ ३२ ३३ ३४ ३५
शलभ भवन अजगम सर सरमहु,

३६ ३७ ३८
समर औ' सारस सुमेरु इमि जानिए ।

पुनः

३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४
मक्र अलि सिद्धि बुद्धि करतल कमलरूप,

४५ ४६ ४७ ४८
धवल मलय ध्रुव कनक सुलेखिए ;

४९ ५० ५१ ५२
कहत 'बिहारी' कृष्ण रंजन सुमेधा गिद्ध,

५३ ५४ ५५ ५६
गरुड़ शशी औ' सूर शल्य अवरेखिए ।

५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२
नवल मनोहर गगन रत्न नर हरि,

६३ †६४ ६५
भ्रमर शिरीष कुसुमाकर बिशेखिए ;

६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१
पति दीप्ति शंख वसु शब्द मुनि छप्पय के

नाम इकहत्तर ये छंदशास्त्र देखिए ।

छप्पय-भेदों की पहिचान

सत्तर गुरु बारा लघू ब्यासी बर्ण बिचार ;
अजय नाम छप्पय कहत कबिगन ताहि 'बिहार' ।
ब्यासी अक्षर कौ कह्यौ छप्पय अजय 'बिहार' ;
आगे जस अक्षर बढ़ै तस - तस नाम बिचार ।

अर्थात् प्रथम भेद 'अजय' नाम उस छप्पय का है, जिसमे ७० गुरु और १२

---

* सारंग । † शिरीष को शेखर भी कहते हैं ।—संपादक

लघु तथा ८२ अक्षर हो। आगे के क्रमशः भेदों में क्रम-पूर्वक एक गुरु घटता जायगा और दो लघु बढ़ते जायँगे। इसी क्रम से सब भेदों के गुरु-लघु का ज्ञान कर लेना।

आर्य्या

आर्य्या छंद प्रबंध यह सुरबानी में होत;
हिंदी-भाषा में अधिक याकौ नहीं उदोत।
सुरबानी बिच सोह ये भाषा बिच नहिं सोहि;
तदपि भेद इक कहत हौं बोध पाठकन होहि।

लक्षण—आर्य्या पहिले तीजे द्वादस मात्राहि संचिये सुचिसों;
दूजे अष्टादस औ' चौथे पंचदस रच रुचि सों।

टीका—सुगम।

उदाहरण

जय जय राधा माधव श्रीहरि जदुपति कृपालु गोबिंदा;
जय जय परमानंदा भज श्रीब्रजचंद सानंदा।

सूचना—इसके अनेक भेद होते हैं—'श्रुतबोध' और छंद प्रभाकर' मे देखो।
इसी प्रकार का 'बैताली' होता है। इसको भी भाषा-कवियो ने विशेषतः भाषा-काव्य में नहीं लिखा है; क्योंकि ये छंद प्रायः संस्कृत-काव्य मे ही पाए जाते है। एक उदाहरण हम बैताली का भी देते हैं—

बैताली

भज मन श्रीकृष्ण नाम को संसारहिं लखिकैं भ्रमौ नहीं;
परिहरि हठ सुनु कथा हरी निज चितहिं लगावहु प्रभू महीं।

सूचना—जो गीत गाए जाते हैं, उनकी भी छंदसंज्ञा विषमांतर्गत छंदों में समझना चाहिए। अतः छंद-संबंध के कारण कुछ उनका भी विवरण यहाँ दिया जाता है।

गीत-विवरण

छंद विषय के प्राचीन तथा अर्वाचीन अनेक ग्रंथ विद्यमान हैं, किंतु गीत जो गाए जाते हैं और जो छंद की शैली से बिलग नहीं हैं, उनका विवरण छंद-संबंध से छंद-ग्रंथों में विशेषतः नहीं किया गया। गीत जितने बनाए गए हैं,

अथवा बनाए जाते हैं, उनमें बराबर वर्ण तथा मात्राओं का नियम पाया जाता है। जहाँ वर्ण-मात्रा का नियम निर्धारित है, वहाँ उस कविता की संज्ञा छंदसंज्ञा मे अवश्य मानी जायगी।

बहुत से वर्णवृत्त अथवा गणवृत्त छंद ऐसे हैं, जो गीतो मे भिन्न-भिन्न रागिनी और भिन्न-भिन्न तालो के आश्रय से गाए जाते हैं, जैसे प्रमाणिका, पंचचामर इकताला में और मनहरन चौताला मे, भुजंगप्रयात झपताल में, तोटक तिताला में तोमर रूपक ताल मे मंदाक्रांता आदि गाए जाते हैं। इसी प्रकार मात्रिक छंद जैसे दिग्पाल, राधिका, कुण्डलसार, हरगीतिका आदि यथोचित तालों के आश्रय पर गाए जाते है और उनका प्रचार भी अधिकतर पाया जाता है।

परंतु कुछ गीत ऐसे भी है और गाए जाते हैं, जिनमें बराबर मात्रिक नियम प्रत्येक चरण प्रति पाए जाते हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार के कोई गीत मात्रिक सम, कोई विषम, कोई अर्द्धसम छंदों की संज्ञा में आते हैं। किंतु इनका छंद-संबंध होते हुए भी छंदग्रंथों में विवरण नहीं आया है।

इस क्षति की पूर्ति के लिये हम यहाँ यथावकाश जिन-जिन छंदो के योग से जो-जो गीत जिस-जिस ताल के बनते है, उनका विवरण सूक्ष्म रीति से करते हुए कुछ उदाहरण उद्धृत करते हैं, जिससे विद्यार्थी छंद-ज्ञान प्राप्त करते हुए गीत-ज्ञान का भी अनुभव कर सकें। गीत-रचना ताल-ज्ञान होने से वज़न पर ही निर्माण हुआ करती है। परंतु कौन-कौन छंद से कौन कौन स्थायी और कौन कौन अंतरे बनते है, इसके बोध कर लेने के मार्ग को हम कुछ तो छंदों के साथ पहले ही कह आए हैं, और कुछ यहाँ लिखते हैं, जिससे विद्यार्थी साहित्य और संगीत दोनो की रचना का अनुभव कर सकें।

उदाहरण

निम्न-लिखित गीत की स्थायी चौपाई का एक चरण रखने से बनती है और अतरे इसके चौपाई के दो चरण रखने से बन जाते है और यह चीज़ तिताला में गाई जाती है। यथा—

गीत (ठुमरी)

स्थायी (चौपाई का १ चरण) रसिक रसीली बनसो तेरी।

पलटा ,, ,, २ ,, रसिक रसीली मन उरझीला रंग
रँगीली बनसी तेरी ॥ रसिक० ॥

अंतरा ,, ,, २ ,, तान भरत मन हरत 'बिहारी' पियत
अधर रस अधिक छबीली।

अंतरा (चौपाई का २ चरण) अधिक छबीली गरब गसीली गुन
गरबीली बनसी तेरी ॥ रसिक० ॥

पुनः

निम्न-लिखित गीत की स्थायी और पलटा ये दोनो पद्पादाकुलक छंद के दो चरण रखने से बन जाते हैं, और इसके ४ अंतरे लावनी के (जो कि ताटंक के अंतर्गत हैं) चार चरण रखने से बन जाते है। आगे उदाहरण देखो—

गीत, ताल दादरा—रागिनी सारंग

पद्पादाकुलक—मन होत तुम्हें देखत रइए ;
छिन छोड़ अलग कहुँ ना जइए ।

लावनी—मृदुल सुभाव मोहिनी मूरति इन अँखियन बिच धर लइए ;
मीठे बचन सुनत चित चाहत बैठ बिहँस कछु बतरइए ।
जब मिल जात नैंन नैंनन सों देह धरे कौ फल पइए ;
स्यामल छबि लख लगत 'बिहारी' तन-मन अरपन कर दइए ।

गीत वर्णवृत्त तथा मात्रावृत्त के सम-विषम आदि सभी प्रकार के छंदो में बनते हैं। यहाँ विस्तार होने के कारण हम अधिक उदाहरण नहीं देते है। पाठकगण थोड़े ही मे बहुत समझ लेंगे। जिन कवियो को प्रकृतिदत्त लय और स्वर तथा ताल का कुछ भी अनुभव होता है, वे तो गीत के वजन मात्र ही से निर्माण कर लेते है, और जिनको यह अनुभव नहीं है, वह इस ऊपर लिखी हुई रीति के अनुसार पिंगल-बल से छंदो का रूप (कौन छंद से स्थायी व कौन से अंतरा बनता है) समझकर गीत निर्माण कर सकते है। और, जो कवि उक्त दोनो रीतियो को छोड़कर गीत बनाने मे उद्यत होते हैं, उनके बनाए हुए गीतों मे लय-भंग-दोष (सखता) पड़े विना नहीं रह सकता। यह बात निस्संदेह समझो। जिस गीत का छंद छबीला हो और गायक सुरीला हो, फिर उस वाणी में जो आकर्षण होता है, उसे अनुभवी ही जानते है। यहाँ हम संबंध पाकर कुछ गायन विधि लिखते है।

गायन-विधि

बैठि सुखासन कंठ सम हँसमुख मोद प्रचार ;
लय स्वर ताल सम्हार में सुरत करै संचार ।

मुख प्रसन्न मुसक्यात सम नयन नासिका भौंयँ ;
सहज भाव सुखमय रहैं इनमें विकृत न होयँ ।
सुख आसन स्वर साधना देस-समय-अनुसार ;
गीत सार्थ गायन करहु लय स्वर ताल बिचार ।
सात भाँति स्वर होत हैं स, र, ग, म, प, ध, नी जान ;
तीव्र कोमलादिक सकल इनहीं में पहिचान ।
सात भाँति की होत है गायन रीति बिबेक ;
फिर इनहीं के मेल सें प्रगटत भेद अनेक ।
जिहि थल स्वर थिरता लहै तहाँ मूर्छना होत ;
याके भेद अनेक हैं जानत गायक गोत ।
राग-रागिनिन में सुखद सुंदरता हित आन ;
होत स्वरन की खींच जहँ तौन कहावत तान ।
तान कूट उनचास है सुंदरता कौ द्वार ;
राग-रागिनिन कौ सकल इनसें होत शृँगार ।
प्रथम उदारा जानिए द्वितिय मुदारा ग्राम ;
तीजें तारा युत कहे तीन ग्राम के नाम ।
अस्थाई अरु अंतरा संचारी आभोग ;
होत चार पद गीत के ध्रुपद आदि सब जोग ।
ताल अनेकन होत हैं तीन भाँति लय मान ;
प्रथमहिं द्रुत पुनि मध्य कह बहुरि बिलंबित जान ।
स्वर-बिराम पहचानिए लय बिराम पुनि जान ;
राग बिराम बखानिए तीन बिराम प्रमान ।

स्वर-बिराम ताकौं कहत जहाँ मूर्छना जोय ;
लय-बिराम वाकौं कहत लय घट-बढ़ जहँ होय ।
राग-बिराम तहाँ जहाँ बदलत राग सुठाम ;
याही कौं यति कहत हैं याहिय कहत बिराम ।
तोय बाद्य बाजे यहै एकहि नाम बिचार ;
सो हैं चार प्रकार के बरनत रीति 'बिहार' ।
एक बजत मिजराब से या अँगुरी सें जान ;
दूजौ छड़ से' बजत है तीजौ फूँक प्रमान ।
चौथो बाजत चोट सें उदाहरन क्रम जान ;
बीन सरंगा बाँसुरी ढोल आदि पहचान ।
कहे शास्त्र संगीत में याके भेद अपार ;
मैं इत सूक्षम ही कहे निरख ग्रंथ-बिस्तार ।
हैं साहित्य सँगीत सें जे अनभिज्ञ महान ;
प्रगट भए संसार में ते नर पसू-समान ।
पंच राग शिव मुख कढ़े, षष्ठम उमा प्रमान ;
शिव-शक्ती के जोग सें जानहु राग-बिधान ।
भैरव, मालव, कोष कह दीपक अरु हिंडोल ;
श्री, पुनि मेघ समेत यह राग-रूप अनमोल ।
एक-एक की रागिनी पाँच-पाँच लख लेव ;
पुनि तिनकी दासी सखी, बिबिध भेद चित देव ।
गीत-शास्त्र में है अधिक इनकौ भेद लखाय ;
यहाँ कछुक संबंध सें दियौ रूप झलकाय ।

यथा नयति कैलासं न गङ्गा न सरस्वती
तथा नयति कैलासं नगं गानसरस्वती।
वर्णन मात्रिक छंद कौ राग-रागिनी-रंग;
भई सिंधु-साहित्य की पूरन तृतिय तरंग।

स्वस्ति श्रीमन्महाराजाधिराज श्रीकाशीश्वर ग्रहनिवार पंचम विंध्येलवंशावतंस
श्रीमत्सवाई महाराजा साहब भारतधर्मेंदु सर सावंतसिंहजू देव बहादुर
के० सी० आई० ई० बिजावरनरेशस्य कृपापात्र ब्रह्मभट्ट-
वंशोद्भव कविभूषण कविराज पं० बिहारीलालविरचिते
साहित्यसागरे मात्रिकछंदादिसंगीतविषयक
प्रकरणवर्णनो नाम तृतीयस्तरंगः।

---

* चतुर्थ तरंग *

गणागण-प्रकरण

मात्रिक छंदो में जिस प्रकार टगणादि गणो का निर्माण किया गया है, उसी प्रकार वर्ण-वृत्तो में भी मगण आदि आठ गणो का निरूपण किया है। मात्रिक गण मात्राओं के सूचक संकलित शब्द हैं, और वर्णिक गण वर्णों के गुरु-लघु-सूचक संकलित शब्द हैं। किंतु दोनो में इतना अंतर है कि मात्रिक गण दोषादोष के झंझट से मुक्त हैं, और वर्ण गण शुभाशुभ के संबंध मे पड़ गए है। तीन वर्ण के प्रस्तार के आठ भेद होते हैं; जो आगे प्रस्तार से उनके रूप बतलाए जायँगे। ीं के आठ रूप अष्टगण नाम से कहे गए हैं, जिनके नाम ये हैं—म , नगण, भगण, यगण, जगण, रगण, सगण और तगण। इनमें म न भ इन चार गणो की शुभ संज्ञा है और ज र स त इन चार गणों की अशुभ संज्ञा आचार्यों ने नियत की है। छंद या प्रबंध के आदि में पूर्व के चार गण ग्राह्य हैं और पीछे के चार गण अग्राह्य। किंतु देखने में यह आता है कि जिन महाकवियो ने इस गणतत्त्व का ज्ञान भली भाँति समझा है, और इसके कुछ अंगो का नवीन निर्माण किया है, उन्हीं के कतिपय छंद ऐसे पाए गए हैं, जिनके आदि मे कुगण के प्रयोग हुए हैं। उनके कुछ उदाहरण-रूप यहाँ लिखते हैं। विद्यार्थी इन उदाहरणो को पढ़कर विस्मित न हो, न कोई इसमे शंका करें; क्योकि हम इसका समाधान आगे अच्छी तरह बतलावेंगे। हम यहाँ संस्कृत-कवियो तथा भाषा-कवियो के बहुत-से उदाहरण देना चाहते थे, किंतु विस्तार-भय से नहीं दे सकते। कुवलयानंद संस्कृत का ऐसा ग्रंथ है, जो काव्य से विशेष संबंध रखता है। उसके आदि मे "अमरी कवरी भार भ्रमरी" यह श्लोक आया है, इसके आदि मे सगण का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार भाषा-कवियो में महाकवि केशवदासजी ने ओरछाधीश (इंद्रजीत) की तथा उनके अपूर्व मंडल की अद्वितीय कविता लिखी है। उसमे कुछ छंद हमें ऐसे मिले हैं, जिनके आदि में कुगण का प्रयोग हुआ है। उनको भी यहाँ सूक्ष्म रीति से उद्धृत करते हैं—

राजा इंद्रजीत के विषय में

(१) दरशें न सुर से नरेश शिर नावत है—इत्यादि।

इसके आदि में सगण आया है।

(२) राजभार साजभार लाजभार भूमिभार—इत्यादि।
इसके आदि में रगण आया है।

रगण के विषय में

(३) हावभाव संभावना SS—इत्यादि।
इसके आदि मे रगण आया है।
(४) रंगराय की आँगुरी SS—इत्यादि।
(५) रंगराय कर मुरज मुख SS—इत्यादि।
इन दोनो के आदि में रगण आया है।
(६) रत्नाकर लालित सदां SS—इत्यादि (राय प्रवीण के विषय मे)।
इसमें सगण का प्रयोग हुआ है।

कविराजा मुरारिदानजी महाराज यशवंतसिंहजी के विषय में लिखते हैं—

दान माँझ तरुराज अरु मान माँझ कुरुराज ;
नृप जसवँत तो सम कहत ते कवि निपट निकाज।

इसके आदि में रगण आया है।

इसी प्रकार भूषण, बिहारी, मतिराम, गंग, नरहरि आदि कवियों की भी कुछ-कुछ ऐसी कविताएँ पाई जाती हैं, जिनके आदि में कुगण का प्रयोग हुआ है। इस व्याख्या को पढ़कर विद्यार्थी मन में यह शंका न करें कि उक्त कवि क्या गणागण-दोष को मानते ही नहीं थे? यदि नहीं मानते थे, तो अब क्यो माना जाता है? इसका उत्तर अब हम समाधान-पक्ष से लिखते हैं, जिससे विद्यार्थियो को किसी प्रकार का भ्रम न रहे, और गण-संबंधी प्रथा को वे अच्छी तरह समझ लें।

जिन प्राचीन एवं अर्वाचीन सत्कवियो के छंद ऐसे पाए जायँ, जिनके आदि मे निषिद्ध गण का प्रयोग हुआ हो, उन छंदों को स्फुट छंद न समझना चाहिए। यह समझना चाहिए कि यह छंद किसी ग्रंथ या पुस्तक के अंतर्गत निर्माण किए हुए हैं; क्योंकि आचार्यों का यह सिद्धांत है कि जो काव्य-प्रबंध ग्रंथ-रूप से निर्माण किया जाता है, उसके आदि ही के प्रथम छंद (मंगलाचरण) में शुभ गण का प्रयोग कर दिया जाता है। फिर आगे की कविता तथा अध्यायो में कोई भी छंद-ग्रंथ के अंतर्गत कैसे भी आते जायँ, उनमें गणों के दोषादोष का कोई विचार नहीं माना गया है। वह तो संपूर्ण ग्रंथ मंगलरूप तभी हो चुका, जब उसके मंगलाचरण में शुभगण का प्रयोग हुआ, और यह विवेचना मात्रिक या मुक्तक छंदों के लिये है; गणछंदो के लिये नहीं। क्योंकि गणछंद तो गण ही के आधार पर बनते हैं। वे तो सदैव शुद्ध ही है। उनमें गणदोष-विचार सर्वथा वर्जित है। क्योकि उनमें यदि गणदोष माना जाय, तो वे छंद निर्दोष बन ही नहीं सकते, अतएव विद्यार्थियों को समझना चाहिए कि जिन उल्लिखित उदाहरणो को हमने शंका-रूप से गणदोषी बतलाया है, उन्हीं

उदाहरणों को समाधान-रूप से निर्दोष बतलाया है। अब कोई शंका-समाधान की बात न रही। अब हम गण-विवरण का वह मार्ग दिखलाते हैं, जिस पर आगे के आचार्य चलते आए है, और आधुनिक चल रहे है, तथा भविष्य मे चलते रहेंगे। इसमें कोई पूर्वापर-विरोध नहीं है और न कोई झंझट है। गणागण के जिस नियम को संस्कृत-कवियो ने माना है और जिसका विवरण कविश्रेष्ठ भानुजी ने 'छंदःप्रभाकर' के छठवें संस्करण में लिखा है. उसी नियम को हम भी यहाँ प्रकट रूप मे प्रमाण-पूर्वक लिख देते हैं, जिसे पढ़कर विद्यार्थी लाभ उठावेंगे—

(१) पहली बात यह है कि गण का विचार मात्रिक छंदो मे माना जाता है, इसलिये कि मात्रिक छंद गुरु-लघु-नियम तथा वर्ण-क्रम से स्वतंत्र हैं।

(२) वर्णवृत्तो के छंद वर्ण एव गणबद्ध होते है, उनमें वर्णों का लघु-गुरु-न्यास नित्य है, इस कारण वर्णछंदो में गण-दोष अमाननीय है।

(३) दोहा मात्रिक छंद है, तथापि इसके प्रथम चरण और तीसरे चरण मे विशेषतः जगण का निषेध है।

(४) चौथी बात यह है कि ग्रंथ और काव्य के आदि ही मे शुद्ध गण का प्रयोग किया जाता है, प्रत्येक छंद में नहीं। यदि हो सके, तो प्रत्येक अध्याय के आदि मे भी शुभ गण का प्रयोग किया जाय, यह विशेषतर उत्तम है।

(५) किसी भी छंद के आदि में त्रिवर्ण में देवतावाची, गुरुवाची, मंगलवाची शब्द आ पड़े, तो गण तथा दग्धाक्षर का दोष नहीं माना जायगा।

(६) छंद के आदि में यदि गण-दोष आ जावे, तो उस दोष के निवारणार्थ द्विगण-शुद्धि कर ले, फिर कोई दोष नहीं रहता।

(७) जिस छंद के आदि मे गणपूरित शब्द न हो अर्थात् शब्द गण से न्यून या अधिक हो, उसे खंडित गण कहते हैं। ऐसे शब्द मे गण-दोष नहीं लिया जाता। यथा—

> लगाव मन तुम रैन-दिन हरि-चरनन में ध्यान ;

यहाँ लगाव जगण-पूरित शब्द है। इसलिये दूषित है।

> बड़े बड़ाई को चहत यही बड़न की बान।

यहाँ भी जगण है, परंतु गणपूरित शब्द नहीं है, अर्थात्, बड़े—ब, यहाँ बड़े ये दो अक्षर का एक शब्द है और ब यह एक अक्षर दूसरे शब्दका आन मिला है, इसलिये स्वयं खंडित है। ऐसे त्रिवर्ण मे गण का दोष ग्राह्य नहीं है। इसी प्रकार और भी जानो।

उक्त व्याख्या के प्राचीन प्रमाण

(१) ग्रंथस्यादौ कविना बोद्धव्यः सर्वथा यत्नात्, अन्यत्रापि।

पंच झ, ह, र, भ, ष वर्ण यह आदि न राखौ कोय ;
मंगल सुरगुरु युक्त हों, तो फिर दोष न होय ।
रीति गणागण की कही इहि बिधि बरन बिधान ;
यह बिलोकि बिद्यारथी पालहिं पंथ प्रमान ।

गण-चक्र

सं०	गण नाम	रूप	देवता	फल	उदाहरण	वर्णबोध	संज्ञा
१	मगण	SSS	भूमि	श्रीप्रद	श्रीराधा	त्रि गुरु	शुभ
२	नगण	॥।	स्वर्ग	सुखप्रद	रमण	त्रि लघु	शुभ
३	भगण	S॥	शशि	यशप्रद	मोहन	आदि गुरु	शुभ
४	यगण	।SS	जल	वृद्धिप्रद	मुरारी	आदि लघु	शुभ
५	जगण	।S।	सूर्य	भयप्रद	सुजान	मध्य गुरु	अशुभ
६	रगण	S।S	अग्नि	दाहप्रद	संकटा	मध्य लघु	अशुभ
७	सगण	॥S	वायु	भ्रमणप्रद	समता	अंत गुरु	अशुभ
८	तगण	SS।	आकाश	शून्यप्रद	संसार	अंत लघु	अशुभ

यहाँ गणों के गुरु-लघु-रूप प्रस्तार-क्रम से न लिखकर उस क्रम से लिखे गए हैं, जो कविता में शुभाशुभ भाव से ग्रहण किए जाते हैं । गणागण का संपूर्ण प्रकरण हमने एक ही कवित्त में बतला दिया है, उसे नीचे लिखते हैं । विद्यार्थियों के लिये यह एक ही कवित्त पर्याप्त होगा । यथा—

तीन गुरु, तीन लघु, आदि गुरु आदि लघु,
म, न, भ, य चार यही शुभ गण माने हैं ;
मध्य गुरु, मध्य लघु, अंत गुरु, अंत लघु,
ज, र, स, त चार ये अशुभ गण आने हैं ।
भूमि नाक चंद्र नीर सूर अग्नि वायु नभ,
पूर्व सुखप्रद, पर दुःखप्रद भाने हैं ;

बिमल 'बिहारी' यों बिचार कर आछी भाँति
एक ही कबित्त में गणागण बखाने हैं।

❀ ❀ ❀

वर्णवृत्त-प्रकरण

समवृत्त-वर्णन

वर्ण-छंद-लक्षण

वर्णन संख्या वर्ण क्रम चारिहु चरन समान;
वर्णवृत्त सम तिहि कहत जे कबि चतुर सुजान।
ताके छब्बिस नाम हैं, ताके भेद अनेक;
शेष पिंगलाचार्य ही राखत कबि की टेक।
छब्बिस अक्षर लौं कहे छब्बिस छंद प्रमान;
छब्बिस ताके नाम हैं, सो इत करत बखान।

छंदशास्त्र के दश अक्षर

म य र स त ज भ न गल यहै दस अक्षर बड़भाग;
काव्य-जगत इनसे रच्यौ जय जय पिंगल नाग।

छंद-नामावली

मुख्य छंद २६ हैं

छप्पय

उक्था अत्युक्था समेत मध्या च प्रतिष्ठा;
सुप्रतिष्ठा गायत्रि बहुरि उष्णिक शुभ निष्ठा।
नाम अनुष्टुप बृहति पंक्ति त्रिष्टुप पुनि जगती;
अतिजगती शर्करी सु अतिशर्करी सु सुमती।
अष्टी अत्यष्टि धृति अतिधृती कृती प्रकृति आकृति वृकृति;
संस्कृति अतिकृति उत्कृती छब्बिस छंद 'बिहार' रति।

अर्थात् (१) उक्था, (२) अत्युक्था, (३) मध्या, (४) प्रतिष्ठा, (५) सुप्रतिष्ठा, (६) गायत्री, (७) उष्णिक्, (८) अनुष्टुप्, (९) बृहती, (१०) पंक्ति,:

(११) त्रिष्टुप्, (१२) जगती, (१३) अतिजगती, (१४) शर्करी, (१५) अति-शर्करी, (१६) अष्टि., (१७) अत्यष्टिः, (१८) धृतिः, (१९) अतिधृतिः, (२०) कृतिः, (२१) प्रकृतिः, (२२) आकृति , (२३) वकृति., (२४) संस्कृतिः, (२५) अतिकृतिः और (२६) उत्कृतिः ।

इक अक्षर उक्था कहौ अत्युक्था द्वै जान ;
त्रै अक्षर मध्या कह्यौ चतुर प्रतिष्ठा मान ।
सुप्रतिष्ठा पुनि नाम यह पंच बरन कौ जान ;
गायत्री षट बरन सें हौं इत करत बखान ।
एक - एक के भेद बहु को कहबै किहि लोक ;
हौं इत वे बरनन करत सुनत लगत जे नाक ।
उदाहरण गण छंद के सूक्षम कहे नवीन ;
धर्म-नीति के विषय कौ बरनन ता बिच कीन ।
लघु कौ गुरु गुरु कौ लघू पिंगल मत कह जात ;
लिखिबे पर निर्भर नहीं पढ़िबे पर दरसात ।
लिखतन में गुरु लिखत हैं पढ़तन लघु निरधार ;
यह बिधि पिंगल रीति लख पढ़िहैं सुकबि सम्हार ।

धर्म-नीति-विषय

गायत्री (षडक्षर छंद) ६४

विमोहा (र० र०)

धर्म धं धारना, मोक्ष औ' कामना ;
नाहिं एकौ जिन्हैं, व्यर्थ जानौ तिन्हैं ।

विद्युल्लेखा (म० म०)

आयू कर्मो विद्या, मृत्युः संपत्सद्या ;
जे माँगें ना पैये, गर्भै सें लै ऐये ।

मालती (ज० ज०)

लिखो जस भाल, फलै तस हाल ;
कसै कोउ फैंट, सकै नहि मैंट ।

उष्णिक् (सप्ताक्षरा छंद) १२८

समानिका (र० ज० ग०)

भाग्य हू चलौ सजै, पै उपाय ना तजै ;
यत्न जो नहीं मढ़ै, तैल ना तिली कढ़ै ।

लीला (भ० त० ग०)

भाग्य नहीं मानिए, यत्न सदा ठानिए ;
यत्न जबै ना फलै, भाग्य तबै है भलै ।

सवासन (न० ज० ल०)

इक पहिया लह रथ नहिं चालह ;
सिध नहिं स्वारथ बिन पुरुषारथ ।

मदलेखा (म० स० ग०)

ज्यों मिट्टी कर सारा, राचै कुंभ कुम्हारा ;
त्यों जो कर्महिं लावै, आपौ आपहि पावै ।

अनुष्टु् (अष्टाक्षर छंद) २५६

मानवक्रीड़ा (भ० त० ल० ग०)

इच्छित जो कार्य भवै, यत्नहि सें सिद्ध सबै ;
सिंह मृगा डाढ़ धरै, आपहि जाके न परै ।

प्रमाणिका (ज० र० ल० ग०)

कुलीन चित्त चैन हो, परंतु मूर्ख ऐंन हो ;
न सोह मंद हीन यों, पलास गंध-हीन ज्यों ।

मल्लिका (र० ज० ग० ल०)

मूर्ख जो सजै शृंगार, सोह भलौ मौन धार ;
नेक कछू बोल दीन, सोइ तुर्त परो चीन ।

वितान (स० भ० ग० ग०)

कुल ऊँचे बिच जोई, सुत नीचौ नहि होई ;
मनि की खान महाना, तिहि से' काँच न आना ।

चित्रपदा (ल० ल० ग० ग)

कीटहु पुष्प समेवै, सीस चढ़ै पद लेवै ;
सत्तम पूजन ठानैं, पाथर देव ममानैं ।

अनुष्टुप् श्लोक

वर्ण पंचम हो छोटयौ, वर्ण षष्टम त्यों बड़ौ ;
सप्तमं लघु सम्पादे, छंदानुष्टुप् यों पढ़ौ ।

जिसका पाँचवाँ अक्षर लघु और छठा अक्षर गुरु हो और समपदों में सातवाँ अक्षर लघु आवे, उसको आठ अक्षर का अनुष्टुप् छंद कहते हैं । यथा—

जय देवि जगन्मातुर्जय देवि परात्परे ;
जय श्रीभुवनेशानी जय सर्वोत्तमोत्तमे ।
कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति यो मां स्मरति नित्यशः ;
जलं भित्त्वा यथा पद्मं नरकादुद्धराम्यहम् ।

बृहती (नवाक्षर छंद) ५१२

मणिबंध (भ० म० स०)

जग्य करै औ' बेद पढ़ै, सत्य छमा और धीर मढ़ै ;
दान सुदाया पुण्यमती, आठ तरां* है धर्मरती ।

बिंब (न० स० य०)

मद बिच सुवर्ण पैये, वह तुरत खेंच लैये ;
गुन निकट नीच होई, कर यतन लेय सोई ।

---

* प्रकार ।

पंक्ति (दशाक्षर छंद) १०२४

चंपकमाला या रुक्मवती (भ० म० स० ग०)

वृष्टि भली जैसे मरु देशा, अन्न भलौ जिहि भूषकलेशा;
धर्म भलौ जैसे इन्ह कीनें, दान भलौ त्यों दे धनहीनें।

अमृतगति (न० ज० न० ग०)

परतिय मातहु लखिए, परधन डेल निरखिए;
जिय-सम जावहि चहिए, तब सत पंडित कहिए।

प्रणव (म० न० य० ग०)

निश्चै दान निधन को कीजे, जाके द्रव्य न तिहि को दीजे;
दीजे ओषधि लखकें रोगी, वाकों काहु जु नर आरोगी।

त्रिष्टुप् (एकादशाक्षर छंद) २०४८

इंद्रवज्रा (त० त० ज० ग० ग०)

जो ग्यानि होके गति ना सम्हारै, मातंग-कैसी तन धूर डारै;
तौ ग्यान वाकौ इम है असारं, ज्यों भार-रूपं विधवा-शृंगारं।

उपेंद्रवज्रा (ज० त० ज० ग० ग०)

घृणी सकोपी उर संकधारी,
सदा असंतुष्टरु ईर्षकारी;
जियै पराए बल भाग्य भाए,
दुखी सदा ही षट ये गनाए।

उपजाति (।।ऽऽ)

अनेक बिद्या पढ़ शास्त्र गाए,
अनेक कौशल्य कला दिखाए;
जे ग्यान बेदांत बिचारवारे,
वे भी परे लोभ दुखी निहारे।

शालिनी (म० त० त० ग० ग०)

हेमा अंगा जन्म कौ का कुरंगा,
कीनों ताकों राम राजेंदु संगा:

जाकों जैसी जौन बेला सुआवै,
ताकी तैसी बुद्धि हू होहि जावै।

दोधक (भ० भ० भ० ग० ग०)

कीजे अग्र कहूँ न पयाना,
सिद्ध भयें फल होहि समाना;
कारज में कछु बिघ्न पराई,
तौ अगवान सिरें सब जाई।

भुजंगी (य० य० य० ल० ग०)

बिपत्ती कौ हेतू हितू ही भवै,
बिलोकौ लगै दूध सुर्भी जबैं;
जबै बत्स के अंग बंधा ठनैं,
वही धेनु जंघा कौ खंभा बनैं।

यहाँ ऊपर और नीचे के चरण में कौ का उच्चारण लघु होगा। छंदशास्त्र में गुरु लघु का रूप उच्चारण पर निर्भर होता है। यथा—

दीरघ कों लघु कर पढ़ै लघु हू दीरघ जान;
मुख सें प्रगटै सुख-सहित, कोबिद करत बखान।

जगती (द्वादशाक्षर छंद) ४०९६

वंशस्थविलम् (ज० त० ज० र०)

बिपत्ति धैर्य्यं रुचि कीर्त्ति में रखै,
क्षमत्व अभ्युदय में सदाँ लखै;
सभा सुभाषी श्रुत ग्यान लाइए,
सुभाव ये सज्जन के सराहिए।

स्रग्विणी (र० र० र० र०)

हर्ष संपत्ति में नेक नाहीं जिन्हें,
शोक आपत्ति में नेक नाहीं जिन्हें;

युद्ध में बीरता चित्त जाके ठनें,
पुत्र ऐसे कहूँ मातु कोऊ जनें।

भुजंगप्रयात (य० य० य० य०)

भयं कोध आलस्य निद्रा बखानो,
तथा दीर्घसूत्री व तंद्रा बखानो;
छहौं दोष ये पास सें शीघ्र खोवै,
जिसे लक्ष्मी को हियें चाह होवै।

प्रमिताक्षरा (स० ज० स० स०)

लघु बस्तु संगठन रूप धरै,
मन होय चाह वहि काज करै;
तृन जोर जोर गुन होय जबै,
गजराज मत्त कहँ बाँध तबै।

मोतियदाम (ज० ज० ज० ज०)

मनुष्यन कौ कुल थोरहु होय,
तऊ नित संग घनो सुख सोय;
सुतंदुल भूरि भुसी सँग छोड़,
उगें नहिं कीजिय यत्न करोड़।

तरलनयन (न० न० न० न०)

जननि जनक सुहृद नितहु,
करत रहत सहज हितहु;
अवर मनुष अरथ परख,
करत रहत हितह हरख।

अतिजगती (त्रयोदशाक्षर छंद) ८१९२

तारक (स० स० स० स० ग०)

धरमादि पदारथ चार गिनाए,
यह चारहु जीवहिं हेत बनाए;

जिन्ह याहि हन्यौ तिन्ह का नहिं हायौ ,
जिन्ह याहि बचाव सु का न बचायौ ।

कलहंस (स० ज० स० स०, ग०)

परहेत जीव धन वारहि जोई ,
अति ग्यानवान जग में नर सोई ;
यह है अनित्य अस चित्तहिं जोई ,
परस्वार्थ माहिं लगवे भल सोई ।

शर्करी (चतुर्दशाक्षर छंद) १६३८४

वसंततिलका (त० भ० ज० ज० ग० ग०)

ये मांस-मूत्र-मल का थल है शरीरा ,
ऐसा विचार जस में जग होहि मीरा ;
संसार मध्य जस ये जिहि हाथ आया ,
है सत्य फेर उसने कहु क्या न पाया ?

चक्रविरति (भ० न० न० न० ल० ग०)

देहहु, गुणहु युगल यह कहिये ,
अंतर अधिक दुहुँन बिच लहिये ;
देह रहत थिर निज-निज बयलौं ,
मंडित गुण जग प्रलय समय लौं ।

अनंद (ज० र० ज० र० ल० ग०)

बिहंग कोस सौहु ते जु दृष्टि देत है ,
उतेक दूर सों सुभक्ष देख लेत है ;
सुई कुजोग पाय समै के प्रभाव सें ,
लखै न जालबंध परै फंद आयकें ।

अतिशर्करी (पंचदशाक्षर छंद)

मालिनी (न० न० म० य० य०)

गगन ग्रहण माहीं चंद्र औ' सूर्य पेखे,
बहुरि द्विरद सर्प बंधनग्रस्त देखे;
सुबुध सुजन प्रानी पास दारिद्रता है,
अस लख हम जानी भाग्य ही सर्वथा है।

चामर (र० ज० र० ज० र०)

त्रास की सदैव त्रास मानिये तहाँ लगै,
त्रास खास पास में न आइ हो जहाँ लगै;
त्रास होय पास फेर त्रास नाहिं आनिये,
त्रास होय ह्रास सो उपाय शीघ्र ठानिये।

मनहंस (स० ज० ज० भ० र०)

निज द्वार पै यदि आय अतिथि शत्रु हू,
सनमान दीजिय ताहि तासम तत्र हू;
कुउ बृत्तखंडक बृत्त के ढिग आवही,
वह बृत्त तापर छाँह आपनि छावही।

सीता (र० त० म० य० र०)

साधु ग्यानी संत प्रानी रीति ये ऐसी धरैं,
निर्गुनी हू होहि कोऊ तोउ ये दाया करैं;
चंद्रमा ज्यों चाँदिनी की किर्न सोरी नेह में,
दिव्यता से युक्त डारै नीच हू के गेह में।

अष्टिः (षोड़शाक्षर छंद) ६५५३६

चंचला (र० ज० र० ज० र० ल०)

जो मनुष्य जीव मार खात मांस जाहि केर,
देखिये सुजाँच कें दुहून में इतेक फेर;

एक कों निमेष मात्र स्वाद कौ सु भान होत,
दूसरौ गरीब दीन जान से बिजान होत।

पंचचामर (ज० र० ज० र० ज० ग०)

हमार ये तुम्हार ये पराव ये निहारहीं,
कुबुद्धि मूर्ख लोग हो बिचार ये बिचारहीं;
बिचारवान ग्यानवान बुद्धिमान जे सहो,
उन्हें समस्त बिस्व हो कुटुंब रूप भासही।

अत्यष्टिः (सप्तदशाक्षर छंद) १३१०७२

शिखरिणी (य० म० न० स० भ० ल० ग०)

सुहृज्जन को शोभा लखहु इमि ज्यों श्रीफल फरयौ,
बहिर्शोभा नाहीं सरस रस त्यों भीतर भरयौ;
कुमित्रै यों देखौ बदरि फल जैसौ रँग रखो,
बहिर्शोभा शोभा निरस अति अंतर्गहँ लखो।

मंदाक्रांता (म० भ० न० त० त० ग० ग०)

बुद्धी-बिद्या-सहित लखिये जो कहूँ दुष्ट काहीं,
तोऊ ताकौ छनिक करिये नेक बिस्वास नाहा;
कोऊ कारौ सरप - मनि सें कांतिधारी सहा है,
तौ का क्रोधो गरलधर वो त्रासकारी नहीं है?

धृतिः (अष्टदशाक्षर छंद) २६२१४४

चंचरी (र० स० ज० ज० भ० र०)

दुष्ट संग जु मित्रता अरु सत्रुता कछु कीजिये,
दोउ में नहिं नोक होवहि चित्त में यह दीजिये;
अग्नि केर अँगार लीजिय हाथ, हाथ जरावही,
सोइ सीतल होइके कर कालिमाहिं लगावही।

अतिधृतिः (ऊनविंशत्यक्षर छंद) ५२४२८८

शार्दूलविक्रीड़ित (म० स० ज० स० त० त० ग०)

साँचे सज्जन संत सत्यवक्ता जे शांति में लीन हैं,
प्रेमी प्रेम प्रशस्थ्य पंथ पथिका जे दंभ सें हीन हैं;
केतौ क्रोध कराय कोउ इनकों ऐ क्रोध-राते न हों,
केतिक डारत जाव फूस अगिनी पै सिंधु ताते न हों।

कृतिः (विंशत्यक्षर छंद) १०४८५७६

गीतिका (स० ज० ज० भ० र० स० ल० ग०)

जन दुष्ट के मन में कछू मुख सें कछू बतरात है,
अरु कार्य के करिबे समै कछु और ही दरसात है;
अरु श्रेष्ठ सज्जन साधु की यह रीति पंडित गावहीं,
मन में वही, मुख में वही, करनी वही दिखरावहीं।

प्रकृतिः (एकविंशत्यक्षर छंद) २०९७१५२

स्रग्धरा (म० र० भ० न० य० भ० य०)

जौनै देसै नहीं है सतजन समुदं, मान-सम्मान नाहीं,
नाही बंधू सुमित्रं गुनिजन सुखदं, जोविका स्थान नाहीं;
बिद्या-प्राप्ती न नेकौ जिहि थल लखिये, ना कोऊ धर्म सेवै,
तौनै देसै बसै ना इक छन भर हू शीघ्र ही त्याग देवै।

इसके आगे आकृतिः संज्ञक अर्थात् २२ अक्षर से लेकर उत्कृति. संज्ञक अर्थात् २६ अक्षर तक के छंद कहे जायँगे। यद्यपि छंदशास्त्रानुसार उनके नाम पृथक्-पृथक् लिखे गये हैं, तथापि उन सबका एक नाम 'सवैया' भी है; अर्थात् कविजन प्रायः उनको सवैया ही कहते हैं। सवैयाओ के अनेको भेद छंदशास्त्र में पाए जाते हैं, किंतु यहाँ हमने उन्हीं सवैयाओ का निर्माण किया है, जिनका पढ़ाव सुढार, सुंदर है; और जो सुनने से अत्यंत प्रिय लगते हैं।

भेद सवैया छंद के कहे कबिन बहुभाव;
यहाँ कथन तिनकौ करत, जिनकौ ललित पढ़ाव।

जैसे रत्न अनेक मैं नौखी नौखी बात ;
बिबिध सवयन में तथा पंद्रह मोहिं सुहात ।
तिनहूकौं सूक्षम कहत, बढ़त देख बिस्तार ;
भूल-चूक जहँ पायहैं, लैहैं सुकबि सम्हार ।

मुख्य सवैयाओं के नाम—छप्पय

सात भगन गुरु एक बरन बाइस मदिरा के ;
तेइस वागीश्वरी यगन मुनि लग धर ताके ।
सुमुखी जगनौं सात अंत में गुरु लघु दीजे ;
सात भगन गुरु होय मत्तगज नाम भनीजे ।
अरु सात भगन ग ल अंत में नाम चकोर बखानिये ;
पुनि एक नगन षट जगन ल ग सैलसुता पहचानिये ।
गंगोदक बसु रगन, सगन बसु दुमिल साधिक ;
मुक्तहरा बसु जगन बाम मुनि जगन यगन इक ।
सतभ इकर अरसात भगन बसु कहत किरीटी ;
आठ सगन गुरु एक सुंदरी ध्वनि जिहि माठी ।
अरबिंद सगन बसु अंत लघु पच्चिस अक्षर मानिये ;
सुख आठ सगन ल ल अंतकर छब्बिस बरन बखानिये ।

क्रमशः उदाहरण

आकृतिः (द्वाविंशत्यक्षर छंद) ४१९४३०४

मदिरा (भ० ७—गा०)

आश्रय ये सब भाँति भलौ सुखदायक है दुखगंजन है ;
राग पराग सुभागन पाय 'बिहार' करै उर मंजन है ।

या मन मौजि मलिंदहु कौं अब ठौर यही भय-भंजन है ;
श्रीपति श्रीमनमोहन के पद-कंजन मैं मनरंजन है।

वृकृतिः (त्रयोविंशत्यक्षर छंद) ८३८८६०८

वागीश्वरी (य० ७—ल० ग०)

दिनौं रात सोवै हिये चिंत्य होवै बिषै बीच राखैं सदा ध्यान है
बड़ी मिर्च खावै व मूली चबावै सुकत्थाहि खावै बिना पान है
दवा व्यर्थ खाकैं करै केलि जाकैं पियै पानि आकैं तजै आन है
समै प्रात आनौ तबै भोग ठानौ तु जानौ बड़ी वीर्य की हान है

सुमुखी (ज० ७—ल० ग०)

जिन्हैं कछु बोध बिबेक नहीं, तिनकौं सतसंग कभूँ न करै।
इसी प्रकार के चारो चरण बना लो।

मत्तगयंद (भ० ७—ग० ग०)

बैठि कहूँ नखतें न लिखै,
तृन टोरहु नाहिँ, न दाँत किटावै ;
जीभ चलाय, न पाँव हलाय,
न अंग बजाय, न नग्न नहावै।
भोजन भोग लगाये बिना
न करै, नहिं काटिकैं कौरहिं खावै ;
औगुन जे कबहूँ न करै,
इन औगुन तैं धन राज नसावै।

पुनः

धोवत पाँव जो सूक्षम हो,
अरु स्वल्प मुखारी करै मन भावै ;
सोवत साँझ औ' प्रात समै,
परियंक परै नहिं बस्त्र बिछावै।

मंदिर पाक मलीन रखै,
नित नूतन क्रोध कलौ बगरावै ;
जो नर ऐसी रहै रहनी,
तिहि के फिर लछमी पास न जावै ।

चकोर (भ० ७—ग० ल०)

मॉगन सें जिमि मान नसै, तिमि आलस सें नसि जात सरीरा ।

इसी प्रकार के चारों चरण समझो ।

शैलसुता (न० १—ज० ६ ल० ग०)

जय जग-पावनि दुःख-नसावनि, शक्ति-सुरक्षिणि सत्य-व्रते ;
जय जय मंगल-मुक्ति-प्रदायिनि श्री-सुखदायिनि शैल-सुते ।

इसी प्रकार के चारों चरण समझो ।

संस्कृतिः (चतुर्विंशत्यक्षर छंद) १६७७७२१६

गंगोदक (र० ८)

नाकिये ना कुआ, खेलिये ना जुआ,
खैंचिये चाप ना दीजिये जामनी ।

इसी प्रकार के चारों चरण समझो ।

दुर्मिल (स० ८)

भव में भल आपुने चाह भिया*,
भज रामसिया भज रामसिया ।

इसी प्रकार के चारों चरण बनाओ ।

मुक्तहरा (ज० ८)

न राग न रंग न संग न ढंग,
न न्याय न नीति न चौंप न चाव ;

---

* भिया = भाई । देव आदि प्राचीन कवियों ने भाई के स्थान में भिया का प्रयोग अनेक स्थलों में किया है ।—संपादक

न प्रेम न नेम न छेम न धर्म,
न कर्म न शर्म न ठौर न ठाँव।
'बिहार' अचार बिचार न सार,
न रीति न प्रीति न गीत न गाव;
न रीझ न बूझ न भक्ति न भाव,
तहाँ कुछ भूलिहु आव न जाव।

वाम (ज० ७—य० १)

रहै जग बीच अमित्र भलैं,
पर मूरख मित्र कभूँ नहिं कीजे।

इसी प्रकार के चारो चरण समझो।

अरसात (भ० ७—र० १)

द्रव्य अनीति की संचय जे,
पर बिघ्न लखै औ' सुभाव के तीख हैं;
मित्र बनैं मिल घात करैं,
अनहित्य तकैं अरु चित्त के चीख हैं।
बारबधून के दास रहैं,
नित पाप करैं नहिं मानत सीख हैं;
ते दिन मौज कछू ही करैं,
औ' कछू दिन में फिर माँगत भीख हैं।

किरीटी (भ० ८)

और जु जाय सुजाय भलें,
पर बात यही जब बात न जावह।

इसी प्रकार के चारों चरण समझो।

आतकृतिः (पंच वशत्यक्षर छंद ३ ५५४४३२

सुंदरी (स० ८ ग०)

जग में नर जेती कमाई करै, तिहि केर दसांस सुधर्म में आनें ;
अरु ब्रह्ममुहूरत में उठिकें हरि नाम जपै परलोक के लानें ।
मिहमान कौ आदर मान करै अरु भिच्छुक कों कछु दै सनमानें ;
इतनी सब बातें 'बिहार' भनें करबे कौं कहीं हैं ग्रिहस्त के लानें ।

अरविंद (स० ८ ल०)

जितनी जग माँझ लहै गुरुता, लघुताहु चलै तब लागत नीक ।

इसी प्रकार के चारों चरण समझो ।

अथोत्कृतिः (षड्विंशत्यक्षर छंद) ६७१०८८६४

सुख (स० ८ ल० ल०)

जग में नर जन्म दियौ प्रभु ने मृदु भाषहु बोल सुराखत लाजहु ;
सतकर्म करै सतबृत्त बनै समरत्थ रहै नित ही परकाजहु ।
धरवै मन धीर 'बिहार' सदा करवै करनी जिहि में जस छाजहु ;
सतसंग सदा सुख सौं सजवै तजवै भ्रम कौ भजवै ब्रजराजहु ।

❀ ❀ ❀

वर्णसमांतर्गत दंडकनिरूपण

दोहा

छब्बिस अक्षर तें अधिक ताकौ दंडक जान ;
साधारण दंडक इकैं, दूजैं मुक्तक मान ।
साधारण दंडक कहे ते कहिये गण-युक्त ;
मुक्तक तिनकों कहत जे गण-बंधन सें मुक्त ।

चक्र—साधारण दंडक तथा मुक्तक दंडक

संख्या	साधारण दंडक	गण संख्या	वर्ण संख्या	संख्या	मुक्तक दंडक	वर्ण संख्या	ग ल नियम
१	चंद्रवृष्टिप्रपात	न०र०७	२५ वर्ण	१	मनहर	३१ वर्ण	अंत गुरु
२	मत्तमातंग लीलाकर	र०६वा अधिक	२७, ३०, ३३, इ०	२	जनहरन	३१ वर्ण	ल३० ग१
३	कुसुमस्तवक	स० ६ =	=	३	कलाधर	३१ वर्ण	ग ल १५ अंत १ ग
४	सिंहविक्रीड़	य० ६ =	=	४	रूप घनाक्षरी	३२ वर्ण	अंत ल
५	शालू	त१ न ८ ल ग	२६ वर्ण	५	जलहरण	३२ वर्ण	अंत ल ल
६	त्रिभंगी	न ६ स २ भ म स ग	३४ वर्ण	६	डमरू	३२ वर्ण	सर्व ल
७	अशोकपुष्प मंजरी	ग ल यथेच्छ	यथेच्छ	७	कृपाण	३२ वर्ण	अंत ग ल
८	अनंगशेखर	ल ग यथेच्छ	यथेच्छ	८	विजया	३२ वर्ण	अंत ललल

सूचना—ये मनहरादि ८ छंद यहाँ मुक्तक दंडक के भेदों मे से लिखे गए हैं, और ३३ वर्ण का एक देव घनाक्षरी दंडक होता है। वह मुक्तक का ९वाँ भेद होता है, जिसे आगे लिखेंगे।

साधारण दंडक लिखे लक्षण सहित सुभाव ;
उदाहरण तिनके कहत जिनकौ सरस पढ़ाव।

साधारण दंडको के भेद यथोचित चक्र में बतलाए गए हैं, परंतु यहाँ उदाहरण उन्हीं दंडकों के लिखते हैं, जिनका पठन कर्ण-प्रिय है। यथा—

शालू (त० १ न० ८ ल० ग०)

जैसें सुपन बनत सब नव नव ,
जगत मिलत नहिं कछुक लहन कौं ;

तैसें सकल बिभव सुख दुख यह
अवन-गवन मन समझ सहन कौं।
श्री संपति मनि सदन सुमन बन,
तन धन जन नहिं कवन रहन कौं;
छाया-सदृश छिनक सब नसजत,*
जस अपजस बस रहत कहन कौं।

त्रिभंगी (न ६, स २, भ म स ग)

कबहुँक बिरहिनि कबहुँक मनहर,
बन बन होयँ दिमानें रससानें प्रेम-भुलानें;
यहि बिधि नित नव छलन छदम रच,
निकट प्रिया तुम आनें मनमानें मंगल ठानें।
यहि कर हित न अवर कछु समझहु,
दरसन प्यास तुम्हारी बलिहारी रूप-बिहारी;
निसदिन लगत रहत कब निरखिय,
प्रिय बृषभानदुलारी सुकुमारी राधह† प्यारी।

अनंगशेखर (ल ग यथेच्छ)

बनाय जाव और गाय कोई ईस और
गाय कोइ ब्रह्म और गाय कोइ शक्ति अंग है;
'बिहार' जाग जक्त देव देय भाव भक्ति,
वोहि ब्रह्म वोहि शक्ति वोहि ईस जीव जंग है।
है‡ जीव ब्रह्म भिन्न जो बिबेक बुद्धि छिन्न,
जो अग्यान जान लिन्न तौ न भेदभाव भंग है;

---

* नसजत = नष्ट हो जाता है। † राधह = राधा। ‡ है का उच्चारण लघु होना चाहिए।

समुद्र औ' तरंग दोउ होयँ एक संग सो
न चीन्ह जाय रंग का समुद्र का तरंग है।

मुक्तक दंडक कवित्त

मुक्तक हू के भेद बहु कहे कबिन सिरमोर;
जे कहतन नीके लगत ते कहियत इहि ठौर।
जाके चारिहु चरन मैं अक्षर केर प्रमान;
गण बंधन सैं मुक्त हैं, मुक्तक ताहि बखान।
कहुँ कहुँ लय अरु ढार हित गुरु लघु रखे निमित्त;
याही कौं मुक्तक कहत, याही कहत कबित्त।
इक मनहर अरु जनहरन, तृतिय कलाधर जान;
इकतिस अक्षर के यहै तीनौं भेद बखान।
आठ आठ पुनि आठ पुनि सात बरन पद देव;
सोरह पंद्रह पर विरति, इमि कवित्त रच लेव।
कहुँ बसु बसु मुनि बसु परत, कहुँ मुनि निधि मुनि आठ;
जामै लय बिगरै नहीं, कर कबित्त सोइ पाठ।
पद योजन से देखिए पृथक पृथक क्रम भाँत;
लय योजन से देखिए एकहि क्रम आ जात।
चरन चरन की भिन्नता है सबमैं सब ठाम;
सोरह पंद्रह बरन पर है सबको बिश्राम।
पद-रचना कैसहु करै, लय कौ वजन ममात;
तीन आठ इक सात कौ क्रम सबमैं मिलि जात।
गुरु लघु कौ कछु नियम नहिं, लय पर राखै ध्यान;
अंत चरन होवै त्रिगुरु, या इक गुरु परिमान।
सम सम शब्दन को धरै, बिषम बिषम सम देय;
तौ कबित्त मन कौ हरन अति सुंदर रच लेय।

है कबित्त सब एक ही इकतिस वर्ण सुहात;
किंचित गुरु लघु नियम से भिन्न नाम हो जात।

उदाहरण

(१) ३ अष्टक १ सप्तक का मनहर कवित्त—३१ वर्ण

राम-संप्रदा कौ चाह स्याम-संप्रदा कौ होय,
चाहै भजै शक्ति चाह सेवह सिवालौ है;
कहत 'बिहारी' जैन आरिया कबीरी होय,
गावै ग्रंथ साब चाह देखहि दिवालौ है।
लाम इसलाम पारसीनी चाह चीनी होय,
चाहै मत ईसा मत सबकौ निरालौ है;
सुनो मतवालो होय कोई मतवालौ वही
होय मतवालौ जौन होय मतवालौ है।*

आठ-आठ-सात के क्रम से यह कवित्त मनहर नाम का हुआ। इसी कवित्त के गुरु वर्णों को लघु उच्चारण कर पढ़ो, किंतु अंत का अक्षर एक गुरु उच्चारण कर पढ़ो, तो यही मनहर कवित्त जनहरण नाम का कवित्त हो जाता है। उच्चारण पर निर्भर है, क्योकि जनहरण कवित्त ३० लघु अंत में १ गुरु मिलकर ३१ अक्षर का होता है। यथा—

(२) जनहरण कवित्त—३१ वर्ण

हर हर भज मन (८) हर हर भज मन (८) हर हर भज मन (८)
हर हर भज रे। (७)

इसी प्रकार के चारो चरण बनाओ।

इसी कवित्त की पद-योजना मे यदि १५ गुरु लघु क्रमशः आ जायँ, और अत में एक गुरु हो, तो यह कलाधर नाम का दंडक हो जायगा। यथा—

* इस कवित्त में कवि ने केवल प्रेम करनेवाले को ही ईश्वर (ब्रह्म) की प्राप्ति का यथार्थ अधिकारी मानकर यथार्थ मतवाला कहा है। अकबर इलाहाबादी ने एक दूसरे ढंग से इसी सिद्धांत को अपने इस शेर में कहा है—"असल अल्लाह से लगावट है, वरना मज़हब में सब बनावट है।"—संपादक

कलाधर कवित्त—३१ वर्ण, १५ गुरु लघु, अंत ग

राम बोल राम बोल राम बोल राम बोल,
राम बोल राम बोल राम बोल बावरे।

इसी प्रकार के चारो चरण समझो।

कलाधर दंडक के पश्चात् यहाँ कुछ दंडक (कवित्त) ऐसे लिखते हैं, जिनकी पादपूर्ति भिन्न-भिन्न प्रकार के वर्ण क्रम से हुई है। ऐसे विनियम विश्राम शब्द-संबंध के कारण केवल पठन-मात्र में प्रदर्शित होते हैं; किंतु गणना तथा लय के रूप से मिलान कीजिये, तो वही ३ अष्टक १ सप्तक का नियम सिद्ध हो जाता है, मुख्यतः लय का बोध होना चाहिए, और लय एक ऐसी वस्तु है, जिसका बोध जिसको भी होता है, प्राकृतिक ही होता है। इसी से कविता के कारण मे आचार्यों ने संस्कार को मुख्य माना है।

उदाहरण

कवित्त

ब्रज उजियारौ, नीक नंद कौ दुलारौ,
भूमिभार हर्नवारौ, दीन मोद भर्नवारौ है;
कार्यकर्नवारौ, स्वच्छ स्याम बर्नवारौ,
दुःख दीह दर्नवारौ, सुधा सौख्य ढर्नवारौ है।
कहत 'बिहारी' धनुमीन चर्नवारौ,
मनोवृत्ति पुर्नवारौ, धारधर्म धर्नवारौ है;
कंज - चक्षुवारा, देवदास रक्षवारौ,
सीस मोर पक्षवारौ, सोइ मोर पक्षवारौ है।
नीर नहवाउँरी, चढ़ाउँरी चँदन चारु,
अछित लगाउँरी, सुमाल पहराउँरी;
कहत 'बिहारी' त्यों उड़ाउँरी सुगंधि धूप,
दीपक दिखाउँरी निबेद विधि लाउँरी।
गौरि गुन गाउँरी, मनाउँरी हमेस तोहि,
माता परौं पाउँरी, यही मैं वर पाउँरी;

जानें जिन्हें गाँउरी, सलोनी मूर्ति साँउरी,
गुबिंद नीकौ नाउँरो, उन्हीं सें परैं भाँउ री।

'पानी मैं'

चारु चित्रकूट भूमि भरत मिलाप भयौ,
ताकी कहौं बात कछू भक्ति-रस सानी मैं;
नैंन के मिलत पार प्रेम कौ रहौ न कछू,
भाषत बनै न भास रूप ही बखानी मैं।
कहत 'बिहारी' रामचंद्र सील-सिंधु आप,
भ्रातहिं बिलोकि भये गदगद बानी मैं;
नृपति कुमार सुकुमार श्रीभरतजू कीं,
पानी भरीं आँखैं देख आँखैं भरीं पानी मैं।

पुनः

तीरथ अनेक करै मंत्र अभिषेक करै,
खेल करै कूँद करै गावै राग बानी मैं;
ब्याह संसकार करै पर-उपकार करै,
चाह रहै ग्यानी चलै चाह अनग्यानी मैं।
कहत 'बिहारी' पर काहू में न होवै लिप्त,
सबसें बिलग रहै ध्यान चक्रपानी मैं;
जगत में ऐन रहै ऐन सुख चैन रहै,
रैन रहै ऐसी ज्यों पुरेन रहै पानी मैं।

मम पितामह-कृत

कवित्त

भारत अपार महा भीष्म - प्रनपाल नाथ,
भारई बचाए बाल घंटा टोर डारो तैं;

दायासिंधु साँचौ तू सुदामा कौ दरिद्र मेटो,
सुनत पुकार दौर गज को उबारो तैं।
कीन्ही है सु भक्ति पच्छ द्रौपदी बढ़ाय चीर,
कहत 'दिलीप' सीस मोरपच्छ धारो तैं;
राधा-प्रान-प्यारो लाल नंद कौ दुलारो सुन,
पीत पटवारो मोह काहे तैं बिसारौ तैं।

मम पिता-कृत

कवित्त

प्रथम महीप मलखान के प्रताप रुद्र,
बीर ब्रत भाखी बात राखी हिंदुवान की;
उदित उदार उदैजीत जीत पायौ जस,
'प्रेमचंद' भागवत पाली पैज मान की।
चंपत छता के जगत बीर केसरी के रत्न,
कहत बसंत लच्म साहबी सुजान की;
भान श्रीप्रताप के प्रतापी सिंह साँवतेश,
तो हो सें लगी है बान एते पुरखान की।

मम भ्राता-कृत

कवित्त

रावन के काज रघुराज रूप धारो प्रभू,
टारो सुर-बृंदन कौ संकट अपार है;
केसी कंस मार कृष्ण हो कैं भूमि-भार मैटि,
हिर्नाकुस काजैं भौ नृसिंह बिस्तार है।

कहैं 'कमलेस' धन्य धन्य उन बीरन कों,
समर समत्त लियौ हाथ हथियार है ;
पातकी भले हैं वह घातकी भले हैं, पर
साँच हू उन्हीं के हेत होत अवतार है।

मम ज्येष्ठ पुत्र-कृत

कवित्त

जब जब भारत पै आरत अबार आई,
तब तब आयौ धर रूप करतार है ;
'सारद' सदैव है दयालु दृष्टि दीनन पै,
करुनानिधान जाकी कीरति अपार है।
याही बिसवास सैं कृपा की आस राखैं सदा,
बनत न कर्म धर्म कलि कौ प्रचार है ;
बिस्व भरतार है सभी मैं एक तार है,
सु ओही अवतार है कन्हैया अवतार है।

रूपघनाक्षरी—३२ वर्ण

इसमें ८, ८, ८, ८ वर्ण मिलकर ३२ वर्ण होते है। अंत में गुरु-लघु अवश्य होता है। यथा—

शांत समता कौ सुख संत ही सरस जानें,
जाने कहा क्रोधो जाहि क्रोध की झिलत झाँझ;
दानबीर जानत है आनँद उदारता कौ,
जानै कहा लोभी जो न देवै देत देवै भाँझ।
कहत 'बिहारी' मकरंद कों मलिंद जानै,
जानै कहा दादुर रहै जो पंक-मूल माँझ ;
गुन की गँभीरता की कदर सुजान जानै,
प्रसव की पीर पहिचानै का बिचारी बाँझ।

जलहरण—३२ वर्ण

इसमें ४ अष्टक और अंत में २ लघु अवश्य होते है। कहीं-कहीं चरण में एक गुरु भी आ जाता है, किंतु उसका उच्चारण लघु करके ही होता है। यथा—

सुखमा अपारी फैली मनिन उजारी प्यारी,
जाऊँ बलिहारी या मुरारी के मुकट पर।

इसी प्रकार के चारो चरण समझो।

पुनः

रंग भरी बाँसुरी बजाई नंदनंदन जू,
संभु से समाधो जोगी तमक-तमक उठे;
कहत 'बिहारी' ब्रज-ग्वालिनी मनोज मींजीं,
सरस सनेह दीप दिल में दमक उठे।
भूषन रतन मनि पहिर कहूँ के कहूँ,
गोपिन के बृंद बृंद झमक-झमक उठे;
देखत ही देखत रहस्य रंग मंडिल में
चंद्र मय तारन हजारन चमक उठे।

डमरू—३२ वर्ण

इसमें जो ३२ वर्ण होते है, वे सब लघु होते हैं। यथा—

बन बन भजत तजत घर बन बन,
बन बन बनत करत अनपख पख;
कल कथ कथन जतन नर कर कर,
पग पग पगत जगत रस चख चख।
भटकत रहत चलत पथ अटपट,
कर सतकरम भरम मत रख रख;

लख लख लखत अलख लख सकत न,
अलख न लखत लखत कह लख लख।

कृपाण—३२ वर्ण

४ अष्टक मिलकर ३२ वर्ण का यह कृपाण नाम का दंडक (कवित्त) होता है, इसके अंत में गुरु-लघु अवश्य होते हैं। इसमें विशेषतः वीर रस का वर्णन किया जाता है। यथा—

आजो बीर भर रंग ओप आनद उमंग,
व्याघ्र देख और ढंग किय बिमल बिचार ;
ज्वान चुल में पिठार* दिय बाँसन कौ डार,
कढ़ौ केहरि हँकार घली तुपक तरार।
धन धन बलवान बीर साँवत महान,
करें कहँ लौं बखान भन सुकबि 'बिहार' ;
नहिं कीनी कछु देर जाय घेर उहि बेर,
चहुँ फेर बन हेर मारो सेर ललकार।

बिजया—३२ वर्ण

इसके अंत में लघु-गुरु अथवा नगण का प्रयोग किया जाता है और आठ-आठ वर्णों के विश्राम से इसमे ३२ वर्ण होते हैं। यहाँ उदाहरण केवल नगणांत का ही देते हैं, क्योंकि उसका पठन कर्ण-प्रिय होता है। यथा—

प्रभु व्यापक है एक, वही दीखत अनेक,
कर ऐसौ तूँ बिबेक, रहै अमन चमन ;
देख आपहि में आप, मिलै मौज हटै ताप,
यहै चित्त बीच थाप, कर गुरु लौं गमन।
तोहिं इतनों बिचार जोपै सधै ना 'बिहार',
छाँड़ सब भ्रम- जार बैठ भाव के भमन ;
भज राधिकारमन भज राधिकारमन,
भज राधिकारमन भज राधिकारमन।

---

* पिठार = प्रविष्ट कराके।

देवघनाक्षरी—३३ वर्ण

इसमें ८, ८, ८, ९ के विश्राम से ३३ वर्ण होते हैं और अंत के तीन अक्षर लघु होते हैं, और उनके दुहरे प्रयोग किए जायँ, तो अत्यंत कर्ण-मधुर होते है। यथा—

झूमत रहत नित रंग में उमंग भरे,
मस्त मन मौजी रहैं भाव के भरन भरन;
कहत 'बिहारी' कबि, कबि अरु कुंजर की
एक ही बखानी रीति बानी में बरन बरन।
कैतौ निज ग्रेह, कै नरेस ग्रेह पावें छबि,
अनत न जावें ठोर दोही ये धरन धरन;
मच्छर तौ नाँहि तो जगत्तर में फेरो देरें,
स्वान तौ नहीं हैं फिरैं घूमत घरन घरन।

वर्णार्द्ध सम, विषम-वर्णन

बिषम बिषम सम सम चरन जहँ समता दरसाहि;
कबि-कोबिद जन कहत हैं वर्णअर्द्धसम ताहि।
ताके भेद अनेक हैं बेगवती इक जान;
दूजे भद्र बिराट है पुनि दुति मध्या मान।
केतुमती उपचित्र पुनि हरिणप्लुता पहिचान;
मंजु माधवी के सहित भेद अनेकन मान।
बर्ण बिषम के भेद हू हैं अगनित परिमान;
बर्ण, अर्द्धसम नियम से बिलग बिषम सो जान।
तिनहू के बहु भेद हैं नाम लखो आपीड़;
अम्मृतधारा मंजरी भाषत प्रत्यापीड़।
और अनेकन भेद हैं छंद ग्रंथ लख लेव;
इत प्रसंग बस नाम कछु सूक्षम ही चित देव।

सुरबानी महराष्ट्र में इनको रहत प्रचार ;
तासें भाषा नहिं कहे बढ़त ग्रंथ बिसतार ।
पिंगल मत सूक्षम कहौं पिंगल रिषि आधार ;
जहाँ भूल कछु पाइहैं लैहैं सुकबि सम्हार ।
कथन गणागण आदि कौ बर्णिक छंद प्रसंग ;
साहित-सागर की भई पूर्ण चतुर्थ तरंग ।

स्वस्ति श्रीमन्महाराजाधिराज श्रीकाशीश्वर ग्रहनिवार पंचम विंध्येलवंशावतंस श्रीमत्सवाई महाराजा साहब भारतधर्मेंदु सर सावंतसिंहजू देव बहादुर के० सी० आई० ई० बिजावरनरेशस्य कृपापात्र ब्रह्मभट्ट-वंशोद्भव कविभूषण कविराज पं० बिहारीलालविरचिते साहित्यसागरे गणागणवर्णिक छंद-प्रकरणवर्णनो नाम चतुर्थस्तरंगः ।

* पंचम तरंग *

शब्दार्थ-निर्णय

शब्द

श्रवण ग्रहण जाकौं करत शब्द कहावत सोय ·
ध्वनि अरु वर्ण विचार सें सो द्वै बिधि कौ होय।
जहँ केवल ध्वनि संचरहि ध्वन्यात्मक सो जान ;
वर्ण समझ जामें परें सो वर्णात्मक मान।

वर्णात्मक शब्द—तीन प्रकार

शब्द सार्थ कह तीन बिधि सकल सुकबि मति गूढ़ ;
प्रथम रूढ़ि यौगिक बहुरि तीजैं योगारूढ़।

वर्णात्मक शब्द ऐसे भी होते हैं, जिनमे वर्ण समझ पड़ें, परंतु अर्थ कुछ नहीं। वे काव्य में नहीं लिए जाते हैं। काव्य के लिये सार्थ अर्थात् अर्थ-सहित वर्णात्मक शब्द उपयोगी होते है। वे तीन प्रकार के होते हैं—(१) रूढ़ि, जिसमें धातु-प्रत्यय के योग से अर्थ न हो, अर्थात् प्रचलित सांकेतिक अर्थ-युक्त हो, (२) यौगिक, जिसका अर्थ धातु-प्रत्यय के योग से बने, अर्थात् सव्युत्पत्ति और (३) योगरूढ़ि, जिसका योग व्युत्पत्ति-युक्त हो, परंतु जिसका अर्थ रूढ़ि से हो। इन तीनो के उदाहरण क्रम से यहाँ नीचे दिये जाते है—

(१) रूढि—हाथी, इसमें धातु या प्रत्यय का तात्पर्य नहीं झलकता, केवल एक परंपरा से प्रचलित सांकेतिक अर्थ निकलता है, अतएव यह रूढ़ि है।

(२) यौगिक—भ्रांति, इसमें भ्रम धातु मे ति प्रत्यय का योग है, अतएव यह यौगिक है।

(३) योगरूढ़ि—जसे पंकज, इसमें पक और ज का योग है, अतएव यह यौगिक है। परंतु इसका अर्थ पंक से उत्पन्न होनेवाले प्रत्येक पदार्थ से नहीं है ; वरन् रूढ़ि से प्रचलित कमल से है, अतएव पंकज शब्द योगरूढ़ि है।

अर्थ

श्रवण परत ही शब्द कों चित्त ग्रहण कर लेत ;
ताकौं अर्थ पदार्थ कह कबि कोबिद जग हेत ।
बोध करावत अर्थ कों शक्ति कहावत सोय ;
ताकी उपज मनुष्य में आठ भाँति सों होय ।
कोष आप्त उपमान ते व्याकरणरु व्यवहार ;
वाक्यशेष सन्निधि विवृति अष्ट भाँति निरधार ।

कोषशक्ति

इंद्र बिडौजा शक्र यह तीन शब्द निरमान ;
देवराज प्रति अर्थ भौ कोषशक्ति पहचान ।

आप्तशक्ति (आप्त=यथार्थवक्ता का कथन)

आप्त बचन कोई कहै हीरा याकौ नाम ;
तिहि लख हीरा बोध कौ आप्तशक्ति गुणग्राम ।

उपमानशक्ति

गवय होत गोसम यहै काहू कह्यौ बखान ;
बन बिच गोसम बिकृति लख गवय बोध उपमान ।

व्याकरणशक्ति

रमते धातु प्रयोग से राम शब्द प्रति आन ;
रमण बिषै पद अर्थ भो शक्ति व्याकरण मान ।

व्यवहारशक्ति

लखत सुनत शिशु गुरुन मुख गो, घोड़ा गह लाव ;
छोरौ बाँधौ आदि यह कह व्यवहार सुभाव ।

सन्निधिशक्ति

काशी मथुरा के निकट सुरसरि कालिंदीय ;
गंगा-जमुना बोध भौ सन्निधिशक्ति गनीय ।

जैसे मथुराजी के निकट कालिंदी कहा और काशीजी के निकट सुरसरी कहा, तो यहाँ काशी-मथुरा इन नगरों की सन्निधि से गंगा, यमुना को शक्तिग्रह भयो, इसी को सन्निधिशक्ति कहते हैं ।

विवृतिशक्ति (विवृति = उजागर, प्रसिद्ध बात)

ज्यों कोऊ कह् राम नें रावण रणे जघान ;
बध करबे कौ बोध भौ विवृतिशक्ति पह्चान ।

किसी ने कहा कि राम ने रावण को जघान, तो यह बात प्रसिद्ध है कि रामजी ने रावण को मारा है, इस प्रसिद्धता से जघान कौ शक्तिग्रह मारने प्रति भयौ, यह अर्थ विवृतिशक्ति से हुआ समझो ।

यह शक्ति ग्रह अष्ट विधि प्रतिभा शुद्ध समन्थ ;
प्रगटै पूरन जासु उर सो निज कुल कबि धन्य ।

सवैया

एक तौ या सनसार असार में मानुष-जन्म बड़ो फल भाई ;
कर्म वशात मनुष्य भयो, पढ़िबौ लिखिबौ तौ बड़ो बड़ताई ।
जो पढ़ि पंडित होहि गयौ तौ बिशेष बड़ौ करिबौ कबिताई ;
काब्य से फेर सुशक्ति बड़ी फिर शक्ति से भक्ति बड़ी कठिनाई ।

पद-वाक्य-निरूपण

सार्थ शब्दगण पद कहत पदगण वाक्य सुजोय ;
सो आकांक्षा योग्यता आसत्ती युत होय ।
आकांक्षा से रहित हो, होय योग्यता हीन ;
आसत्ती से शून्य जो, सो न वाक्य चित चीन ।

उदाहरण

हाथी , घोडा, गो, नर-नारी ; पद समूह यह कहे बिचारी ।
आकांक्षित पद एक न जानों ; तासें वाक्य इन्हैं नहिं मानों ।
जहँ अयोग्यता बर्णन आनें ; अग्नि मँगाय सींचबो ठानें ।
इन पद नहीं योग्यता आनों ; तासें वाक्य इन्हैं नहिं मानों ।
गायन कह कछु बीच बखाना ; पुनि पीछे कह गावत गाना ।
यह न अर्थ आसत्ती जानों ; तासें वाक्य इन्हैं नहिं मानों ।

शब्द के समूह को पद कहते हैं, पद के समूह को वाक्य कहते हैं, और वाक्य के समूह का महावाक्य कहते हैं। किंतु वाक्य तब कहा जायगा, जब कि वह पद-समूह तीन प्रकार का हो। अर्थात्—

(१) आकांक्षा = पदो की परस्पर आकांक्षा (चाह) हो*।

(२) योग्यता = अर्थात् जो पद एक के साथ एक योग्य होवे, अयोग्य न होवे।

(३) आसक्ति = अर्थात् पदो के अर्थ का संबंध लगा चला गया हो।

ये तीनो लक्षण पदो में परस्पर जब पाए जावें, तब उस पद-समूह को वाक्य कहेंगे। यदि ऐसा न हो, तो वाक्य नहीं कहा जायगा। जैसे हय, गय, गो, मनुज इत्यादि पद है, परंतु इनकी परस्पर एक एक की आकांक्षा नहीं है, इससे यह वाक्य नहीं है, और अग्नि से सिचन करना इस पद-समूह में योग्यता नहीं है, अतः यह वाक्य नहीं है, और गायन कहा फिर कुछ अन्य वार्त्ता बीच में कहकर पश्चात् गाते कहा, तो इस पद-समूह मे संबंध अर्थ का टूट गया, अतः यह वाक्य नहीं कहा जायगा। इसी प्रकार और भी जानो।

पद-समूह को कहत हैं वाक्य सुकवि गुणवान ;
वाक्य-समूह जहाँ लखो महावाक्य तहँ मान।
अर्थ न पूजै वाक्य में खड वाक्य लेय चीन ;
या प्रकार पद वाक्य को निरनय निमित कीन।

शब्दार्थ—वृत्तिः

शब्द अर्थ आवृत्ति जहँ बार बार ह योग ;
ता आवृत्ती कों कहत वृत्ति सबै कवि लोग।
ता वृत्ती के नाम के शब्द तीन विधि जान,
बाचक इक लक्ष्यक द्वितिय व्यंजक त्रितिय बखान।

---

* वाक्य-विन्यास में (१) आकांक्षा, (२) योग्यता और (३) आसक्ति—इन तीनों पर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है। इसमें आकांक्षा से वाक्य के एक पद के साथ दूसरे पद का संबंध स्थापित होता है। योग्यता से वाक्य में प्रयुक्त पदों के परस्पर मिलने से योग्य अर्थ का औचित्य जाना जाता है। 'जैसे आग सींचता है' वाक्य में आग के साथ सींचता है की योग्यता नही ठहरती; अतएव यह योग्यताहीन दूषित वाक्य है। आसक्ति का उपयोग वाक्य में प्रयुक्त पदों के सान्निध्य में होता है। पदों को उनके अन्वय के अनुसार संबंधित पदों के साथ इस प्रकार रखना चाहिए, जिससे बीच में अधिक काल का व्यवधान पड़ने से उस वाक्य के अर्थ में कोई भ्रम न पड़ सके।—संपादक

बाचक में बाच्यार्थ कह्, लद्यक में लद्यार्थ ;
व्यंजक में बिज्ञार्थ कह, अर्थहु तीन यथार्थ।
तात्पर्य चौथौ अरथ कबियन कियौ बखान ;
सो निकसत ध्वनि भेद में आगे करैं बखान।

पूर्वोक्त शब्दार्थ आवृत्ति को वृत्ति कहते हैं। उस वृत्ति के तीन प्रकार के नाम हैं—एक वाचक (अभिधा), दूसरी लद्यक, तीसरी व्यंजक और जो अर्थ किया जाता है, उसके भी तीन नाम हैं—एक वाच्यार्थ, दूसरा लद्यार्थ, तीसरा व्यंग्यार्थ। पहिला अभिधा में कहा जाता है, दूसरा लक्षणा में, तीसरा व्यंजना में और चौथा तात्पर्यार्थ आगे ध्वनि के प्रकरण में कहेंगे। अब 'अभिधा' क्या वस्तु है, उसको कहते हैं—

अभिधा

जाति गुणादिक क्रिया के करन हेतु संकेत ;
नियत शब्द जे कर लये बुधजन बुद्धि-निकेत।
तिन शब्दन सें होत है सांकेतिक पद-बोध ;
अभिधा ताही सों कहत, जाकौ षटबिधि शोध।

षड्भेद (षट्पदी)

बाचक अरु बाच्यार्थ प्रगट अभिधा तहँ जानों ;
सांकेतिक पद प्रथम जाति से इक पहिचानों।
गुण से दूजे जान क्रिया से त्रितिय बखानों ;
वस्तुयोग से चतुर बहुर संज्ञा से मानों।
अरु षष्ठम है निर्देश तें षट प्रकार इमि धारिये ;
कह कबि 'बिहार' अब सबन के उदाहरण निरधारिये।

उदाहरण

प्रथम वह वाचक का शब्द और उस वाचक का जो अर्थ वह वाच्यार्थ, जहाँ यह सांकेतिक पदो से दोनों प्रकट होते हैं, उसी को अभिधा कहते हैं। वह षट प्रकार से कही जाती है– एक जातिवाची वाचक से सांकेतिक पद का बोध होता है,

दूसरा गुणवाची वाचक से, तीसरा क्रियावाची वाचक से, चौथा वस्तुयोगी वाचक से, पाँचवाँ संज्ञावाची वाचक से, छठा निर्देशवाची वाचक से। उदाहरणार्थ जैसे—मनुष्य, देव, गाय, हाथी, पर्वत, नदी इत्यादि। ये जातिवाची वाचक से सांकेतिक हैं, और नीलम, लाल, पीत इत्यादि ये गुणवाची हैं, और पाठक, लोह-कार, कुभकार इत्यादि ये क्रियापरत्ववाची है, और शूली, दंडी, कमंडली इत्यादि ये वस्तुयोग से सांकेतिक पद है, और डित्थ्य, मंडपादि संज्ञा ही से सांकेतिक हैं, अर्थात् इनकी केवल संज्ञा ही ऐसी बँधी हुई है। और, केशादिक निर्देश से वाचक पद है। संज्ञा और निर्देश दोनो समान ही है। अंतर इनमें इतना ही है कि एक शास्त्रीय संकेत है, और दूसरा मानुषी। इसी प्रकार और भी जानो।

लक्षणा

जहँ अभिधा के अर्थ में बाध अर्थ कछु होय ;
अन्य अर्थ लक्षित करै कहत लक्षणा सोय।

जहाँ वाच्यार्थ (अभिधा) मे बाधा पड़ती है, वहाँ उसी के संबंध से दूसरा अर्थ लक्षित होता है, उसे लक्षणा कहते है। जैसे कहा कि "बुंदेलखंड काव्य-साहित्य का सुरूप है", तो यहाँ वाच्यार्थ में यह बाधा पड़ती है कि बुंदेलखंड तो एक प्रांत का नाम है, यह काव्य-साहित्य का सुरूप कैसे ? तहाँ संबंध से बुंदेलखंड-निवासियों के प्रति अर्थ लक्षित होता है, अर्थात् बुंदेलखंड-निवासी लोग काव्य-साहित्य के ज्ञाता होते हैं, यह अर्थ लक्षित हुआ। इसी को लक्ष्यार्थ कहते हैं। अब लक्षणाओ के भेद कहते हैं—

लक्षणा-भेद

जहाँ प्रयोजन नहीं, लक्षणा रूढ़ि कहावै ;
जहाँ प्रयोजन होय प्रयोजनवती कहावै।
उक्त लक्षणा उभय, उभय बिधि की पहचानौ ;
उपादान इक नाम अर्पणा द्वितिय बखानौ।
वह उपादान आदान कर उपसें, निज अर्थहु धरै,
अरु नाम अर्पणा अर्थ निज दूजे में अर्पण करै।

पुनः

जहाँ सदृश संबंध होय गौणी तहँ जानौ ;
अन्य शेष संबंध तहाँ शुद्धा पहचानौ।

सारोपा पुनि जहाँ लक्ष्य, लक्ष्यक दोउ साजै ;
साध्यवसाना जहाँ एक लक्ष्यक ही राजै।
यह अष्ट भाँति कह लक्षणा, उत्तम अर्थ उदोत है ;
सो चार चार इन भेद मिल सोरह बिधि सों होत है।

प्रथम लक्षणा दो प्रकार की है—(१) रूढ़ि और (२) प्रयोजनवती। जिसमें कुछ प्रयोजन न हो, उसे रूढ़ि कहते हैं, और जहाँ कुछ प्रयोजन के साथ अर्थ परिवर्तन हो, वहाँ प्रयोजनवती कहते हैं। लक्ष्यार्थ जो होता है, वह दो प्रकार से होता है। जब वाच्यार्थ में बाधा पड़ती है, तो वह वाच्य शब्द है। उसका शब्द न बने, तब दूसरा अर्थ उपादान उप (नजदीक से) आदान (ले लेना) अर्थात् नजदीक का अर्थ लेकर अपना अर्थ बना लेना। इस प्रकार की अर्थ-प्राप्ति में उपादाना-लक्षणा कहते हैं, और यह लक्षणा का तीसरा भेद हुआ। और, जहाँ जो वाच्य अपना अर्थ दूसरे वाच्य में अर्पण करके दूसरा अर्थ बना दे, वह अर्पणा-लक्षणा है। यह लक्षणा का चौथा भेद हुआ। दो भेद वे जो पहिले कहे गए, और दो भेद ये मिलकर चार भेद हुए। अब चार भेद और कहते है—(१) गौणी, (२) शुद्धा, (३) सारोपा और (४) साध्यवसाना। जहाँ बराबरी (सदृशता) का संबंध हो, वहाँ 'गौणी', जहाँ अन्य कोई संबंध हो, वहाँ 'शुद्धा', जहाँ लक्ष्य और लक्ष्यक दोनो विद्यमान हो, वहाँ 'सारोपा' और जहाँ केवल लक्ष्यक हो, वहाँ 'साध्यवसाना'।

लक्ष्य = दीखनेवाला अर्थ।

लक्ष्यक = जो अर्थ को लक्षित करे, अर्थात् दिखा देनेवाला अर्थ।

पूर्वोक्त लक्षणा इन चार-चार भेदो से मिलकर प्रस्तार रूप से सोलह प्रकार की होती है। अब यहाँ उन संबंधों को कहते हैं, जिनसे लक्षणा होती है—

नव प्रकार के संबंध

(१) प्रथम एक अभिमुख पहिचानों ;
(२) .. ...दूजौ सन्निधि नाम बखानों।
(३) तीजौ कह आकार उचारौ ;
(४) ....चौथौ कारण कार्य बिचारौ।
(५) पंचम वाचक वाच्य सुहावै ;
(६) षष्ठम नाम सदृशता गावै।
(७) सप्तम पुनि समवाय मानिये ;
(८) अष्टम पुनि विपरीत आनिये।

(९) नवम क्रिया अन्वय दरसाये ;
यह नव विधि संबंध गनाये।

उदाहरण

(१) अभिमुख

अंगुलि अग्र गयंद शत यद्यपि दूर समग्र ;
अभिमुख के संबंध से कह्यो आँगुरी अग्र।

अभिमुख-संबंध से—जैसे कहा जाय कि अंगुलि के अग्र शत (सा) हाथी, तो यहाँ अंगुलि के अभिमुख (सम्मुख) संबंध से दूरवर्ती हाथी अग्र मे कहे।

(२) सन्निधि

कहै घोष गंगा बिषें यदपि गंग के तीर ;
पै सन्निधि संबंध सें कहे गंग के नीर।

सन्निधि संबंध से—जैसे कहा जाय कि 'गंगा बिषे घोष' (आभीरों के गृह) तो यद्यपि गृह किनारे (तट-) पर हैं, परंतु सन्निधि (समीप) के संबंध से गंगा बिषे कहे।

(३) आकार

शैल शिखा शशि सोभहो यद्पि उच्च शशि दीस ;
पै अकार संबंध से कह्यौ शैल के सीस।

कहा कि 'पर्वत की चोटी पर चंद्रमा', तो यहाँ पर्वत की अति उच्च आकार की प्रतीति से अति दूर अति उच्च चंद्रमा पर्वत की चोटी पर कहा।

(४) कार्य-कारण

आयुर्दा* घृत कों कह्यौ यद्पि आयु कौ हेत ;
कारज कारण भाव तें आयुर्दा कह देत।

यहाँ 'आयुघृ त' कहा यद्यपि घृत आयुर्दा का कारण है, किंतु कार्य-कारण के संबंध से घृत ही आयुर्दा कहा गया है।

---

* आयुर्दा = आयु देनेवाला।

इक तटस्थ अरु एक अर्थगत यह द्वै भेद बताये ;
बहुरि अर्थगत द्वैबिधि जानों लक्ष्यकस्थ इक गाये ।
द्वितिय भेद लक्ष्यस्थ जानियै इते प्रयोजन जानें ;
उदाहरण सूक्ष्म बिधि कहियत समझैं सुघर सयानें ।

उदाहरण

अस्फुट (गूढ)

यहाँ अस्फुट (गूढ) प्रयोजन कहा जाता है। जैसे—"सखी, बन लालहि लाल भयौ।" ऐसा कहने से यही सूचित होता है कि संपूर्ण वन लाल हो गया है। कुछ वन के वृक्ष हरे-पीले भी होंगे, किंतु यह बात स्पष्ट मालूम नहीं पड़ती। अथवा "अस्फुट यह पट जरो कहायौ।" ऐसा कहने से संपूर्ण वस्त्र जलने का अर्थ प्रकट होता है, एक देश कहीं जल गया, सो साफ ज्ञात नहीं होता है। अतः इसको अस्फुट (गूढ़) कहते हैं । इसका दूसरा भेद नहीं है।

तटस्थ

तटस्थ वह है, जैसे कहा कि—"दीप बढाये हू कियौ रसना मणि उद्योत।" यहाँ दीपक के लिये बुझाने के स्थान पर बढ़ाना कहा है। कारण यह कि 'बुझाना'-शब्द अमंगलवाची है, अतः यहाँ प्रयोजन अमंगल न कहने का है, परंतु यह अर्थ शब्दों से नहीं निकलता। इसको तट (समीप) से लाना पड़ा, अतः इसको तटस्थ प्रयोजन जानो।

अर्थगत (लक्ष्यस्थ)

जैसे किसी ने कहा कि—"सुकविता वसुधा सुधा।" अर्थात् पृथ्वी पर सुंदर कविता सुधा (अमृत) है, तो यहाँ कविता लक्ष्य में मधुरता (अमृतत्व) प्रयोजन स्थित है, जिसका अर्थ हुआ कि सुंदर कविता मधुर होती है। यहाँ प्रयोजन की स्थिति लक्ष्य में है, अतः इसको लक्ष्यस्थ प्रयोजन कहते हैं।

अर्थगत (लक्ष्यकस्थ)

जैसे कहा कि—"तरुणी तुअ मुख चंद्र" यहाँ मुख अवश्य कांति युक्त है, किंतु शोभा की उत्कृष्टता चंद्र (उपमान) लक्ष्यक में स्थित रही, इससे इसको लक्ष्यकस्थ प्रयोजन कहते है।

अब आगे षोड़श प्रकार की लक्षणा का बिवरण सूक्ष्म रूप से चक्र में देते हैं, जिसको पढ़कर विद्यार्थी बोध कर लें।

लक्षणा-भेद-चक्र

प्रथम लक्षण २ प्रकार

(१) रूढ़ि (२) प्रयोजनवती

पुनः २ भेद

(१) उपादाना (२) अर्पणा

अन्य ४ भेद

(१) गौणी (२) शुद्धा (३) सारोपा (४) साध्यवसाना

सब मिलकर १६ भेद

(१) रूढ़ि उपादाना शुद्धा साध्यवसाना	(१) प्रयोजनवती उपादाना शुद्धा साध्यवसाना
(२) ,, ,, ,, सारोपा	(२) ,, ,, ,, सारोपा
(३) ,, ,, गौणी साध्यवसाना	(३) ,, ,, गौणी साध्यवसाना
(४) ,, ,, ,, सारोपा	(४) ,, ,, ,, सारोपा
(५) ,, अर्पणा शुद्धा साध्यवसाना	(५) ,, अर्पणा शुद्धा साध्यवसाना
(६) ,, ,, ,, सारोपा	(६) ,, ,, ,, सारोपा
(७) ,, ,, गौणी साध्यवसाना	(७) ,, ,, गौणी साध्यवसाना
(८) ,, ,, ,, सारोपा	(८) ,, ,, ,, सारोपा

इन सबके उदाहरण व्यंग्य ध्वनि के उदाहरण के साथ भावार्थ में आगे कहे गए हैं। ये लक्षणा शब्द, पदार्थ, व्यंग्यार्थ, संख्याकारक, चिह्न आदि सभी में होती हैं, किंतु इनका बीजांकुर अलंकार समझना चाहिए।

व्यंजना

अभिधा बहुरि सुलक्षणा इनकौ आसय पाय;
अन्य अर्थ ब्यंजित करै ब्यंग ब्यंजना गाय।

अथवा—

अभिधा आदिक लक्षणा इनमें होय प्रविष्ट;
और अर्थ ब्यंजित करै अहै ब्यंजना इष्ट।

उदाहरण

सवैया

फैल गये कच कुंचित आनन नैनन ने रँग रोहित धारौ;
आये प्रभात जँभात इतै ललचात लजात न त्रास बिचारौ।

सौंह 'बिहारि' वहाँ करिये, जिन्हैं रावरौ होय नहीं पतयारौ ;
जानत हैं हम और ही सें, हम पै पिय सत्य सनेह तुम्हारौ ।

यह व्यंजक वाक्य है ।

व्यंजना-भेद

द्वै प्रकार है व्यंजना, शब्द-व्यंजना एक ;
अर्थ-व्यंजना दूसरी समझें सुकवि विवेक ।
शब्द व्यंजना भाँति द्वै कही कबिन अनुकूल ;
अभिधा मूला एक है द्वितिय लक्षणा-मूल ।
अभिधा मूला कौ रहत बाच्य शब्द आधार ;
ताके तेरह भेद हैं बरनत मति अनुसार ।
इक बाचक के होत हैं बहुबाच्यार्थ प्रसंग ;
एक अर्थ निश्चय करै, अभिधा-मूला व्यंग ।

त्रयोदश विधि

विप्रयोग संयोग साहचर्यहु तें जानौं ;
प्रकरण चिह्न बिरोध शब्द सन्निधि सें मानौं ।
व्यक्ती देश समर्थता च समय हु सें होवै ;
औचिति तें पुनि और स्वरादिक सें कबि जोवै ।
कह कबि 'बिहार' बिधि युक्त तें अर्थ एक दृढ़ आनिये ;
इमि तेरह बिधि व्यंजना अभिधा-मूला मानिये ।

क्रमशः प्रत्येक भेद के प्रत्येक वाक्य उदाहरण रूप एक ही छप्पय में भिन्न-भिन्न दिखाकर विद्यार्थियों के लिये यहाँ उद्धृत करते हैं । एक-एक वाचक के अनेक वाच्यार्थ होते हैं । अर्थात् एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं, उसमें से सब अर्थों को छोड़कर एक ही अर्थ के बोध कराने को अभिधा-मूला व्यंग्य कहते हैं । वह बोध तेरह प्रकार से होता है, जो ऊपर छप्पय में कह चुके । अब आगे उदाहरण रूप कहते हैं ।

उदाहरण

छप्पय

बिन अंकुस कौ नाग, नाग अंकुस युत भावै;
भव भवानि भल संग, आसुतोषक सुर ध्यावै।
कपिध्वज यशध्वज धौल, हरी सँग धेनु न सोहिय;
कनक रत्न छबिपुंज, चक्र छबि सरस सु जोइय।
बर बिटप बाज बन मुदित झख, सैंधव प्रिय भोजन लगै;
लख नयन नेह उर कौ उग्यौ, भले बनें जग जस जगै।

भावार्थ—नाग—इस वाचक के सर्प, हस्ती आदि कई अर्थ होते हैं, परंतु यहाँ अंकुश के विप्रयोग और संयोग से हस्ती प्रति वाच्यार्थ का बोध हुआ। भव—इस वाचक के शिव, संसार आदि कई अर्थ होते हैं, किंतु भवानी के साहचर्य (संग) से भव का अर्थ महादेव प्रति सिद्ध हुआ। सुर—यह सभी देवताओं का वाचक है, किंतु आशुतोष (जल्दी प्रसन्न होनेवाले) प्रकरण से शंभु प्रति वाच्यार्थ का बोध हुआ। कपिध्वज—यहाँ चिह्न विशेष से अर्जुन प्रति वाच्यार्थ का बोध हुआ। हरी—इस वाचक के वानर, सिंह, सर्प, दादुर, विष्णु, अनेक अर्थ होते हैं; किंतु धेनु की विरोधता से सिंह प्रति वाच्यार्थ का बोध हुआ। कनक—इसके धतूरा, सुवर्ण, चूर्ण, कई अर्थ होते हैं; किंतु रत्न शब्द की सन्निधि से सुवर्ण प्रति वाच्यार्थ का बोध हुआ। चक्र—यह शब्द चक्र तथा रथचक्र (गाड़ी का चका) का वाची है; किंतु सरस कांति व्यक्ति योग से चक्रवाक प्रति बोध हुआ। बाज—इसके बाज़ (पक्षी-विशेष) तथा घोड़ा आदि अर्थ होते हैं, किंतु वृक्ष देश से पक्षी प्रति बोध हुआ। बन—यह शब्द विपिन और पानी का वाचक है; किंतु मीन (झख) को मुदित करने की समर्थता से पानी ही प्रति बोध हुआ। सैंधव—इस शब्द का अर्थ घोड़े तथा लवण प्रति होता है; किंतु भोजन के समय योग से लवण का ही वाच्यार्थ सिद्ध हुआ। लख नयन—यहाँ नेत्रों के देखने ही से हृदय का सनेह उचितता से व्यंजित हुआ, और यह व्यंजना स्वरों (उदात्त, अनुदात्त, स्वरित) से भी होती है; किंतु यह विषय वेदों का है, इसलिये यहाँ नहीं लिखा गया। स्वर से स्तुति-निंदा भी व्यंजित होती है। जैसे—किसी से कहा कि "भले बनें", इससे निंदा-स्तुति का बोध होता है। इस प्रकार तेरह विधि से यह अभिधामूला व्यंजना कही गई। ये शब्दव्यंजना के भेद हुए। अब आगे लक्षणामूला अर्थव्यंजना लिखते है।

लक्षणामूला अर्थव्यंजना

भेद लक्षणामूल के चार भाँति मन मान ;
अस्फुट बहुरि तटस्थ हू पुनि लक्ष्यस्थ बखान ।
लक्ष्यकस्थ चौथो गनहु पुनि लक्षण लख लेहु ;
प्रथम लक्षणा में कहे उदाहरण चित देहु ।

अस्फुट

अस्फुट जा पद गूढ़ कौ भेद न परै लखाय ;

तटस्थ

सो तटस्थ शब्दार्थ तज अर्थ निकट से ल्याय ।

लक्ष्यस्थ

जामें लक्षित अर्थ की इस्थिति सो लक्ष्यस्थ ;

लक्ष्यकस्थ

लक्ष्यक की उत्कृष्टता लक्ष्यक इस्थित स्वस्थ ।
यही प्रयोजन चार बिधि होत लक्षणा माँहि ;
यही लक्षणा व्यंग के भेद लखौ कबि आँहि ।

लक्षणामूला अर्थव्यंग्य के भेद

छप्पय

शब्दव्यंजना भेद पूर्ब द्वै बिधि समुझाये ;
अर्थव्यंजना रूप कहत, दस बिधि से पाये ।
वक्ता(१) अरु बोधव्य(२) वाक्य(३) वाचहु(४) की लीजे ;
अन्यनिकट(५) प्रस्ताव(६) देश(७) अवसर(८) की कीजे ।
काकोक्ती(९) चेष्टादि(१०) इन्हन की पाय सहाई ;
व्यंजित होवै अर्थ, अर्थव्यंजना कहाई ।

कह कबि 'बिहार' वाच्यार्थ[1] की, लक्ष्यारथ[2] की मानिये ;
अरु व्यंग्यारथ[3] की समझ इमि भेद व्यंजना जानिये।

उक्त अर्थव्यंजना दस प्रकार की कही गई हैं—तात्पर्य यह कि वक्ता, बोधव्य, वाक्य, वाच्य, अन्यनिकट (किसी के निकट होना), प्रस्ताव, देश, समय (अवसर), काकोक्ति, चेष्टा इत्यादि। इनकी विशेषता पाकर कहीं एक-दो की विशेषता हो या कहीं चार-पाँच की विशेषता हो, किंतु इन्हीं दस की विशेषता पाकर मुख्यार्थ से दूसरा अर्थ व्यंजित करे, वह अर्थव्यंजना है। वह अर्थ भी तीन प्रकार से व्यंजित होता है, अतएव व्यंजना भी तीन प्रकार की होती है, अर्थात् 'वाच्यार्थ व्यंजना', 'लक्ष्यार्थ व्यंजना' और 'व्यंग्यार्थ व्यंजना'।

शब्द, अर्थ, मिलकर चलत हैं अन्योन्य समर्थ ;
अर्थ बिना नहिं शब्द है शब्द बिना नहिं अर्थ।
शब्द होत व्यंजित तहाँ अर्थ सहायक मान ;
अर्थ होत व्यंजित तहाँ शब्द सहायक जान।
दोउन को समवाय तें रहत नित्य संबंध ;
जाकी जहाँ विशेषता ताकौ तहाँ प्रबंध।

वक्ता, वाक्य, प्रस्ताव, देश और समय की विशेषता का उदाहरण

कवित्त

करत कुरीति काम कोपित कमान तान,
बिमल बसंत बाग सुखमा सम्हारौ री ;
बहत समीर स्वच्छ सुमन सुगंध सार,
मुदित मलिंद बृंद नाद नव धारौ री।
कहत 'बिहारी' पति दूर अति आली, तासें
चलन कुचाल चित्त चाहत हमारौ री ;
ललित लवंगन की लतन लुनाई, यामें
अतन निवारन को जतन बिचारौ री।

यहाँ वसंत-ऋतु, सुगंध समीर इत्यादि समय की विशेषता है, एवं ललित लवंगादि निकुंज देश की विशेषता है, पति अति दूर इत्यादि वाक्य की विशेषता है, चित्त को कुचाली कहा—यहाँ वाच्य की विशेषता है। वक्ता, स्वयं नायिका, की प्रस्तावना की विशेषता से व्यंग्यार्थ यह व्यंजित हुआ कि अप्रकट उपपति-प्राप्ति का साधन करो। नायिका परकीया है, सखी से उपपति बुलाना प्रस्तावना से व्यंजित करता है।

बोधव्य की विशेषता का उदाहरण

हौं तौ जान दूती दूतपन कों पठायौ तोहि,
धूतपन दीनों दिखा आवन अनेंनी नें;
अधर चसे हैं कहै कज्जल अधर रेख,
लूटो कहो माल टूटी माल सुखदेंनी नें।
कहत 'बिहारी' पीक लीक नें लखाई लीक,
जागवौ जतायौ नींद भरी दृगसेंनी नें;
मंद मुख बैनी भौंह करै क्यों तनेंनी, तेरी
छिपी प्रीति पैंनी आज खोली खुली बैंनी नें।

यहाँ अन्यसंभोगदुःखिता नायिका ने दूती के अंग मे संयोग-चिह्न वर्णन करके लक्ष्यार्थ से बोधव्य दूती का नायक से समागम व्यंजित किया। यहाँ व्यंजना बोधव्य की विशेषता से व्यंजित की गई।

अन्यसन्निधि की विशेषता का उदाहरण

जामिनी जुगल जाम जाग कें बितावहुगी,
मणिमहलों में कछू मन बहलैंहौं मैं;
कहत 'बिहारी' सासु बावरी बधिर बीर,
तापर तनेंनी ताहि काहे कों बुलैंहौं मैं।
प्रीतम बिचारे दिन द्वैक कों सिधारे कहूँ,
रोसनी परोसिनी कहौ तौ काह कैहौं मैं;
संग ना सहेली या हवेली बीच हेली आज,
मध्य गृह केलो के अकेली रात रैहौं मैं।

यहाँ नायिका वचनविदग्धा उपपति से निर्जन स्थान (संकेतस्थल) व्यंजित करती है। अन्य को सुनाकर निर्जन देश व्यंजित किया, अतः यहाँ अन्यसन्निधि की विशेषता से व्यंग्य व्यंजना हुई।

इसी प्रकार काकोक्ति के कथन मे काकु की विशेषता तथा क्रियाविदग्धा आदि में चेष्टा की विशेषता से व्यंग्य व्यजित की जाती है। इसी प्रकार और भी जानना। उपर्युक्त तीनो उदाहरण तीनो अर्थव्यंजना के कहे गए हैं। "करत कुरीति" इति वाच्यार्थ व्यंजना, 'हौं तौ जात दूती" इति लक्ष्यार्थ व्यंजना, "जामिनी जुगल जाम" इति व्यंग्यार्थ व्यंजना।

ध्वनि

तात्पर्यार्थ वृत्ति

छप्पय

बाच्यारथ लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ बखानों;
त्रिबिधि व्यंजना रूप कह्यो पूर्बहि सो जानों।
बहुर तात्पर्यार्थबृत्ति चौथी बुध जोवै;
व्यंग्यारथ जो वृत्ति प्रगट ताही सें होवै।
कह कबि 'बिहार' ज्यों तार सें ध्वनि अनुरणन सुहावही;
त्यों व्यंग्यारथ शब्दार्थ सें यह ध्वन्यार्थ लखावही।

दोहा

तात्पर्य तिहि को कहत, कोउ कहत ध्वनि नाम;
बहुर कोउ आसय कहत, जानत कबि गुन-ग्राम।
कढ़ै व्यंग से ध्वनि कछू कहियत हैं ध्वनि ताहि;
व्यंग रहै बाच्यार्थ सम, गुणीभूत सो आहि।

चौपाई

सो ध्वनि दोय प्रकार बखानत; सत्कबि होत भेद ते जानत।
इक अविवक्षित वाच्य कहावै; दूजो वाच्य विवक्षित भावै।

छप्पय

कवि की इच्छा जहाँ वाच्य कहबे की नाहीं;
सो अविवक्षित वाच्य ध्वनो समझौ गुरु पाहीं।

सो द्वै विधि जब वाच्य अर्थ अंतर में पाओ ;
अर्थांतर संक्रमित वाच्य ध्वनि नाम बताओ।
अरु अन्य वाच्य तें वाच्य कौ तिरस्कार जब लग्व परै ;
अत्यंत तिरस्कृत वाच्य ध्वनि कबि 'बिहार' तिहि उर धरै ।

अर्थांतर संक्रमित वाच्य ध्वनि * का

उदाहरण

समता दीजे कौन की रूप सील गुन जान ;
राधा राधा, रति रती, रंभा रंभा मान ।

यहाँ नायक की उक्ति है कि राधिकाजी के रूप गुण की कौन समता देवै। राधा राधा हैं, रति रति है, रंभा रंभा है। ऐसा कहने से कि राधा राधा ही है, शोभा की उत्कृष्टता अर्थांतर है और रति रति है, रंभा रंभा है, इसमे निकृष्टता अर्थांतर है। 'राधा' दूसरे वाच्य की अर्थ-उत्कृष्टता मे लीन हुआ और रति तथा रंभा दूसरे वाच्य की अर्थ-निकृष्टता मे लीन हुआ, अतएव यहाँ अर्थांतर संक्रमित वाच्य ध्वनि हुई।

अत्यंत तिरस्कृत वाच्य ध्वनि † का

उदाहरण

स्याम सुखरासी पासी आई एक दासी खासी,
पूरन प्रकासी जोति जोबन जितै रही ;
बोली सुकुमारी हे दुलारी प्रानप्यारी, तोहि
चाहत मुरारी प्यारी छबि कों छितै रही ।
कहत 'बिहारी' वाकौ बाक्य सुन लीनौं, पर
उत्तर न दीनौं कछू बेला यों बितै रही ;

---

* अर्थांतर संक्रमित वाच्य ध्वनि, जहाँ वाच्यार्थ अर्थांतर में संक्रमण करता है, वहाँ होती है। —संपादक

† जहाँ वाच्यार्थ का सर्वथा तिरस्कार होता है, वहाँ अत्यंत तिरस्कृत वाच्य ध्वनि होती है। —संपादक

खोल मुख, मूँद नैन, नील पट भूमि डार,
चंचरीक चूम, चाप चेरो पै चितै रही।

यहाँ क्रियाविदग्धा नायिका ने क्रिया से रात्रि के समय चंद्रोदय में यमुना-तट पर सम्मिलन होना सूचित किया, परंतु रात्रि और चंद्रमा एवं यमुना तथा नायक-सम्मिलन, इन वाच्यों का अत्यंत तिरस्कार है, अतः यह अत्यन तिरस्कृत वाच्य ध्वनि हुई।

यह अविवक्षित वाच्य ध्वनि के दोनो भेद लक्षणा मूला व्यंग्य के समझो। अब अर्थ-व्यंग्य विवक्षित वाच्य ध्वनि कहते हैं।

विवक्षित वाच्य ध्वनि*

दोहा

कहत विवक्षित वाच्य ध्वनि अर्थव्यंजना केर;
युगल भेद याके भनत लीजौ कबिजन हेर।

चौपाई

संलक्ष्य क्रम प्रथमहि लहिये; असंलक्ष्य क्रम दूजो कहिये।
वाचक वाच्य केर क्रम पावै; संलक्ष्य क्रम तहाँ जतावै।
जहँ क्रम वाचक वाच्य न देखै; असंलक्ष्यक्रम तहँ कबि लेखै।
जो संलक्ष्यकक्रम कह आये; तीन भाँति तिहि भेद गनाये।

छप्पय

शब्द शक्तिभव, अर्थ शक्तिभव, उभय शक्तिभव;
तीन भाँति यह भेद भये जानत सत्कबि सब।
शब्द शक्तिभव बहुर दोय बिधि बर्णन कीजे;
'अलंकार' अरु 'बस्तु' यहै गणना चित दीजे।
कह कबि 'बिहार' ध्वनिरूप यह सुकबिन के ढिग जानिये;
अब उदाहरण हू पूर्ब के प्रिय पाठक पहिचानिये।

उदाहरण

लाल पलक अरु लाल दृग, जतुरस लाल विशाल;
लाल कहावत जैस ही बने तैस ही लाल।

---

* इसका नाम श्रीकन्हैयालालजी पोद्दार ने अपने ग्रंथ काव्य-कल्पद्रुम मे 'विवक्षित अन्य परवाच्य ध्वनि' कहा है।—संपादक

खंडिता नायिका की उक्ति नायक प्रति। नेत्रो की लालिमा, पलकों की पीक, महावर इत्यादि शब्दों से अन्य गोपी-समागम-सूचक व्यंग्य है, और संपूर्ण लाल लाल रंगों के द्वारा लाल नाम के समर्थन से काव्य लिंग अलंकार व्यंजित है। नेत्रो के लाल रंग से सौत के घर जागना वस्तुव्यंजक ध्वनि है। इन दोनो के कार्य-कारण के संबंध से एवं लक्ष्यकस्थ प्रयोजन से तथा नेत्रो की लालिमा, पलकों की पीक, महावर आदि का अर्थ नायक के अपराध पर अर्पण से और एक पद केवल आरोप्यमान कहने से प्रयोजनवती, अर्पणा, शुद्धा, साध्यवसाना लक्षणा हुई। इसी प्रकार और भी जानो। यहाँ लक्ष्यकस्थ व्यंग्य लक्ष्यार्थगत है, अत. अलंकार व्यंजित वस्तु व्यंजक ध्वनि हुई।

अर्थशा समुद्भव

अर्थशक्तिभव तान बिधि स्वतः संभवी एक ;
कबि-प्रौढ़ोक्ति द्वितीय लख भा[illegible]त कबि कर टेक।
कबि-निबद्ध वक्रोक्ति यह भेद तासरा सार ;
ये तीनों साहित्य में बरणौं चार प्रकार।
प्रथम बस्तु सें बस्तु बखानों ; द्वितिय बस्तु से भूषण जानों।
भूषण सें पुनि बस्तु प्रमानों ; भूषण सें भूषण पुनि जानों।
तीन भेद पूरब कहे, चार कहे यह आन ;
वे तीनों ये चार मिल, बारह बिधि पहचान।

स्वतः संभवी वस्तु से वस्तु

ऐ रे बागबान छोड़ बान कही मान मेरी,
फूली फुलवाद में न पैहै सुख नाम कौ ;
ऊगै इत ऊख जो पियूख सम दैहै स्वाद,
बोवै बृथा बीज यहाँ बागन तमाम कौ।
कहत 'बिहारी' है अनार में अबादी कौंन,
दोंना दुपहारिया दिवैया कौंन दाम कौ ;

---

* जहाँ व्यंग्यार्थ की प्रतीति शब्द के परिवर्तित होने पर भी हो, वहाँ ध्वनि के अंतर्गत अर्थशक्तिसमुद्भव कहते हैं।—संपादक

गेंदी कौन गंध की मुकेश कौन मजेदार,
दाख कौन दीन की कनैर कौन काम कौ।

यहाँ अनुशयाना की स्वाभाविक उक्ति से स्वतः संभवी ऊख बोना वस्तु से संकेतस्थल वस्तु प्रकट हुई, अतः स्वतः संभवी वस्तु से वस्तु-व्यंजक ध्वनि हुई। ऊख में संकेत है, इस गूढ़ प्रयोजन से एवं ऊख का अर्थ संकेत पर अर्पण होने से और कार्य-कारण के संबंध से तथा लक्ष्यक-लक्ष्य दोनों पदों से प्रयोजनवती अर्पणा शुद्धा सारोपा लक्षणा हुई।

स्वतः संभवी वस्तु से अलंकार

बिमल बिकासा बासी ब्रज कौ बिलासी बीर,
बरबस बिरह - ब्यथा कौ बीज बै गयौ;
कहत 'बिहारी' मुख मोर, दृग कोरन द्वै
कुसल कलान कौ क्रिया सें कछू कै गयौ।
रसिक रसीलौ रूप स्याम सुखमा कौ साज,
आज इन बीथिन ह्वो बाँसुरी बजै गयौ;
बड़िन की बान गुरु लोगन की आन सखी,
सब कुल-कान एक तान दैकैं लै गयौ।

यहाँ नायक प्रति अनुरागसूचक वस्तु-व्यंग्य से परिवृत अलंकार ध्वनि हुई। बर्णन स्वाभाविक है, अतः 'स्वतः संभवी वस्तु से अलंकार' ध्वनि हुई।

स्वतः संभवी अलंकार से वस्तु

कोकिल कलिंदी कुहू भौंर मदगंजन हैं,
अंधकार कैसे तार नौतम निहारे हैं;
नील जलजात नील मनि से लखात, नील
पाटरु तमाल प्रभा पूरन पसारे हैं।
कहत 'बिहारी' त्यों ही सरम सुगंधि-युक्त,
नीके ब्याल - छौनन के रूप जनु धारे हैं;
प्यारे सटकारे लचकारे त्यों लछारे ऐसे,
काजर तें कारे केस कामिनी तिहारे हैं।

यहाँ नायक स्वयं नायिका के केशों का वर्णन कर रहा है, अतः स्वाधीन-पतिका है। प्रतीप, रूपक, उपमादि अलंकार से केशो की श्याम शोभा व्यंजित वस्तु ध्वनि हुई। वर्णन स्वाभाविक है, अतः स्वतः संभवी अलंकार से वस्तु ध्वनि हुई।

स्वतः संभवी अलंकार से अलंकार

देह दुराय गई जल कों बहुरी बन बानर दोर धरी है;
ता डर हाँफत काँपत आई हों भीजत भाजत प्रात घरी है।
क्यों मग धावती क्यों गृह आवती घोर घटा निसि नीर झरी है;
मंदिर द्वार दिखावन कों सखि भाग्य तें चंचला चौंक परी है।

नायिका की उक्ति सखी प्रति—नायिका भूतगुप्ता

यहाँ नायक-सम्मिलन से जो कपादि सात्त्विक भाव हुए, उनकी वास्तविक आकृति को अन्य रीति से छिपाया और गृह पहुँचने का कार्य अनायास बिजुली के प्रकाश से सफल बतलाया, इसलिये व्याजोक्ति से समाधि अलंकार का आविर्भाव हुआ, अतः स्वतः संभवी अलंकार से अलंकार ध्वनि हुई।

कवि-प्रौढ़ोक्ति वस्तु से वस्तु

रावरो प्रताप रघुवंशमणि रामचंद्र,
देखो पूर्ण तेज ग्रीष्म कोटि दिनकर को;
कहत 'बिहारी' ताको तपन तुम्हारे शत्रु
विकल बिहानें सहें झोका झार झर को।
ते वे मंदभागी दुखदागी भौंन त्याग भाज,
लागे कर्न* सेवन हिमालय शिखर को;
तप्त हैं तमाम छिन पाय के अराम,
ऐसो जान अष्टजाम जपें नाम शीतकर को।

यहाँ तप्त होने के कारण शत्रुगण हिमालय-सेवन करते हुए शीतकर (चंद्रमा) का नाम स्मरण करते हैं। इस कवि-प्रौढ़ोक्ति से तात्पर्य यह हुआ कि तुम्हारे प्रताप से शत्रु हिमालय तक भाग गए हैं।

यहाँ "शत्रुओं ने हिमालय और चंद्र की शरण ली।" इस प्रौढ़ोक्ति वस्तु से श्रीरामचंद्र जी की बड़ाई वस्तु निकली, अतः यहाँ "कवि-प्रौढ़ोक्ति वस्तु से वस्तु

* कर्न = करन के अर्थ में प्रयुक्त है।

ध्वनि" हुई। अप्रयोजन से रूढ़ि और हिम-सेवन का अर्थ भाग जाने पर अर्पण होने से अर्पणा प्रताप सूर्य की सदृशता के संबंध से गौणी आरोग्य आरोपमान दोनो पदों से सारोपा, अतएव "रूढ़ि अर्पणा, गौणी सारोपा" लक्षणा हुई। इसी प्रकार और भी जानो।

कवि-प्रौढ़ोक्ति वस्तु से अलंकार

हरित झान पट में प्रिया झिलमिल झिलमिल होत ;
ज्यों तरु पत झँझरीन ह्वै जगत जुन्हाई जोत।

यहाँ नायिका का सौदर्य कवि-प्रौढ़ोक्ति से कहा गया है। नायिका का सौंदर्य वस्तु तिससे वस्तु उत्प्रेक्षालंकार प्रकट हुआ, अत कवि-प्रौढ़ोक्ति वस्तु से अलंकार ध्वनि हुई। लक्षणा पूर्ववत् समझो।

कवि-प्रौढ़ोक्ति अलंकार से वस्तु

काम कहर ऊँचो उठत लाज लहर दब जात ;
नेह नहर में भावती भँवर परी बिकलात।

नायिका मध्या—यहाँ प्रौढ़ोक्ति वर्णन है, और रूपक अलंकार से विकलता वस्तु निकली, अत. कवि-प्रौढ़ोक्ति अलंकार से वस्तु ध्वनि हुई। लक्षणा पूर्ववत् जानना।

पुनः

कवित्त

कोक की कलान केल खेल खुल प्रीतम सें,
जाग जोर जोबन बिताई जोंन्ह जामिनी ;
कहत 'बिहारी' छबि छीन सी छटा में छरी,
छज्जन अटा पै आन ठाड़ी भई भामिनी।
आलस उनींदे नैंन जात न जम्हाई लैकें,
अंगन इड़ानी उमड़ाना काम कामिनी ;
ऊँचे हाथ जोर कें छराक छोर दीने दोउ,
मानों नभखंड में दुखंड भई दामिनी।

लक्षणा-ध्वनि पूर्ववत् जानो।

कवि-प्रौढ़ोक्ति अलंकार से अलंकार

बंसी के प्रसंसी जदुबंसी अवतंसी लाल ,
बंसी-बट-बासी कहूँ बंसी हू दई हिराय ;
ढूँढ़त पधारे पिया नवल निकुंजन में ,
प्यारी कों बिलोक्यौ कै रही हैं जे हियं लगाय ।
कहत 'बिहारी' जाय श्याम कह्यौ स्यामा सन ,
मुरली सु दीजे यह लीनी है कहाँ चुराय ;
बोली तब राधे मुसक्याय मनमोहन सों ,
बीन है कि बाँसुरी, प्रबीन परखौ तौ आय ।

नायक के इस प्रश्न पर कि 'बाँसुरी दीजे' नायिका का उत्तर कवि-प्रौढ़ोक्ति-संयुक्त है । प्रियाजी बाँसुरी को आड़ी करके हृदय से लगाए हुए हैं। बाँसुरी डंडी-सदृश और उसके दोनो ओर उरोज तुंबक-सदृश समझकर श्रीकृष्ण से कहती हैं कि हे प्रवीण, इसे परखो तो कि यह बाँसुरी है कि वीणा है । यहाँ वीणा बाँसुरी में संदेह-जनित वचन कहकर वीणा की परीक्षा के मिस वक्षःस्थल का स्पर्श चाहती हैं। नायिका रूपगर्विता है और संदेह अलंकार से वीणा मिस कार्य साधन किया, इससे द्वितीय पर्यायोक्ति अलंकर प्रकट हुआ, अतः कवि-प्रौढ़ोक्ति अलंकार से अलंकार-ध्वनि हुई । और स्फुट प्रयोजन से प्रयोजनवती, उरोजन का अर्थ तुंबक तथा बाँसुरा के योग से वीणा प्रति आदान होने से उपादाना, सदृशता के संबंध से गौणी और केवल आरोप्य एक पद कहा, इससे साध्यवसाना लक्षणा हुई ।

कवि-निबद्ध वक्ता की उक्ति वस्तु से वस्तु

बागन गई ती बीर चुनन प्रसून-पुंज ,
बहत समीर मंद मोद उर धारे हैं ;
कहत 'बिहारी' तहाँ तन की सुगंधि पाय ,
मड़रावैं मुख पै मलिंद मतवारे हैं ।
कीन मनमान रस-पान इन ओंठन कौ ,
भौतक भगाये पै भगे न दईमारे हैं ,
दंत-छत फूटे बाक्य मान मति झूठे, मेरे—
अधर अनूठे आज जूठे कर डारे हैं ।

यहाँ भ्रमरगणों करके अनूठे अधर आज जूठे करि दिये। यह कवि-निबद्ध वस्तु भूतगुप्ता नायिका वक्ता की उक्ति-वस्तु है। गुप्ता के जो यहाँ वाक्य हैं, वे स्पष्ट हैं। अर्थ सुगम है। यहाँ नायक के दंतक्षत छिपाने का प्रयोजन है। भ्रमर-क्षत का उपादान और कारण-कार्य का संबंध तथा भ्रमर-क्षत केवल आरोपमान होने से प्रयोजनवती उपादाना शुद्धा साध्यवसाना लक्षणा हुई।

कवि-निबद्ध वक्ता की उक्ति-वस्तु से अलंकार

जहाँ स्याम राधा तहाँ जहँ राधा तहँ स्याम;
बिना स्याम राधा नहीं बिन राधा नहिं स्याम।

यहाँ वक्ता सखी की उक्ति परस्पर अन्योन्य प्रेम वस्तु से विनोक्ति अलंकार हुआ, अतः कवि-निबद्ध वक्ता की उक्ति-वस्तु से अलंकार ध्वनि हुई। लक्षणा सुगम।

कवि-निबद्ध वक्ता की उक्ति-अलंकार से वस्तु

भुज कंकन छापन छटा जावक तिलक सुदेस;
आये माल बिसाल धर कंत संत के भेस।

यहाँ वक्ता नायिका की उक्ति-रूपकालंकार से वृत्ति अपराधक वस्तु सूचित हुई, अतः कवि-निबद्ध वक्ता की उक्ति-अलंकार से वस्तु ध्वनि हुई। लक्षणा प्रयोजनवती अर्पणा गौणी सारोपा समझो।

कवि-निबद्ध वक्ता की उक्ति-अलंकार से अलंकार

पवन चलो री पै न रंचक चली री लली,
भान तन हेरो पै न नाह तन हेरौ री;
तारे टारे पै न अजौं तारे खुले थारे कहूँ,
मोंती सीत धारे पै न धारो कह्यौ मेरौ री।
कहत 'बिहारी' सुनी बोलन बिहंगन की,
बोल न सुनायौ तूनें नेह न नवेरौ री;
मंद तम भयौ पै न मंद भयौ आली क्रोध,
चंद्र ग्रह गयो पै न मान गयौ तेरौ री।

यहाँ नायिका। मानिनी वक्ता सखी की उक्ति, चलना न चलना, गया न गया इत्यादि शब्द विरोधवाची आए और पवन, चंद्रादि कारण होते हुए भी कार्य नहीं हुआ, अतः विरोधाभास से विशेषोक्ति अलंकार प्रकट हुआ, अतएव कवि-निबद्ध वक्ता की उक्ति अलंकार से अलंकार ध्वनि हुई। और, रूढ़ि अर्पणा शुद्धा साध्यवसाना लक्षणा हुई।

शब्दार्थ उभयशक्तिसमुद्भव*

फूल फबे कानन कलित आन न अमल अवास ;
जाव लाल उड़ गन निरख नवल मुनैयाँ पास ।

हे लाल (लाल नाम का एक पक्षी होता है), जिस कानन (वन) में फूल शोभित हो रहे हैं, आन न (नहीं है और जगह) ऐसा निर्मल स्थान, जहाँ गन (समूह) नवल (नई) मुनैयाँ (चिड़ियाँ) प्राप्त हैं, उनके पास उड़कर जाओ। इस प्रकृति अर्थ के पदों से दूसरा सूच्यार्थ मुद्रित हुआ कि हे लाल (नायक). जिसके कानन मे फूल (कर्णफूल) सुशोभित हैं, जिसका आनन (मुख) अमलता का स्थान है, ऐसी नवल मुनैयाँ (नायिका) के पास उडगन (तारागण) देखकर शीघ्र पधारिए। यह अर्थ शब्द-अर्थ दोनो की शक्ति पाकर मुद्रालंकार से मुद्रित हुआ, अतः इसको शब्दार्थ उभय शक्तिसमुद्भव समझो।

संलक्ष्यक्रम ध्वनि

संलक्ष्यक्रम भेद बहुत भन ; हाव भाव रस रूप अनेकन ।
सो सब ठौर काव्य में राजत ; बिन रस काव्य कहूँ नहिं भ्राजत ।
संलक्ष्यक्रम नाम लहत हैं ; याही कों रस व्यग कहत हैं ।
सो आगे दैहैं दरसाई ; गुणीभूत अब कहत बनाई ।

इति ध्वनिप्रधान उत्तम काव्य

अथ गुणीभूत व्यंग्य मध्यम काव्य

दोहा

चमत्कार यह वाच्य कौ जहँ ऊँचौ दरसाय ;
वाक्य चमत्कृत सामने व्यंग जहाँ दब जाय ।
गुणीभूत सो व्यंग है आठ भाँति तिहि हेत ;
लक्षण और उदाहरण परिभाषा में देत ।

---

* जहाँ कुछ पद-परिवर्तन होने तथा कुछ पदों के अपरिवर्तित रहने पर व्यंग्य सूचित हो, वहाँ ध्वनि के अंतर्गत 'शब्दार्थउभयशक्तिसमुद्भव' होता है। —संपादक

चौपाई

प्रथम नाम अपरांग बखानो ; काक्वाक्षिप्त दूसरी जानो ।
फेर वाच्य सिद्धांग आनिये ; अरु संदिग्धप्रधान मानिये ।
तुल्यप्रधान अगूढ़ सुहाई ; अस्फुट नाम कह्यो जिहि गाई ।
बहुर असुंदर नाम निहारा ; आठ भेद कर यह बिस्तारा ।

जहाँ वाच्यार्थ का ही चमत्कार इतना ऊँचा हो कि व्यंग्य का चमत्कार दब जाय, वहाँ गुणीभूत (गुण के सदृश गुणवाली) व्यंग्य होता है। जो आठ प्रकार से कहा गई है—

(१) अपरांग* —जिसमें एक रस अंगी हो और दूसरा रस अंग हो। (जैसे शृंगार को युद्ध के रूपक से कहे)

(२) काक्वाक्षिप्त—जहाँ काकोक्ति अर्थात् स्वर के चमत्कार से व्यंग्य संकुचित हो। (यह काकोक्ति वाच्यार्थ में होती है)

(३) वाच्य सिद्धांग—जिस व्यंग्य का अंग वाच्य ही से सिद्ध हो। (यह मुद्रा, श्लेष आदि के वाच्यार्थ में प्रायः होती है)

(४) संदिग्धप्रधान—जहाँ वाच्यार्थ व व्यंग्यार्थ दोनो की प्रधानता समझने में संदेह हो। जैसे कहा "श्रवण समीपी नैंन" यहाँ वाच्यार्थ श्रवण तक नैन हैं, और व्यंग्यार्थ से श्रवण तक बड़े नेत्र हैं। दोनो अर्थ में प्रधानता किस अर्थ की है, इसमें संदेह है।

(५) तुल्यप्रधान—जहाँ वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ दोनो तुल्य हो, प्रधान हों। जैसे मुख से कमल संपुट होता है, यह वाच्यार्थ है और मुख चंद्र-सम है, तब तो कमल संपुट होता है, यह व्यंग्यार्थ है। यहाँ अर्थ दोनो लिए गए, किंतु कमल का संपुट होना दोनो मे तुल्य हो रहा है, अर्थात् दोनो प्रधान हैं।

(६) अगूढ़ (स्फुट)—जो प्रकट जान पड़े, ऐसा वाच्यार्थ हो।

(७) अस्फुट—जो प्रकट न जान पड़े। जैसे तेरे हाथ से हंस मोती नहीं चुगते। यहाँ लाल हाथों से मोती लाल हो जाते है। भाव गूढ़ है, प्रकट नहीं जान पड़ता। व्यंग्य गुणीभूत ही है।

---

* जहाँ रस, भाव, रसाभास, भावाभास, भावशांति, भावोदय, भावसंधि और भावसबलता में व्यंग्य अर्थ अन्य अर्थ का अंग हो जाता है, वहाँ अपरांग व्यग्य होता है। यहाँ कविराज बिहारीलालजी ने इन सब भेदों में रस की अपरांगता ही को मुख्य मानकर केवल उसी का उल्लेख किया है।—संपादक

(८) असुंदर—जिसमें व्यंग्य गुणीभूत हो, किंतु उस वाच्य में सुंदरता का प्रयोग न हो। भाव सुगम।

इति गुणीभूत व्यंग्य

अथ रसगत व्यंग्य असंलक्ष्यक्रम ध्वनि

छप्पय

प्रथम काव्य के रूप दोय बिधि के पहिचानो ;
एक कहावत दृश्य दूसरो श्रव्य बखानो।
केवल दिखबे योग्य होय सो दृश्य कहावै ;
सुनबै सें सुख मिलै श्रव्य सो नाम सुहावै।
कह कबि 'बिहार' नाटक सहित रूपक दृश्य बखानिये ;
रामायणादि रघुबंश यह श्रव्य काव्य पहिचानिये।

दोहा

श्रव्य काव्य में होत है ध्वनि अरु व्यंग प्रधान ;
तासें उत्तम काव्य यह कहत सकल बुधिवान।
गुणीभूत में होत है चमत्कार पद सार ;
तासें मध्यम काव्य यह भाषत गुन-आगार।
चित्रन में जहँ काव्य कौ चमत्कार चित देव ;
चित्र काव्य तासों कहत सो निकृष्ट गन लेव।
श्रव्य काव्य में सरस रस ध्वनि कौ भेद सुठाम ;
अब आगे बरनन करत रसगत व्यंग ललाम।
तातपर्य जहँ व्यंग में संलक्ष्यक्रम* जोय ;
तातपर्य पद में जहाँ असंलक्ष्यक्रम सोय।

---

* संलक्ष्यक्रम व्यंग्यध्वनि—जिस ध्वनि में वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ का तात्पर्य अच्छी तरह ज्ञात होता हो।—संपादक

तातपर्य पद अर्थ में जहँ अन्वय संबंध ;
असंलक्ष्यक्रम ध्वनि तहाँ भाखत पूर्ण प्रबंध ।
जहाँ एक के भाव में दूजौ भाव लखाय ;
ताकों अन्वय कहत हैं कविजन सहज सुभाय ।
जहाँ धूम कहुँ लख परै अग्नि अवश तहँ मान ;
एक वस्तु के भाव में द्वितिय भाव इमि जान ।
धूम जहाँ नहिं जोहिये अग्नि तहाँ नहिं मान ;
ताहि कहत व्यतिरेक हैं जानत जग बुधिमान ।
एक भाव में भाव की दूजी झलकै जोत ;
पूर्वान्वय संबंध से असंलक्ष्यक्रम होत ।

यहाँ असंलक्ष्यक्रम जोई ; भाव बीच रस व्यंजित होई ।
ज्यों अन्वय संबंध बखानों ; भाव बीच रस तैसहिं जानों ।
रसगत व्यंग नाम सो लीजे ; तासें रस कौ बरनन कीजे ।

रस

जैसें रसना से खटरस कौ सरस रस
परस हरष चारु चोंप चखियतु हैं ;
तैसें नवरस देखें सुनें चित पावै चैन
ब्रह्मानंद तुल्य तामें रुचि रखियतु हैं ।
कहत 'बिहारी' पर निरगुन रूप वाको,
लख में न आवै कैसो न्याय नखियतु हैं ;
तासें वह भावन विभाव अनुभावन तें
होत है सगुन ताकी लीला लखियतु हैं ।

भाव

मन की तथा यह देह की जो प्रकृति स्वाभाविक अहै ;
सो अन्यथा कछु होय ताकों भाव भाविक कवि कहै ।
मन को बिकार प्रकार द्वै जिहि एक थाई जानियें ;
अरु द्वितिय संचारी कह्यौ यह भाँति भेद बखानियें ।
तन कौ विकार प्रकार एकहि नाम "सात्त्विक भाव" है ;
सो देह ऊपर लख परत, जिहि समय जैसो पाव है ।
अब थाई के बहुभेद लक्षण शास्त्र में जस लखत हैं ;
गुरुदेव पूर्ण प्रसाद लह, समुझाय सो सब कहत हैं ।

स्थायी, संचारी विभाव और अनुभाव

निज निज रस में थिर रहैं ते थाई पहिचान ;
संचालन करिबो करौ संचारी ते मान ।
मुख्य हेतु है थाई कौ ताकों कहत विभाव ;
अनुभव थाई कौ करत होत नाम अनुभाव ।

सो विभाव द्वै भाँति बखानों ; प्रथम भेद आलंबन जानों ।
द्वितिय भेद उद्दीपन लहिये ; अब दोहुन के लक्षण कहिये ।
थाई कौ अवलंबन भावै ; सो आलंबन भाव कहावै ।
उद्दीपित रस जासें होई ; भाव कहत उद्दीपन सोई ।

थाई जो थिर रहत बीज ताकों अनुमानो ;
आलंबन जिहि नाम सोई पृथ्वी पहिचानो ।
उद्दीपन जल रूप ताहि सिंचन कर पावै ;
पुनि अनुभाव अवश्य आय अंकुरित बनावै ।

कह कबि 'बिहार' इन सबन कौ जबहि जोग पूरन परै ;
सो सरस सुखद रस-बिटप बर नव सुरूप धारन करै।

स्थायी भाव-भेद

रति हास्य शोकहु क्रोध अरु उत्साह भय पहिचानिये ;
पुनि घृणा विस्मय शमन थाई नव प्रकार बखानिये।
अब पृथक लक्षण पूर्ण इनके सरल शब्द न आनहीं ;
आचार्य ग्रंथन रीति लखकर कबि 'बिहार' बखानहीं।

लक्षण

हास्य

वेष बनाय करहि कछु कौतुक तैसहि बचन सुनावै ;
तब मन की जो विकृति अपूरन सो पुनि हास्य कहावै।

शोक

जहँ बियोग हो पिय पदार्थ कौ मिलन आश नहिं लावै ;
तब मन की जो विकृति अपूरन सो पुनि शोक कहावै।

क्रोध

मन प्रसन्न, वह तिरस्कार भयँ प्रतिकूलत्व जतावै ;
तन मन की जो विकृति अपूरन सो पुनि क्रोध कहावै।

उत्साह

दान, दया, अरु धर्म, बीर में परम प्रवृत्ती आवै ;
तब मन की जो विकृति अपूरन सो उत्साह कहावै।

भय

प्रेतादिक सर्पादि व्याघ्रतन अविकृत विकृत लखावै ;
तब मन की जो विकृति अपूरन सो भय भाव कहावै।

घृणा

दर्शन पर्शन सुमिरन जहँ कहुँ बस्तु घृणित कौ आवै ;
तब मन की जो विकृति अपूरन सो पुनि घृणा कहावै ।

विस्मय

चमत्कार से भरी बस्तु कौं लखै, सुनै, सुधि आवै ;
तब मन की जो विकृति अपूरन बिस्मय सोइ कहावै ।

शमन

तृष्णा अंतःकरन चतुर की जब निवृत्ति हो जावै ;
तब मन की जो विकृति अपूरन सो पुनि शमन कहावै ।
नवरस के नव थाई भाषे पूरब रीति निहारी ;
अब तेंतिस बिधि के संचारी बरनन करत 'बिहारी' ।

यहाँ आठ स्थायी कहे हैं। एक स्थायी (रति) पहले कह दिया है, उसको मिलाकर नौ होते हैं।

३३ संचारी

आदि निरवेद[१] ग्लानि[२] कहत असूया[३] मद[४],
इसमृति[५] शंका[६] श्रम[७] आलस[८] प्रमानिये ;
चिंता[९] दैन्यता[१०] औ' मोह[११] चपलता[१२] ब्रीडा[१३] पुनि,
जड़ता[१४] हरष[१५] धृति[१६] आवेगहु[१७] जानिये ।
औतसुक्य[१८] निद्रा[१९] गर्व[२०] अपस्मार[२१] सुप्ति[२२] ब्याधि[२३],
बोध[२४] औ' विषाद[२५] अवहित्थ[२६] त्रास[२७] मानिये ;
उग्रता[२८] वितर्क[२९] उन्माद[३०] औ' अमर्ष[३१] मती[३२],
निधन[३३] समेत नाम तेंतिस बखानिये ।

इनके लक्षण क्रम-पूर्वक आगे कहे हैं। यहाँ पर कवित्त मे छंद की लय तथा शुद्धि के कारण, जहाँ जो ठीक बैठे, लिख दिए।

३३ संचारियों के लक्षण

१ निर्वेद

दृश्य वस्तु सब मिथ्या जानो ;
यहै भाव निर्वेद बखानो।

२ ग्लानि

असहनता निरबलता होई ;
ताकों ग्लानि कहत सब कोई।

३ असूया

पर उत्कर्ष सहन ना होवै ;
ताहि असूया कबि जन जोवै।

४ मद

जहँ उत्कर्ष हर्ष कौ राखै ;
मद संचारी तिहि कबि भाखै।

५ स्मृति

पूर्व ज्ञात की सुधि कछु आवै ;
इस्मृति भाव ताहि कबि गावै।

६ शंका

जहँ अनिष्ट की होय अवाई ;
ताहि कहत शंका कबिराई।

७ श्रम

परिश्रमवत् लावै मनहारी ;
तिहि श्रम नाम कहत आचारी।

८ आलस

बैठत उठत न मन रुचि पावै ;
ताकौ आलस नाम कहावै।

९-१० चिंता, दैन्यता

ध्यान चिंतमन चिता जानौ ;
दैन्य दुखित सम भाव बखानौ।

११ मोह

सुध बिसरै चैतनता गोवै ;
मोह नाम पुनि ताकौ होवै।

१२ चपलता

करै क्रिया बहु रहै अधूरी ;
ताहि चपलता कहियत पूरी।

१३ व्रीड़ा

जो निश्चिंत क्रिया अरु क्रीडा ;
तामें सकुचावै सो व्रीड़ा।

१४-१५ जड़ता, हर्ष

ज्ञानहीन मन जडता जानौ ;
चित प्रसन्न सो हर्ष बखानौ।

१६ धृति

दुख कों सुख समान जहँ लहिये ;
अरु संतोष, धृती सो कहिये।

१७-१८ औत्सुक्य, निद्रा

क्रिया सकल इंद्रिन की जोई ;
एक बार आरंभै सोई।
औतसुक्य सो नाम बखानौं ;
चित्त, त्वचा, थिर, निद्रा जानौं।

१६ गर्व

सबसे अधिक अपुन कों मानैं ;
गर्व नाम ताको कबि ठानैं ।

२० अपस्मार

ग्रह प्रेतादि भाव सम भरवै ;
अपस्मार तिहि कबि उच्चरवै ।

२१ सुप्ति

चित पुरीत नाड़ी रम जावैं ;
ज्यों सुषुप्ति, सो सुप्ति कहावै ।

२२ विषाद

चाही में अनचाही होई ;
कह विषाद ताकों सब कोई ।

२३ आवेग

इष्ट अनिष्ट, पतन में भ्रम जहँ ;
कहत सुकबि आवेग नाम तहँ ।

२४ विबोध

इंद्रिय मन जहँ बोध प्रकासै ;
सो विबोध कबि कोबिद भासै ।

२५ अवहित्थ

आकारहु व्यवहारहु दोई ;
छिपैं जहाँ, अवहित्थ सु होई ।

२६-२७ व्याधि, उग्रता

रोग-ग्रसित, व्याधी तिहि जानो ;
निर्दयता च उग्रता मानो ।

२८ त्रास

अकस्मात क्षोभित मन जबहीं;
त्रास नाम कहियतु है तबहीं।

२९-३० मति, वितर्क

ज्ञान यथार्थ नाम मति भावै;
उपजत तर्क, वितर्क कहावै।

३१ अमर्ष

पर अभिमान शमन की चेष्टा;
कहत अमर्ष नाम कवि श्रेष्टा।

३२ उन्माद

बिन बिचार आचरै जु कोई;
तिहि उन्माद कहत सब कोई।

३३ निधन

प्राण उत्क्रमण, निधन कहावै;
ये तेंतीस नाम कबि गावै।

इति अंतर्विकार भाव।

अथ बहिर्विकार भाव सात्विक

अब कहत सात्त्विक भाव जो लख परत ऊपर अंग ही;
इक थंभ पुनि रोमांच वेपथु स्वेद अरु स्वरभंग ही।
कह अश्रु सप्तम प्रलय अरु वैवर्ण्य नाम प्रमानिये;
यहि भाँति सात्त्विक भाव के यह आठ भेद बखानिये।

थकित अंग सो थंभ है रोम रोम उठ अंग ;
वेपथु आवह कंप कछु स्वेद स्वेद कौ ढंग ।
अन्यवर्ण वैवर्ण्य है अश्रु नयन जल रंग ;
चेत, अचेतन सम, प्रलय गद्‌गद स्वर स्वरभंग ।
पूरब भावादिकन के बरणों लक्षण अंग ;
उदाहरण लख लीजियौ निज निज रस के संग ।

रस

अनुभाव और विभाव अरु द्वै भाँति संचारी जहाँ ;
मिल थाई को पूरन करें सो सुकबि रस जानो तहाँ ।
यह थाई ही रस रूप है पर फेर इतनो पाव है ;
उन चार मिल ये होत रस उन चार बिन ये भाव है ।
सो रस मुख्य प्रथम द्वै विधि को लौकिक एक गनायौ ;
दूजौ नाम अलौकिक थाकौ भरतादिक ठहरायौ ।
शब्द स्पर्श रूप रस गंधहु इंद्रिय बिषय बखानें ;
इनसें जो प्रत्यक्ष प्रबोधित लौकिक तिहि कबि मानें ।
मन सें अनुभव होय, अलौकिक तीन भेद हैं ताके ;
स्वाप्निक प्रथम स्वप्न में व्यापित ज्यों चरित्र ऊषा के ।
मानोरथिक मनहि सें कल्पित, उपनायक पुनि तीजौ ;
काव्य पदारथ सें प्रगटत है यह लक्षण लख लीजौ ।

सो रस मुख्य अष्ट बिधि जानों ;
प्रथम शृँगार हास्य पुनि मानों ।
करुणा रौद्र वीर निरधारौ ;
बहुर भयानक नाम बिचारौ ।

सप्तम पुनि बीभत्स बखानों ;
अष्टम अद्‌भुत कों पहिचानों ।

नवम शांत पुनि कबियन भाखे ;
भरतादिक ने आठहि राखे ।

मत नवीन आचार्य गनाये ;
भक्ति पंच रस और गनाये ।

प्रथम नाम शृंगार बखानों ;
दूजौ नाम सख्य रस जानों ।

तीजौ दास्य नाम दरशायौ ;
वात्सल्य चौथौ बतरायौ ।

पंचम शांत नाम रुचि राखे ;
भक्तन पंच पंच रस भाखे ।

तिनमें शांत शृंगार सुहावें ;
ये उन नवरस में मिल जावें ।

दास्य सख्य वात्सल्य बताये ;
तीन शेष यह पृथक सुहाये ।

भाव-सहित अनुभाव प्रकारा ;
है इनकौ बिस्तार अपारा ।

सूक्ष्म रूप यामें लख लैहौ ;
पूर्ण रूप संतन ढिग पैहौ ।

प्रथमहि जो नवरस कहे भाव सहित पहिचान ;
लक्षण और उदाहरण आगे करत बखान ।

शब्द लक्षणा व्यंजना ध्वनि भावादिक अंग ;
भई सिंधु साहित्य की पंचम पूर्ण तरंग।

स्वस्ति श्रीमन्महाराजाधिराज श्रीकाशीश्वर ग्रहनिवार पंचम विंध्येलवंशावतंस
श्रीमत्सवाई महाराजा साहब भारतधर्मेंदु सर सावंतसिंहजूदेव
बहादुर के० सी० आई० ई० बिजावरनरेशस्य कृपापात्र ब्रह्मभट्ट-
वंशोद्भव कविभूषण कविराज पं० बिहारीलालविर-
चिते साहित्यसागरे शब्दलक्षणाव्यंजनाध्वनि-
भावादिप्रकरणवर्णनो नाम पंचमस्तरंगः।

---

* षष्ठ तरंग *

शृंगार-वर्णन

सार छंद

यह शृंगार सरस रस जिनके आश्रय से सरसानो ;
ते प्रियतम अरु प्यारी यामें आलंबन पहिंचानो ।
उद्दीपन षट् ऋतु की सुखमा 'भूषन', 'फूलन-माला' ;
सुंदर 'सखा', 'सखी' अरु दूती, बोलन 'बचन रसाला' ।
'कविता' आदि 'राग' 'रागिनि' बहु 'उपवन'-'गमन' जतायो ;
'सर'-'सरिता'-'सरसीरुह'-सुखमा, 'सुखद समीर' सुहायो ।
'चंदन', 'चंद्र', 'चाँदिनी-चमकनि' अतर सुगंध निहारी ;
जे शृंगार रस के उद्दीपन बरणै बिबिध 'बिहारी' ।
अब अनुभाव कहत यहि रस के पाठकगण चित दीजे ;
नैनन अरु आनन प्रसन्नता मधुर बचन गनि लीजे ।
मृदु मुसुक्यान, मनोहर मूरति, अरु संतोष सुहावन ;
कारे, लाल, हरीरे, पीरे बहु बिधि रंग गनावन ।
क्रियन सहित कर करन चलाबौ अरु आनँद बरसैबौ ;
चंचल चपल चलन चख़ुन को तिरछी दृष्टि चितैबौ ।
वे बिभाव आलंबन दीपन जे अनुभाव गनाए ;
वर्ण रूप अब वर्णन कीजत जस आचार्य बनाए ।

दोहा

रति स्थायी रंग श्याम है, कृष्ण देव शृंगार ;
संचारी प्रगटत दुऊ समय समय अनुसार ।

सोरठा

दुहूँ दुहुन तन हेर, प्रगट होत रति भाव है ;
आलंबन रस केर ते नायक अरु नायिका ।

दोहा

तासें प्रथमहिं नायिका बरणत भेद बिचार ;
लक्षण सहित उदाहरण कहत सुमति अनुसार ।

नायिका-लक्षण

जाकी झाँकत झलक के झलक उठे रति भाव ;
बरनत ताकहँ नायिका जे प्रबीन कबि राव ।

उदाहरण

तन तरुणाई उई ओप अरुणाई आछी,
 कनक निकाई लौं लुनाई लाइयतु हैं ;
कोक रतिवारी कुल शील मतिवारी,
 प्यारी कहत 'बिहारी' गुण गौरि गाइयतु है ।
जाके पग परत प्रभाव पदमा को बढ़ै,
 भूषण द्विगुण द्युति छेम छाइयतु है ;
ऐसी प्रेमपोषिणी प्रहर्षिणो प्रवीण प्रिया,
 पूरब के पूरे पुण्य पाय पाइयतु है ।

आर्या छंद

सरसा सालंकारः सपदन्यासः सुवर्णमयमूर्तिः ;
आर्या तथैव भार्या न लभ्यते क्षीणपुण्येन ।

दोहा

पूर्ण अंगमय जानिये, पूर्ण नायिका जोत ;
फिर जस जस भेदहिं बढ़ै, तस तस अंतर होत ।
जैसे बृहत अकास है, पूर्ण प्रकाश लखात ;
घट मठ भेद उपाधि से भिन्न नाम दरशात ।
पूर्ण अंग तिमि नायिका, ताके भेद तमाम ;
जाति गुणादिक कर्म से अलग अलग भे नाम ।

छंद

प्रथम जाति तैं द्वितिय कर्म तैं वय तैं तृतिय बखानो ;
चौथे समय देश तैं पंचम षष्ठम गुण तैं मानो ।
सप्तम प्रकृति सत्त्व तैं अष्टम आठहु भेद निहारो ;
उदाहरणमय लक्षण इनके बरणन करत 'बिहारी' ।

नायिका-जाति-भेद-वर्णन

प्रथम पद्मिनी नायिका, द्वितिय चित्रिनी जान ;
तीजी कहिए शंखिनी चतुर हस्तिनी मान ।
रसिकप्रिया केशव करी वरणों तहँ शृंगार ;
तामें यह लक्षण कहे जाति नायिका चार ।
और अनेकन कविन ने भाखे भेद प्रमान ;
तासें इत वरणें नहीं समझें सुकबि सुजान ।

साँझ औ' सबेरैं सुचि सलिल सों सींच-सींच ,
सूरजमुखी कौं सदा सुखी रखिबौ करौ ।

❀ ❀ ❀

चंपा सौ न पुष्प औ' न लंका सौ नगर और
गंगा सी नदी न पुंज पावन पुनीता सी ;
कासी सी पुरी न और तीरथ प्रयाग कैसे ,
ब्रज सी न प्रेम-भूमि बिमल बिनीता सी ।
कहत 'बिहारी' बालमीक से कबी न और
भारत सी कथा औ' न गाथा ग्यान गीता सी ;
मानसी सी पूजा औ' न विष्णु कैसे देव कहूँ ,
राम से न राजा औ' न रानी सती सीता सी ।

❀ ❀ ❀

सो स्वकिया वय-भेद सें बरनी तीन प्रकार—
मुग्धा मध्या दूसरी तीजी प्रौढ़ा नार ।
मूढ़ अवस्था❀ मुग्धा जानो ; मध्य भये पर मध्या मानो ।
प्रौढ़ अवस्था रूप लखायौ ; तब पुनि प्रौढ़ा नाम कहायौ ।

मुग्धा-लक्षण

लरिकाईं में तन बिषे तरुनाई जब आय ;
तब वह तिय कीता समय मुग्धा वयस कहाय ।

उदाहरण

ज्यों-ज्यों बँध रह्यौ गोरी गति कौ नियम नीकौ,
त्यों-त्यों छुट रह्यौ उतै खेलन खयाल कौं ;

❀ मूढ़ अवस्था = बाल्यावस्था, मुग्धावस्था ।

उठबौ चहैं जे ज्यों-ज्यों उन्नत उरोज तेरे,
बैठबौ चहैं वे त्यों-त्यों भवन बिसाल कौ।
कहत 'बिहारी' बढ़ रहै री नितंब ज्यों-ज्यों,
घटि रहो त्यों-त्यों उन्हें प्रेम परबाल कौ;
ज्यों-ज्यों तेरौ निरखिबौ नैंनन कौ नीचौ होत,
त्यों-त्यों मन ऊँचौ होत मदनगुपाल कौ।

❀ ❀ ❀

नैंनन की नोकें नीकी श्रवण समीपी भई,
श्रवण सुभाव शब्द सरस लयौ चहै;
अधर ललाई मधुराई मुसक्यान आई,
नाह निज आस तें न पास तें गयौ चहै।
कहत 'बिहारी' दिन द्वैक तें परैं यों जान,
दिन दिन दूनौ दिब्य दरश दयौ चहै;
कुंदन कदन तेरौ बदन रँगीली राधे,
मदन महीप जू कौ सदन भयौ चहै।

❀ ❀ ❀

रूप कैसी रासि कौ उजास होत आवै नित्य,
गति गज कैसी ब्रज महिमा मढ़त है;
कहत 'बिहारी' कहूँ तकन तिरीछी लाल,
लोंइन लड़त देखि सौतिन गढ़त है।
दिन - दिन दून - दून दीपत प्रकास - पुंज,
छिन - छिन अंग रंग चौगुनौ चढ़त है;
कुँवर कन्हैया काज, नवल दुल्हैया तेरौ,
रोज-रोज जोबन जुन्हैया सौ बढ़त है।

❀ ❀ ❀

इत रचि देत प्रमानसन उत ओछी दरसात;
दरजिन कोटिन कंचुकी बनवत ही दिन जात।

मुग्धा-भेद

नवलबधू नवयौवना नवलअनंगा बाम;
लज्जाप्राया चतुर्बिधि ये मुग्धा के नाम।

लक्षण

दिन-दिन दुति दूनी बढ़ै नवलबधू सो जान;
छुटपन गत जोबन जगै नवयौवना बखान।
हँसै त्रसै खेलै खिलै नवलअनंगा होय;
सुरत लाज जुत जोर में लज्जाप्राया सोय।

(नवलवधू)[१] छावत री छबियों छिन पै
छिन आवत री उपमा न अटूटी;
(नवयौवना)[२] जोबन जोति जगी लख लाल
मनोज की मौज चढ़ी चित लूटी।
(नवलअनंगा)[३] अंक 'बिहार' भरी सो डरी
बिहँसी खिसी ह्वै रहि इंद्रबधूटी;
(लज्जाप्राया)[४] कोटि उपाय रचै ब्रजराज
पै राज लड़ैती की लाज न छूटी।

नवलवधू मुग्धा-भेद

नवलवधू मुग्धा अहै भेद तासु के दोय;
प्रथम एक अग्यात है ग्यात दूसरी होय।

मुग्धा जोबन आगमन दिन दूनौ दरसात ;
ना जानै अग्यात है, जो जाने सो ग्यात ।

अज्ञातयौवना का उदाहरण

आज होरी खेलत में मेलत अबीर-झोरी,
बेसर गई री गिर औसर सुहाती है ;
झपट कन्हाई चतुराई सें उठाई मेरी
ठोड़ी गहि माई पहिराई मन भाती है ।
कहत 'बिहारी' वाकौ परस भये सें बाल,
जानैं का हवाल भयौ चल चकराती है ;
ररकन बोल लाग्यौ ढरकन स्वेद अंग,
थरकन देह लागी धरकन छाती है ।

❀ ❀ ❀

आई उठ पास या इकंत चारु चौकी पर,
देख तुव सोभा स्वेत आनँद अथोरै ना ;
तेरे ही अहार हेत उर तें उतारी मैंने
कहत 'बिहारी' काहे फल गुण टोरै ना ।
मुक्तमाल मेरे हाथ हेर हंस भाजै बृथा,
खाजी है न राजी होत नेक नैंन जोरै ना ;
देख याह चाह भरी चंचल चितौंन खरी,
चोंप-चोंप चुनत चकोर चोंच मोरै ना ।

❀ ❀ ❀

सखिन सजाये भूरि भूषन बिबिध अंग,
केसन सम्हार पुंज पूरन प्रभा दई ;

नेह री बड़ौ है नयो गेह ही रहन हू कौ,
देहरी दुरावै झाँकै देहरी न द्वारौ है ;
चंदन की चौकी चारु बैठी चित्रसारी, तोहि
आरसी लै बदन निहारत निहारौ है।
कहत 'बिहारी' दिन द्वैक से दुलारी देख्यौ,
रंग ढंग अंग कछू और ही तिहारौ है ;
कंठ बस्यौ गान नैंन बीच बस्यौ ध्यान, तेरे
कान बसा तान और प्रान बस्यौ प्यारौ है।

❀ ❀ ❀

सखिन समाज बैठि बीनहिं बजावै, छिन
सीसन सुगंध लै बिनोदन बिसेखिए ;
स्वरन अलाप सुधा सींचति सुबोलन तें,
छिनक छिपाय अंग सुखमा सुलेखिए।
कहत 'बिहारी' छिन छकत छबीली छाँहैं,
छिनक अटान आय आभा अवरेखिए ;
चाँदनी कौ देख करै चंद्र देखिबे की चाह,
चंद्र देखि चाहत गुबिंद कहूँ देखिए।

❀ ❀ ❀

हरषि-हरषि हुलसत हिये निरखि-निरखि तन-जोति ;
बिमल रतन ज्यों पारखी परखि प्रफुल्लित होति।

मुग्धा के अन्य भेद

चहै न पति से रति कहूँ डरै लजै सब जाम ;
ता मुग्धा कौ कबिन ने धरो नवोढ़ा नाम।

नवोढ़ा का उदाहरण

बोलन में सी-सी मुख खोलन में सी-सी अहो,
डोलन में सी-सो अली जीवन सु जी की है;
कहत 'बिहारी' पट हरत में सी-सी, हाँस
करत में सी-सी अति आनँद घनी की है।
पौढ़न में सी-सी भुज भरत में सी-सो, कर
धरत में सी-सी दैन सुखद अमी की है;
गति करिनी की हरिनी की तुम नीकी कहौ,
कहन बसी की यह सी की* कहाँ सीकी† है।

* * *

तू ही तौ बताय भेद भावती न जान परै,
धारै कौन ध्यान कौन देव - पद सेवै है;
मौन ह्वै रहत छिन मोद प्रगटत, छिन
बिहँस बतात छिन चौंकत चितैवै है।
कहत 'बिहारी' बीर बदन तिहारौ धन्य,
सुखमा बढ़ाय और उपमा उजेवै है;
भानु के उदै मैं चारु चंद सौ प्रकास देवै,
चंद के उदै मैं अरबिंद पद लेवै है।

* * *

---

* सी की = सी-सी कहने की बात। † सीकी = सीखी।

पाय कैं अकेली अलबेली केलि-मंदिर में,
स्याम ने समेंटी निस बीती अधरात है ;
सी-सी करै सीवी कहै नीवी जू न छोवी मान,
लीनी कस जीवी अस घनी घबरात है।
कहत 'बिहारी' नैंन भर-भर देति पाँयँ,
पर - पर लेति काँपैं थर - थर गात है ;
उछलि - उछलि अंग उससि-उससि आली,
उमठि-उमठि ऐंठि उठि - उठि जात है।

❀ ❀ ❀

बैठी हेम-बेली सी हवेली में नवेली बाल ,
बाँधे कस कंचुकी अजोर जोर भर सें ;
रहत ससंक बंक भृकुटी सकोरै सोचै ,
चौकत चहूँधा झुक झाँकत नजर सें।
कहत 'बिहारी' आए कुँवर कन्हाई तौ लौं ,
लाई परयंक पै न आई लाज डर सें ;
ऐसी करो हरि सें सलोंनी सेज परसें ,
न जानें कौंन कर सें❀ गई है छूट कर सें।

❀ ❀ ❀

बचन बिनोद की बहार बरसावै बीर ,
खेलन बिचार करै कमला भरन की ;

❀ कर = कल, कला, चतराई।

कहत 'बिहारी' तहाँ मालिन सुमन भाई ,
नीरज नजर लाई लाल अधरन की।
संपुट बिलोक कंज चारु चंचला सी हेरि ,
सखिन समाज बैठी चंपक बरन की ;
कोमल करनवारी सुखमा करन लागी ,
निंदित करन, दानबीरता करन की।

❀ ❀ ❀

बैठी सिमिट सखीन बिच, सकुचति डरति लजाति ,
ज्यों-ज्यों निसि नियराति है, त्यों-त्यों तिय पियराति।

विश्रब्ध नवोढ़ा-लक्षण

करन लगत कछु दिन गए प्रीतम पर बिस्वास ;
तिहि नवोढ़ विश्रब्ध कह जे कबि बुद्धि-निवास।

उदाहरण

परयंक न अंक सुहाय सही कहु धैर्य 'बिहार' कहा धरिए ;
मुख मोर उरोजन कोरन जोर मरोर सें ओर पिया डरिए।
निसि जामिनि जागी सशंकित जीव कहाँ लग मौंन मनैं भरिए ;
सुखदाई सरोजन के जू हहा अब तौ दिनराज दया करिए।

❀ ❀ ❀

नीवी कस कठिन कठोर कंचुकी दै बँध,
फंदन पै फंद निसि फंद तन गोवै है ;

नीची नाय नजर निहारै नेह नागर कौ,
नवल नवेली नींद नैनन समोवै है।
कहत 'बिहारी' ताक तरुन किसोर ओर,
जंघ जुग जोर मुख मोर भोर जोवै है;
बंक भरी भौहन मयंक भरी सर्वरी में,
संक भरी प्यारी पिय अंक भरी सोवै है।

❀ ❀ ❀

सखिन सुबोधन तें रावरे सकोचन तें;
केलि-गृह गई भई भीत पिय अंक की;
कहत 'बिहारी' उन ओंठन चसक धाय,
मसक मरोर करी अधिक असंक की।
सेज पुनि आनी कर हा हा हौं चुपानी, नैन
नींद बिसरानी डर सुरत अतंक की;
हेर दिन बाटी भर उर में उचाटी सखी,
सारी निसि काटी परि पाटी परयंक की।

❀ ❀ ❀

महल दरी मन की करी धरो हरी निज अंक;
सिमिटि खरी अति भय भरी छरी परी परयंक।

मध्या-लक्षण

मुग्धा प्रौढ़ा दुहुन में मध्य अवस्था जोय;
लाज काम समता लहै मध्या कहियत सोय।

उदाहरण

बैठी सेज सुंदरी सलोंनी सीस-मंदिर में,
कही कथा केलि रीझ खीझ पति पाहीं है;
तेही छन छल सों छबीलौ छैल छाक्यौ छबि,
छतियाँ छुवन चाह्यौ मैन मद माहीं है।
कहत 'बिहारी' ललचाय औ' नचाय नैंन,
नासा मोर कहत झकोर झट बाँहीं है;
नाहीं अहो नाहीं हम नाहीं पिया नाहीं कहै,
नाहीं इमि नाहीं पर नाहीं होत नाहीं है।❀

❀ ❀ ❀

अंग-अंग साजन सजे हैं रंग-रंगन की
बरुनी बरन बाग गुनन घनेरे हैं;
जोबन जलूस जोरदार जुर जीतैं जंग,
कहत 'बिहारी' नेह नागर निबेरे हैं।
लाज की लगाम लेत ठैरत ठिठक जात,
चोंप चित चाबुक लै करै चित चेरे हैं;
प्यारे सुख दैंन के दिवैया चित्त चैंन के
सो ऐरी ऐंन मैंन के तुरंग नैंन तेरे हैं।

❀ ❀ ❀

❀ इसी भाव पर कविवर मतिराम का निम्न-लिखित सुंदर दोहा है—
"प्रीतम को मनभावती मिलति बाँह दे कंठ;
नाहीं छुटै न कंठ तैं बाँही छुटै न कंठ।"—संपादक

ख्याल दृढ़ खंभन तें रंचक चलै न कहूँ,
प्रेम पाटली पै सजी सुखमा मढ़ति है;
सुरत सुडोर नेह नवल निकुंज बीच
जोबन निहारि बारि बरषा बढ़ति है।
मैंन की मरोर देत मिचकी बढ़त आगे,
लाज की लपेट पाय पीछे पिछलति है;
प्यारे प्रान प्रीतम तिहारे रूप झाँकिबे कौं,
झूलना नवेली नयौ झूलिबौ करति है।

❀ ❀ ❀

काम-कहर ऊँची उठति लाज-लहर दब जाति;
नेह-नहर में भाँवतो भँवर परी बिकलाति❀।

प्रौढ़ा-लक्षण

जो मुग्धा मुग्धा रही सो मध्या भइ बाम;
अब प्रौढ़ावस्था लहैं पायौ प्रौढ़ा नाम।
लखहि रीति बिपरीति रति पति सँग अति चित चाहि;
सकल कलान प्रवीन पर प्रौढ़ा कहियत ताहि।

उदाहरण

उदित उदीपन की दीपन प्रदीपै दीप्ति,
भूषन चमंकन ज्यों चौंक चपला करै;

❀ बिकलाति = व्याकुल होती है।

कहत 'बिहारी' कटि किंकिनी कनक आदि
खनक चुरीनन कैं हरष हला करै।
रंग गहि भावन के संग मनभावन के
अंग अनुभावन के झोकन झला करै;
जंग जुर जोट - जोट चौग्रिद चपोट लोट
आज किलकोटि* केलि कोटिन कला करै।

* * *

चारो ओर मंदिर सुगंध की महक माची,
सुमन सजी है सेज सुखमा बढ़ति है;
रमन रँगीले संग रमनी सुरत रमी,
उमँग अनंग अंग-अंग उलहति है।
कहत 'बिहारी' हेमलता-सी लिपट अंग
सुख की सिसक लै-लै रंग सरसति है;
जोई रस प्रथम निसा में बिष-रूप लख्यौ,
सोई आज सुंदरी सुधा सी अँचवति है।

प्रौढ़ा-भेद

यह प्रौढ़ा कौ कबिन ने कहौ प्रगल्भा नाम;
काम-कलन में चतुरता लक्षण लखहु ललाम।
विविध भेद याके कहे मुख्य भेद यह दोय;
प्रथम रतिःप्रीता द्वितिय आनंदासम्मोय।

---

* किलकोटि = किलकारी भरके, प्रसन्न होके।

रतिप्रीता-लक्षण

प्रियतम सँग रति रमण मैं रुचि राखै अत्यंत ;
ताहि रतिःप्रीता कहत जे कबि बुद्धि अनंत ।

आनंदसम्मोहिता-लक्षण

प्रियतम प्रीति अनंद में जिहि निमग्न मन होइ ;
मोहै सम्यक भाँति सो आनंदासम्मोह ।

रतिप्रीता का उदाहरण

यह रस रीति प्रीति रसिक सिरोमनि की,
रसिकन जानौ स्वाद सरस बनाए कौ ;
कहत 'बिहारी' बड़े भाग दिन पायौ आली ,
लीला पुरुषोत्तम से' लगन लगाए कौ ।
हौं हूँ हौं किसोरी, है किसोर चितचोर तैसो,
रहस रचौंगी ऐसो आज मन भाए कौ ;
द्वार तोरदान तामें दे री पट तान, जामें
भान हू न होन पावै भानू कढ़ आए कौ ।

❀ ❀ ❀

सुखद सुधांशु धव धवल प्रसन्न पाय ,
प्रगटौ प्रभाव तेज तारन तराँ तराँ ;
मोदिनी कमोदिनी मनावें' मान देवैं तुम्हैं ,
कहत 'बिहारी' प्रीति पालती पराँ पराँ ।

यहि रजनी में आय मोह भोरी भावती सें
भावतौ भिरैगौ भूरि भुजन भराँ भराँ ;
हिमकर हेली अहो हिरनी हमारे हित
आज हेत हेर हा हा हालियौ हराँ हराँ ।

❀ ❀ ❀

जैसे तैसे मूँद कें झरोखन कौं कीनौ बंद,
रबि की मरीचि कौ न तेज दरसात है ;
कहत 'बिहारी' कबि फेर खग बोलन कौ
पाल्यौ है सचान तासौं काज बन जात है।
प्रात के रे पाहिरू तिहारे पाँय लागौं अब,
धीर धर नेक मेरो दीनता दिखात है ;
डार दे कटोरी कहै गोरो रैन थोरी रही,
मोगरी न मार मो गरीबिनी का रात है* ।

❀ ❀ ❀

बारिजबिलोचनी बिचार बेलि बीधी बाल,
साँझ ही से आँगन अनूप छबि छावै री ;
कहत 'बिहारी' तहाँ सखिन निषेध करै,
अंतर कौ भेद नहीं काहुयै बतावै री।
भरी बहु ख्यालन की रँगी रस जालन की,
माल टोरि लालन की भूमि बिखरावै री ;
जान कै स्वकाज सिद्ध, सर्व सिरताज अली,
आनन अवाज दै दै बाज को चुनावै री ।

❀ ❀ ❀

* उर्दू के महाकवि दाग़ ने इसी भाव पर लिखा है—
दी मुअज़्ज़िन ने शबे-वस्ल अज़ाँ पिछली रात, हाय ! कंबख़्त को किस वक़्त ख़ुदा याद आया।

पूरन प्रकास पुंज स्यामल सुरूप भास,
सकल कलान महा मोद सरसत है ;
कहत 'बिहारी' जात भीजत रजनि ज्यों ज्यों ,
त्यों त्यों प्रेम प्रगट पियूष बरसत है ।
देखकैं सुवेष चित चाहत चलैं न कहूँ ,
चलन बिचार भटू भाव पलटत है ;
देखै द्विजराज छन देखै ब्रजराज छन ,
देख द्विजराज ब्रजराज निरखत है ।

❀ ❀ ❀

प्रीतम संग अनंग छरी अँग अंगन अंगना रंग भरी है ;
भोग निसंक मयंक छटा बिच हास बिलास सुवास घरी है ।
कोमलता चिर चंपलता दुति कौन 'बिहार' बिचार परी है ;
गोरी गुनीली गुलाबन कौ चटकौ सुन चौक में चौंक परी है ।

❀ ❀ ❀

कोक कोकनद की कबहुँ कहत न नीकी रीति ;
दो दिन सें लागी करन कम्मोदनि सें प्रीति ।

आनंदसम्मोहिता का उदाहरण

पूर्ण प्रेम प्रीति कौ प्रवाह उर अंतर में
आवै इक बार आली घुमड़ घनेरौ री ;

कहत 'बिहारी' तन तनक न राखै सुध,
समझ परै न कछू साँझ कै सबेरौ री।
मान तूँ सिखावै हौं हूँ चहत रिसान, पर
चार दृग होत लहचार चित चेरौ री;
देखत ही मोहन की मूर्ति मनमोहिनी के
खोय जात मान मोह जात मन मेरा री।

❀ ❀ ❀

बैनो छुटी कै जुटी जकरी झुलनी मुरकी कै रुको रससानी;
नीवी कसी कै खिसी निकमी दुलरी उलरी कै लुरी लहरानी।
देह दुरी उघरी कै 'बिहार' खरी कै परी न परी कछु जानी;
यों रति रंग छकाई लला ललना सुध आपनी आप भुलानी।

❀ ❀ ❀

माल टुटी औ' छुटी अलकैं मिलकैं जनु आई सजी सुखमाँ की;
हौं तुहि सीख 'बिहार' दई सो बिसारि दई सब बात सदाँ की।
आदि लौं तौ सखि याद रही सुरतांत में भूल गई सुधि ताँ की;
काहे की लाज कहाँ पटभूषन कौन कौ को अरु सीख कहाँ की।

❀ ❀ ❀

तकी न काहू तन दसा ढकी न पूरन अंग;
थकी परी पिय सेज पर छकी स्याम छबि रंग।

ज्येष्ठा-कनिष्ठा-लक्षण

एक नायिका के सँयोग में उक्त भेद बतलाए;
द्वै सुंदरि सुविवाहित होवें तब यों रूप गनाए।

एक जुवति ज्येष्ठा कर जानौं द्वितिय कनिष्ठा मानौं ;
छोटी बड़ी ब्याहु के क्रम पर निर्भर मत पहिचानौं ।
बड़ी वही जापै पिय राजी ताकौ ज्येष्ठा कहिए ;
न्यून सनेह नाह कौ जा पै नाम कनिष्ठा लहिए ।
ज्येष्ठा में पूरन रस भोगै सहज कनिष्ठा माहीं ;
उदाहरन दोहुन कौ एकहि समुझि सुकबि सुख पाहीं ।

उदाहरण

जान जगती कौ दिन फाग पंचमी कौ नीकौ ,
अबिर गुलाल डार डगर डुबा गयौ ;
कहत 'बिहारा' जहाँ जुवती जुगल भौंन ,
मोह तौन भौंन संग लालजी लुवा गयौ ।
लूम लहँगा की लोट मोट बाँह एक की री ,
भोरो जान थोरौ रंग ऊपर चुवा गयौ ;
जौ लौं उन घाँघरी औ' बाँगुरी* सम्हारी, तौ लौं
नागरी की छाती छैल आँगुरी छुवा गयौ ।

* * *

साँझ समैं मनि-मंदिर में जुग सुंदरि सुंदर साज सजायौ ;
बेनु 'बिहार' बजावत स्यामलौ तौ लग आली अचानक आयौ ।
हाथ कपूर कौ चूरन लै इक बार ही एक के नैंनन नायौ ;
वे उत मींजतीं नैंन रहीं इत लाल लली कहँ कंठ लगायौ ।
लखन लगी कहँ लाल के जब लग वह नभ चंग ;
तब लग प्रियतम प्रिया के परसे उरज उतंग ।

---

* बाँगुरी = एक आभूषण, जिसे बँगरी कहते हैं ।

ज्येष्ठा-कनिष्ठा-भेद

जब नायक ज्येष्ठा से रमकर जाय कनिष्ठा पाहीं ;
तीन भेद तब ताके होवैं समुझौ कबि मन माहीं ।
धीरा एक अधीरा दूजी तीजी धीराऽधीरा ;
अब यामें मतभेद बहुत सो कहत सुनहु मतिधीरा ।
काहु कबिन नें धीरादिक जे भेद अलग ही मानैं ;
कोउ कोउ ज्येष्ठा और कनिष्ठा इनको बिलग बखानैं ।
काहू नें इम भिन्न कही है काहू लिखी नहीं हैं ;
रसमंजरी संस्कृत माहीं शंका कछु न रही है ।
ज्येष्ठ कनिष्ठा भेद कहे हैं उन धीरादिक काहीं ;
जो कदाच यों कहौ नहीं तौ मिलत खंडिता माहीं ।
तासें निःसंदेह भेद यह ज्येष्ठ कनिष्ठा के ही ;
उदाहरण लक्षणयुत कहियत समझहु कवि नवनेही ।❀

धीरा-लक्षण

ब्यंग बचन सूचित करै जो पति कौ अपराध ;
तासौं धीरा कहत हैं जे कबि बुद्धि अगाध ।

अधीरा-धीराऽधीरा-लक्षण

है अधीर बिन ब्यंग के कहत अधीरा बैंन ;
बोलै ब्यंग्याबिंग से धीराऽधीरा ऐंन ।

❀ खंडिता से धीराऽधीरादि पृथक् वर्णन करना उपयुक्त है । ग्रंथकार का यह विवेचन यथार्थ और समीचीन है ।—सपादक

धीरा का उदाहरण

लाल लाल लोचन की सुखमा भला है, पर
कौन उपमा दै भाल तिलक सराहिए ;
नेक श्रम कीन्हें होत श्रमित तुम्हारो गात ,
स्वेद सरसात सीरी पवन प्रबाहिए ।
कहत 'बिहारी' जोपै टेढ़े टेढ़े परैं पग ,
डगमग होत डग देत न डराहिए ;
पाग टेढ़ी केस टेढ़े डीठि टेढ़ी नैंन टेढ़े ,
एते जब टेढ़े तब चाल टेढ़ी चाहिए ।

अधीरा का उदाहरण

जो कछु जाल रच्यौ निज चाल सों हाल 'बिहार' गुपाल न गोइए ;
ओंठ अनूप रँगे रँग रावरे काजल सें जल सें तिन्हैं धोइए ।
जामिनि मांहिं जगे हौ जहाँ श्रम पायौ तहाँ सो यहाँ वह खोइए ;
प्यारे पिया पल लागत हैं पलमात्र अहो पलका पर सोइए ।

धीराऽधीरा का उदाहरण

उबटे बहु भूषन अंगन में दृग रंगन में भर लाए तौ हौ ;
सकुचात भलैं जँभुवातन में पर बातन में मुसक्याए तौ हौ ।
कहने नहिं और 'बिहार' कछू लख लालन लाज लजाए तौ हौ ;
हम आपनौ येही सराहत भाग कै भोर हू लौं भला आए तौ हौ ।

स्वकीया

इन तीनो भेदन के माहीं जे कबि समझ सयानैं ;
मध्या-प्रौढ़ा जोजित करके दो नए भेद बखानैं।
लक्षण इनके रोवौ-तर्जन-ताड़न आदि बनाए ;
इतने अनुचित कर्म करे पर स्वकिया ·भेद कहाए।

शंका

पति कों तर्जन-ताड़न करिबौ स्वकिया कौं नहिं सोहै ;
तासें ज्येष्ठ कनिष्ठा के ही भेद यही जिय जोहै।
इन ही में यों लाज ब्यंगयुत मध्या प्रौढ़ा हेरौ ;
यही भाँति मुहिँ गुरु समुझायौ अरु यों ही मत मेरौ।

परंतु

बुद्धिहीन मुग्धा में जैसे धीरादिक नहिं मानौं ;
तैसौ कछु अभाव बुद्धी कौ मध्या में पहिचानौं।
तातें प्रौढ़ा स्वकिया ही में उचित मानबौ याकौ ;
यामें फिर शंका नहिं रैहै निभै धर्म स्वकिया कौ।

परकीया-लक्षण

परकीया पर पति रमैं तासु भेद हैं दोय ;
एक अनूढ़ा नाम है दूजी ऊढ़ा होय।
अनब्याही पति लालसा करै अनूढ़ा बाम ;
ब्याही पर पति रति चहै ताकौ ऊढ़ा नाम।

अनूढ़ा का उदाहरण

नीर नह्वाँवरी चढ़ाँवरी चँदन चारु,
अच्छत लगाँवरी औ' माल पहिराँव री ;
कहत 'बिहारी' त्यों उड़ाँवरी सुगंध धूप,
दीपक दिखाँवरी निवेद बिधि लाँवरी।
गौरि गुन गाँवरी मनाँवरी हमेस तोहिं,
माता परों पाँवरी यही में वर पाँवरी ;
जानें जिन्हें गाँवरी सलोंनो मूर्ति साँवरी,
गुबिंद नीकौ नाँवरी उन्हीं सें परै भाँवरी।

❀ ❀ ❀

जा छण सें व्रज श्याम लख्यौ ललना वही गाँवन गैल गही सी ;
सेवन ठाने सु देविन ध्याय कै गाय बजाय रिझाय रही सी।
ऐसी भई गति राधिका की सखि धीर धरैं नहिं चोंप चही सी ;
नंदलला व्रज दूलह की दुलहो बनबे कों फिरै उलही सा।

❀ ❀ ❀

रेख देखकर कृपा कर कहु फल बुध भल भाष ;
ह्वैहै पूरन कौन दिन मो मन कौ अभिलाष।

ऊढ़ा का उदाहरण

चाहै करैं चोज री चवाँयनें चहूँधा धाय,
चाहै गृह-काज लोक-लाज-गढ़ टूटैगौ ;
चाहै यह जावै ठाँव, चाहै धरै गाँव नाँव,
चाहै कोऊ रोकै राह, चाहै कोऊ खूटैगौ।

कहत 'बिहारी' कबि अब तौ हमारौ मन
श्यामले - छबीले - छैल संग रस लूटैगौ ;
चाहै जोर जूटै या मृजाद मेंड़ फूटै, चाहै
बिस्व - भर रूठै पै न नेह यह छूटैगौ ।

❀ ❀ ❀

वाकौं गृह-काज, लोक-लाज सों न काज रह्यौ,
जानैं ब्रजराज प्रीति प्रथा पहिचानी है ;
भोर ही सें श्रवन सिखापन तुम्हारौ सुन्यौ,
सार समझौ है कही कुल की कहानी है ।
कहत 'बिहारी' अब दो मत करौ री मत,
सुवन जसोमति पै मो मति बिकानी है ;
सिगरी सयानी बकैं जाव मन माना, रूठौ
ननद जिठानी हम ठानी जौन ठानी है ।

❀ ❀ ❀

सबसें सनेह रीति तब सें गई री टूट,
जब सें बिलोकी छबि मुकट मरोर की ;
कहत 'बिहारी' आठ जाम रट नाम लगी,
कौन को खबर काम धाम धन ओर की ।
चारो ओर चरचा सुहावै वही श्यामले को,
आँखिन में झूलै वही मूरति किशोर की ;
बासी ब्रज केरी करैं केती हँसी मेरी, हौं तौ
ए री सौंह तेरी भई चेरी चितचोर की ।

❀ ❀ ❀

नँदलाल सें नैंन लगावत ही रचौं जाल 'बिहार' सबै तर है ;
घरवारन बैर कियौ ब्रजकें अरु घैर कियौ घर ही घर है।
अब तासें बिचार लियौ हमहूँ मिलिए चल स्याम सें औसर है ;
जब अंक लगे कौ मजा मिलने तौ कलंक लगे कौ कहा डर है।

❀ ❀ ❀

जे रँग राग रँगीले कौ जानतीं ते अनुराग में राग ही जातीं ;
चोज चवाअन चालौ करैं पर भावते लौं वह भाग ही जातीं।
लाखन लोग लगावौ कछू प्रिय प्रेमिनी प्रेम में पाग ही जातीं ;
सीख सिखावैं किती सखियाँ अखियाँ लगुबारिनी लाग ही जातीं।

परकीया के षड्भेद

परकीया दो भाँति की पूर्व कही समुझाय ;
षट प्रकार की और हैं जानहु कबि समुदाय।
प्रथमहि गुप्ता कौं कहत बहुर विदग्धा जान ;
अनुशयना अरु लक्षिता मुदिता कुलटा मान।

गुप्ता नायिका-लक्षण

पर पति रति गोपन करै सखियन सन बर बाल ;
तासों गुप्ता कहत हैं जे कबि बुद्धि बिसाल।
ताकौ सुरति छिपायबौ तीन समय कौ सोय ;
भूत भविष्यत जानिए वर्तमान पुनि होय।

वर्तमान गुप्ता-लक्षण

सुरति समय लख लेय सखि तुरत छिपावै बाम ;
वर्तमान गुप्ता सुकबि ताकौ भाषत नाम ।

वर्तमान गुप्ता का उदाहरण

आज ही तौ आई भूल जल जमुना कौ लैन,
कठिन करील पंथ तीखी त्रन तोर की ;
कहत 'बिहारी' डग धरत धरा पै धसी,
पाँयन नवल नौक काठ कठ कोर की ।
स्याम पग हाथन लै कंटक निकासती न,
तौ न जानै कैसे गृह जाती आई भोर की ;
छोड़ ठकुराई दयाचित्त पै चढ़ाई आली,
कहाँ लौं बड़ाई करौं नंद के किसोर की ।

❀ ❀ ❀

आई रही न्हावन तरंगिनी तरंगन में,
बारि बर बिमल बिलोक बेग बढ़्यौ री ;
कहत 'बिहारी' इन कुंजन समय तेही,
दैवयोग यही काहु ठौर रह्यौ ठाढ़्यौ री ।
हौं तौ धार धसति गई री डूब जानी खूब,
कूद गौ कन्हैया दैया छंद छल छाँड़्यौ री ;
भाग भले मेरे देखते ही देख तेरे बीर,
बूढ़ति कलिंदी कान्ह पान गहि काढ़्यौ री।

❀ ❀ ❀

कटि से कटि हिय से हियौ मुख से मुख दृग जोट ;
तो लखिबौ लेखत तऊँ देखत को बड़ छोट ।

भूत गुप्ता का उदाहरण

आई दधि बेंच कैं अकेली खोरि साँकरी हौं,
आली वह ठाम कौन नाम अब लीबी री ;
कहत 'बिहारी' एक बृषभ बलिष्ठ तहाँ,
अवनि अखोटै ठाड़ो देख ठिक ठीबी री ।
देखत ही मोहिं भर कोह शृंग सीधे कर,
झपट्यौ भजी मैं सही भाँति बहु सीवी री ;
धार सकी धीर ना निवार सकी स्वेद बीर,
हेर सको हार ना सम्हार सकी नीवी री ।

❀ ❀ ❀

आज 'बिहार' गई जल कौं नहिं जैयत तौ सतरात जिठानो ;
कीर अनार उरोजन जानिकैं चोंच दई यह देखौ निसानो ।
काहु सें का कसके की कहैं वही जानत है जिहि पीर पिरानी ;
और तौ काम सबै करिबौ भरिबौ हमें ऐसौ सुहात न पानी ।

❀ ❀ ❀

झर झर बरस्यौ मेह मग डर डर भाजी गेह ;
धर धर धर धरकत हियौ थर थर काँपै देह ।

भविष्यत गुप्ता का उदाहरण

सास है सयानी वाकी बानी मैंने मानी रानी,
जैहौं नित पानी राह बृंदाबन धाम की ;
कहत 'बिहारी' तुम तौन गैल जानती हौ,
कुंज है करीलन की निपट निकाम की ।

कौनौ दिन कंटकन उरझें बसन बेंनी,
सुरझें लगेगी देर जाम, जुग जाम की ;
तौ पुनि पुकार कहैं देत बार बार मेरी
बृथा ना बनैयौ बोर बात बदनाम की ।

❀ ❀ ❀

ग्वालिनी गोरस बेचैं सबै अनरीति कौ जाहिर जोर जग्यौ चहै ;
बाँकौ 'बिहार' नयौ नँद कौ बन में बनिता भर अंक भग्यौ चहै ।
नित्त कौ मारग जैबौ उतै अरु नित्त कौ मोहन प्रेम पग्यौ चहै ;
जान परै दिन द्वैक में काहु पै साँकरी खोर में खोर* लग्यौ चहै ।

❀ ❀ ❀

उत मोहन मन की करत इत चुगलिन कौ चाव ;
अब सजनी स्वकियान कौ कैसें होत निभाव ।

विदग्धा-लक्षण

जो पर पति सें मिलन हित रचै चतुरता चार ;
ताहि विदग्धा कहत हैं, सो है उभय प्रकार ।
वचनविदग्धा एक है, क्रियाविदग्धा एक ;
लक्षण सहित उदाहरण समझहु कवि सविवेक ।

वचनविदग्धा-लक्षण

वचनन की रचना न कर आपुन साधे काम ;
वचनविदग्धा नायिका ताहि कहत बुधि-धाम ।

---

* खोर = कलंक, दोष ।

वचनविदग्धा का उदाहरण

सिद्धप्रद कार्य सिद्ध होवै सदा कीन्हें गोप,
गोपी गोप पूछैं तौ बतैयौ नहीं बात लौं ;
गृह रखवारी राख रहियौ सचेत सबै
गहियौ न नींद नैंन जागत जम्हात लौं।
कहत 'बिहारी' आज पूर्ण प्रण पालन कों
पारबती पूजिबे पधारोंगी प्रभात लौं ;
लैहौं फल प्रेम जोर जैहौं जमुना की ओर,
रैंहौं दिन एक आली ऐहौं अधरात लौं।

❀ ❀ ❀

आलय में आली आज आईयौ अकेली जान,
चिह्न चित दीजौ गृह गोकुल गलीन में ;
द्वार-चौक-चौकी चारु चंदन चबूतरा पै
बाम दिसि बाग सज्यौ सुमन कलीन में।
कहत 'बिहारी' मणि मंदिर प्रकास पुंज
दीपकन दिव्य दीप्ति दीपत दरीन में ;
झंझा की झकोरन सें झूलै झालरीनन को,
झिलमिल झाँक परै झीनी झँझरीन में।

❀ ❀ ❀

जहँ चंपा कदली बिमल बिंबा अमल अनार ;
तिहि बनमाली सकुच तज सींचत क्यों न सम्हार।

क्रियाविदग्धा-लक्षण

करै क्रिया कर चातुरी साधै निज मन काम ;
क्रियाविदग्धा नायिका ताहि कहत रसधाम।

क्रियाविदग्धा का उदाहरण

बैठी सजि सुंदरी सहेलिन समाज बीच,
बचन बिलास रचै हाँस चित चोर कैं;
ता छिन दिखायौ दूती आन अरसी कौ फूल,
फूलन छिपाएँ ढाँपै पल्लवन कोर कैं।
कहत 'बिहारी' सार समुझि सयानी तहाँ,
ताके ढिंग लाई रंग केसर को घोर कैं;
तीन बार रेखा खींच एक बार नीर ढार,
बीस बार हाथ ठोक हँसो मुख मोर कैं।

❀ ❀ ❀

केलि कला कुसल कन्हैया कढ़ कुजन तैं
चाल्यौ चित चोर ग्राम गोकुल गली गई;
सुरन सजाई बाट बाँसुरी बजाई पिया,
प्यारी सुन धाम काम दलन दली गई।
कहत 'बिहारी' आई दौर द्वार देहरी पै,
देख दिलदार धार छलन छली गई;
ताक तृन तोर द्वार खोल खिरकी की ओर,
संपुट सरोज फूल फैंकत चली गई।❀

❀ ❀ ❀

करत बतकहो सखिन प्रति हेर लेति हरि ओर;
चालै चहुँ इकदिसि थिरहि कुतुब जंत्र जिमि जोर।

---

* तात्पर्य यह कि रात्रि के समय कमलों के संपुटित हो चुकने के बाद खिरकी के मार्ग से मिलिए। यहाँ अभिप्राय इंगित करने में क्रिया की चतुराई होने से क्रियाविदग्धा है।—संपादक

लक्षिता-लक्षण

जब परपति रति प्रेम को बात चहै छिप जाय ;
ताहि सखी लक्षित करै सो लक्षिता कहाय।

लक्षिता का उदाहरण

कोमल कपोल गोल गहब गुलाबी भए,
अधर तमोल धरै राग रंग फूटयौ है ;
बिलसी बिहार पायौ प्रेम उपहार भलौ,
मानी मन हार मन हार हार टूटयौ है।
कहत 'बिहारी' सारीं सिलक सरौंटैं परीं,
नैनन कौ कज्जल कपोलन पै छूटयौ है ;
छोड़ रुख रूखो रुचि राखिकैं रसीली कहौ,
कौंन रसिया सें आज रात रस लूटयौ है।

❀ ❀ ❀

काहे छल छैल के छिपावती छबीली तुम,
कैसे हूँ छिपैंना हाथ ऐंना लै निहारि लो ;
लट लचकारी कारी केसर कलित प्यारी,
बेसर में बींधी ताहि नीकें निरुवारि लो।
कहत 'बिहारी' अली आतुरता परी कौन,
काँपत सरीर बीर धीर उर धारि लो ;
बातें मत कीवी भेद चित्त में न दीवी, उन्हैं
पीछें सुन लीवी अबै नीवो तौ सम्हारि लो।

❀ ❀ ❀

आवत आपके आनन ऊपर दूर ही सें दृढ़ दाग दिखानैं ;
तापर बेनी 'बिहार' छुटी अरु नैंन अबै लगि हैं अलस्यानैं।

रानती हौ नहिं भाव भटू तुम जानती के हमही हैं सयानैं ;
बात को का बिसवास करैं यह गात को कंप रुकै तब मानैं।

❀ ❀ ❀

बेसर की लुरकी मुरकी अँगिया दरकी हरकी झकझोरी ;
लोचन लाल बिलोक 'बिहार' जगैं गई जान परै निसि कोरी।
तापर बातैं बनावती हौ इतनौ बड़ काम छिपावती गोरी ;
बैठौ घरै चलौ जावौ कहूँ निहुरें सुनी होत ना ऊँट की चोरी।

❀ ❀ ❀

कौन रीति यह रावरी भई बावरी बाल ;
सब निरखैं नंदलाल तन तूँ निरखै उरमाल।

त्रिविध अनुशयाना-लक्षण

जाकों निज संकेत कौ अधिक अनुशयन होय ;
तिहि अनुशयना नायिका कहत सकल कबि लोय।
बिनसै ठौर सहेट की प्रथम भेद गनि लेव ;
साधै बनन सँकेत की सो दूजी चित देव।
परपति पहुँचै केलि थल आप सकै ना जाय ;
करै अनुशयन कहत हैं भेद तीसरौ ताय।

प्रथम अनुशयाना का उदाहरण

❀ ❀ ❀

आवत असाढ़ बाढ़ बढ़त नदीन देख,
मीन मन मुदित मयूर हर्ष हेरे री ;
पवन प्रचंड पूर्ण पूरब प्रबाह पाय,
गाय उठे झिल्लीगन दादुर दरेरे री।
कहत 'बिहारी' आली अचरज आवै एक,
बिनही बियोग कौंन दुख भे घनेरे री ;

तरजत बिज्जु बीर लरजत लोनी लता,
गरजत मेघ नैंन बरसत तेरे री।❀

❀ ❀ ❀

प्रात साँझ सींचि सींचि सलिल सपन्न कीनी,
जालन जमाई मेरी मालन नवेली ने;
कहत 'बिहारी' रुचि राखिकैं रखाई मैंने,
छुवन न पाई कहूँ काहू की हथेली ने।
आई अखती को तूँ अनौखी खिलवारिनी री,
लाई हठ ठान तोहिं हटको सहेली ने;
दोदर बिलोक जाय मोदर न ऐये अब,
तोदर बिगारी यही बोदर चमेली ने।†

❀ ❀ ❀

सौतिन कौ सालिवौ न चालिवौ चवायन कौ,
संपति सुभायन कौ मौंज मनि माल की;
दीप्ति देह माँही चित्त नीकौ नेह माँही,
प्रानप्यारौ गृह माँही भली चाहै भाग्य भाल की।
कहत 'बिहारी' भारी महल अटारी द्वारी,
प्यारी चित्रसारी न्यारी बनक बिसाल की;
एरी सुमुखी री सब भाँति तूँ सुखी री, पर
होत क्यों दुखी री देख मंजरी रसाल की।

❀ ❀ ❀

जोग ज्योतिषी सन सुन्यौ पवन कोप मधुमास;
पूछै भेद कहै न कछु ऊँची लेत उसाँस।

❀ वर्षा के कारण संकेतस्थल के भावी नाश की आशंका से नायिका को दुःख होता है, अतएव अनुशयाना प्रथम है।

† चमेली की ओट में सहेट का स्थान था, वह चमेली की बोदर तोड़ने से नष्ट हो गया।

‡ नायक नायिका की बाट देखता-देखता थककर संकेतस्थल से लौटकर चला आया। इससे नायिका दुखी होती है, अतएव अनुशयाना हैं।—संपादक

द्वितीय अनुशयाना का उदाहरण

आई चहुँ ओर तें बिसाल माल सैलन की ,
एक ओर राह नेंक ताहि ना बधावैं हैं ;
ऐसौ सखी सुंदर सरोवर बनत स्वच्छ ,
आश्रम अनूप जीव सर्व सुख पावैं हैं ।
कहत 'बिहारी' बस कौन ब्रजबासिन पै ,
टेढ़ौ उन्हें लागै बात सूधी जो सुनावैं हैं ;
आवरी सहेली कौंन तावरी परो है हमें ,
बावरी बनावैं यहाँ बावरी बनावैं हैं ।

❀ ❀ ❀

आयबौ भयौ है री लुवायबे कों लोगन कौ ,
जायबौ जरूर तौऊ सोच मन माँही री ;
कहत 'बिहारी' तूँ हमारी हलके की हितू ,
जानत हिए की छिपी कौंन तुहिं काँही री ।
सासुरे के सदन समीप सुनी सोभा सखी,
पर इक बात साँची कहौ हम पाँही री ;
नीकौ भलौ भाग है औ' सुंदर सुहाग है, ए
सब अनुराग है पै बाग है कि नाही री ।

❀ ❀ ❀

यह उपबन वह बागबन यह तटनी वह ताल ;
यही नयन निरखत फिरत बिचरत बाल बिहाल ।

तृतीय अनुशयाना का उदाहरण

जा छिन सें बाँसुरी सुनी है स्यामसुंदर की ,
ता छिन सें वाकी दसा देखत बनत है ;

भूल्यौ हिय हाम लै उसाँस दहै दाह दीह,
आँसुन प्रवाह पानि पोंछ ना सकत है।
कहत 'बिहारी' चौंकै चित वहि चकृत सी,
उठि उठि बैठे फेर बैठत उठत है;
गिरै लकरी सी चक्र खात चकरी सी, फिरै
जाल जकरी सी सफरी सी तरफत है।

❀ ❀ ❀

भाग सें जोग बिहार भलौ भयौ भूलकें भाव सुभाव तनौं रहौ;
आगम औसर जानों नहीं गुणखान अजान को ठान ठनौं रहौ।
दीनौं पराग न राग लियौ निज कोस ही में मद होस घनौं रहौ;
कीर्ति कहा अरबिंद की यों जो मलिंद के आँये निमुंद बनौं रहौ।

❀ ❀ ❀

निर्जन बन सर ओर सें खग मृग लखे पराय;
अजब अरी यह सुंदरी परी मूरछा खाय।

मुदिता-लक्षण

पुरुष दूसरे मिलन की चित चाही कछु बात,
होय मुदित देखै सुनैं सो मुदिता विख्यात।

मुदिता का उदाहरण

साँझ ही सखीन बीच बैठी बाल बातैं करै,
बालम बिदेसी भट्ट भेजत न पतियाँ;
कहत 'बिहारी' धेनु बगर बटोरै कौन,
कौन मही मोरै कौन छोरै अधरतियाँ।

तौलौं काहू कह्यौ आज मैया के कहे सें तेरी
दुहैगो कन्हैया गैया ऐसी सुनी बतियाँ ;
भूल उठे भाव फेर हूल उठीं हौंसैं सबै ,
झूल उठे नैंन स्याम फूल उठीं छतियाँ ।

❋ ❋ ❋

ग्वालिनी कौ भेष लै गुबिंद गाँव गोकुल में
बोले दही लेव बानि सुंदर सुधामई ;
आई लली लैंन देख दीनी स्याम सैंन भई ,
चाही चित चैन नैंन स्यामल छटा छई ।
कहत 'बिहारी' भौंन भीतर लुवाय लाल ,
पायकें दरस दोउ प्रेम की प्रथा लई ;
दधि की दहेंड़ी भरी दधि सें धरी ही रही
बिना दधि के ही दिएँ लूट दधि की भई ।

❋ ❋ ❋

सास कह्यौ जैयो तुम्हीं गोरस बेचन काल ;
मन झुलसी ननदी निठुर सुनि हुलसी हिय बाल ।

कुलटा-लक्षण

रमन चहै बहु नरन सें तनकौ तृप्ति न होय ;
कुल कुल प्रति जो अटत है, कुलटा कहिए सोय ।

कुलटा का उदाहरण

ओढ़नी कौ नीकौ छोर छोरत छबीली चलै,
छैलन के हेत छिन छिन में छटा करै ;
घूँघट की ओट राख आँगुरी दुबीचन हो,
दृगन दरेरै नारि नट के बटा करै ।

कहत 'बिहारी' सैकरन को सुभाव साधै,
हियरौ हजारन कौ हरकैं हटा करै ;
चार हो चितौन भयैं लाखन कौ लूटै मन,
एक ही मरोर में करोर कौ कटा करै।

❀ ❀ ❀

कहूँ केस पासन प्रसून मढ़ें माधवी के,
कबहूँ कपोल लट लटकति जाति है ;
कहत 'बिहारी' कहूँ डगर दिमाक डूबी,
मदन मतंग ऐसी अटकति जाति है।
झुकत झरोखा लोग लखत लखै तौ वही,
मृदु मुसक्याय मुख मटकति जाति है ;
झीन झून वारी मन झाँकत झकैयन के,
झाँझ झनकार ही में झटकति जाति है।

❀ ❀ ❀

जेते बरषा में बारि बुंद बरसाए घनें,
घनन तें तेते नर नित्य बरसाए ना ;
जेते सैल सैलन प्रजाए तृन पुंज पूरे,
तेते तहाँ नीके नवयुवक जमाए ना।
कहत 'बिहारी' जेते बाग बन बृच्छन में—
फल प्रगटाए तेते मानुष लगाए ना ;
बड़े बड़े बिधि नें बिलास बिरचे री, पर
मेरे काम केरी काम कौंनहू बनाए ना।

❀ ❀ ❀

तीस घड़ी कौ दिन करो तीस घड़ी को रात ;
लोग लखौ तौ लाख किय बिधि पर कहा बसात।

गणिका-लक्षण

बिलसत बाक्य बिलास सब करत केलि रुचि काम ;
मुख्य लक्ष है द्रव्य पर ताकौ गणिका नाम।
गण है नाम समूह कौ गण की गणिका वाम ;
रमैं वेश लै वेश रचि तासें वेश्या नाम।
सबकी है सामान्य तैं सो सामान्या टेक ;
लक्ष तिहुन कौ द्रव्य पर तासें लक्षण एक।

गणिका का उदाहरण

सरस सजी है सेज सुमन समूहन सें,
दीपत करी है दिव्य दीप दीपमाला में ;
निपट निशंक अंक लाय कें छबीलौ छैल—
पौढ़ी परयंक पै बिचित्र चित्रसाला में।
कहत 'बिहारी' प्रेम प्रीति की न रीति जानें,
भाव भरें भाँवते के भूषण विशाला में ;
केलि के कसाला करै मैंन के मसाला करैं,
तन रतिजाला करैं मन मणिमाला में❀।

❀ ❀ ❀

श्रीफल सम्हारै दिव्य दाड़िम बिलोकै बीज,
बिंबा कौ बिलासी त्यों रसाल फल गन कौ ;
चंपक की चाह लै गुलाबन पै आब देवै,
सेवै अंग राखै रंग कदली दलन कौ।
कहत 'बिहारी' सींच सलिल सपोषै सदाँ,
ताक तन तोषै औ' न रोषै तान तन कौ ;

❀ मन मणिमाला के लेने में है, न कि प्रीति-रीति में, इससे यह गणिका है।—संपादक

बाग को बहाली करै पूर्ण रत्नपाली, ऐसौ
लावौ ढूँढ़ आली कहूँ मालो मिलै मन कौ❀

❀ ❀ ❀

तुम ललना की लगन लख लाए कुंद कचनार ;
वहै लगत नाकौ ललन सोनजुही कौ हार† ।

❀ ❀ ❀

स्वाधीनापतिका प्रथम वासकशय्या जान ;
पुनि कहिए उत्कंठिता अभिसारिका बखान ।
कही विप्रलब्धा बहुरि और खंडिता बाम ;
कलहांतरिता आठवीं प्रोषितपतिका नाम ।
नव कबीन यह ठाम और मिलाए भेद दो ;
आगतपतिका नाम द्वितिय प्रवत्स्यत प्रेयसी ।
कबिन कहे चित चाह तीन भेद औरहु पृथक ;
अन्य सुरत दुखिताहि बहुरि मानिनी-गर्विता ।
आठ भेद आचार्य गनाए पाँच अपर कबि भाए ;
जे पाँचहु हम उन आठहु के अंतरगत दरसाए ।
जो सिगरे तेराकर मानत तौ गणना बढ़ि जैहै ;
अरु कदाच यह भेद गिनैं ना तौ संख्या घटि रैहै ।
तासें गणना आठहि कीनी भेद त्रयोदस राखे ;
सद्गुरु कृपा युक्ति सब सूझै सदग्रंथन सब भाखे ।

❀ ❀ ❀

❀ गणिका—दूती से गणिका नायिका धनी प्रेमिक को लाने के लिये कहती है। इसमें श्रीफल-से कुच, दाडिम-से दंत, बिंबा से लाल ओष्ठ, रसाल-सी ठोडी, चंपक-सा रंग, गुलाब-से गाल, कदली-से जंघा कहकर शरीर को गणिका बाग कहती है। इसमें रूपकातिशयोक्ति का चमत्कार है।

† सोनजुही कौ हार—इससे स्वर्ण के हार की ध्वनि से गणिका नायिका ध्वनित होती है।—संपादक

गणना में आठहि रखे भाषे गुणिन अगाध ;
कहिबे में तेरहु कहे क्षमियौ कवि अपराध।
और गर्विता भेद मिल पंद्रह लग बढ़ जात ;
उदाहरण लक्षण पृथक समझहु कवि अवदात।
पति जाके आधीन हो निरख रूप गुण चाहि ;
स्वाधिनपतिका नायिका कहत सुकविगण ताहि।

❀ ❀ ❀

कटि तट छीन है न कुच तन पीन है, न
दृग छबि मीन है न साधन सहेरी क्यों ;
गात न गुराई है न बात चतुराई है, न
गति गरुवाई है न ललक लहेरी क्यों।
कहत 'बिहारी' ऐसौ आनन अनूप है, न
रतिवत रूप है न चित में चहेरी क्यों ;
मोहिबे की बस्तु मोहिं मोहिं में न जानी जाति,
तौऊ मोहिं जोह मोह मोहन रहेरी क्यों।

❀ ❀ ❀

जा दिन से ल्याए हैं गुपाल बाल गौने गृह,
ता दिन सें ताके नेह जाहिर जगे रहैं ;
आन बनितान में बिलोकै समता न जाकी,
पान गहि पान❀ रस पान में पगे रहैं।
कहत 'बिहारी' ऐसे छबि में छके हैं छैल,
छोड़ी मरजाद गैल ठौर ही ठगे रहैं ;
साँझ और प्रात दिन रात चाहै देखौ तबै,
कामिनी की काया संग छाया से लगे रहैं।

❀ ❀ ❀

❀ पान गहि पान = हाथ से हाथ पकड़कर।

जौंन बल पाय शेष शीर्ष धरणी को धरैं,
जौंन इष्ट ब्रह्मा सृष्टि रोजहू रचत हैं;
जौंन पद सेवा सदाँ चाहत सचक्र सक्र,
बिरद बिलास बृंद बेदन बदत हैं।
कहत 'बिहारी' धन्य धारणा तिहारी राधे,
जौंन हित जोगी अंग आँचन अचत हैं;
तौंन सब नाथन के नाथ जदुनाथ नाथ,
तेरे नेह-नाथ नथे नाग से नचत हैं।

❀ ❀ ❀

ए री रसिकेस्वरी रँगीली रूपरासि राधे,
रम्यौ मन मेरौ रुचि रावरे बिलास में;
कहत 'बिहारी' अंग अंगन अनंग ओप,
उपमा न आवै सजी सुखमा बिकास में।
देखिकैं तिहारे नीके नैंन नासा केस मुख,
कंज-कीर-सर्प-ससी भाजे हेर हाम में;
कोऊ कुँदे नीर कोऊ जुदे हो हिराने बन,
कोऊ मुदे भूमि कोऊ उदै भे अकास में।

❀ ❀ ❀

संग ही जेंवत संग अचैवत संग ही पान चबान चहे हैं;
संग ही आवत संग ही जावत संग 'बिहार' के रंग गहे हैं।
हौं अति लाजन जाति गड़ी तुमनें पिय कौन सुभाव लहे हैं;
सोर मचौ सिगरे ब्रज में कि लला छिगुरी के छला ह्वै रहे हैं।

❀ ❀ ❀

जित मुरकत तित तित झुकत छबिगुन पाय प्रसंग;
कर राख्यौ चित चोर कौ चतुर नारि चित चंग❀।

❀ चंग = पतंग।

वक्रोक्तिगर्विता-लक्षण

पति बस लख वक्रोक्ति सें गर्ब करत है बाम ;
प्रथम प्रेम के गर्ब सें प्रेमगर्बिता नाम।

वक्रोक्तिगर्विता का उदाहरण

प्रात सें बैठत साँझ समैं लग साँझ सें बैठत प्रात प्रकास लौं ;
प्रेम यों पेख पिया कौ 'बिहार' हँसै ननदी सतरावति सास लौं।
काँ लौं रहौं घर बैठी भटू छिनकौ नहिं छोड़त वा घर बास लौं ;
पाय सकौं ना उकास घरी भर जाय सकौं न परोसिन पास लौं।

❀ ❀ ❀

कोऊ नहीं समझावत नाह कौं बीते किते दिन सासुरे माँहीं ;
ऐसौ 'बिहार' बिलोक्यौ न प्रेम पिया छिनहूँ नहिं छोड़त छाहीं।
मायके सें लिखी आवे चिठी हम आइबी भोर लिवावन काहीं ;
जाहिर मो लौं न होत कथा पिया बाहिर से लिख देत कि नाहीं।

❀ ❀ ❀

सावन झूलै झूलना फागुन झोरिन झेल ;
नीकौ लगत न लाल को सखि अखती कौ खेल❀।

रूपगर्विता-लक्षण

करत प्रेम के गर्ब में होय रूप कौ गर्ब ;
रूपगर्बिता नायिका ताहि कहत कबि सर्ब।

❀ अखती में थोड़े समय के लिये सखियों के साथ रहने में नायक को जो क्षणिक विरह होता है, उसे नायक सह नहीं सकता, यह भाव है।

नायिका स्वयं अपने अंग उपमेयों के प्रसिद्ध उपमानों का लज्जित होना कहती है, अतएव रूप-गर्व ध्वनित होता है।—संपादक

रूपगर्विता का उदाहरण

चौंकि चौंकि चरन चलाय चपै चोर चहूँ,
चिरीं चुपचाप करैं चूँ न चुटकारे तैं;
डगर डरात डार देत डग देत डेरा,
बिबस बटोही यहै नगर निहारे तैं।
कहत 'बिहारी' चक्रवाक चकचौंध जात,
सरन सरोज रहैं संपुट सकारे तैं;
लाल कौ तौ ख्याल खोलैं रहै मुखवाल अरी,
होत एतौ हाल घरी घूँघट उघारे तैं।

❀ ❀ ❀

बैठी सेज सुंदरी शृँगार साज श्याम हेत,
अतर सुगंध चारु चोर छिरकायौ री;
धारि हियैं हरष अमोल मुकतान हार,
कंचुकी उरोजन के शीर्ष लुरकायौ री।
कहत 'बिहारी' बनी बनक अनोखी आज,
एक भ्रम मेरे मन माहिं अधिकायौ री;
मंजन समेत साजे सकल शृँगार तूनें,
काहे ते न नैनन में अंजन लगायौ री।

❀ ❀ ❀

साजत शृँगार सूक्ष्म छाजत छबीली छटा,
राजति रसीली रूप लाजत रती कौ है;
चिकुर निनौरै नव नेह नैन जोरै निच,
मुकुर निहोरै चित्त चोरै प्रेम पी कौ है।
कहत 'बिहारी' वृषभानु की किसोरी गोरी,
समुझ परै न भोरी भाव तुव जी कौ है;

वासकशय्या-लक्षण

पिय आवन निश्चै समुझि सेज सजै जो बाल ;
बासकसय्या कहत हैं ताकौं बुद्धि बिसाल ।

वासकशय्या का उदाहरण

अगर कपूर धूप धूमधर धाम धौल-
चित्रन लै चित्रित बिचित्र चित्रसारी की ;
अंबर जरीन दिव्य दीपति दरीन कीन ,
झालर झलक मंजु मोतिन किनारी की ।
कहत 'बिहारी' पूर्ण पुरट प्रयंक रत्न
सुमन जलूस जोति दीप दिसि चारी की ;
मैन मतवारी सेज साज यों सँवारी बैठी ,
झख - चखवारी लख बारी बनवारी की ।

❀ ❀ ❀

फूलन से बेनी फूल फूलन के सीस फूल ,
फूलन की दावनी सो हाथ सरसाति है ;
बैंदी रची फूल नथ फूल कर्णफूल फूल-
कंकन करन माल फूलन सुभाँति है ।
कहत 'बिहारी' पग पायलादि फूलन की ,
पाटी प्रयंक जड़ी फूलन की पाँति है ;
फूलन दुकूल साज फूल बँगला में आज
फूलन की सेज बैठी फूली ना समाति है ।

❀ ❀ ❀

हरित झीन पट में प्रिया झिलमिल झिलमिल होति ;
जिमि तरु पत झँझरीन ह्वै जगति जुन्हाई जोति ।

उक्का (उत्कंठिता)-लक्षण

गर्ब रूप कौ समझ पति जब अनतै रमि जाय ;
हेतु बिचारै मिलन हित सो उक्का उकताय ❀ ।

उक्का का उदाहरण

गमन कियौ ना कान्ह अजहूँ निकुंजन तैं ,
रमन कियौ का कहूँ आन बनितान सों ;
कहत 'बिहारी' यों बिचारै धीर धारै नहीं ,
रोष मन मारै ना उचारै सखियान सों ।
बिथा बिलसानी जाति नेह तरसानी जाति ,
अंग झुरसानी जाति बिरह कृसान सों ;
ज्यों ज्यों मैन मींजै तिया त्यों त्यों नैंन मीजै ऐन,
ज्यों ज्यों रैन भींजै त्यो त्यों भींजै अँसुवान सों;

❀ ❀ ❀

बुंदन छरीरी लगी मेह की झरीरी बोलै
चातक चरीरी दीह दुःखन दरीरी में ;
तपन खरीरी बीतैं जुगसीं घरीरी देख ,
देख तौ अरीरी मैन मारन मरीरी में ।
कहत 'बिहारी' तोसों केतिक कहो री, पै न
बावरी टरी री धीर बहुतै धरी री में ;
बिरह बरी री हौं तौ बेबस परी री, क्यों न
ल्यावै तूँ हरी री इन कुंजन हरीरी में ।

❀ ❀ ❀

❀ उकताय = अत्यंत उत्कंठित होती है ।

नीरद के नीर सें नहाई नीकौ नाम लै लै,
बन में बसो री परी भूमि भाग जागे ना ;
सीतल समीर सीत चंदन के बिंदु लाय,
पंचबान पूजे पर प्रेमी प्रेम पागे ना।
कहत 'बिहारी' भाव भेंट में चढ़ाई लाज,
साधन घनेरे साधे मेरे राग रागे ना ;
सारी निसि जागी पल पलकौ दियौ न आली,
एतौ तप कियौ तऊ हाथ हरि लागे ना।

❀ ❀ ❀

चितवत मग बितवत घरी इत उत छिन छिन जाति ;
ज्यों ज्यों नभ पियरात है त्यों त्यों तिय पियराति।

अभिसारिका-लक्षण

वह उक्ता पिय को जबहिं लेवै निकट बुलाय ;
या आपहि जावै स्वयं अभिसारिका कहाय।

दूती वाक्य से उदाहरण

जाग जाग गोरी लोल लोचन गुलाबी किये,
आँसुन अन्हाय रोष रोय कें रितै रही ;
ऐसी भलाँ अवधि तिहारी कान्ह कैसी यह
दरस दिए ना हियें हरस हितै रहीं।
कहत 'बिहारी' क्यों न चालत चतुर बेग,
बिरह बिथा में बाल बासर बितै रही ;
आनँद के कंद कृष्णचंद नँद-नंद प्यारे,
तेरे मुख-चंद कौं चकोर सी चितै रही।

नायिकागमन से

कैसी अंग अंग सें सुगंधि की तरंग उड़ैं,
कैसी मुख-चंद्र-प्रभा पूरन प्रमान को ;
कहत 'बिहारी' कैसी बानिक बनी है बैनी,
बरनि न जावै छटा छिति छहरान को ।
जाति चली सुंदरी सहेट स्याम के ठौर पर,
चलिबौ बिलोकौ कैसी साहिबी समान की ;
आसपास भौंर चलैं आगे ह्वै चकोर चलैं,
पीछें पीछें मोर चलैं बीचैं बृषभान की ।

❀ ❀ ❀

स्याम घन सावन को घुमत घनेरी घटी,
स्याम ही अमावस की रैंन अति कारी है ;
नैंन कजरारे स्याम भूषन सम्हारे स्याम,
स्याम केस पास बेनी स्याम सटकारी है ।
कहत 'बिहारी' स्याम कंचुकी कुचन लाय,
अंगराग स्याम ओढ़ि स्याम रंग सारी है ;
स्याम अलिबृंदन की स्यामता समेटि अंग,
स्यामा बन स्यामा आज स्याम पै सिधारी है❀ ।

❀ ❀ ❀

साज स्वेत अंबर अभूषन सम्हार स्वेत,
बेनी में सजाई सोभा सुमन नवीन की ;
स्वेत सर्वरी में यों सिधारी पिय पास प्यारी,
कहत 'बिहारी' संग सुखमा सखीन की ।

❀ इस वर्णन में राधिका ने श्यामवर्ण की वस्तुओं से शृंगार सज अभिसार किया है, अतएव कृष्णाभिसारिका का वर्णन है ।—संपादक

चालत ही चंद्रबदनी तौ मिली चाँदनी में,
　　काहु पै न सूझी भई कौन धौं गलीन की;
कुंदन कलीन साथ अवली अलीन चली,
　　अवली अलीन साथ अवली अलीन की✻।

✻　　✻　　✻

साज अभूषन अंगन में दिन ग्रीषम गोरी बनी अभिसारिनी;
लूयैं चलें चहुँ ओरन तें बिलसै ब्रज बाल बिहार बिलासिनी।
नाह के नेह-नसा में छकी मद मस्त ह्वै जाति चली गजगामिनी;
एई न भान है भावती कौं किये जेठ कौ घाम कि चैत की चाँदिनी†।

✻　　✻　　✻

मंद मंद मग पग धरत मंद मंद मुसक्याति;
मत्त मतंग मयंक कौ मान मिटावति जाति।

विप्रलब्धा-लक्षण

तिय चल जाय सहेट पर मिलै न पिय प्रत्यक्ष;
ताहि विप्रलब्धा कहत जे कवि कविताध्यक्ष।

विप्रलब्धा का उदाहरण

आवत सँकेत के निकेत में न पायो पाव,
　　प्रगट प्रबीन बिधी मैन सर जाला में;
चीर रह्यौ सिमिट सरीर सेज तीर रह्यौ,
　　नीर रह्यौ नैंनन न धीर रह्यौ बाला में।
कहत 'बिहारी' तहाँ तीव्रतर ताप तई,
　　बिकल बिहाल भई बिरह की ज्वाला में;

✻ श्वेत वर्ण की वस्तुओं से सजकर अभिसार करने से शुक्लाभिसारिका है। श्वेत वर्ण के कुंद पुष्प की सुगंधि से आकर्षित भ्रमर समूह के साथ लगने से चाँदनी में लीन हुई नायिका का पता सखियों को चलता है और वे पीछे-पीछे जाने में समर्थ होती हैं।

† इसमें कामाभिसारिका का वर्णन है।—संपादक

बदन रसाला गयौ सूख ततकाला, जनु
बारिज बिसाला परो पाला के कसाला में।

❀ ❀ ❀

आई सजि साँझ ही सहेट स्यामसुंदर लौं,
निकट निकुंज गई आली ओप अगरी;
देहरी पै दैबै पग प्यारी ने पसारयौ नेक,
तौलौं तहाँ सेज पै न पायौ छैल ठगरी।
कहत 'बिहारी' क्रिया कौन हू न पूरी भई,
जैस ही की तैसी रही बाढ़ी व्यथा सगरी;
आधे मुख बोलै बैंन आधे खुले रहे नैंन,
आधी दबी बीरी मुख आधी उठी डगरी।

❀ ❀ ❀

औसर के पारें प्यारी देखरी दुरेफन कौं,
घूमत सहर्ष बाँध भूमत झला झला;
कहत 'बिहारी' कियौ कंजन मिजाज राज,
खंजन खुसी में खेलैं तीरन तला तला।
चाँदिनी प्रकास मंद चंद मंद हास्य हँसै,
गान गावै कोकिला कदंबरी हला हला;
फूला मालती की कुंज फूली ना समाति सखी,
करत गुलाब चोरें चुटकी चला चला।

❀ ❀ ❀

छल सें छलिया हित आई यहाँ छलिया न छल्यौ छल मैं हो गई;
रहता इकठौर 'बिहार' जो बैठ तौ ये तन ताप मिटातौ दई।
उत छोड़ उन्हें इत जे न मिलें सजनी यहाँ बीच की बीचैं रई;
हर की न भई पर की न भई घर की न भई बर की न भई।

❀ ❀ ❀

बिन खग केतु सँकेत महि मीनकेतु भय बाम ;
बैठी लेत निकेत बिच बृषभकेतु कौ नाम❀ ।

खंडिता-लक्षण

अंकित आवै प्रात प्रिय अपराधी बन सोय ;
खंडित लख बोलै बचन नाम खंडिता होय ।

खंडिता का उदाहरण

कारन हँसी के हौ न सीके हौ सुभाव सुद्ध,
बंसज ससी के हौ बसी के हू किसी के हौ ;
कहत 'बिहारी' जागे दिवस रती के हौ जू,
ग्राहक रती के हौ रती के और ती के हौ ।
आपनी कही के रँगे राग में वहा के, जानों,
भाव सबही के आप हितू सब ही के हौ ;
पढ़े मोहिनी के मंत्र मोहे मोहि नीके रात,
रहे मोहि नीके प्रात मिले मोहि नीके हौ ।

❀ ❀ ❀

कंकन कौ धारिबा लखा है कर ही में हम,
ताकी छबि कान्ह कंठ रावरे निहारी है ;
कज्जल की रेख लोग लोचन लगावैं सबै,
ओंठन लगायें आप उपमा अपारी है ।
कहत 'बिहारी' जग्त जावक पगन देत,
दीनै तुम लाल भाल जागै जोति न्यारी है ;
ऐसो नई रीति ये शृंगार साजिबे की स्याम,
भेद तौ बताओ कौन बेद सों निकारी है ।

❀ ❀ ❀

❀ श्यामसुंदर (विष्णु) को सहेट में न पाकर विप्रलब्धा कामदेव के भय से शंकर का आह्वान करती है ।—संपादक

आप तौ रहे हौ सारी जामिनी जगत लाल,
जागे की ललाई सो हमारे नैंन आई है;
आप तौ कियौ है मोद मान मधुपान कान्ह,
घूमत हमारौ चित्त ओज अधिकाई है।
कहत 'बिहारी' नख लागे हैं तुम्हारे हियैं,
पीड़ा है हमारे हियैं कैसी एकताई है;
हम तुम एक ही हैं कहत रहे जो स्याम,
साँची तौंन सिच्छा की परिच्छा आज पाई है।

प्रश्नोत्तर

खोलौ पट राधे रानी! को हौ प्रात बोलौ बानी?
हैं तो चक्रपानी, जौंन छीरसिंधु रागे हौ?
नहीं, बनमाली; बन छोड़ यहाँ आए कैसे?
नाम गिरिधारी, तौ तौ राम-प्रेम-पागे* हौ।
कहत 'बिहारी' हैं गुपाल, पालौ गौवन कौं,
नहीं, घनश्याम; क्यों न बरसन लागे हौ?
प्यारे हैं तिहारे, तो हमारे पास होते, कहूँ
गये रहे, जाव फेर, कहाँ? जहाँ जागे हौ।

* * *

चित्र चिह्न लख लाल तन नाथ मोहनो माथ;
दर्प न मन कीनों कछू दर्पन दीनों हाथ।

---

* तात्पर्य यह कि गिरि के धारण करनेवाले तो हनुमानजी हैं, जो राम-प्रेम में पगे हैं इसमें खंडिता राधिका का श्रीकृष्ण नायक से प्रश्नोत्तर है।—संपादक

खंडितांतर्गत अन्यसंभोग दुःखिता

रमन चिह्न निज पोय के अन्य सखी तन जोय ;
अन्यसुरतिदुखिता कहैं भेद खंडिता होय।

उदाहरण

भावतौ न आयौ सो न आयौ भलैं भावती री ,
तूँही भल आई बड़े भाग कहने परे ;
कहत 'बिहारी' इन अंकित उरोजन पै
नाहक नखन दाग दर्द लहनें परे।
जानती जो ऐसी तौ न भेजती भटू री भूल ,
छूट परी बेनी बृथा टूट गहने परे ;
छमा कर प्यारी मोहिं मेरे प्रेम पाछे तोहिं
छाती में छबीली घने घाव सहने परे।

❋ ❋ ❋

देखी एक नागिनि अनेक अवलोकी तेऊ ,
दिन में सरोज सखी तेज कियौ हीनौ है ;
लोहितांग मूर्ति में सनीचर प्रभा सुभासै ,
आसपास सीप-जाति रंग दुति दीनौ है।
कहत 'बिहारी' धन्य रचना रुचिर यह ,
अंतरंग भाव कौ प्रभाव सर्व चीनौ है ;
शेखर मयंक को निशंक प्रादि शून पेख ,
मध्य पास लाकर शृँगार कौन कीनौ है❋।

❋ दूती नायक से रतिकर्म करके नायिका के पास पहुँची है। लटें छूटी हैं। मुखकमल कुम्हलाया है, लाल ओठों मे दंतच्छद है एवं कुच-मध्य पर नखचंद्र नखच्छद से बन गया है। इस पर अन्यसुरतिदुःखिता की उक्ति इस कवित्त में है।—संपादक

दिन में चली आई निकुंजन से' नहिं लाई लला ललचात सी क्यों;
यह बेनी 'बिहार' छुटी सो छुटी अलसात कँपात हफात सी क्यों।
बिन ही कहै कारन जान परै अब तूँ कहिबे में डरात सी क्यों ;
कतरात अली इतरात भली बतरात लली सतरात सी क्यों।

❀ ❀ ❀

बोय बीज सीच्यौ सज्यो फूल्यौ फल्यौ सुशाख ;
हौं तरु सेवन श्रम कियौ तूँ आई फल चाख।

मानिनी-लक्षण*

चिह्न देख पिय तन तबहिं उर उपजत है मान ;
ताहि मानिनी कहत हैं जे कबि काव्य निधान।
भेद और यह मान के कबिन बखाने तीन ;
प्रथमहि लघु मध्यम द्वितिय तीजौ गुरु कहि दीन।
तजै सहज ही मान जब ताहि कहत लघुमान ;
रोष छुटै बिनवत अधिक सो मध्यम पहिचान।
कै हूँ बिधि माने न जब सो साँचौ गुरुमान ;
दूती कौ समुझायबौ सोऊ त्रिविध बखान।
उत्तम उत्तम रीति कह मध्यम मध्यम बैंन ;
समझावहि कटु बचन कहि तिहि अधमा गनि ऐन।

लघुमान का उदाहरण

नवनागरि नैंन नवाय निकेत में सोभित काम की कामिनि सी ;
इत रूसि 'बिहार' रही रमनी उत जाति लखा पिय जामिनि सी।

---

* यहाँ कवि ने मान केवल ईर्षा-समुद्भव माना है, पर प्राचीन आचार्यों ने मान के भी दो भेद किये हैं—(१) प्रणय-वश अकारण ही और (२) प्रेम-पात्र की कुटिल चाल से। द्वितीय भेद ही इस ग्रंथ के कर्त्ता को मान्य है।—संपादक

तब कान्ह नें रात की बात कछू कहि कान होकें मन थामिनि सी ;
तज मान लली हँसि आन मिली घनश्याम की देह सें दामिनि सी।

❀ ❀ ❀

निरखी रुख रूखो रँगीली लला समुझाय सिखापन साँचे दए ;
पर बोल 'बिहार' बिलासिनि ने यह कान सुनें वह कान गए।
जब सामुहें आ कर जोर दुऊ इक पाव कें प्रीतम ठाढ़े भए ;
तब आन अली हँसि ही से लगी सब मान के भूल सयान गए।

उत्तम दूती—मध्यममान

चंपकलिका पै रुचि राच्यौ है रसाल फल,
मानिक सुरंग तापै रंग झलकायौ है ;
दावै तहाँ सीपज सुरूप सुक सोभा देत,
सुक ढिँग गहब गुलाब दुति लायौ है।
कहत 'बिहारी' ता गुलाबन लौं सोहै गुरु,
सुरगुरु पास लियें राहु सुख छायौ है ;
राहु के निवास तैं प्रकास चंद्र लायौ, और
चद्र के प्रकास तैं बिकास पद्म पायौ है❀।

❀ ❀ ❀

प्रात सें पुकारूँ प्रिया पास आस पूरी कर,
तेरे लिये लाल रहो ताता थेई थैया होय ;
मान छोड़ मोहिनी मजा ले मनमोहन सों,
तो सी तौ जनैया और मो सी को कहैया होय।
कहत 'बिहारी' एक दृश्य ये दिखा दे देवि,
आज रात आली आधीरात को समैया होय ;

❀ यहाँ चंद्र के प्रकाश से कमल प्रफुल्लित होने से तात्पर्य यह है कि नायक के मुखचंद्र से नायिका के नेत्रकमल प्रफुल्लित हो उठे, अर्थात् नायक के दर्शनमात्र से नायिका का मान छूट गया।—संपादक

चैत की जुन्हैया होय सुमन की सैया होय,
तापै तूँ दुल्हैया होय चूमत कन्हैया होय।

❀ ❀ ❀

रोष छोड़ लाड़िली लजीली लाभ लूटै किन,
सरद ससी से मजी सर्वरी सिरात जात;
कहत 'बिहारी' इन तेरे लाल लोचन से
अश्रु-कन छोटे छोटे छूट छहरात जात।
तेई होत छीन परै पीन कुच कोरन पै
आरसी ले देख कैसी प्रभा प्रगटात जात;
मानों नव नीरज से निकर पराग बुंद
शिखर सुमेर की पै बिखर बिलात जात❀।

मध्यम दती—मध्यममान

मान किये मनि मंदिर मानिनी बीती निसा कहा बान तिहारी;
कौन 'बिहार' भलाई भटू भलि यामें न कोऊ कहै नर नारी।
हौं प्रन प्रीतम सें कर आई हौं ल्याऊँगी हाल मनाय कें प्यारी;
चाख लै मोहन सों रस रात कौ राख लै लाडिली लाज हमारी।

❀ ❀ ❀

कोकिल कुंजन कूक रही यह सीतल पौंन प्रबाह कों पेखि री;
बाग 'बिहार' बिलास बड़े अनुराग बड़े बड़ भागहिं लेखि री।
कान्ह खड़े कब कैं धौ चितैवत मान अली यह बात बिसेखि री;
पंथ कौं देख बसंत कौं देख सुकंत कौं देख न अंत कौं देखि री।

❀ इस छंद के प्रथम तीन चरणों के अंत में क्रियापद पुंलिंग में रक्खे हैं, जो स्त्रीलिंग में चाहिए, पर अंत के पुंलिंग तुकांत के कारण कवि को ऐसा करना पड़ा है।—संपादक

अधमा दूती-गुरुमान

ऐसे ही रहौगी बैठी भावती भवन बीच,
भावते पै भौंहैं जो कमान ऐसी तान हौ;
फलौगी सुलोचनी समस्त मनकामना कों,
चलौगी सुरीति नीति प्रीति पहिचान हौ।
कहत 'बिहारी' अरी अटका हमैं का परी,
बढ़ैगौ बिगार बीर रार ऐसी ठान हौ;
बात जो भलाई की भला है सो बताई भटू,
जान हौ तौ मान हौ, न मान हौ तौ जान हौ।

❀ ❀ ❀

हारीं मनाय सबै सखियाँ, अरु आवत जावत पाँव पिरानें;
ऐसी 'बिहार' न देखी सुनी हठ जैसी कछू सजना तुम ठाने।
लाल जौ हाल बिलोक कैं जो रम जैहैं लली कहुँ अंत ठिकानें;
तौ पुनि यामें न फेर कछू, फिर हौ फिर भावती भाँग सी छानें*।

❀ ❀ ❀

लालन केती करी बिनती, अँखियाँ न हँसीं सखियाँ सब साक† हैं;
बीति 'बिहार' गई रजनी, मुख से सजनी न कढ़े कछु बाक‡ हैं।
ना मिलिहै बल ऐतेहु पै, ता अनेकन मोहन की छबि छाकहैं¶;
तूँ इतनौं न बिचारै भटू, भलाँ, राजन को मुतियान के थाक हैं।

❀ ❀ ❀

चंद्र चलो रजनी चली चली पवन सुखधाम;
श्याम चल्यौ हौंहू चलो तूँ न चलो बज बाम।

---

* 'फिर हौ फिर भावती भाँग सी छानें' अर्थात् विवश, बिहाल होकर फिरोगी। † साक = साखी। ‡ बाक = बोल। ¶ छाकहैं = मोहित होंगी, संतुष्ट होंगी।—संपादक

कलहांतरिता-लक्षण

कलह करै मानै नहीं पिया गए पछिताय ;
अंत कलह के रति चहै कलहांतरिता आय ।

उदाहरण

मोहन हू मोह कैं मनैबे मोहिं ठाढ़े रहे,
मेरी मति मंद रही राह गहि रार की ;
कहत 'बिहारी' दई सखिन परिच्छा दिच्छा ,
सूझी सो न सिच्छा ऐसी इच्छा करतार का ।
कैसैं अब आली बनमाली से बिलास होय,
खोल तौ हिये की बात बोल तौ बिचार की ;
तू ही गई हार कर कर कैं जुहार, मैं
न मानी मन हार बलिहार होंनहार की ।

❀ ❀ ❀

पावत ही पायँन परौंगी प्रगटाय प्रीति ,
आवत ही आदर समेत अनुकूलौंगी ;
कहत 'बिहारी' नेह राख नट नागर सों ,
नित नव नैंनन झुलैहौं और झूलौंगी ।
ध्यान धरिबे की सदा धारना धरौंगी आली ,
मान करिबे की अब कसम कबूलौंगी ;
प्यारौ प्रेम-चेरौ मिला दै री मोहिं मेरौ, तेरौ
एते काम केरौ जस जनम न भूलौंगी ।

❀ ❀ ❀

जो कछू भई है सो भई है भूल भोरी हम ,
अब जस कैहौ सो समोह मन मानैं जू ;

छाँड़ौ छल छंद छमा कीजिये छबीले छैल ,
छेदन करत काम कसत कमानैं जू।
कहत 'बिहारी' बिथा बूड़ति बचावौ नाथ ,
कानन सुनावो वहो बाँसुरी की तानैं जू ;
रसिक सुजान मिलौ आन हाहा कान्ह हमैं ,
रावरी है आन जो पै मान अब ठानैं जू।

❀ ❀ ❀

बीतें बासर बहुत प्रान-प्रीतम गृह आए ;
बिलसे भीतर भवन देस के चरित सुनाए।
अर्धरात यों गई अनख बातन रँग छायौ ;
का कहुँ कठिन कुजोग कलह मैंने बगरायौ।
कह कबि 'बिहार' जौ लौं कियौ मान गई तौ लौं निसा ;
आली उदोत भई सौत सी लालो लै पूरब दिसा।

❀ ❀ ❀

कर जोर के कान्ह करी बिनती तब हौं रही रूसि कै मौन सों री ;
अब पाछैं परौ पछितानै प्रिया जब गौ चल भावतौ भौन सों री।
लहिये बिरहा की 'बिहार' बिथा दहिये यह जामिनि जौंन सों री;
सहिये मन ही मन पीर सखी, कहिये अपनी करी कौंन सों री।

❀ ❀ ❀

मैं पिय सों टेढ़ी भई पिय मो सों भये बंक ;
जे बीचहिं दुख देत क्यों मदन मलिंद मयंक❀।

त्रिविध प्रोषितपतिका-लक्षण

प्रा है नाम प्रकर्ष कौ उषित बिदेसी होय ;
पति जाकौ यह अर्थ से प्रोषितपतिका सोय।

❀ काम और कामोद्दीपनकारी भ्रमर और चंद्रमा कलहांतरिता को कष्टप्रद हो रहे हैं, क्योंकि प्रेम-पात्र रूठकर चला गया है।—संपादक

द्वितिय प्रवत्स्यत्प्रेयसी प्रीतम चहै प्रवास ;
आगतपतिका तीसरी जिहि आगम पिय भास।

विवरण—आठवाँ भेद प्रोषितपतिका है, प्र = प्रकर्ष, उषित = विदेश में जिसका पति बसै, उषित घर छोड़कर अन्यत्र बसने का भी बोधक है, परंतु रूढ़ि विदेश के ही अर्थ मे है, अतएव प्र और उषित के संयोग से प्रोषितपतिका ऐसा नाम सिद्ध होता है। अब दूसरा भेद प्रवत्स्यत्प्रेयसी का विवरण करते हैं, अर्थात् प्रेयस = जिसका पति, प्रवत्स्यत् = प्रवास (विदेश गमन) करना चाहे, उसको प्रवत्स्यत्प्रेयसी कहते हैं। अब तीसरा भेद आगतपतिका अर्थात् आगत = आ गया है विदेश से पति जिसका, अभिप्राय यह कि वह नायिका पति-प्रवास होने पर प्रवत्स्यत्प्रेयसी होगी, और वही पति के विदेश चले जाने पर प्रोषित-पतिका होगी, और पति का आगम होने पर आगतपतिका कही जायगी। यहाँ पर प्राचीन भाषा-प्रणाली के अनुसार नायिकाओं के लक्षण पद्यबद्ध कहे हैं, परंतु प्रत्येक स्थल पर प्राय: नायिकाओ के नाम ही से लक्षण निकालकर लक्षण कहे हैं, जिसे विद्यार्थियो को परिभाषा का पूर्ण प्रबोध हो जावे।

विद्यार्थियो को विदित हो कि जिस नाम का जो अर्थ जहाँ पर है, वही उसका स्पष्ट लक्षण है, क्योकि लक्षण से ही नाम रक्खा जाता है। उस लक्षण का लक्षण क्या है, उसे हम नीचे बतलाते हैं। लक्षण उसे कहते है, जो कहे हुए पदार्थ का असाधारण धर्म तीन दोषों से बचा हुआ हो। उन तीन दोषो के नाम ये हैं—(१) व्याप्ति, (२) अतिव्याप्ति और (३) असंभव। अब यहाँ तीनो की परिभाषा बतलाते है। व्याप्ति-दोष, अर्थात् व्याप्ति उसे कहते हैं, जो लक्षण कहा गया, उसका व्यापकत्व एक देश में हो, सर्वदेशी न हो। जैसे किसी ने गौ का लक्षण कपिला (कपिल रंग) कहा, तो यह लक्षण कपिल-मात्र मे व्याप्त है, परंतु गौमात्र मे नहीं, क्योकि गौ अनेको रंग की होती हैं। अतः यह व्याप्ति-दोष हुआ। इसे लक्षण मे बचाना चाहिए। दूसरा अतिव्याप्ति। अतिव्याप्ति उसे कहते हैं कि उसकी व्याप्ति उसमे हो, और औरो में भी हो, जैसे किसी ने गौ का लक्षण शृंगोवाली कहा, तो गौ शृंगोवाली वास्तव मे है, परंतु भैंस, छेड़ी, साम्हर, हरिण आदि भी शृंगोवाले है। अतः यह अतिव्याप्ति-दोष है, इसको लक्षण में बचाना चाहिए। तीसरा दोष असंभव। असंभव उसे कहते हैं, जिसका लक्षण कहे उस पदार्थ में उस लक्षण की व्याप्ति संभव न हो। जैसे किसी ने गौ का लक्षण एक सफवाली कहा, तो एक सफ का होना गौ में संभव नही है, अतः यह असंभव-दोष है। अतएव विद्यार्थियों को चाहिए कि लक्षण बनाते समय पूर्वोक्त तीनो दोषो को अवश्य बचावें। नाम के अक्षरो से अर्थ निकलने को 'निरुक्ति' कहते हैं, और लक्षण से अर्थ निकलने को 'लाक्षणिक अर्थ' कहते हैं।

प्रवत्स्यत्प्रेयसी

स्याम निठुराई की सुनाई सुधि काहू आन ,
मधुबन जायबे के साधन सम्हलिगे ;
कहत 'बिहारी' बड़ी बेहद बिकन्नताई,
अतन अधीर किये तीखे तीर चलिगे ।
बिषम बियोग के बिकास बिरहानल सें
मुख मृगनैंनिन के छीन होत छलिगे ;
जेठ की सी लपट लगे से प्यारी गोपिन के
फूल कैसे रंग एक संग ही बदलिगे ।

❀ ❀ ❀

सहज शृंगारतीं शृंगार सुखमा की भरीं ,
भूषन प्रकास रहे दिव्य दिसि दौंक दौंक ;
कहत 'बिहारी' कोऊ पाटी प्रभा पारे, कोऊ
कज्जल कों धारैं औ' सम्हारैं नैंन नौंक नौंक ।
ताही छिन छयल छबीले स्यामसुंदर कौ
गमन सुनों सो सबै झाँकी ताकी तौंक तौंक ;
स्याम दर्स प्यासीं बिमला सीं कमला सीं खासीं ,
चद्र को कला सीं चपला सीं परीं चौंक चौंक ।

❀ ❀ ❀

गहब गुलाबी गुलबदन गुलाब आब-
कुंद कलिकान नीकौ नैंनसुख साजो है ;
सोंनजुही साँटन दुपारिया दुसूती सूती
छपकन छींट टेसू टसर सुराजो है ।
कहत 'बिहारी' गज कोंसन नपाई करै,
ग्राहक भँवर भीर भाव मन माजो है ;

जात किते कंत या बसंत कों बिलोको आज ,
बागन बजार में बजाज बन ब्राजो है ।

❀ ❀ ❀

सुमन सम्हारि सेज सौं हैं स्यामसुंदर के
बैठो मनिमंदिर में मदन मसाला सी ;
तौलौं तहाँ प्रातम पयान करिबे की कछू
चरचा चलाई परी अधिक उताला सी ।
कहत 'बिहारी' सुन सुंदरी स्रवन सोई ,
ससकि सुखानी भई बिरह बिहाला सा ;
लवँग-लता सी लली लुंज करिबे के लिये
बात चलिबे की लगी बात जेठज्वाला सी ।

❀ ❀ ❀

साजत शृँगार ही में और भुज कोंचन के ,
गहने मँगाये गोरी गात छबि छ्वै रही ;
कहत 'बिहारी' तौलौं लाल चलिबे की सखो
खबर सुनाई जबै जाम निशि द्वै रही ।
देह दुलरी की सुन दूबरी भई री एती ,
फेर उन भूषन का चाहना नकै रही ;
छला छिगरीनै काम पौंच पुहँची कौ दियौ ,
पहुँची पहुँच बाँह बाजूबंद ह्वै रही ।

❀ ❀ ❀

जौ परदेस कौ जैयौ पिया मन ही बिच राखौ भलौ फल दैहै ;
जाहिर जो करिहौ जू कदाच तौ सुंदरी सोक नयौ नहिं सैहै ।
आतुर होय से होयगी हानि 'बिहार' बिचार ये एक न रैहै ;
आप तौ पीछे चलौगे लला, चरचा चलें चंद्रमुखी चलि जैहै ।

❀ ❀ ❀

इत क्यों रहिहौं सखि सूने संकेत में क्यों बिरहानल में बरिहौं ;
समुझावहु बीर 'बिहार' बृथा इन बातन धीर नहीं, धरिहौं ।
अरी आवन दे किन भौंन भटू, मनभावन पाँयन में परिहौं ;
उन प्रीतम की इन प्रानन की सजनी इक साथ बिदा करिहौं ।

❀ ❀ ❀

बाल बिचारी 'बिहार' खड़ी खड़ी बूडि रही ती बियोग-बिथा में ;
तौ लगि आय बिदेस कों बालम माँगी बिदा अति आतुरता में ।
थामि रही कर प्रीतम कौ अरु मूँद रही दृग सोक दसा में ;
पूछ रही मनों प्रानन से चलिहौ सँग कै जलिहौ बिरहा में ।

❀ ❀ ❀

ए री गोकुल ग्राम में दे री हुकुम कराय ;
गोरस लै कोउ ग्वालिनी गृह से निकसि न पाय❀।

प्रोषितपतिका

जिन दिन जामिनी जुन्हैया में कन्हैया संग
लूटे रस रंग नैन धारना धरत हैं,
जिन दिन लाल लखे लोचन ललित रूप,
तिन लखिबे को लली लाले से परत हैं ।
कहत 'बिहारी' जिन दिन इन कुंजन में
कीनै रस केल खेल ज्वालन जरत हैं ;
बिरह बिहाली आली अब बनमाली बिन,
वे दिना हमारे हमें बेदिना † करत हैं ।

❀ ❀ ❀

आवन की अवधि बदी जो स्यामसुंदर ने,
ताही कौ न बीर बिसवास भल भाखियौ ;

❀ इस दोहे में तात्पर्य यह है कि गमन के समय गोरस का दर्शन शुभ होने से नायक अवश्य जावेगा, इससे गोरस-दर्शन का निवारण करना इष्ट है, जिससे नायक विदेश जाने से रुक जावे । † बेदिना = वेदना, कष्ट ।—सपादक

कहत 'बिहारी' मोहिं बिरहा बिहाल कीनी,
बिबस बिथा में बोधो बिलग न नाखियौ ।
छनद उजेरी आज सबहि पुकार कहौं,
अनद यही में एक आली अभिलाखियौ ;
सनद हमारी जो पै जीवन की चाहौ, तौ ये
ननद हमारी कौं हमारे पास राखियो ।

❀ ❀ ❀

बिना स्याम संग ये अनंग अंग अंग ओटै,
जानिये न बैरी बैर कब कौ भँजावै री ;
कहत 'बिहारी' तान कान लौं कमान बान,
छिन छिन छेदै देह दरद न लावै री ।
धारैं हैं कलंकता मयंक की सलाह लैकै,
बिरह की ज्वाला बीर बेहद बढ़ावै री ;
याही जारिबे पै याहि शंभु ने जरायौ, तौऊ
जरुआ जरै जो जरो जरे पै जरावै री ।

❀ ❀ ❀

पूछौ कै कहाँ है तौ यहाँ है औ' वहाँ है भासै,
मन की गती न जहाँ जागै है कि स्वै रही ;
व्यापक बिराट होत सिद्ध अनुमान पाय,
कहत 'बिहारो' यौं अगम्य छबि छ्वै रही ।
हैं जो कहैं देत तौ दिखात हैं न देखैं बीर,
नाहीं है कहै तौ है जरूर गात ग्वै रही ;
बिकल बिहाली बनमाली के बियोग आली,
बिरह बिलानी बाल ब्रह्म रूप ह्वै रही ।

❀ ❀ ❀

बाल 'बिहार' सनी बिरहा जिहि देखि दवानल मंद भई है ;
कौन की गम्य समीप जो जाय प्रलै रबि तेज की ताप लई है ।

आग इती, पै इती न भई अरु झार झझार अपार छुई है ;
जान परै कि नगीच लौं आ दृग मीच कैं मीच हू लौट गई है❀ ।

❀ ❀ ❀

आजहिं प्रथम बियोग दिन चीन्ह परत नहिं बाल ;
आली आवन अवधि लग ह्वै है कौन हवाल ।

आगतपतिका

जा छिन सें स्रवन सुनी है स्याम आवन ही ,
ता छिन सें आली एक थल ना थिरति है ;
दौर दौर धावै चौक चंदन पुरावै, पावै
मोद मन प्यारी सीस सारी ज्यों गिरति है ।
कहत 'बिहारी' जौन बस्तु कर लीनैं लली ,
ताहीं कौ तलासै अंग भावती भिरति है ;
आनँद अतूली अनुकूली नेह नागर में ,
फूली आज भोरी भौंन भूली सी फिरति है ।

❀ ❀ ❀

बीते बहु बासर तपे हौ बिरहा की ताप ,
अब दिन पाय कैं बिनोद में बितैबी जू ;
फूल फूल उठत उरोज कंचुकी में अहो ,
आगम जनावत हौ हरष हितैबी जू ।
कहत 'बिहारी' जो ये सगुन तुम्हारे ही सैं
आवैंगे पिया तौ आज सेज सुख लैबी जू ;

❀ इतनी विरह की अग्नि है, परंतु मृत्यु न हुई। इसका कारण कवि को यह जान पड़ता है कि मृत्यु (मीच) विरहिणी की प्रचंड विरहाग्नि की चकाचौंध से आँख मींचकर लौट जाती है, पर हाय रे कठिन नायक।—संपादक

लेप कर चंदन सौं मिलि नंदनंदन सौं,
रात तुम्हैं बंधन सैं मोक्ष कर दैवी जू* ।

* * *

आयगौ प्यारी ! पिया परदेस तैं यों इक आली सँदेस सुनायौ;
चौंक उठी चट चंचला सी गहि हाथ सहेली कौं कंठ लगायौ ।
सादर पास बिठाय 'बिहार' कही सजनी भलौ बोल सुनायौ;
आपनें हाथन मोहिनी नें पुनि मोदक दै मुख मीठौ करायौ ।

* * *

मनभावन आवन कीनौं जबै रस भावन भामिनी भूल उठी;
चल झीन झरोखन झाँकी 'बिहार' मनोभव की हिय हूल उठी ।
मुसक्यान लखी जब प्रीतम की मुसक्यानी प्रिया छबि झूल उठी;
मनौ देख कलाधर की किरनैं कुम्हिलानी कुमोदिनी फूल उठी ।

* * *

पिय लख तिय तन पर अधिक रह्यौ अरुन रँग जाग;
जनु ऊपर आयौ झलक उर कौ अति अनुराग ।

* * *

जिते नायिका रूप प्रगट प्रचलित कबि भाखे;
नियम सहित कर तिनहिं यहाँ क्रम संयुत राखे ।
ज्येष्ठ कनिष्ठा सहित भेद धीरा षट जोवैं;
मध्या प्रौढ़ा गुनै तेई पुनि बारा होवैं ।
ते स्वकिया मुग्धा चार गुण दसहु नायिका से गुनौ;
नभ सिद्धि बेद इक रीति सें होत भेद बुधजन सुनौ ।

* * *

उत्तम मध्यम अधम तीन सैं तिनहुँ गुनीजे;
एक सहस सत चार और चालिस चित दीजे ।

---

* महाकवि श्रीबिहारीलालजी ने इसी आशय का निम्न लिखित उत्कृष्ट दोहा लिखा है—
वाम बाहु फरकत मिलैं जो पिय जीवनमूरि ।
तो तोहीं सौं भेंटिहौं राखि दाहिनी दूरि ॥ (सतसई)

दिव्या दिव्य अदिव्य दिव्य सैं पुनि गुण दीजे ;
चार सहस पुनि तीन बीस फल गुणन करीजे।
कह कबि 'बिहार' परकीय षट गर्ब सुरत रिस मित्रगन ;
यहि भाँति अनेकन मत प्रगट कहे नायिका भेद भन।

❀ ❀ ❀

तीन सतक अरु साठ भेद काहू कबि भाखे ;
तीन सतक चौरासि नाम काहू करि राखे।
बारासत बावन्न भेद काहू बतराये ;
बत्तिस सै चालीस भेद काहू दरसाये।
कह कबि 'बिहार' काहू कहे बसु बसु मुनि श्रुति भेद बर ;
नवसहस द्विसत बावन अपर भेद कहै बिस्तार कर।

❀ ❀ ❀

याहूँ सैं औरहु अधिक भेद सकत बढ़ और ;
पै यातैं नहिं फल कछू बृथा कीजियत गौर।
गनित क्रिया कर धर दए सबने भेद अनेक ;
अपनी अपनी कुसलता सबहिं दिखावत एक।
उदाहरन लच्छन दिए जिन जिन रचे प्रबंध ;
तिन तिन कौ कहिबौ उचित बाकी गोरखधंध।

स्वस्ति श्रीमन्महाराजाधिराज श्रीकाशीश्वर ग्रहनिवार पंचम विंध्येलवंशावतंस
श्रीमत्सवाई महाराजा साहब भारतधर्मेंदु सर सावंतसिहजू देव बहादुर
के० सी० आई० ई० बिजावरनरेशस्य कृपापात्र
ब्रह्मभट्टवंशोद्भव कविभूषण, कविरत्न, कविराज
पं० बिहारीलाल-बिरचिते साहित्यसागरे-
नायकाभेदवर्णनोनाम
षष्ठस्तरंगः।

साहित्य—सागर

साहित्य-सागर

(द्वितीय भाग)

लेखक

कविभूषण, कविरत्न, कविराज
पं० बिहारीलाल भट्ट
(राजकवि, बिजावर)

संपादक

साहित्याचार्य पं० लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी साहित्य-रत्न

मिलने का पता
गंगा-ग्रंथागार
लखनऊ

सजिल्द ३)] सं० १९९४ [सादी २॥)

विषय-सूची

* सप्तम तरंग *

नायक-वर्णन

धर्म - धुरंधर धीरबर, बीर बिजयि बलवान ;
सुंदर सील उदार अति, नायक ताहि बखान ।

उदाहरण

जय सुर-मुनि-मन-कंज-मंज-मकरंद-मधुप छबि ;
जय कंसासुर सकट समन तम तरल तेज रबि ।
जय गोबर्द्धनधरन करन लीला चित रंजन ;
जय मनमोहन मृदुल मूर्ति मन्मथ-मद-गंजन ।
कह कबि 'बिहार' भव बिभवप्रद भय-भंजन भूषन भुवन ;
जय सुधा करन कुल सुधाकर वसुधापति जसुधासुवन ।

* * *

तानदार बाँसुरी प्रमानदार बात जाकी ,
सानदार साहिबी न ऐसी लोक लखियाँ ;
कहत 'बिहारी' छबिदार मूर्ति मोहिनी पै ,
बिना मोल बिबस बिकानी ब्रज सखियाँ ।
जोर वारौ यौवन सुरूप चित चोर वारौ ,
मोर वारौ मुकुट मयूरवारी पखियाँ ;
जंग भरो जुलफैं उमंग भरी चाल बाँकी ,
रंग भरो हेरन अनंग भरी अँखियाँ ।

* * *

ब्रज उजियारौ नीक नंद कौ दुलारौ,
भूमि भार हर्न वारौ दीन मोद भर्न वारौ है;
कार्य कर्न वारौ स्वच्छ स्याम बर्न वारौ,
दुःख दीह दर्न वारौ सुधा सौख्य ढर्न वारौ है।
कहत 'बिहारी' धनु मीन चर्न वारौ,
मनोबृत्ति फर्न वारौ धीर धर्म धर्न वारौ है;
कंज चक्षु वारौ देवदास रक्ष वारौ,
सीस मोर पक्ष वारौ सोई मोर पक्ष वारौ है।

❀ ❀ ❀

सो नायक है त्रिविध इक पति पत्नीव्रत रीति;
उपपति जेहि पर नारि प्रिय वैसिक वेश्या प्रीति।
सो पति चार प्रकार कौ इक अनुकूल प्रमान;
दूजौ दक्षिण तृतिय सठ चौथो धृष्ट बखान।

अनुकूल-लक्षण

जो परपत्नी ना चहै सपनेहू में भूल;
कवि-कोविद कविता-रसिक ताहि कहत अनुकूल।

उदाहरण

बैठहिं संग उठै तब संग चलै तब संग रमैं तब तैसी;
बाग में संग बिहार में संग चहैं रस रंग लहैं रुचि जैसी।
छोड़त साथ नहीं छन एकहू प्रीत न देखी सुनी कहुँ ऐसी;
राधिका मोहन की ब्रज में हम रीति लखी सखि सारस कैसी *।

❀ ❀ ❀

---

* सारस की दांपत्य प्रेममयी आदर्श जोड़ी को राधा-माधव का उपमान कहने से नायक का अनुकूल होना स्पष्टता से ध्वनित होता है।—संपादक

राधा यदि राकाससी तौ चितचोर चकोर ;
स्वाँतिबूँद चंचलनयनि चातक नंदकिसोर ।

पति का उदाहरण

जगमग जोति जोर जागत जवाहिर का ,
मुकुट अमोल मन लोल लरजत है ;
दिपत दुकूल फूल मालन कलित कंठ ,
बाँसुरी पै बिमल बुलाक लटकत है ।
सोभा रति काम की 'बिहार' कौन काम की ,
सो जैसी छबि स्याम की सलोनी सरसत है ;
राधिका सुरूप संग सुखमा अनूप अंग ,
आज ब्रजराज रंग देखत बनत है ।

❀ ❀ ❀

बिना स्याम राधा नहीं बिन राधा नहिं स्याम ;
जहाँ स्याम राधा तहाँ जहँ राधा तहँ स्याम ।

दक्षिण-लक्षण

जो बहु नारिन सें करै सब मिलि प्रीति समान ;
ताको दक्षिण कहत हैं जे कबि बुद्धिनिधान ।

उदाहरण

बिलोकि कें पूरन चंद्र छटा जमुना तट आन जुरी ब्रजबाल ;
'बिहार' तहाँ हरि रास रच्यो निरतैं मिलि झाँझ बजे डफ ताल ।
तहाँ प्रति गोरी लसैं प्रति स्याम बनी सुखमा उपमा यों बिसाल ;
मनौं जग मोहिबे मैंन रचो नई नीलम औ' पुखराज की माल❀ ।

❀ ❀ ❀

❀ नीलम से यहाँ नील कांति-युक्त भगवान् श्रीकृष्ण और शुभ्र कांतिवाली देहों की ब्रजबालाओं को पुखराज की माला रास-मंडल में वर्णन करना बहुत सुंदर है ।—संपादक

चोर मिहोचनि के मिसहि नैंन मूँद भुज मेल ;
सबहि लगायो अंग हरि, सबहि खिलायो खेल ।

शठ-लक्षण तथा धृष्ट-लक्षण

मीठी बातें सठ करै करिके अधिक बिगार ;
धृष्टहि लाज न आवही देहु कितक धिक्कार ।

शठ का उदाहरण

कंज कर कोमल कपोल कर बैठी रूठ ,
जातन बिलोकौं कछू बातन बनाय लो ;
कहत 'बिहारी' हौं कियो न अपराध ऐसो ,
दीजे बृथा दोष लली लगन लगाय लो ।
एते पै प्रतीत जो न होय प्रानप्यारी, तो ये
कंचुकी निवार नयो संसय मिटाय लो ;
'उन्नत उरोज ईस सीस पै धराय हाथ ,
सुंदरी सहस्र बार सपथ कराय लो * ।

* * *

हम सीधे सीधी कहत तुम उलटी गहैं रीति ;
जान परत तुमको प्रिया प्रिये लगत बिपरीति ।

धृष्ट का उदाहरण

ज्यों बरजों तरजों कपटी कहँ त्यों हँमिकें गहै बाँह हमारी ;
बार हजार हटाव री हाथन तोऊ न छोड़त छाँह 'बिहारी' ।
केतिक नैंन दिखाव अली, अरु केतिक ताड़न कीजिय प्यारी ;
केतिक बोल कुबोल कहौ जिन लाद लई तिन लाज कहा री ।

* * *

---

* अपराधी होने पर भी विलास की बात अत्यंत धृष्टता करके निर्लज्जता-पूर्वक कह देता है। अपने अपराध पर भी खेद प्रकट नहीं करता, इससे नायक शठ स्पष्ट है ।—संपादक

आऊँ करि करि द्वार लौं सोऊँ दै पट रात ;
जग देखौं तौ सेज ढिग ठाढ़ौ हा हा खात ।

उपपति-लक्षण

पर नारी कौ रूप सुनि अभिरुचि करै महान ;
चहै प्रीति पर नारि सन उपपति ताहि बखान ।

उपपति का उदाहरण

दीप ऐसो देह दया करके दई ने दई ,
उपमा अनूप अंग ओप अधिकात है ;
ऐसौ जिय जानिकै गुमान छोड़ गोरी नेक ,
छुवन छबीली देव चित्त ललचात है ।
कहत 'बिहारी' जोर जोबन कौ जात देखौ ,
रूप चलि जात सदा नाहिं झलकात है ;
पानी चलि जात जिंदगानी चलि जात, एक
जानी जग नाम की निसानी रहि जात है ।

❀ ❀ ❀

इश्क़ में न आया यहाँ आया क्या कमाया, वक़्त
नाहक़ गँवाया किया जाया ज़िंदगानी का ;
कहत 'बिहारी' दिन मौज के मज़े से लूटो ,
समझो सबाब को हुबाब एक पानी का ।
हासिल हरेक को न होती हुस्न दौलत ये ,
रहता जहाँ में नाम नेकी की निशानी का ;
आशिक़ मिज़ाज़ के मिज़ाज को भी जानो ज़रा ,
ज़ालिम बनो ना मिला आलम जवानी का ।

❀ ❀ ❀

बह्र❀ में लोग कहा करते दिल को पर मेरे यक़ीन न आया ;
नक़्शे कुलूब हुआ न ज़रा अहचंद में भी हरचंद बताया ।
ऐसे हज़ारों मुक़ाम 'बिहार' तलाश किये कुछ भी न समाया ;
आबे बक़ा का मज़ा महरू हम तेरे लबों में लबालब पाया ।

❀ ❀ ❀

नव नीरज की कलिका कमनीय उरोजन आपुन ओप दई ;
तन दीपति पै दुति दामिनि की लखिकैं छबि भी है निसार भई ।
रसरंग 'बिहार' अनंग भरो झलकै अँग अंग बहार नई ;
ललना जिन अक न ऐसी लई तिनकी जग वैसहि बैस गई ।

❀ ❀ ❀

हमहूँ सुचि साँचे सनेही रँगे तुमहू निज नैम निभैबो करे ;
दिन रात औ' साँझ सबेरैं 'बिहार' कभूँ† न कभूँ मिल जैबो करे ।
अपने उर अंतर की कछु बात बतैबो करे न बतैबो करे ;
पर चोंप भरी चटकीली चितौंन से हेर हमैं हँस दैबो करे ।

❀ ❀ ❀

लोचन देख लजैं मृग - सावक भौंहन पै भई मंद कमान है ;
दाड़िम-दंत उरोज उतंग अनंग कौं रंग रचो मुख पान है ।
लंक लचै कुच-भार 'बिहार' सजी सुखमा उपमा नहिं आन है ;
अंक में होय जो ऐसो तिया फिर रंकहू होय तौ राजसमान है ।

❀ ❀ ❀

नित आवत नेह के नाते यहाँ अब तौ इतनी चित चेतीं हुहैं ;
हम केवल प्रेम के प्यासे 'बिहार' निहार कें सो सुख सेतीं हुहैं ।
इक थोड़े हमारे मनोरथ पै चित देती हुहैं या न देतीं हुहैं ;
पर बोली हमारी सुनें से हमैं झँझरीन हो झाँक तौ लेतीं हुहैं‡ ।

❀ बह्र = बहर ।

† कभूं = कबहूँ, कभी ।

‡ हुहैं = हूँ है, हुइँ हैं, होयँगी, होवेंगी ।

बैसिक-लक्षण

वेश्या से रति रुचि रहै वेश्या ही से प्रीति ;
ताको बैसिक कहत हैं लखि ग्रंथन की रीति।

बैसिक का उदाहरण

कैसी लपेट चपेट दुहूँन की कैसी कलाकल कोक की ठानै ;
सी कर भौंह सकोरन भाल की ना कहि कैमे बनाये बहानै।
कैसो 'बिहार' कहैं मुख से अरु को बिसवास कहै परमानै ;
बारबधू के मिले को मजा वह बारबधू से मिलो सोइ जानै।

त्रिविध भेद नायक

त्रिबिध भेद नायक बहुरि कबिजन करत बखान ;
प्रोषित, मानो, चतुर हू यथायोग्य अनुमान।
प्रोषित रहत बिदेस में, मानी ठानै मान ;
चतुराई तिय मिलन में करै, चतुर सो जान।

प्रोषित का उदाहरण

मधुबन कुंज तीर तरनि-तनूजा ताक,
ब्रज बन भूल उठी लतिका हरी-हरी ;
कहत 'बिहारी' तहाँ लाड़िली लखानी लाल,
बात हू बखानी रस-बिरह भरी-भरी।
बिलग भये को कछू बिलख* न मानियौ जू,
कुंजन छबीली रहीं मिलती छरी छरी ;
वह छबि पावन की जावक लगावन की,
आवत रहत राधे सुरत घरी घरी।

❀ ❀ ❀

* बिलख = अन्यथा।

कामी जन बिरही बियोगिन के चित्त बीच
चेतन अचेतन कौ चेत न रहत है।

❀ ❀ ❀

जब तुम पंथ पौन करिहौ गगन गौन,
पथिक नितंबिनी निहोरैं दाब देरी सी;
बार मुख टार टार देखैं तुम्हैं बार बार,
जानै मनभावन की आवन को बेरी सी।
कहत 'बिहारी' जा तुम्हारी नभमंडल में
चारो ओर देख कैं घटा की छटा बेरी सी;
हूहै को कठोर जो प्रिया की सुधि खोवै, पर
होवै नहीं वाह पराधीनता जु मेरी सी।

❀ ❀ ❀

करकें अँगराग अनेकन अंग अनंग के रंग दिखावती हैं;
परयंक पै पाँव 'बिहार' धरैं छरकैं कर छाती छिपावती हैं।
लिपटैं चिपटैं कसकैं मसकैं सिसकैं भर स्वाद बढ़ावती हैं;
बिरहा तन पीर बढ़ै सपरैं जब वे खबरैं इत आवती हैं।

❀ ❀ ❀

हँसकैं अंक भरैं लईं जे कसकैं तन बेस;
ते कसकैं कसकैं अबै बसकैं इत परदेस।

मानी का उदाहरण

नेंक तुम्हारे बुलाये ही से नहिं आई जो बाल कहा भयो दैया;
मान इते पै रहे तुम ठान ये कौन तुम्हारो है बान कन्हैया।
रैयत भूल जो जाति 'बिहार' तो राजई होत क्षमा को करैया;
राजई रूठ जो जाय कहूँ तो प्रजा की पुकार को को है सुनैया❀।

❀ ❀ ❀

❀ इस छंद में स्वाभाविकता का निराला सौंदर्य है, जिसमें अनुभूति की झलक पाई जाती है।—संपादक

तव रँग रस बस बाल किय अवचल मिलत न लाल ;
मान करत नाहीं करत यह कहा* करत गुपाल ।

चतुर के भेद

चतुर भेद दो त्रिध कहे बचनचतुर इक नाम ;
क्रियाचतुर दूजो गिनौ भाषत कबि गुनग्राम ।
बचनक्रिया चतुरई से साधे काज सप्रीति ;
नामहि से लक्षण लखौ यथा बिदग्धारीति ।

वचनचतुर का उदाहरण

बाँसुरी आज हिरानी हमारी हमारे बिना वह कोऊ न पैहै ;
साँझ लौं ढूँढ़न जैबी सखा बन बाग 'बिहार' निहार को लैहै ।
एक तौ साँकरी खोर घनी अरु एक कदंब की कुंज उतै है ;
देखबी ठौर दुहूँ चलकैं जो यहाँ न मिलै तौ वहाँ मिलि जैहै† ।

* * *

जहाँ सखा हम तुम मिले तुमें न सुध सी आय ;
वहीं साँकरी खोर में आज चरैबी गाय ।

क्रियाचतुर का उदाहरण

साज शृँगार बिभूषन भूषित रंग तरंग सुगंध लगाय कैं ;
बैठी 'बिहार' सखीन में अंगना अंगन अंग उमंग बढ़ाय कैं ।
तौलौं अचानक में तहाँ कान्ह कमोदनी की कलिका दई आय कैं‡ ;
सूधकैं बात कछू न कही दृग मूँदकैं राधे रही मुसकाय कैं ।

* * *

---

* कहा का क्या के अर्थ में प्रयोग हुआ है, इसका 'हा' यद्यपि दीर्घ (गुरु) हो गया है, पर इसे ह्रस्व (लघु) पढ़ना चाहिए ।

† इसमें नायक का तात्पर्य सहेट के 'साँकरी खोर' में अपनी मनचाही नायिका को ले जाने का है ।

‡ कुमोदिनी की कलिका देने से रात्रि मे मिलने की सूचना ध्वनित होती है ।—संपादक

जमुना तट जल मीन गह बिकल बताई लाल ;
भर मंजुल अंजुल सलिल सींच हँसी ब्रजबाल* ।

चतुर्दर्शन

आलंबन हू में कहे दर्शन चार प्रकार ;
श्रवण चित्र अरु स्वप्न कह पुनि प्रत्यक्ष बिचार ।

श्रवण दर्शन का उदाहरण

हिय को हुलास सिंधु हिय में हिलोरैं लेत ,
नैंनन की कोरन कछूक झलकत है ;
कहत 'बिहारी' छन होत सी बिबस जात ,
गात छन कंप कांति अंग उलहत है ।
सरस सहेली कीर्ति कृष्ण की सुनावै ज्यों ज्यों ,
त्यों त्यों मनमोहिनी मनोज में पगत है ;
मान दै अलीन बैठी ध्यान दै प्रबीन प्यारी ,
पान दै कपोल कथा कान दै सुनत है ।

❀ ❀ ❀

गोविंद के गुन रूप स्वभाव की आली कथा बरनी निसि सारी ;
चालन लागी तबै गृह ग्वालिनी प्रात प्रकास बिलोक 'बिहारी' ।
राधिका ब्याकुल बाँह गही पट तान रही कही जाव न प्यारी ;
नीकी लगी छन और सुनाइयो हाहा सखी तुम्हें सौंह हमारी ।

❀ ❀ ❀

आपुहिं मोहन गुन सुनै आपु लहै सुख मूल ;
आपुहिं मोहन ह्वै रही आपुहिं आपुहिं भूल ।

---

* नायक का विकल मीन दिखलाने से नायिका के विरह में अत्यंत व्याकुलता दिखलाने का तात्पर्य है और नायिका का जल की अंजुलि ढालने से यह तात्पर्य है कि वह नायक की विरह-व्याकुलता को मिटाने के हेतु मिलनोत्सुक है ।— संपादक

चित्र दर्शन का उदाहरण

जाकी गुन गाथा सुन सुंदर सखी के मुख
मोह माधुरा में मैंन दलन दली गई।
कहत 'बिहारी' ता सुजान साँवरे की सबी
लखन लड़ैती कुंजगृह की गली गई;
छल सों छबीली छबि छहर छली की देखि
छरक छटा में छक छैल सों छली गई;
आई हुती चातुरी सों चित्त माँह लैबे चित्र
चित्र तौ लयौ न आप चित्त दै चली गई।

नवोढ़ा का स्वप्न

सोई सेज सुंदरी सखीन संग मंदिर मैं,
पूरन प्रकासै प्रभा बदन मयंक सें;
कहत 'बिहारी' तहाँ स्याम सपने में खड़े,
निकट निहारे नारि चितवन बंक सें।
सिमिटि ससंक रही प्रीतम सु बाँहँ गही,
भुजन भरी सो भज्यो चाही पिय-अंक सें;
औचक अकेली आप आली न उलंघ तहाँ
नींद उचटैं हू परी उचट प्रयंक सें।

प्रौढ़ा का स्वप्न

जाके रूप-रंग में रँग्यौ री मन आठौं जाम,
जाके प्रेम माहिं मति पूरन पगा दई;
कहत 'बिहारी' सोई स्याम सपनें में आय,
दरस दिये री दई जुगत लगा दई।

डारि गल बाँहीं गहि पानि परियंक बैठे,
अंग अंग अगनि अनंग की जगा दई ;
जौ लौं उन बात की लगाई घात थोड़ी, तौ लौं
नींद या निगोड़ी दईमारी ने दगा दई ।

चित्र-दर्शन

चोप भरी चितवै चक सी चित में चुभी चारुता चंदन भाल की ;
बैठै चलै खिन होय खरी बिसरी बुधि वा बदनीबिधु बाल की ।
भोजन भौन की कौन 'बिहार' नहीं सुधि ता छिन से' मनि-माल की ;
जा छिन से' मन लाड़िली के बसि बीर गई तसबीर गुपाल की ।

❀ ❀ ❀

चित्र-मिलन ही से' भटू भई बिरह बेहाल ;
मित्र-मिलन जब होयगौ, तब धौं कौन हवाल ।

स्वप्न-दर्शन

आज सुपनैं में सेज स्यामलो मिलो री मोहिं,
लीनी अंक आन सबै कान कुल गई री ;
मोहन मुदित मोसों मन की करन लाग्यौ,
मदन मनोरथ पै हौं हू तुल गई री ।
कहत 'बिहारी' जौन हौनी सो न पाई हौन,
जानिये न कौन कैसी मति डुल गई री ;
अंग खुल गये, रति रंग खुल गये, नीबी-
बंध खुल गये, तौलौं आँख खुल गई री ।

❀ ❀ ❀

प्रानपिया सपने मिलि मोहिं, कियौ चख-चुंबन देर लई ना ;
फेर चही उन खोलिय नीबी, पै लाज सों खोलन मैंने दई ना ।

ऐसी खुलाखुली आँख खुली पछतानो 'बिहार' कि ठीक ठई ना ;
फेर रही दृग मूँदै परी पर वा रस-बूँद सों भेंट भई ना।

❀ ❀ ❀

सपने पिय सँग रति रच्यौ भई बिबस रसरंग ;
जागे हू परयंक पर परी सम्हारति अंग।

प्रत्यक्ष दर्शन

सोहै सीस मोरपच्छ मुकट मरोरदार,
कुंडल की डोलन कपोलन किनारे कौं ;
केसर तिलक बंक भृकुटी चपल नैंन,
पीत पट छैरै छोर पगन पछारे कौं।
कहत 'बिहारी' अंग उपमा अनूप ऐन,
चैंन सौं मिलौ री हेली हृदय हमारे कौं ;
टूट आई लोक-लाज लूट आई मौज आज,
लेख आई धन्य भाग देख आई प्यारे कौं।

❀ ❀ ❀

प्रात गई जमुना जल कों, मग में मिल्यौ भावतौ जीवन जी कौ ;
छैंकत गौ बछरान के बृंदन फैंकत गौ इक फूल जुही कौ।
फेर 'बिहार' बिलोकि कैं मो तन लेत गयौ मन नागर नीकौ ;
देख तौ आजहिं साँचौ भयौ सपनौं अपनौं सजनी रजनी कौ।

❀ ❀ ❀

निरखि लियौ सखि साँवरौ नवल निकुंजन ठौर ;
अब सजनी रहो लोक में कह बिलोकिबे और।

॥ इति आलंबन विभाव ॥

अथ उद्दीपन विभाव

सखा सखी ऋतु आदि दै उद्दीपन बहु रूप ;
बरनौं यदि बिस्तार-युत बढ़िहै ग्रंथ-सुरूप।

तातैं सूक्षम ही कहत दूतीं सखीं सुहेर ;
नायक की होवैं तथा यथा नायिका केर।

सखी-लक्षण

सम सुभाव, सम बुद्धि, वय, जिहि कछु छिपौ न होय ;
सर्व समय साथहिं रहै, सखी कहावत सोय।
चार कर्म के भेद सें ताके चार प्रकास ;
उपालंभ, मंडन, बहुरि शिक्षा अरु परिहास।

क्रमशः लक्षण

मंडन साजै अंग मैं सरुचि शृँगार सजोत ;
देवै कछू उराहनो उपालंभ तब होत।
शिक्षा सिच्छा देत है, हँसी करे परिहास ;
उदाहरन इनके कहत समझहु बुद्धि-बिलास।

मंडन का उदाहरण

सुंदरी के सुंदर शरीर में शृँगार स्वच्छ
साज्यौ सखो सुघर सम्हारौ घोर घरकैं ;
कहत 'विहारी' फेर अंगराग कीबे हेत
लाई एक स्वर्ण - सींक कज्जल सों भरकैं।
ताकौ गोल गोरी के कपोल पै बनायौ तिल,
ताकी छबि देखि आई उपमा उभरकैं ;
मानकें अनंद पूर्ण पीकें सुधा-बिंदु, मानौ
बैठौ गोद चंद में फनिंद गुड़ी करकैं।

❀ ❀ ❀

नकमोती प्रिया कैं सजायौ सखी तिहि मानिक की छबि छाय रही ;
पुनि दूजौ लयौ वहि वोही भयौ यों अनेकन लै पहिराय रही।

पर लाली 'बिहार' बिलोक भ्रमैं चित चिंतित हो चकराय रही ;
यह देखि तमासौ तिया तबहीं मुख घूँघट ही मुसक्याय रही ।

❀ ❀ ❀

तन कंचन भूषन सजत मिलत देह दुति आन ;
दरस करत दीखत नहीं परस परत पहिचान ।

उपालंभ का उदाहरण

प्रथम समागम की जानौं का रँगीले रीति,
फूल की छरी-सी खरी अंक में समोई है ;
कहत 'बिहारी' भूली भोरी भामिनी के भले
भोगता भये हो कछू जोगता न जोई है ।
सुरत नवोढ़न की ऐसी होत लाल कहूँ ,
कियो का हवाल लाल चाल मत गोई है ;
किलक किलक रही बोलत बिचारी तौन ,
हिलक हिलक आज रात भर रोई है ।

❀ ❀ ❀

पूरन प्रेम पराग प्रसून के ग्राहक हौ रसिया न नये हौ ;
बात 'बिहार' बिचारत हौ नहीं कौन हौ कौन की कुंज छये हौ ।
कैसी मलिंद भई मति रावरी भूल से का वे सुभाव गये हौ ;
छोड़िकें सोंनजुही कौ जहूर बमूर के नूर पै चूर भये हौ ।

❀ ❀ ❀

मोहन ऐसी निठुरता तुम्हैं न सोभा देत ;
हेर हियौ हर लेत हौ फेर नहीं सुधि लेत ।

शिक्षा का उदाहरण

गैल जो चलावै तौन चालिये चतुर प्यारी ,
रस जो चखावै चित दैकैं चाखियत है ;

बैठौ कहैं बैठौ कहैं जावो तबै जावो फेर,
पाय रुख आवो यों सुभाव साखियत* है।
कहत 'बिहारी' सीख सीख लो सिखाऊँ सखी,
रुचिर रसीली भट्ट भाषा भाषियत है;
जाही भाँति रीझें सो रिझाये रहै ताही भाँति,
याही भाँति पिय कों प्रसन्न राखियत है।

* * *

तू है गौनहाई बोर जैये ना कलिंदी तीर,
कुंजन करीलन में बृथा बिंध जावैगी;
कुंजन करीलन तें कढ़िकै गई तौ फेर,
पनघट प्यारी नीर भरन न पावैगी।
कहत 'बिहारी' नीर भर हू चलै तौ तहाँ
घेरा घनस्याम के सैं कठिन दिखावैगी;
घेरन तें छूटी तौ छबीली वह बाँकुरे की
हेरन तिरीछी सें तमारे खात आवैगी।

* * *

चाहतीं हौं हम प्राति करैं पुनि प्रीतम देख छिपावतीं अंगै;
नेह कौ रंग 'बिहार' बिचित्र बढ़ै दिन दून चढ़ै चित चंगै।
रंग रँगौ तौ न लाज करौ अरु लाज करौ तौ रँगौ जिन रंगै;
दोउ सटैंगे नहीं सजनी हर हाँकिबौ बीन बजायबौ संगै।

* * *

तुम्हैं जोबन जोर मरोर करै भयें शौक शृंगार शृंगारिबे के;
कछु जानि परै दृग प्यासे तुम्हारे रहैं नव रूप निहारिबे के।
इन्हैं रोकौ 'बिहार' न जोरौ कहूँ न उपाय रचौ तन गारिबे के;
फिर आगे न एती बिबूच सखो दिन येई हैं साँचे सम्हारिबे के।

* * *

---

* साखियत है = सीखियत है।

आवन एक बसंत की दूजैं बजावन स्याम की बीन सुरीली ;
जोबन जोर 'बिहार' भलौ यह औसर धारियौ धीर छबीला ।
जो मन तेज तुरंग तुम्हार तनैं तरपै कर कैफ रंगीली ;
तौ इतनी बिनती है ललो कि लगाम न डार दियौ कहुँ ढाली ।

❀ ❀ ❀

केती नवीन कुलीन 'बिहार' भई रसलीन सही सुन लैये ;
तान सुनावत ही रस में बस में कर लेत कहाँ लौ बतैये ।
तोहि सखी समुझाय कहों कढ़ि भीतर भौन से द्वार न जैये ;
वा ब्रज कान की बाँसुरी में निज कान जो चाहै तौ कान न दैये ।

❀ ❀ ❀

खोर खोर खेलौ लली मेलौ खोरन खोर ;
एक साँकरी खोर कौ मोह न दीजौ खोर ।

परिहास का उदाहरण

अखियाँन उनींदी सी आँगन बीच खड़ी सखियान के मध्य लली ;
तहँ हास 'बिहार' बिनोद के हेत कही कछु रात की बात अली ।
हँस फेर कही जू कहौ न कहौ हम हू रहीं देखत भाँति भली ;
मुख मोर लजाय कें लाड़िली ने हँस मारी उरोज सरोज-कली ।

❀ ❀ ❀

साँझ शृंगार शृंगारि कें सुंदरी बैठो बिलासिनि भौंन बिसाल में ;
आई 'बिहार' तहाँ इक नायन पाँय गहे कछु हाँस के ख्याल में ।
जावक देत में जावक से कहि लागियौ आज जू प्रीतम भाल में ;
यों सुन चंद्रमुखी हँसके रस भीजी चपोटी दई इक गाल में ।

❀ ❀ ❀

जस जस पिय गस गस लगै तस तस तिय तन गोय ;
बस, बस, लख आली कह्यौ हँस हँस भाजे दोय ।

॥ इति सखी ॥

अथ दूती-लक्षण

जो कर जानैं दूतपन दूती ताकौ नाम ;
बिरहनिवेदन, संघटन, द्वै बिधि ताके काम।

विरहनिवेदन-लक्षण

बिरह घटै जिम बाल कौ, सो तिम करै उपाय ;
बिरहनिवेदन दूतिका ताहि कहत कबिराय।

विरहनिवेदन दूती का उदाहरण

रावरे बियोग में बिसूरै बैठी बागन में,
चित्र सी चितैबै कहू हालती न चालती ;
कहत 'बिहारी' तापै मदन महीपति की
तीखीतर तीर की तिरीछी अनी सालती।
बेग चल बालम बचाव जू बिचारी बाल,
जारें देत जामिनी बिलोकि कें बिहालती ;
चापैं देत चंद्रमा चपेटे देत चंचरीक,
मीड़ैं देत मोंगरा मरोरें देत मालती*।

* * *

अवधि बितीतें घरी एकहू न बीती बीर,
बिरह बढ़ावैं बृथा गात कुम्हिलावेंगे ;
कहत 'बिहारी' रोक रोक इन आँसुन कों,
नैंन मन रंजन कौ अंजन बहावेंगे।

---

* दूती नायक से कह रही है कि चंद्रमा, चंचरीक, मोंगरा, मालती आदि उसे बिना आपके अत्यंत दुख दे रहे हैं, इसलिये चलकर उसे इस दुख से शीघ्र बचाओ।—संपादक

स्वाँसन समोट सकुचात जांट हारन के,
सेज पै न लोट अंगराग छुट जावेंगे;
मानियें बहाली क्यों उताली मन खाली करै,
लाली राख आली बनमाली आज आवेंगे।

❀ ❀ ❀

जैस ही गली में छीन लोनौ मन छैल छली,
तैस ही लली की हरौ मैंनजू की मीजना;
कहत 'बिहारी' वाके बिरह बचायबे कों,
हौं तौ थक हारो चली कोई तजवीज ना।
सींच हारी सलिल उलीच हारी खासे खस,
तोप हारो तुहिन चपाई कोई चीज ना;
लेप हारी चंदन, बिलेप हारी कंज पात,
डोल हारी अंचल डुलाय हारी बीजना।

❀ ❀ ❀

भुज कंकन कोंचा निकट खस आयौ लख साँच;
करत मनौं नाड़ी निरख जिय निर्जिय ❀ की जाँच।

संघटन दूती का उदाहरण

कंचन कैसी लता लचदार फलो फल भोगहु दर्श दिये कौ;
ह्वहै 'बिहार' तुम्हैं सुख सुंदर या बिधि अंगना अंग छिये कौ।
जो तिय चाहत सो पिय लाइहौं चाख लो स्वाद सनेह किये कौ;
प्रेम जनाय लो मोद मनाय लो लेव बनाय लो हार हिये कौ।

❀ ❀ ❀

कान्ह कों केलि के भौंन बिठाय कें दूती लिवावन लाड़िली को गई;
बातन भोरी भुलाय कही दुलही हमरी दुलरी इत खो गई।

❀ निर्जिय = निर्जीव।

आय 'बिहार' हिराइये नेक जू मोहिनी मंदिर भीतर जो गई ;
आपु झपाट कपाट दै द्वार के दंपति मेल कै चंपत हो गई ।

❀ ❀ ❀

दूती पठयौ लली ढिग मालिन लाल बनाय ;
सुमन दियौ पुनि मन दियौ हँस हिय लिया लगाय ।
दूती हैं बहु जाति की बिरचें जतन सुदेस ;
तिय पिय सों संजोग हो मुख्य यही उद्देस ।

स्वयंदूतिका-लक्षण

करै दूतिपन जो तिया स्वयं आपने हेत ;
ताहि स्वयंदूती कहत जे कबि बुद्धिनिकेत ।

स्वयंदूतिका का उदाहरण

बिरचन हित ब्यापार पीय परदेस सिधायौ ;
हौं पाई सुधि नाहिं नाह नहिं पत्र पठायौ ।
सासु, सुता सुनि प्रसव गेह जामात्र सिधारी ;
नवल बैस डर लगहि मोहिं लखि निसि अँधियारी ।
कह कबि 'बिहार' प्रिय पथिक अब साँझ भई मति मग गहौ ;
यह महिल निकुंज नजीक में नीक रहै तहँ रम रहौ ।

❀ ❀ ❀

घुमड़ घटा घनघोर घरिन घननात घनेरी ;
झिल्लीगन झननात सघन सननात अँधेरी ।
पति इत थोरिक दूर जात नित रात बितावत ;
हौं अबला नव बैस जान जामिनि डरपावत ।
कह कबि 'बिहार' समयौ समझ अब न नींद रस पाग रे ;
यह ग्राम चोर चौचँद चहूँ जाग मुसाफिर जाग रे ।

❀ ❀ ❀

छोर होत साँझ कौ अतंक यहि ओर होत ,
थोर होत गौंन सो बटोहा लख लैयौ जू ;
कहत 'बिहारी' शोर होत चहूँ चातिक कौ ,
मदन मरोर होत ता पै चित दैयौ जू ।
चोर होत बाज* ते धरोर होत छीन लेत ,
खोर होत मोहि यातें पास पौढ़ रैयौ जू ;
जोर होत घन कौ प्रजोर होत पावस कौ ,
घोर होत रात तासें भोर होत जैयौ जू ।

❀ ❀ ❀

को हौ जू कहाँ के हौ कहाँ से आए कहाँ जात,
कहा नाम कहा काम काके कहौ पास लौं ;
घाम के तपाने नेंक बैठौ या ठिकाने,
अबै जहाँ तुम्हैं जानें सो न जाने कितौ फासलौं ।
कहत 'बिहारी' मानों पथिक हमारी बात,
ऐसौ सुख पैहौ मेरे नवल निवास लौं ;
छिन जो बितैहौ तौ न कैहौ चलिबे की लला,
रात एक रैहौ तौ न जैहौ खट† मास लौं ।

❀ ❀ ❀

को हौ थकि रहे जकि रहे तकि रहे कहा,
भवन हमारौ यहाँ ठैरौ‡ ठौर ठडी है ;
कहत 'बिहारी' भई साँझ पौर मॉझ परौ,
चैन लो घनेरी ये अँधेरी रात मंडी है ।
राह चलिबे की अब राह$ तौ हमारो नहीं,
बाट बटपारिन कों बिकट बितंडी है ;

---

* बाज = बाजे-बाजे, कोई । † खट = छ । ‡ ठैरो = ठहरो । $ राह = राय ।—संपादक

एक बन ऐल, दूजें आड़े परे सैल,
तीजें चोरन को फैल, चौथें गैल पगडंडी है।

उद्दीपनांतर्गत चंद्रोदय-वर्णन

प्रियजन! यह प्रकृति-प्रभा-प्रवर्धक परम रम्य स्थल का अत्यंत अद्वितीय देदीप्यमान दृश्य देखकर तथा आदि रस का अवलंबन सुरूप समस्त अवलोकन कर कौन ऐसा आत्मदर्शी विवेकबुद्धिशाली प्रौढ़ पुरुष होगा कि जिसका हृदय-सिंधु शुद्ध शृंगार-रस-सम्मिलित संकल्पो की तरल तरंगों से तरंगित होकर निर्द्वंद्वदेशी द्वंद्व आनंद की आकांक्षा न करेगा*।

प्रकृति-प्रभा ने ऐसे विचित्र चित्र-कला-युक्त चातुर्य और चारुता-चर्चित चित्र खींचे हैं कि जो एक बार ही चितवन-मात्र से चंचल चित्त को चुटकियो में चुराकर चुपचाप चेरा बना लेते हैं। एक ओर परम पावन पूर्ण पराग-पूरित पुष्प-वाटिका प्रफुल्लित प्रसूनों की प्रगाढ़ परिमल से पवनप्रसंगात् प्रसन्नता का प्रवर्षण कर रही है, दूसरी ओर विशाल वृक्षो से विभूषित गगनस्पर्शी पर्वतो की मोहिनी माला मन को महान् मोदित कर रही है। एक ओर सलिल-संकलित स्वच्छ सरोवर के सोए हुए अरविंद-वृंद मलिंद को मकरंद की लालसा लगा रहे हैं। एक ओर लहलही लताओ से ललित हुए नवीन निकेत मीन-केतु के संकेत देत से मालूम पड़ रहे हैं। इसके अतिरिक्त वहीं पर उच्च दृष्टि से अमल आकाश की ओर अवलोकन कीजिए, तो षोड़श कला से सुशोभित सुधा-सिंचन करनेवाले संपूर्ण नक्षत्रो के छत्रपति चंद्रदेव चले आ रहे हैं। यद्यपि आप चतुर्दिक् चारुता-चर्चित चतुर चटकीली चमक-भरी चंद्रिका का चुंबन कर रहे हैं, तथापि वह उत्कंठिता अवरोधिनी विरहबोधिनी प्रियप्रमोदिनी कुमोदिनी को मोदिनी करने जा रहे हैं। क्यो न हो, आप जब उद्दीपन के मुकुटमणि महाराज हैं। फिर स्वयं का कहना ही क्या है? सत्य है, विरही जनो के अर्थ वह उद्दंड कुसुम-कोदंडधारी प्रचंड प्रभावशाली अनंग के तंग तरकस को खाली करनेवाली मूर्ति है, ता इन्हीं की है। विश्व वशी करके बाणों की वृष्टि करानेवाले समष्टि और व्यष्टि सृष्टि मे हैं, तो यही एक चंद्रदेव हैं। इन रोहिणी-रमण रजनीश्वर का प्रेम-पूर्वक तथा भाव-भूषणो से भूषित कर प्रेमाभिवंदन-सहित आगे पद्यावली मे प्रस्तवन करते हैं—

---

* जिस समय शृंगार-वर्णन-विभूषित सुखमा के धाम श्रीरामचंद्रजी को विज्ञानवेत्ता विदेहजी ने विलोकन किया, उस समय उनकी जो अवस्था हुई, उसको गोस्वामी तुलसीदासजी स्पष्ट बतला रहे हैं। यथा—

इनहि बिलोकत अति अनुरागा;
बरबस ब्रह्म-सुखहि मन त्यागा।

भाव यह कि निरंतर निर्द्वंद्वदेशी महाराज जनकजी द्वंद्वानंद की अवस्था को प्राप्त हुए और ब्रज-कुंजन की बहार निहारकर यही हाल ऊधवजी का हुआ।—लेखक

चंद्रोदय

प्रगट प्रभाव परयौ पूर्ण प्रति पन्निन पै,
सधो चुप चारों ओर अवनि अवाज की ;
पीयुष प्रबाह लै प्रकासित प्रसून - पुंज,
प्रगटी कलान कांति कुमुद - समाज की।
कहत 'बिहारी' भासमान आसमान ओप,
पूरन प्रसन्न प्राची प्रतिभा प्रकाज की ;
चपल कुरंग चढ़ी स्यंदन सवारी साज,
आवै संक छोड़ कैं मयंक महराज की।

❀ ❀ ❀

कीधौं पुष्पअस्त्र❀ कौ नछत्रन में छत्र तनौं,
कीधौं नभ नीरद कौ नीरज बिभास मैं ;
कीधौं हर हास्य सार सिमिट सुहायौ स्वच्छ,
कीधौं उडुधेनु मध्य बृषभ बिलास मैं।
कहत 'बिहारी' कीधौं मत्ततम सिंधुर कौं,
मार सुख सोहै सिंह सहित हुलास मैं ;
कीधौं देवि देवन कौ दर्पन दिपत दिव्य,
कीधौं पूर्णचंद बिब बिलसै अकास मैं।

❀ ❀ ❀

कबिता वही है जामें बिमल बिभासै ब्यंग,
सरिता वही है जामें धार गहिराई की ;
कहत 'बिहारी' सर सरस वही है, जामें
सुखमा सरोज बृंद नवल निकाई की।

❀ पुष्पअस्त्र = काम, पुष्पधन्वा।

बाग तौ वही है जामें सुमन सुगंध फूले,
राग तौ वही है जामें तान तरुनाई की ;
कामिनी वही है जाको प्रीति निज प्रीतम सों,
जामिनी वही है जामें जोति है जुन्हाई की।

❀ ❀ ❀

षोड़स कलान कांति किरन कलाधर लै,
दसहू दिसान दिव्य दीप्ति दरसावै है ;
पूरन प्रभासें पेख पेख यों प्रकास प्राची,
बाढ़त समुद्र हिये हर्ष हुलसावै है।
कहत 'बिहारी' उच्च तरल तरंगन सों,
तटन फुलाय फेन ऊपर उड़ावै है ;
देख चढ़ो स्यंदन पै बंदन समेत सिंधु,
मानों निज नंदन कों चंदन चढ़ावै है।

❀ ❀ ❀

ग्रीषम निसा में नव सुमन सजो है सेज,
सीतल पवन रही हीतल हितै हितै ;
कंचुकी कसन स्वच्छ संदली बसन बेस,
दीपत दमक अंग देखत जितै जितै।
कहत 'बिहारी' धन्य पुण्य वे प्रबीन, जौन
बिबिध बिलास बीच बेला यों बितै बितै ;
चाव भरे चोप से सुचंद चंद्रिका में चारु
चंदआननी के चख चूमत चितै चितै।

❀ ❀ ❀

चारों दिसि चिर चंद्रिका बिच बिधुबिंब पुनीत ;
मनहुँ मही भाजन भरयौ करयौ काम नवनीत।

❀ ❀ ❀

सूर्योदय

भगवान सूर्य अब उदय हुए, तम का नहि अंश दिखाता है ;
जिस तरह ज्ञान के आने पर अज्ञान बिदा हो जाता है ।
रवि आते रजनी चली गई क्या ही सत की मजबूती है ;
जैसे कोई नारि पतिव्रता परपति की छाँह न छूती है ।
ये चद्रदेव भी रात्रि समय क्या सुधा-धार बरसाते थे ;
इस गगनदेश में गर्व-भरे अपना गौरव झलकाते थे ।
अब सूर्यदेव के आने से वह चमक-दमक सब दूर हुई ;
इकदम ऐसा कुछ रोब पड़ा, वह कांति कला काफूर हुई ।
जैसे विद्वान बड़ा कोई मस्तान सभा में आता है ;
उस दम मामूली पंडित का चेहरा फीका पड़ जाता है ।
पक्षीगण अपने-अपने थल वृक्षों-वृक्षों पर बसे हुए ;
हिल-मिल आपुस में मोह करें माया-ममता में फसे हुए ।
देखो अब ये सब उड़-उड़के उन वृक्षों को तज देते हैं ;
जिस तरह जीव इस दुनिया से अपनी-अपनी मग लेते हैं ।
अब वे विहंग क्या रंग-भरे चौतरफा शोर मचाते हैं ;
मानों महराज दिवाकर के स्वागत के गीत सुनाते हैं ।
वह तपे कमल रवि दर्शन कर पहुँचाते ठंडक सीने को ;
ज्यों पथिक ग्रीष्म के प्यासे को मिल जावे अमृत पीने को ।
भगवान भानु के भास हुए हट गई उलूकों की पाँती ;
जिस तरह आत्म के दर्शन से इस दिल की दुई निकल जाती ।
वो, ये कमोदिनी जो निशि में कमलन से रहती थीं ऐंठीं ;
वो आज विरह में व्याकुल हो प्रोषितपतिका-सी बन बैठीं ।

चकवा को चकही मिलने पर क्या मौज मज़े की है आती ;
जिस तरह किमी इक लोभी की खोई संपति फिर मिल जाती ।
चरणायुध भी हो सावधान सुंदर-सुंदर सुर भरते हैं ;
जो नियम प्रकृति ने बाँध दिया, उसका प्रतिपालन करते हैं ।
ये प्रात उठें, पुरुषार्थ करें, कुल-पालन इनकी कोटी है ;
इनमें कई गुण हैं चोटी के इसलिये सीस पर चोटी है ।
इनने अपना गुल-शोर मचा मानों यह कह समझाया है ;
सोने का वक़्त नहीं लोगो, जगने का अवसर आया है ।
है इनका बोल बड़ा मीठा सबके मतलब में आता है ;
इक रतिप्रिया रमणीयों के रस में कुछ विष बरसाता है ।
सो सोकर लोग जागते हैं और चहल-पहल मच जाती है ;
जैसे पश्चात् प्रलय के फिर नई सृष्टि नज़र में आती है ।
कोइ लोग हरा का भजन करें अरु कोइ परभाती गाते हैं ;
कोइ पाठ पढ़ें, कोइ जाप करें, कोइ स्वारथ में लग जाते हैं ।
कोइ प्रेम करें, कोई नेंम करें, कोइ राजनीति समझाते हैं ;
कोइ सच्चे धर्मवीर बनकर परहित में जान लड़ाते हैं ।
क्या समय प्रात का सुंदर ये कवि करें प्रशंसा क्या इसकी ;
ये वही समय सतयुग का है, वेदों में महिमा है जिसकी ।

❀ ❀ ❀

नाम हरि लैन लागे अर्घ द्विज दैन लागे,
चहुँ दिस चैंन लागे चिरीगन चुहुचान ;
तारागन गौन लागे चंद्र मंद हौन लागे,
सीतल सुपौन लागे देव लागे दिखरान ।

कहत 'बिहारी' संग चकवा चकोही लागे,
बाटन बटोही लागे चालन सुमुद मान ;
बूंद लागे खगन अनंद अरबिंद लागे,
बंद लागे खुलन मलिंद लागे मड़रान ।

❀ ❀ ❀

उर अनुराग रच्यौ राग मन प्राची दिसि,
जागत जलूस आछौ आनँद अतूला कौ ;
बूंद बूंद बिहँग बिनोद बैठ बृच्छन पै,
गायौ गुन आनन अनूप अनुकूला कौ ।
कहत 'बिहारी' कोक कोकन असोक छायौ,
ओज भयौ सुमन सरोज मृदुमूला कौ ;
सुरन सुरेस कियौ राजअभिषेक आज,
गगनप्रदेस में दिनेस दिनहूला कौ ।

❀ ❀ ❀

चंद चाँदिनी की चारु चारुता चुरानी कहूँ,
आली उड़बूंद देख मंद मुख करे री ;
कहत 'बिहारी' बह्यौ सीतल समीर बीर,
सीत माल मोतिन सुभाव निज करे री ।
भावते धनी के रंग लूट रजनी के नीके,
जानै कौन भौन भावती के भुज भरे री ;
ताल लख परे ये तमाल लख परे नभ,
लाल लख परे पै न लाल लख परे री ।

❀ ❀ ❀

मिले कोक सन कोकनद मिले सुमन अलि सोह ;
मिले लतन तरुवर तरुन मिले न मोहन मोह ।

❀ ❀ ❀

नायक दर्शन दूतिका सखि उद्दीपन अंग ;
भई सिंधु साहित्य की सप्तम पूर्ण तरंग।

स्वस्ति श्रीमन्महाराजाधिराज श्रीकाशीश्वर ग्रहनिवार पंचम विंध्येलवंशावतंस श्रीमत्सवाई महाराजा साहब भारतधर्मेंदु सर सावंतसिंहजू देव बहादुर के० सी० आई० ई० बिजावरनरेशस्य कृपापात्र ब्रह्मभट्ट-वंशोद्भव कविभूषण कविराज पं० बिहारीलालविरचिते साहित्य - सागरे नायकदर्शनदूतिकादिप्रकरण वर्णनो नाम सप्तमस्तरंगः ।

* अष्टम तरंग *

अथ उद्दीपनविभावांतर्गत षट्ऋतुवर्णनम्

ज्यों संयोग शृंगार में रितु उद्दीपन होत ;
त्यों यह बिषम बियोग बिच बिरह बढ़ावत जोत।

वसंत

दीरघ दिखान लागे दिवस दिवाकर सें,
गुरुता छपा की छपाकर नें छटाई है ;
कीनें पत्र पतित नवीनें तरु लीनें धार,
पुहुप बिकास लै सुगंध सरसाई है।
कहत 'बिहारी' हरे आम नव मौरन पै,
दंपति दुरेफन की गुंजन सुहाई है ;
भूमि नभ भूधर तड़ाग बन बागन में,
आली देख चौगृद बसंत रितु छाई है।

❀ ❀ ❀

पाय पंचबान की प्रभा न अनुसासन कों,
त्रिबिध समीर लै दिसान दरसानो है ;
बिटप लतान के बितान तान चारों ओर,
सोर सहकार कोकिलान कर ठानो है।
कहत 'बिहारी' देख किंसुक प्रसून पुंज,
नीरज हिये कौ सखि धीरज हिरानो है ;

कंत बिना करै को सहाय आय मेरी बीर,
बैरी बिरहीन पै बसंत बरयानौ है।

❀ ❀ ❀

मोरपत्न सुंदर सुहाये सिरमौर मोर,
पीरे पट सरसों पराग सरसाये हैं;
स्यामल सरीर ओप ऊपर गुलाल भास,
सुमन पलास के बिकास छबि छाये हैं।
कहत 'बिहारी' कोटि काम कामरूप संग,
बाँसुरी बिमल कल कोकिल कढ़ाये हैं;
चंपलता राधिका भुजान भर भेंटिबे को
आज ब्रजराज रितुराज बन आये हैं।

❀ ❀ ❀

मंडप लतान मध्य बागन बनाये दृश्य,
परदा प्रसून रंग रंगन लखावै है;
कहत 'बिहारी' कली कामिनी सकेल केलि,
मारुत में झेल खेल मान मचलावै है।
सब्द स्वर ढार तंत्रि भवन भरावैं भौंर,
सूत्रधार कोकिला अलाप छबि छावै है;
काम के कहे से ब्रजस्याम के रिझायबे कों,
नाटकी बसंत नयौ नाटक दिखावै है।

❀ ❀ ❀

ललित लतान के जटान जूट छोर छोर,
कुंद कलिकान ताक तिलक लगायौ है;
कहत 'बिहारी' कियौ लेपन पराग भस्म,
कुंभक समीर तीन रूप दरसायौ है।

कीर कोकलादि शिष्य बर्ग संग बेद पढ़ैं,
निपट निसंक संख भौंरन बजायौ है ;
पारब्रह्म सगुन सुरूप स्याम दर्स हेत
देखिए बसंत आज संत बन आयौ है ।

❀ ❀ ❀

गहब गुलाबी गुलबदन गुलाब आब,
कुंद कलिकान नीकौ नैन सुख साजो है ;
सौनजुही साँटन दुपारिया दुसूती सूती,
छपकन छींट टेसू टसर सुराजो है ।
कहत 'बिहारी' गज कौंसन नपाई करें,
गाहक भँवर भीर भाव मन माजो है ;
जात किते कंत या बसंत कौं बिलोकौ आज,
बागन बजार में बजाज बन ब्राजो है ।

❀ ❀ ❀

उन्नत अनार उठे उपमा उरोज ओछे,
तापै नवपत्र केर कंचुकी सुहाई है ;
प्रफुल्ल प्रसून पंचरंग पिसवाज पैर,
कहत 'बिहारी' पौन नृत्य गति लाई है ।
चारों ओर चंचरीक सुरन सरंगी साजै,
चटकै गुलाब चाँटी तबल लगाई है ;
राधे ब्रजराज लौं समोद मुजरा के हेत,
तरुनी तवायफ बसंत रितु आई है ।

❀ ❀ ❀

बिन बनमाली बीर बासर बसंत केरी
कौन बिधि बीतें बात बिष लै बहत है ;

दसहू दिसान तें दुरेफन के दौरा देख,
दिन दिन दून देह दारुन दहत है।
कहत 'बिहारी' बैठ कुंज कचनार डारी,
कोयलिया कारी कहूँ धीर न धरत है;
गात बिरहीन के अचूक निज कूकन तैं
बिरह भभूकन तैं फूकन चहत है।

❀ ❀ ❀

टेसू लहरान लागे धुजा फहरान लागे,
बेलन बितान लागे पवन प्रबाह के;
कहत 'बिहारी' किए कुंजन कदंब कीर,
कोकिला सुभट सोर सहित उछाह के।
कंजन के कोसन तें सुमन सु पोसन तें,
भौंर लागे उड़न अनेकन उमाह के;
मानों मानिनीन के गुमान गढ़ टूटन को
गोला लगे छूटन बसंत बादसाह के।

❀ ❀ ❀

लाल लाड़िली के बाग बिलसै बसंत सदा,
चारु चंचरीक रहे चहूँ दिसि गुंज गुंज;
बिटपन बृंद झूम झूम भूमि चूमि रहे,
लूमि रहीं लता लरजोली लौनी लुंज लुंज।
कहत 'बिहारी' त्यौं बिहंग रंग भूल्यौ करैं,
फूल्यौ करैं परम प्रसूनन के पुंज पुंज;
डोलौ करैं मोरनी चकोरनी बिलोलौ करैं,
बोलौं करैं कोकिला किलोलैं करैं कुंज कुंज।

❀ ❀ ❀

पंचम से निकस निषाद लग लेवै खींच,
तंत्रिन की तार तार होत आज हेरी ये ;
कहत 'बिहारी' बानी बरसै सुधा सी सत्य
स्वरन मनोज मंत्र घालत घनेरी ये ।
बान जैसी बेधति ब्यथा सी देत अंतर लौं,
कूक कूक कोइल न पेख पीर मेरी ये ;
सीठी लगै योगिनि बियोगिनि बसीठी लगै,
मीठी लगै स्रवन सुरीली तान तेरी ये ।

❀ ❀ ❀

आये रितुराज पै न आये ब्रजराज आली ,
प्रीति छोड़ लीनी रीति नीति निरमोही की ;
कोकिल की कूकैं ये न चूकैं हिये हूकैं हाय ,
करनी कुटिल कीर अलिदल द्रोही की ।
कहत 'बिहारी' कछू समझ न सूझै मोहिं,
चंद्र की मसाल है कि ज्वाल काम कोही* की ;
किंसुक की डार है कि दीखत दमार है कि
सीतल बयार है कि धार है सिरोही की ।

❀ ❀ ❀

सरित सरोवर के सलिल खजाने भरे ,
खाली कर रहे रोज रोज सिरताजा हौ ;
कहत 'बिहारी' नित्य कामजू के संगी रहौ ,
करत सिकार बिरहीन कौ समाजा हौ ।
पल्लव पुरानन कौं निदर निकार रहे ,
नये नये टेसुन कौ रहे सज साजा हौ ;

---

* कोही = क्रोधी ।

एहो रितुराज भाव भूल से गये का आज,
तुम हू भये का नई रोसनी के राजा हौ।

❀ ❀ ❀

जा दिन से राज राज्यसासन तुम्हारौ भयौ,
आई घड़ी चैन ऐन अमन अमान की;
बाग बन बिटप फले हैं फबे फूलन तैं,
फूल रहे मानों फूल देख लतिकान की।
कहत 'बिहारी' लै सुगंधन बहत बात❀,
साजी रितुराज साज सुखमा निधान की;
साध कैं सपूती मौंज देत हौ अकूती, तुम्हैं
कहैं या बिभूती से बिभूती भगवान की।

❀ ❀ ❀

नीम जौन करुवी† कमाल सो रही है कर,
प्रगट प्रसूनन के तंबू से तना दये;
कहत 'बिहारी' किरवारे ये करौंदी देखौ,
दैकैं खुसबोय नाम दूर से जना दये।
बन के बिटप जे बहार जाने बाग की का,
तेऊ तुम सुमन सुगंधन सना दये;
धन्य रितुराज भरे पूरन प्रताप आप,
ऐसे ऐसे जंगली सुमंगली बना दये।

❀ ❀ ❀

लागत बसंत के बहार बिलसंत घनी,
रूप भे बिसाल त्यों रसाल सुखदान के;
कहत 'बिहारी' मंजु मौंर झौंर झौरन तें,
ऐन अनियारे उठे भेदी आसमान के।

❀ बात = वायु। † करुवी = कड़वी, कटु।

ताकी मंजरीन के अनोखे अग्रभाग पैने,
दूर से दिखात मनों जोतिबे जहान के ;
बाँके बिष बारि भरे खरे खर सान धरे,
बाहिर तुनीर* कढ़े बान पंचबान के।

❀ ❀ ❀

आवत बीर बसंत के बासर कंत बिना बल कौन बचैहै ;
रूप रसालन मोरन मोरन झौरन भौंरन की ध्वनि छैहै।
रंग 'बिहार' प्रसूनन के लख मैंन महीप महाँ दिल दैहै ;
कुंजन कुंजन कूकहिगी वह कोकल से सखि को कल पैहै।

❀ ❀ ❀

गुंजत कुंजन भृंग नए इन्हें मूँद के कंजन कोस धरौ रे ;
कोकिल पिंजर पैंड़ तहाँ कर पंखन छिद्र प्रमोद भरौ रे।
छाए 'बिहार' बिदेस पिया बिरही कौ कलेस हरौ न डरौ रे ;
डार पलासन लाग रही या दमार की कोऊ सम्हार करौ रे।

होली

रुचि कंचन थार अबीर 'बिहार' उड़ावत लाल गुलालन झोरी ;
इत संग सखी लियैं राधे खड़ी उत स्यामलौ छैल करै बरजोरी।
उनने उनकी प्रिय पाग रँगी उनने उनकी रँग चूनरि बोरी ;
मन-मंदिर में मनमोहिनी से मिलिके मनमोहन खेलत होरी।

❀ ❀ ❀

पंचमी फाग 'बिहार' खिलावन लाड़िला भीतर लाल बुलाए ;
आन जुरीं बिजुरीं सीं सबै घनस्याम कौं घेर सँदेस सुनाए।
छीन सबै पट लीन लली नख से सिखलौं सखि रूप बनाए ;
राधिका सैनन की रुचि सों मृगनैंनिन लाल कौं नाच नचाए।

❀ ❀ ❀

* तुनीर = तरकस।

परती फुही रंग फुहारन की पिचकारिन की चल सेंट* रहीं ;
कोइ गोरी 'बिहार' सुझोरी लिए कोइ गोबिंद की गह फेंट रहीं ।
सिगरी पुनि साँवरे की कटि सें लिपटी भर अंक समेट रहीं ;
मनों कंचन की लचकारी लता झुक झूम तमाल सों भेंट रहीं ।

❈ ❈ ❈

भल औसर फाग कौ पाय पिया लख जोबन जोर जुलूस रहौ ;
मुसक्याय रिझाय खिजाय भिंजाय 'बिहार' लली रुख रूस रहौ।
पुनि प्यारौ कपोलन कौ कर सें गहिकें भरि मौज मसूस रहौ ;
मनों अमृत पीवन हेत फनिंद अनंद सों चंदहिं चूस रहौ ।

❈ ❈ ❈

हुकुम लगायौ नंदलाल ग्वाल बालन कौं ,
केसरादि कुंकुमान किस्तिन भरानैं है ;
कहत 'बिहारी' त्यौं गुलाल लाय झोरिन में ,
अंबर अबीर धुंध मंडल मचानैं है ।
ललिता बिसाखन की सहनैं सबल मार ,
जानों जिन हास पास लाड़िली के जानैं है ;
बाँधौ रस बानें होव संग सखा स्यानैं चलौ
आज बरसानैं पै बसंत बरसानैं है ।

❈ ❈ ❈

भागन सें पायौ भलौ फागुन महीना आज ,
मारग मचावौ कीच रंग कुसमानें की ;
कहत 'बिहारी' ताक झाँक झट झोरी झेल ,
लेव फाग खेल खूब ख्याल मनमानें की ।
छाँड़ियौ न छोरी होय स्याम चाहै गोरी, छैंक
लैनें बरजोरी भलाँ बात बर बानें की ;

---

* सेंट = धार ।

होरी आज हो री यहै बृंदाबन खोरी, कोउ
कोरी कढ़ि पावै ना किसोरी बरसाने की।

❀ ❀ ❀

माँग काढ़ि केसन बिसाल भाल मैं हो बैंदी,
नैनन बिसेख रेख कज्जल लगाई है;
नासा नथ कान कर्णफूल कंठ मेल माल,
घाँघरौ घुमाउ चारु चूनरी उढ़ाई है।
कहत 'बिहारी' पायजेब पग पैंजनी त्यों
गोपिन गहाय गति नूतन नचाई है;
नीके दिन दाँव पाय दुलहिनि राधिका नें
आज ब्रजदूलह को दुलहो बनाई है।

❀ ❀ ❀

बयस की थोरी गोरी कुँवरि किसोरी भोरी,
खेलै मिलि होरी पिय प्रेम फंद परगी● ;
कहत 'बिहारी' बलबीर नें अबीर मूठि
लैकर चलाई ओप उपमा उभरगी।
ताके चमकीले दमकीले कन कांति भरे,
आन परे प्यारी पै निकाई यों निखरगी;
जान कें अपूर निज नूर रुचिरूर मानों
चंचला हो चूर चंपबेलि पै बिखरगी।

❀ ❀ ❀

सखिन समाज लिये इत उत धाय धाय
खेलैं खुल फाग राग आनँद अतूलौ है;
उपमा अलोक अवलोक छबि छाक छाक
मोहित भयौ है पिया प्रेमभाव भूलौ है।

● परगी = पड़ गई।

कहत 'बिहारी' पिचकारिन जनावै जोर,
    दोऊ ओर आनँद अनूप अनुकूल है ;
भामिनी के भाल पै गुलाल रंग देखौ यह
    केसर की क्यारी में दुपारिया सौ फूलौ है ।

❀ ❀ ❀

इततें किसोरी गोरी होरी है कहत धाई,
    झोरी भर लाल पै गुलाल बरसाई है ;
उततें छबीलौ रुख देख मुख मोहिनी के
    रंग कुसमानों भर पिचक चलाई है ।
कहत 'बिहारी' ताके लाल लाल बुंदन की
    बाल के बदन पै छबीली छटा छाई है ;
फागुन महीना पाय रंग-बस रोहिनी ने
    मानों चारु चंद्रमा को चूनरी उढ़ाई है ।

❀ ❀ ❀

उड़त गुलाल लाल लाल चहुँ ओर दीखै,
    झोरिन अबीर धुंध धुंधिर मचावै है ;
कहत 'बिहारी' कोउ नाचै कोउ गावै गीत,
    कोऊ देत तारी कोउ कुंकुम चलावै है ।
प्यारी कों बिलोक पिया पिचक सुरंग मार
    उरज उतंगन पै रंग बरसावै है ;
संकर के सीस राग नीर ढार ढार मैंन
    बदला बदी कौ मनों नेकी कै चुकावै है❀ ।

❀ ❀ ❀

❀ मानो कामदेव अपने भस्म करनेवाले, अपकारकर्ता शत्रु शिवजी के अपकार का बदला उनके शीस पर जल ढार-ढारकर उपकार द्वारा दे रहा है, जिसमें शंकर द्वारा समुद्र-मंथन के समय खाए हुए कालकूट-विष की दाह शांत हो ।—संपादक

तीर जमुना के केलि कुंजन कन्हाई संग
भर अनुराग फाग मोहिनी मचाई है;
कहत 'बिहारी' छबि छाके दोउ थाके तहाँ,
चंदन की चौकी सजे सुखमा सुहाई है।
छैल की छपाई गाल गोरी के गुलाल लाल,
दूर से दिखाई देत नीको छटा छाई है;
रूप की सनद तापै राग कौ सुरंग देकैं,
नृपति अनंग मानों मुहुर लगाई है।

❀ ❀ ❀

भोर ही से भीजी अंग रंग रावटी में राधे,
बेसुध परी है ताकी पीर ना हरत हौ;
कीनी झकझोरी मली रोरी औ' मरोरी बाँहँ,
ऐसो कौन होरी कान्ह काहू ना डरत हौ।
कहत 'बिहारी' भली रावरी गुपाल चाल,
पाय ब्रजबाल अंक धायकैं धरत हौ;
नैंनन की ओट लाल मारत गुलाल और
सैंनन की चोट घाल घायल करत हौ।

❀ ❀ ❀

कंचन लता सी तामें चौंक चपला सी खासो,
छरी छबिरासो जाको रति हू रजा करै;
भौंहन मरोर मुख मोर त्यों सकोर नीबी,
नीरहि निचोर नई ओप उपजा करै।
कहत 'बिहारी' रंग होरी में हिलोर लै लै,
सैंनन चलाय नाय नैंनन लजा करै;
पिचकन जोर ज्यों ज्यों घालत छबीलो, त्यों त्यों
सिसकन सोर प्यारी रति कौ मजा करै।

ग्रीष्म

जगतीतल ज्वाल भभूकन तें जल सूखन सों सरितान लगे ;
बन बाग 'बिहार' प्रसूनन पत्र प्रबाह्न पौन पुरान लगे।
नभ भोर से भानु प्रमान बढ़े बरसान बिसेस कृसान लगे ;
अजबी अली धूप धुकै गरमी गजबी दिन ग्रीषम आन लगे।

❀ ❀ ❀

बिलसैं दोउ नीके निकुंजन में लतिका डुल पौन प्रभा करतीं ;
खस खासन खूब खुली खुसबोय 'बिहार' बिनोद हियैं भरतीं।
सरिता स्रवैं हौज गुलाबन से ऋतु ग्रीषम की गरमी हरतीं ;
चहुँ ओर अनार की डारन डार फुहारन की फुहियाँ परतीं।

❀ ❀ ❀

स्याम तमालन डालन की छबि स्याम घटान छटान भरैं हैं ;
सीतल पौन प्रबाह तनैं तरुनी तड़िता सी दुरैं निकरैं हैं।
बाग 'बिहार' बहार बड़ी जलधार फुहारन ढार ढरैं हैं ;
चालौ पिया उन कुंजन में जहँ ग्रीषम पावस रूप धरैं हैं।

❀ ❀ ❀

जेई सूर सिंहन भुजान बल बिक्रम से
मत्त गज कुंभन कों छिन्न कर डारो है ;
तेई तिन सुंडी सुंड सिंचित उदर छाया
तामें राख काया घाम घरिक निबारो है।
कहत 'बिहारी' त्यों मयूर पिच्छ सोवै सर्प,
सर्प फन बर्हि बैर सबन बिसारो है ;
कहल के मारैं फिरैं सहल सुभाव करें,
प्रबल प्रभाव एसौ ग्रीषम तिहारो है।

❀ ❀ ❀

तरुन प्रतप्त तीव्र अंबर उदैसे होत,
बसुधा सुखात नदी तीर ताल तट की ;
कहत 'बिहारी' पौंन पूरित प्रबाह चंड,
ताकी ताप जोवै जती छाया सोत बट की।
ग्रीषम निवारन के केतिक उपाय कीजे,
लीजे चल ओट जलजंत्रन झपट की ;
अंदर अगार दीजे संदर* बहार तौउ
मंदिर मझार झार झपटै लपट की।

* * *

बैठे रंग रावटीन रूपक रचाए भले,
ग्रीषम निवारन के साधन सम्हारैं हैं ;
तर तहखाने खुले खूब खुसबोय खासे,
खरे खस खाने जहाँ जोर जल ढारैं हैं।
कहत 'बिहारी' पर ग्रीषम गजब ऐंन,
सीतल महल हू में कहल पसारैं हैं ;
जोनन हो चालतीं मसीनन की पौंन, तऊ
सोनन हो आवतां पसीनन की धारैं हैं।

* * *

चूमें कन स्वेद लगैं लूयें तन तेज तीखीं,
अगन प्रजोर पंचतत्त्वन प्रकासो है ;
कहत 'बिहारी' मारतंड की मयूखन तें,
चंड दुति पौंन तप्त छूटत छरा सो है।
दावा से भरे से दिन दीरघ दिखात एते,
रैन एती छोटी बात कात† प्रात भासो है ;

---

* संदर = संदल।
† कात = कहत (बुंदेलखंडी प्रयोग)।

जौ लौं रतिप्रीता रति राँचिबौ बिचारै, तौ लौं
अंबर तें भान आन ऊबत अवा सो है।

❀ ❀ ❀

खूब खस पाटिन की बाटिन सिंचावौ नीर,
पूरन पटीर भलैं जोति जहँ जागै है;
सेजन सतर तर अतर अपार लाय,
बरफ बिलास पास पुंज प्रभा पागै है।
कहत 'बिहारी' करौ केतिक प्रबाह पौंन,
छिरकै गुलाब काँ लौं ताप तन भागै है;
ग्रीषम की ज्वाला के न जात हैं कसाला, जौ लौं
हीतल हिमाला सी नबाला अंग लागै है।

❀ ❀ ❀

सीतल सुगंधन सें सदन सिंचाए, जहाँ
सीतल फुहार बारिधार धरिबौ करैं;
सीतल सरस गंधसार कौ प्रसार सार,
सीतल परम पंख पौंन ढरिबौ करैं।
कहत 'बिहारी' धन्य वे जन सुभाग्यसील,
सेजन सरोज-मुखीं अंक भरिबौ करैं;
ऊँचे उपचारन सें सीतल प्रचारन सें,
ग्रीषम बहार में 'बिहार' करिबौ करैं।

❀ ❀ ❀

चंदन प्रबीनैं सजे संदली बसन भीनैं,
ऊँचे उर माला सोहै सीतल धरम को;
कहत 'बिहारी' सजी सुमन सरोज सेज,
दंपति दिपत प्रभा प्रतिभा परम की।

बचन बिनोद जहाँ बात मुख मोहिनी की,
कौन हू हँसो की कढ़ै कौन हू सरम की;
केलि मुख चुंबन में उजर नहीं है जहाँ
गुजर नहीं है तहाँ ग्रीषम गरम की।

❀ ❀ ❀

देख लेव पवन प्रबाह कर पंखन कौ,
जाँच देखौ कहा जलजंत्रन चलाने में;
कहत 'बिहारी' तोय तुहिंन हू तौल देखौ,
साध देखौ केतौ सुख सुमन सजाने में।
सीतलता जैसी अंग अंगना लगाए मिलै,
ठंडक मिलै न तैसी कौनहू ठिकाने में;
चोवा चारु लाने में न खस के बिताने में,
न अतर सिंचाने में न तर तहखाने में।

❀ ❀ ❀

ग्रीषम तपन तपौ केसरो कृसित भयौ,
बिक्रमबिहीन हीन दीन सौ दिखावै है;
कहत 'बिहारी' परयौ तापित तृषा के लत्त
खोलै अर्ध अत्त अर्ध पलक झपावैं है।
बदन प्रसार बार बार लेत स्वाँसन कौ,
रसना लपात औ' हफात सिथिलावै है;
बिपिन बितान में प्रमान हाथ हाथ के पै,
हाथिन कौं हेरै तौऊ हाथ ना उठावै है।

❀ ❀ ❀

बिकल बिहंग औ' कुरंग फिरैं ब्याकुल से,
बानर दुरे त्यों खोह कुंजन बिसाल में;

कहत 'बिहारी' फिरैं छोड़ गिरि कंदर कों
महिषी महिष प्यासे बिपिन बिहाल में।
सूकर थके से मुख थूथर प्रजोर लाय
भूमि सर सूखी करैं खनन खियाल में;
मेरे जान ग्रीषम प्रचंड की तपन पाय
ठंडक की चाय चहैं पैठन पताल में।

❀ ❀ ❀

धवल उतंग धाम धवल सजी त्यों सेज,
चाँदनो चमक नेह नौतम निबेरे कौ;
कहत 'बिहारी' प्रेम रंगन प्रसंगन सें
श्रमित भईं सी भोग आनँद घनेरे कौ।
सोवती अटारिन पै चंद्रमुखी चाँदन पै,
प्रगट प्रकास रह्यो आनन उजेरे कौ;
ताही कों बिलोकि भयौ लाज सें बिकल अति,
याही तें दिखात मंद चंद्रमा सबेरे कौ।

❀ ❀ ❀

चंदन सी चाँदनी रही है छूट छज्जन पै,
संदल गुलाब की तरंगन को लाइए;
कहत 'बिहारी' पौन पंखन प्रबाह पाय,
सीतल मधुर रस मौंज मन भाइए।
सखिन समेत ताल सुरन प्रबीन बीन,
सारो निसि गान गीत रंग बरसाइए;
ग्रीषम समय राज सुखमा समाज साज,
आव पिया आज रात ऐस ही बिताइए।

❀ ❀ ❀

सरन सरन सरितान दीह दादुर धुनि धारहिं ;
तरन तरन तरुबरन बिहँगबर बोल उचारहिं ।
छिन छिन चातिक पीय पीय रट राचहि रारी ;
बन बन नाचहिं मोर मुदित बिचरंत 'बिहारी' ।
घन घड़घड़ात घिर घिर घुमड़ तड़िता तड़ तड़ तिर लगी ;
झंझा झकोर झोकन झलन झर झर झर झर झिर लगी।

* * *

पवन प्रचंड पूरे पूरित दिगंतन लौं,
बिपिन मयूर नाद नृत्य अनुसारे री ;
चाह चाह चोप सें चबाई चिर चातिक जे ,
पातिक न पेखें पीय पीय धुनि धारे री।
कहत 'बिहारी' दया दादुर दई है छोड़ ,
बोलैं मिल जोड़ करैं होड़ मन हारे री ;
ऐसे साज सारे धरैं रूप बिकरारे, आए
धूम घन कारे पै न आए प्रानप्यारे री।

* * *

घोर दिस पूरि पूरि जलद सिपाही सूर,
घेरा घेर डारो हौंस हरषि हवेली पै ;
दादुर पुकार चोपदार तरवार बिज्जु ,
दीनी सैन्य भार मोर धार सिख सेली पै ।
कहत 'बिहारी' बिन प्यारे प्रान कैसे बचैं ,
पावस प्रबल आयौ जंग हित हेली पै ;
काम संग मोर लायौ झंझा झकझोर लायौ
एतौ दल जोर लायौ अबला अकेली पै ।

* * *

दौर दौर आवत मदांध मतवारे मेघ,
लेत भूमि चूमि ताहि क्यों कर लसैहों मैं ;
झिल्ली सुर छाजैं कोकिलान की अवाजैं सुन,
घन की गराजैं डग देत डरपैहों मैं।
कहत 'बिहारी' जात बालम बिदेस बीर,
कैसें बिरहा के बैरो बासर बितैहों मैं ;
मैंन सर सें हौं कैसें सुखन समैंहौं सखी,
स्याम बिन मौंन भौंन कौंन बिधि रैहों मैं।

❋ ❋ ❋

बोलौ दोह दादुर दमंकौ दौर दामिनि त्यौं,
कूकौ कीर कोकिला न चूकौ सोर सरसौ ;
आनन अलापियौ कलापी कुंज कानन में,
बानन बितान पंचबान तान परसौ।
कहत 'बिहारी' जात बालम बिदेस तातें,
साज साज पावस समाज राज दरसौ ;
घूम घूम घेर घेर करकें घमंड घन,
आज मही खंड पै अखंड धार बरसौ।

❋ ❋ ❋

बैठ वहाँ जाय जहाँ सोभित सँयोगी पुंज,
पेखें तोहि प्यार सों प्रमोद प्रेम पेजे के ;
मेरौ मनभावन बिदेसी बन्यौ सावन में,
कृस भौ बदन बीर मदन मजेजे के।
कहत 'बिहारी' नेंक धीरज न धारै धूत,
सुर न सम्हारै भरे ताव तर तेजे के ;

एरे ए पपीहा बोल मत रे यहाँ हो, तेरे
पतरे बचन करैं कतरे करेजे के।

❀ ❀ ❀

बिन घनस्याम घन स्याम-घनी घोरें सुन,
मोरें बैर जोरें भईं मोरें दुखदाइनी ;
जो कहूँ बिबेकी धरै नेकी मौन होके केको,
टेकी तौ पपीहा सेको❀ करै मनभाइनी।
कहत 'बिहारी' बीर भागन पपीहा नेंक,
पीय कहिबे में जौ लौं साधै चुप चाइनी ;
तौ लौं ये कुयोगिनी कुजातिनी कुरूपकारी,
कूकत कु जानें काँतें† कोइल कसाइनी।

❀ ❀ ❀

अवधि बदे पै जो मिले न घनस्याम तोसों,
तौ कहा भई री चूक नेंक ना सम्हारी है ;
पास हरि आए बिनै बचन सुनाए, भाँति
भाँति समुझाए पै न टेक टक टारी है।
कहत 'बिहारी' अब बावरी बिचार भलाँ,
आई जोई घुमड़ घनेरी घटा कारी है ;
चादर चपेट सोई सादर पिया सें मिली,
बादर रही ना देख बादर‡ तिहारो है।

❀ ❀ ❀

तरु तरु पत्रन+ में पत्रहिं§ बिलोकै पूर्ण,
लतन अहेषु चक्र खेंचै ग्रह गोत सी ;
दादुर पपीहा गूँज गनित गनावै गाय,
बरही लखावै घर वारहु सुसोत सी।

❀ सेकी = शेख़ी, घमंड। † काँतें = कहाँ से। ‡ बादर = वह साख। + पत्रन = पत्तों। § पत्रहिं = पंचांग।

कहत 'बिहारी' मारकेस की निकारै दसा,
जोपै मिलैं स्याम तौ मिलै री नेक ओत सी ;
ना तौ* अब आफत दिखात कछू होतसी सु-
आयौ बन पावस जनैया बड़ौ जोतसी।

❁ ❁ ❁

ये हैं† से चतुर आली नवल निकुंज जौन,
सोनजुही तामें गुरु रूप दरसावै है ;
ताही कुंज पत्र हरे देत बोध बुध कैसो,
बेलाहू बिमल सुक्र सान सरसावै है।
कहत 'बिहारी' त्यौं चलाकैं पुरवाई पौन,
सबहिं चलाय चर रासि झलकावै है ;
प्यारे प्रान प्रीतम बिदेसी बेग आवन कौ,
जान परै प्यारी जोग‡ पावस बतावै है।

❁ ❁ ❁

बिरह-बिथा सों बीधी बिथित बियोगिनी पै,
डगन डगौंहा साज सिरजत जात है ;
कहत 'बिहारी' एकैं धूँधर धरा लौं धाय
भूधर भले से रूरे ररजत जात हैं।
ऐसे निरदई मेघ मैंने तौ न देखे दई,
तैंने बीर देखे देख दरजत जात हैं ;
चरजत जात तेज तरजत जात, इन्हैं
बरजत जात तौउ गरजत जात हैं।

❁ ❁ ❁

* ना तौ = नहीं तो। † यदि चतुर्थ स्थान में चर राशि के बृहस्पति, बुध, शुक्र हों, तो परदेश में बहुत दूर गया हुआ भी प्रवासी उसी समय घर आवेगा, इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिए। ‡ जोग = योग, ज्योतिष द्वारा बतलाया हुआ मुहूर्त्त।

बाल बिन बालम बियोगिनी बिलोकि मोहिं
पेरत बृथा तू पूर्ण पावस प्रनामिनी ;
कहत 'बिहारी' जो न मानैं तौ न मान रोकी ,
कर जो अड़ी है ये खड़ी है कुस कामिनी ।
धूम लै रे धुरवा धुरारे धूर दई तोहि ,
गर्ज लै रे मेघ तुही तर्ज लै री यामिनी ;
रूँद ले पपोहा खूँद लै रे मोर दईमारे ,
दूँद लै रे दादुर दमंक लै री दामिनी ।

❀ ❀ ❀

पावस ने आपनी समाज सों बुलाय कही ,
करै कौन काम को बियोगिन सतैबैं कौं ;
चौंकिबे कौं चंचला औ दूँदिबे कौं दादुर ने
घेरिबे कौं घनन पपीहा पीव कैबे कौं ।
कही पीर दैबे कौं 'बिहारी' पौन बात जबै ,
कही है मयूर ने अनोखौ काम लैबे कौं ;
बोलीं तन फूकैं हम जाकैं कुंज ढूंकैं और
ऐसी उतै कूकैं कै न चूकैं प्रान लैबे कौं ।

❀ ❀ ❀

हरित भई है भूमि झरित सिलान नीर,
सरित प्रबाह सिंधु संगम सरन कौ ;
कहत 'बिहारी' बानी बिबिध बिहंगन की
बोधित अनंग रंग पावस भरन कौ ।
मानिनी बिबस यह औसर अधीर ह्वैकैं
नाह सापराध कौ न दोष गनै तन कौ ;

भूलिकैं सयान छोड़ मान काम बाम बिंधीं
सुधा-रस पान करैं आन अधरन कौ।

❀ ❀ ❀

अगर कपूर केसरादि चारु चंदन सें
अंगन सुगंधन सें रंग सरसाती हैं;
सुमन कलीन अवलीन केस - पास सजें
गुरुन समीप बैठी गुरुता दिखाती हैं।
कहत 'बिहारी' साँझ होत चहुँ ओरैं जबै
घनन की घोरैं घनी स्रवन सुनाती हैं;
सासुन प्रदेस त्याग त्याग कें सुबेषिनी वे
केलि-गृह-देस में निवेस कर जाती हैं।

❀ ❀ ❀

सजल सरोष जोमदार से जलद जाके
मत्त से मतंग स्याम रंग रहे ठनकैं;
तिन पै तहाँ ही तहाँ तीखे तड़पीले तेज
तड़ित पताके छबि छाके सूर सनकैं।
कहत 'बिहारी' घोर सब्द चहुँ राखे पूर
मदन चराचर में तानें तीर हनकैं;
बेगि चढ़ि मंदिर बिलोकौ रूप पावस कौ
आयौ पिया सुंदर पुरंदर सौ बनकैं।

❀ ❀ ❀

देखि परैं दूर सें दतारे धुवाँधारे कहूँ,
कहूँ नील नीलम निकाई नई नापैं लेत;
कहत 'बिहारी' कहूँ धारैं नील कंज कांति,
कहूँ कृष्ण कज्जल की छीन छबि छापैं लेत।

कहूँ गर्जे गर्जे गर्भिनीन कुच कोर कैसी
स्यामता सम्हारें बिरहीन चित चापैं लेत ;
उमड़ उमंड कें घमंड कर घोरें आज
धाराधरमंडल खमंडल कों ढापैं लेत ।

❀ ❀ ❀

आबी आसमानी आबनूसी अर्गवानो ऐंन
अमल अँगूरो औ' उनाबी ओजदार है ;
केसरी कुसूमो किसमिसी काही काँकरेजी
कासनो करंजबीन कोकई कतार है ।
कहत 'बिहारी' करपूरी त्यों कपासो तूसी
सरदई सबज सार सर्बती सिंगार है ;
रंग रंगवारे घनें घनन के रंगन में
देखौ रंग रंग रंग रंग की बहार है ।

❀ ❀ ❀

लीलौ लाल ललित गुलाबी गुलैनार नयौ
लाखी लाजवरदी नरंगी रंग सार है ;
पिस्तई पिरोजी फालसई फाखतानी धानी
जिलानी जमरुदी जँगाली जोसदार है ।
कहत 'बिहारी' चंप चंदनी बसंती बनौ,
सुरमी सिंदूरी सजो संदली सिंगार है ;
रंग रंगवारे घनें घनन के रंगन में
देखौ रंग रंग रंग रंग को बहार है ।

❀ ❀ ❀

दौर दौर दलन दिसान दिस दाव दाव
मंडै मंड मंडल मदांध मतवारी सी ;

कहत 'बिहारी' भानु - बिंबहि बिलोप ओप
कोप सी करत पग रोप भट भारी सी।
जोर जोर प्रबल प्रभंजन झकोर रोर
घोर घोर घुमड़ घनेरी घटा कारी सी;
ओर ओर उमड़ अरोर अंबु अंबर तें
अँधाधुंध आवत अँघात अँधियारी सी।

❀ ❀ ❀

स्याम रंग सारी की छटा है घटाकारी, जिमि
मोतिन किनारी बक-पाँति अनुहार है;
देह की दुरन प्रगटन दमकन दुति
बिज्जु चमकन ओप अवनि अपार है।
कहत 'बिहारी' नाद नूपुर सघन सोर
किंकिनी कलित कटि झिल्ली झनकार है;
प्रेमपथ पार जात जहाँ रिझवार राधे
तेरे अभिसार पेखी पावस बहार है।

❀ ❀ ❀

हरे हरे रंग चहूँ ओरें रंग बाँध रहे,
ताल पोखरीन भरे दीखें नीर नियरा;
कहत 'बिहारी' दूँद दादुर मचावै कहूँ,
कहूँ कहूँ पीय पीय पीकत पपियरा।
घूम घूम घुमड़ि घमंड घन घोरें देत,
फूल फूल उठत मयूरन के हियरा;
ऊब ऊब उठत अनंग रंग अंगन में,
डूब डूब उठति बियोगिन के जियरा।

❀ ❀ ❀

झूला

कैसौ क्रीट मुकुट प्रकास चंद्रिका को कैसौ,
कैसौ जमौ जामा कैसी जागै जोति जोरे की ;
रूप की बनक कैसी भूषन भनक कैसी,
लटन गहन कैसी पँचरँग डोरे की।
कहत 'बिहारी' सोभा नैंनन निहारौ नेंक,
राम स्याम रंग और सिया अंग गोरे को ;
झुक झुक झूम झूम झिलमिल झारिझारि
झलाझल झाँकी झाँकौ झूलन हिंडोरे की ।

❀ ❀ ❀

कोउ सखी सामुहे लिये हैं जल-झारो खड़ो ,
कोउ फूल मंजु माल कंज किये कोरा में ;
कहत 'बिहारी' कोउ ताकती बिलास हास ,
मोहन रहे हैं मोह मदन मरोरा में।
सिया साथ कीनैं कीनैं बाँहि गल दीनैं दीनैं ,
रंग रस भीनैं भीनैं आनँद अरोरा में ;
सखिन की भीरैं भीरैं सरजू के तीरैं तीरैं ,
आज राम धीरैं धीरैं झूलत हिंडोरा में।

❀ ❀ ❀

चूनरी रँगीली चटकीली चमकीली चोली
गोरी बाँह बिमल बिरंच रुचि ढारी हैं ;
कहत 'बिहारी' गति नीकी राजहंसिनी सी ,
पगन अनोटा पायजेब झनकारी हैं।
त्यों ही भुजमूलन अलीन करकंज राख ,
सुर सखियान गीत सावन सम्हारी हैं ;

फूलन को गेंद लै दुकूलन की सोभा साज ,
कूलन कलिंदी राधे भूलन पधारी हैं।

❀ ❀ ❀

पावन प्रहर्ष ताक तीज सुभ सावन की ,
आवन निकुंज कियौ स्याम घन घोरा में ;
कहत 'बिहारी' धारि भूषन दुकूल फूल ,
माल मंजु साज राज मदन मरोरा में।
सर्बसौख्यसाधिका सरंग संग राधिका के
झुक झुक झूमैं झूम झंझा के झकोरा में ;
आज यों अनंदकंद जगतबंद कृष्णचंद ,
नंदनंद मंद मंद झूलत हिंडोरा में।

❀ ❀ ❀

हरे हरे रंग लाय हरेई हिँडोरन में
हरे हरे झूलें कान्ह कालिँदी कछारी में ;
हरी हरी भूमि हरे हरे खेत सोभा देत ,
हरी हरी दूब रहो ऊब नेह न्यारी में।
कहत 'बिहारी' हरी हरो केलि कुंजन में
हरे हरे डोलें पत्र हरो हरी डारी में ;
चलि सुकुमारी मान छोड़के दुलारी, भलाँ
को न हरियारी❀ करै ऐसी हरियारी में।

❀ ❀ ❀

देखन गईती ब्रज कुंजन अनाखी आज,
अजब बहार बीर सावन समैया की ;
कहत 'बिहारी' तहाँ गोरी गल बाँहि दैकैं
झूलत छबीलौ चोप चमक जुन्हैया की।

❀ हरियारी = हरि अर्थात् श्रीकृष्ण से मैत्री।

सो छबि लखी री सो छकी री औ' थकी री मति,
सत्य हौं सखी री कहों तोसों सौंह मैया को ;
कदम की छाँह वा कलिंदजा के कूल पै को
झूलत दृगन आली झूलन कन्हैया को।

❀ ❀ ❀

आए तीज ताक दोउ झूलन हिंडोरा कुंज,
कहत 'बिहारी' हिए हर्ष अधिकाई है ;
लाल लली जोहे लली लाल लखे सोहे दोउ,
दोहुँन पै मोहे ठगे ठाड़े ठौर ठाई है।
काहुने न देखी कुंज काहूने न डोरी गही,
काहुने न झूला मंच मिचक लगाई है ;
स्याम के हिए में लगो झूलन लड़ैती राधा,
राधा के हिए में लगौ झूलन कन्हाई है।

❀ ❀ ❀

घनन की घोर होय सलिल हिलोर होय,
मोर बन सोर होय सावन समैया होय ;
गोपिन कौ गैबौ होय राधे कौ रिझैबौ होय,
बिहंसि बतैबौ होय जामिनी जुन्हैया होय।
कहत 'बिहारी' धन्य लेखें जब देखें ऐसौ,
धौरी धेनु संग होय ललित लवैया होय ;
कुंज कुंद फूला होय कालिंदी कौ कूला होय,
कदम तर झूला होय झूलत कन्हैया होय।

❀ ❀ ❀

कबहूँ सुर सावन गीत कहैं कबहूँ रुकै भाव की भूलन में ;
कबहूँ तकैं छाँह कदंबन की कबहूँ रुचि लावहिं फूलन में।

कबहूँ हँस राधिकै कंठ भरैं कबहूँ मिलि झूलहिं झूलन में ;
बलिहार 'बिहार' पिया प्रिय की करैं केलि कलिंदि के कूलन में ।

❀ ❀ ❀

दुउ राजकिसोर किसोरी समेत सुभावन भावन भूलत हैं ;
छबि स्यामल गौर 'बिहार' लखैं घन दामिनि से मन फूलत हैं ।
लसिकें बहु भाँति घनें गसिकें हँसिकें अति ही अनुकूलत हैं ;
झुक झूम झलान झकोरन झेल झलाझल झूलन झूलत हैं ।

मत्पितामहकृत

सावन सुहावन की आवन अनूप देख,
केकी बर बोल बोल मदन जगायौ है ;
मेघ नभमंडल घनेरे घूम घोरैं देत,
छायौ तम आयवैं दिवाकर छिपायौ है ।
कहत 'दलीप' दीप दामिनो दमंक रही,
पीकत पपीहा सोर दादुर मचायौ है ;
मंगल समय पाय भूषन बसन साज,
आज कान्ह कुंजन हिंडोरना छलायौ है ।

वर्षांतर्गत श्रीकृष्णजन्माष्टमी

गौवन को मोद भयौ, ग्वालन प्रमोद भयौ,
दूषन भौ दुष्टन कौ, भूषन भौ बंस कौ ;
आरत हरैया भयौ, काज कौ करैया भयौ,
धरम धरैया भयौ जगत प्रसंस कौ ।
कहत 'बिहारी कबि' गोपिन हुलास भयौ,
परम प्रकास भयौ, जैसे नभ अंस कौ ;
दीन कौ दयाल भयौ, दासन कौ पाल भयौ,
नंदजू कौ लाल भयौ, काल भयौ कंस कौ ।

❀ ❀ ❀

द्वार वर्ग बीरन अभीरन की भीर माची,
भीतर भवन हेली हहल चहल मैं;
कोउ सजै तोरन कलस कलधौत* कोऊ,
कोउ सखी गावैं सुर सोहरे सहल मैं।
कहत 'बिहारी' कोउ मोतिन पुरावैं चौक,
कोउ प्रेम पागी कोउ लागी हैं टहल मैं;
कोउ ब्रजचंद लखैं ठाढ़ीं मुखचंद, ऐसौ
उमग्यौ अनंद आज नंद के महल मैं।

* * *

भैया भैया बोल कैं बधैया बजै द्वार द्वार,
चैया चोप गाव हैं गवैया रूप रेख कैं;
तैया थेई नाचते दिखैया फिरैं धाए धाए,
कहत 'बिहारी' यों समैया धन्य लेख कैं।
गैया फिरैं डोलतीं लवैया† फिरैं फूले फूले,
छैया लियैं ग्वालिनी पिवैया प्रेम पेख कैं;
रैयाराज गोद में बलैया लेत बार बार,
मैया होत मोद में कन्हैया मुख देख कैं।

शरद्

अमल अमंद ओपधारी है दुचंद चंद,
चंद सम सोहै स्वेत हंस पाँति पावनी;
हंस सम चाल में बिसाल बर बाला लखी,
बाला सम सुखद सुनीर धार धावनी।
कहत 'बिहारी' नीर-धार-सम स्वच्छता में
दीखत अकास कला कांति मनभावनी;

---

* कलधौत = स्वर्ण। † लवैया = गाय आदि चौपाए पशुओं के छोटे बच्चे।

सोभा यों दिखान लागी हिय हुलसान लागी,
आलो रितु आन लागी सरद सुहावनी ।

* * *

परम प्रकास पंचसायक प्रकर्ष वारो
पांडुर पयोधर की प्रभा प्रगटत है ;
तामें इंद्रधनुष नख-क्षत की छाई छटा,
उपमा कहाँ का ऐसी सुखमा सजत है ।
कहत 'बिहारी' त्यों मयंक सकलंक हेत
सर्ब सुख देत देख सविता* तपत है ;
लक्षित सुलक्ष लक्ष तरुन तनुंदरी† सी,
सुंदरी सरद आज देखत बनत है ।

* * *

जा छिन सें ससि नें सरद सुंदरी के संग
संगम कियो है आन रंग‡ बिचरै नहीं ;
ता छिन सें बरसा बिचारी बाल बावरी के
तड़ित कटाक्षन की [illegible] सिरै नहीं ।
कहत 'बिहारी' भै पयोधर पतित पूर,
परत न हेर चारु चारुता थिरै नहीं ;
कौन ऐसी जोहिए जुवति जग माँहि जाके
जोबन गिरे पै फेर गौरव गिरै नहीं ।

* * *

जा बिच बिहंगन की अवली उड़त रही ,
बोली बक पाँतिन की उदित अलापिनी ;
जामें इंद्रचाप औ' पयोद प्रभापूर्ण रहा ,
सो न अब एको रही छटा छिति छापिनी ।

---

* सविता = सूर्य । † तनंदरी = शरीरवाली । ‡ आन रंग = दूसरे के रंग में ।

कहत 'बिहारी' तौउ उत्तम अकास आज,
दूनी दुति देत देखौ सुखमा सुथापिनी ;
सत्य ही स्वभावतः सुशोभित जे होत, ते वे
दूसरे की शोभा सें न शोभा चहैं आपनी।

❀ ❀ ❀

ग्रीषम असाढ़ सें घुमंड घन घोरैं दई,
मोरैं भई मोद माहिं नीरद निहारे सें ;
पावस धरा पै धाए धारा बाँध धाराधर,
तटनी तड़ाग तनैं पानिप अपारे सें।
कहत 'बिहारी' पै न काहू ने बुझाई प्यास,
भरे आसपास रहे देखत किनारे सें ;
चार चित्रमासा के पिपासा भरे चातक को
दरद हटो है एक सरद सहारे सें।

❀ ❀ ❀

आवत ही सरद सुधाधर में सोभा दई,
तारन प्रकास की अकास बिमलाई है ;
कदली दलन मध्य पूरन कपूर पूर,
सिंधु सीप मोतिन महान प्रभा लाई है।
कहत 'बिहारी' स्वाति सलिल सुधा सौं ढार
चातक की प्यास आशु नीर दै बुझाई है ;
सत्य वाहि जग में सराहि को सकत जौन
बखत पै दूसरे की तकत भलाई है।

❀ ❀ ❀

भूधर में भूमि में तड़ाग में तरंगिनि में,
सुमन सुगुच्छन में स्वच्छ रँग लायौ है ;

कहत 'बिहारी' पौंन सीतल प्रबाह प्रिये,
पंथ पंथ पंक सनों सलिल सुखायौ है।
षोडस कलान लै दिसान दिसहू में दिव्य,
अवनि अकास लौ प्रकास दरसायौ है;
ग्रीषम की गरद बहाय बरसा सैं, फेर
मानौं चंद चाँदिनी सें चंदन लिपायौ है।

❀ ❀ ❀

सुखद सजी है सोभा सरद सुभागम की,
ध्वनी धार धवल फबै है रंग फैंना सौ;
कहत 'बिहारी' दिव्य दिव्य दिस दीखै हस्य,
कुमुद कलीन दीखै मोद मन मैंना सौ।
चंद दीखै चौगुनौ अनंद दीखै अंबुद सौ,
नीर दीखै स्वच्छ सौ चकोर चित्त चैंना सौ;
भास दीखै सुभ्रा सौ प्रकास दीखै पारद सौ,
कास दीखै हाँस सौ अकास दीखै ऐंना सौ।

❀ ❀ ❀

अमल अकास त्यौं बिकास बिधुमंडल कौ,
बिबिध बिलास कियौ कातिक समैया में;
कहत 'बिहारी' कूल कालिंदी कदंब तीर
ताने तान गोपिकान ख्यालन खिलैया में।
चलै नट चाली है उताली भरी खाली ताली,
केती भरीं आली कला काली के नथैया में;
बंसी कौ बजैया नचै ताता थेई थैया रास,
राचै यों कन्हैया आज सरद जुन्हैया में।

❀ ❀ ❀

कास के बिकास कौ प्रकास जत्र तत्र दीखै,
हंसन हू सरिता समान द्युति दीना है ;
तैस ही तड़ाग स्वेत फूलन बबूलन तें,
चंद्रिका चमक पाय दूनी दुति लीनो है ।
कहत 'बिहारी' बन बाग मंजु मालतीन
सुमन समूह रोपो रचना नवीनी है ;
मेरे जान सारभौम सरद सुधाधर ने
आंज सबै बसुधा सुधा से' साध कीनी है ।

* * *

छोटी छुटी' मीनन की मेखला चमंकै चारु,
स्वच्छ बारि बीचन के हार हिलुराती हैं ;
कहत 'बिहारी' त्यों ही तटन बिसाल रूपी
जंघन नितंबन की सुखमा सजाती हैं ।
सरद तरंगिनो अनंग उपजावनी ये
अंग साज अंगना की रंगना* दिखाती हैं ;
मोद मदमाती मंद मंद ध्वनि भाती चल
चाल इठलाती सो लजाती आज जाती हैं ।

हेमंत

सीतल समीर को प्रबाह बहै आठौं जाम ,
सीतल सलिल सो समानौ सोत सार है ;
सीतल अकास भास भासमान भासै सीत ,
पावक प्रभाव परयौ सीतल सुधार है ।
कहत 'बिहारी' राज राजत हिमंत साज ,
दसहू दिसान सिंचो सीतल प्रचार है ;

---

* रंगना = रँगरेलियाँ ।

सर्व जगतीतल के हीतल हिलत आज,
मंडित महीतल पै सीतल बहार है।

❀ ❀ ❀

बरफ सिलान पर्स पूरित प्रबाह पौन,
धुंधरित धावा धूम थिर ह्वै थपा दए ❀;
कहत 'बिहारी' बीच बीच बारि बुंदन तें
गरम गरूर गार गारन गपा दए।
पाय हौंस हिम्मत हिमायती हिमालय की
वाह री हिमंत तूनें झोकन झपा दए;
जे नर निसंक सेल† सम्मुख सहत, तैंने
ते बर बलीन के कलेवर कँपा दए।

❀ ❀ ❀

घटन लग्यौ है घनों दिवस घरी हू घरीं,
घाम तज तेजी लई सीत रीति नामिनी;
लगन लगी है भानु किरन मयंक ऐसी,
करन लगी है कंप पवन प्रनामिनी।
कहत 'बिहारी' स्याम रटन लगी है इतै,
लगन लगी है उतै औरैं काम कामिनी;
ताड़न लगी है त्यों त्यों मैंन की मरोर बीर,
बाढ़न लगी है ज्यों ज्यों जाड़न की‡ जामिनी।

❀ ❀ ❀

बातन ही बातन ब्यतीत जात बासर है,
साँझ नियरात सीत पवन प्रचाड़ी है;

❀ थपा दए = स्थापित कर दिए। † सेल = एक प्रकार का शस्त्र। ‡ जाड़न की — शीत काल की।

कहत 'बिहारी' एक जाम में तमाम नींद
होत परिपूर अहो एती रैंन गाड़ी है।*
जागें जान प्रात तऊ देखत हैं रात, जानें
रात ही ये गाड़ी है कि हिम की पहाड़ी है;
सागर की खाड़ी है कि झीझन की झाड़ी है कि
संकर की ताड़ी † है कि द्रोपदी की साड़ी है।

* * *

मंजु मतवारे स्वच्छ सलिल किनारे प्यारे,
चाल पै मराल चलैं चाल इठलात हैं;
भौंहन बिलास रंग तटनी तरंग करैं,
नील कंज नैंनन कों नेंक न सकात हैं।
कहत 'बिहारी' त्यों अमंद आछे आनन पै
चंद अरबिंद मनों मंद मुसक्यात हैं;
नागिरी नवीन सुंदरीन के सुअंगन सें
सरद समाजी आज बाजी लिये जात हैं।

* * *

तारन कतारन के धारन किए हैं रत्न,
मंडिल मही लौं मंजु महिमा मढ़ति जाति;
परम प्रकास चंद आनन अमंद तापै,
चौगुनी चहूँघा चारु चारुता चढ़ति जाति।
कहत 'बिहारी' चटकीलौ चमकीलौ चोखौ,
चीर चाँदनी कौ ओढ़ि उपमा अढ़ति जाति;
सरद निसीथिनी निहारौ नेंक नैंनन सें,
नारि नवयौवना सो नित्य ही बढ़ति जाति।

* * *

* गाढ़ी = घनी, गाढ़ी। † ताड़ी = तारी, समाधि।

दसहू दिसाएँ दिव्य दीपैं दीप दर्पन सीं,
उज्ज्वल अभास रहौ भास सुखसार है;
अमल अकास तैसौ चंद कौ बिकास, तैसौ
चाँदिनी प्रकास तैसौ परम पसार है।
कहत 'बिहारी' सर्बं थल में महीतल में
अखिल में अनिल* में आनँद अपार है;
सलिल में सौरभ में सुमन में साखन में
सर में सरोजन में सारदी बहार है।

* * *

मेघन के बूंद इंद्रधनुष दिखात नहीं,
धवल धुजा सी कहाँ बीजुरी बिलानी है;
धारा धुरवान को धरा की ओर धावै नाहिं,
बकन कतार कौन छिद्र में छिपाना है।
मोर दृगजोर नभ ओर कों निहारैं नाहिं,
कहत 'बिहारी' आज औरे छबि आनी है;
पावस पुरानी पर कहाँ धौं हिरानी, आज
रोप राजधानी सर्बं सरद समानो है।

* * *

जाड़े के बिलंद बीर बाजे हैं नगाड़े गाढ़े,
कोपे रबिमंडल पै रंग रनराते हैं;
कहत 'बिहारी' प्रभाकर कों परास्त कियौ,
किरन समूह जीत्यौ जंग मदमाते हैं।
सोई तेज लैकर त्रियान कुच सैलन की
संधि में छिपाय राख्यौ द्रब्य ज्यों छिपाते हैं;

---

* अनिल = हवा।

याही हेतु पाय या हिमंत रितु सेवन में
सूर्य लागैं सीतल, उरोज लागैं ताते हैं।

❀ ❀ ❀

चौदिसि चिरागन की चाँदिनी सी फैली चारु,
चमकैं चिकैं हूँ डरीं चित्र मनमाने हैं;
झूल रहे तूल भरे परदा दरीचन में,
गिलम गलीचा ऊनयुक्त सरसाने हैं।
कहत 'बिहारी' यों बिचित्र चित्रसारी सजी,
कठिन हिमंत तौ गरीबन के लाने हैं;
सात सरसानें उहाँ कैसे जात जाने, जहाँ
दोउ लिपटाने परे एक पट ताने हैं।

❀ ❀ ❀

रंग रजनी में रस केलि स्रम पाय पाय,
छौन सी छलो सी सीत संकहि सकाती ना;
आय प्रात अंगना में अंगना अनंग कैसी
बैठीं सखियान कोउ काहु पै लजाती ना।
कहत 'बिहारी' वाक्य बिबिध बिनोद कहैं,
चाहतीं हँसन हाँसी प्रगट दिखाती ना;
दंत-क्षत बास, होत ओंठन कौ त्रास, तासें
आए मुख हाँस कौ बिकास कर पाती ना।

❀ ❀ ❀

भाग्यवती भौन भोग भोगी भोग भावते की
सुमन छरी सी भरी भुज लतिकान सें;
कहत 'बिहारी' उठीं प्रात सिथिलात गात,
लाजन जकीं औ' छकीं सुधारस पान सें।

महल दरीचीं तहाँ भानु की मरीचीं मृदु ,
सेवहि सलोनीं बैठी जागी रतियान सें ;
केलि स्रम सै रहीं बतै रहीं बचन और
झोंका नींद लै रहों उनींदी अँखियान सें ।

❀ ❀ ❀

गेह की बनन मोद मेह की फबन जैसी ,
देह की दिपन तैसी नेह की छनाछनी ;
तूलन के युक्त मखतूलन की साज सजी ,
मदन को मौज मृगमद को घनाघनी ।
कहत 'बिहारी' भीत सीत की कहाँ है, जहाँ
सेजन चुरीन किंकनीन की झनाझनी ;
प्रेम की प्रतीति पूरि दंपति की प्रीति होहि ,
जंग रंग रीति बिपरीति की ठनाठनी ।

❀ ❀ ❀

खोल गृह द्वार दूर दीरघ दुसाले कर ,
एती निसि भारी ताहि सहज बिताऊँगी ;
कहत 'बिहारी' यही अवधि है आवन की ,
सुरत सकेलि स्वेद सलिल बहाऊँगी ।
येरी ये हिमंत तूँ बिदेस कंत जान मेरौ ,
आयकैं मतावै सो सता ले हौं सताऊँगी ;
येही परयंक यही सेज यही मंदिर में
प्रीतम मिले पै ताहि ग्रीषम बनाऊँगी ।

❀ ❀ ❀

रुचिर रजाईं हैं सजाईं सेज तूलन सों ,
अगिन अमंद तेज तामें गेह गरमें❀ ;

❀ गरमें = गरम होती हैं ।

कहत 'बिहारी' नव नारिन उरोज उच्च,
संपुट सरोज से रहे हैं आय कर में।
तिनकौ सतायौ सीत सिसिर कौ ताड़ित ह्वै,
भाज्यौ फिरौ भीति भरौ अंदर अगर में;
ठौर ठौर हीटो तऊ और और पीटो, तबै
दौर दौर दुरिगा दरिद्रन के घर में।

❋ ❋ ❋

किए केलि-मंदिर के अंदर कपाट बंद,
परी पसमीनन की परदा पुनीत की;
अंबर के अतर सुगंध कसतूरी पूरी
महक रही है धूप रुचिर सुरीत की।
कहत 'बिहारी' तूल पूरित निचोल चारु,
चाबत तमोल प्रथा पूरन प्रतीत की;
चितवन बंक छीन लंक अकलंक अंक
ललना निसंक तिन्है संक कौन सीत की।

❋ ❋ ❋

केसन कौं बिबस बिथोरति है बार बार,
मूँद देत नैंन ऐंन चैंन सौ भरत है;
कहत 'बिहारी' सारी सीस सरकावै, कंप
गात पुलकावै दाग ओंठन अरत है।
मंद मंद डोल सुन्यौ चाहै सीति बोल देत,
नीबी खोल खोल नेंक धीर ना धरत है;
देख देख बीर ढीट सिसिर समीर मोसौं
कंत कैसौ केलि कौ कुतूहल करत है।

❋ ❋ ❋

ठौर ठौर धाम धाम धूपन धुकाए धूम,
अगर बगारौ त्यौं सरस रस गाड़े कौं ;
कुंकुम के राग अनुराग अंग राग किये
सेज सजो बिमल बिनोद बरबाड़े कौं।
कहत 'बिहारी' दोउ दोहुँन को सैंन दई,
चैंन दई आय कें अनंग के अखाड़े कौं ;
प्रेम प्रीति पूर दई लाज फेक दूर दई,
केलि कला रूर दई धूर दई जाड़े कौं।

❀ ❀ ❀

उन्हैं एक धूनी के सहारे सुख प्राप्त होत,
इन्हैं पट ऊनी मूल्य हाजिर हजार के ;
उन्हें है तितीक्षा सीत पौन के निवारन कौं,
इन्हैं धूप अगर सुगंध मृगसार के।
कहत 'बिहारी' उन्हैं अंग बहु सेलीं लगीं,
यहां हू नवेला लगी आनँद अपार के ;
सिसिर के सीत में सुखी हैं दुनिया में दोऊ,
जोगी या प्रकार के कै भोगी या प्रकार के।

❀ ❀ ❀

महल दरीन में डरावो पट तूल तान,
तपन तपावो ऊन उत्तम उचन कौ ;
घनै घनै घृत के घनेरे पकवान पावो,
भर अनुराग त्याग साज सकुचन कौ।
कहत 'बिहारी' लै दुसाला औ' बिसाला बस्त्र,
केतिक मसाला रचौ आपनी रुचन कौ ;

तौलौं सीतबाधा कौ न होयगौ हरन, जौलौं
लैहौ नहीं सरन कृसोदरी कुचन कौ।

❀ ❀ ❀

अगर सुगंधि कौ सम्हारबो सुखद होत,
महल झरोखन कौ मूँदबौ सुमूरी है;
कहत 'बिहारी' यहै सिसिर समाज सबै,
कंपित करत गात गहत गरूरी है।
धीरा धीरो बहत समीर जब सीरौ सीरौ,
तब तन तुहिन प्रभाव परै पूरी है;
ताके हित तूल कौ तमूल कौ दुकूलन कौ,
अंगन कौ अंगना कौ सेयबौ जरूरी है।

❀ ❀ ❀

षट ऋतु-वर्णन छंद बहु, यहि उद्दीपन अंग;
भई सिंधु साहित्य की अष्टम पूर्ण तरंग।

स्वस्ति श्रीमन्महाराजाधिराज श्रीकाशीश्वर ग्रहनिवार पंचम विंध्येलवंशावतंस
श्रीमत्सवाई महाराजा साहब भारतधर्मेंदु सर सावंतसिंहजू देव बहादुर
के० सी० आई० ई० बिजावरनरेशस्य कृपापात्र ब्रह्मभट्ट-
वंशोद्भव कवि-भूषण, कविराज पं० बिहारीलालविरचिते
साहित्यसागरे षटऋतुउद्दीपनछंदादि
प्रकरणवर्णनो अष्टमस्तरंगः।

---

* नवम तरंग *

शृंगार-भेद-वर्णन

दो प्रकार शृंगार है, एक नाम संयोग ;
दूजौ नाम बियोग है, जानत सुकबि सुयोग ।

संयोग शृंगार का उदाहरण

जैसी लुनाइ लियैं ललना, पुनि तैसहि लालन रूप निके हैं ;
दोउ छबीले रँगीले भले, परयंक पै पूरन प्रेम छिके हैं ।
दोऊ दुहूँन के रूप बिमोहित, दोउ दुहूँ बिन मोल बिके हैं ;
दोउ मनोज-मजा में पगे, छतिया सें लगे तकिया सें टिके हैं ।

*   *   *

यह शृँगार बिच त्रियन को चेष्टा सहज सुभाव ;
समय पाय पलटत रहत, सांई कहावत हाव ।

दस हाव

लीला बहुर बिलास तथा बिच्छित्ति बखानौं ;
बिभ्रम किलकिंचितहु नाम मोट्टायित जानौं ।
ललित कुट्टमित बिहत और बिब्बोक गनीजे ;
दस प्रकार के हाव हरषि कबिजन चित दीजे ।
कह कबि 'बिहार' बिच्छित ललित बिभ्रम लीला मानिए ;
यह चार हाव बहरंग हैं, शेष आंतरँग जानिए ।

लीला-लक्षण*

प्रीतम कौ कर अनुकरन बेष बनावै बाल ;
लीला हाव बखानहीं ताकौ सुकबि रसाल ।

उदाहरण

साँझ मुकुट पट पीत धर पिय सुरूप लिय नेक ;
रात रमनि बिपरीत रचि रखिय भेष की टेक ।

विलास-लक्षण

भू दृग बोलन चलन कौ जहँ बिलास दरसाय ;
तिहि बिलास भाषन करत कबि-कोबिद-समुदाय ।

उदाहरण

छैल छली छिन छिन छकत निरख अदा अनमोल ;
भौंह चलन चितवन चखन मंद हँसन मृदु बोल ।

विच्छित्ति-लक्षण

किंचित भूषन सजैहू सुखमा सुंदर देय ;
तिहि बिच्छित्ति बखानहीं कबि-कोबिद गुनज्ञेय ।

उदाहरण

ज्यौं अति मति भोरी करत तुव गोरी मुख इंदु ;
त्यौं चित की चोरी करत यहै रोरी को बिंदु ।

विभ्रम-लक्षण

भूल सजैं शृंगार तन उलट पलट जो बाल ;
बिभ्रम हाव बखानहीं ताकौ सुकबि रसाल ।

---

* अनेक आचार्यों के मत से नायक और नायिका दोनो का वेष पलटना लीला-हाव में पाया जाता है ।—संपादक

उदाहरण

पिय आवन लख भामिनी बैठी सजै शृँगार ;
कटि की कंचन किंकिनी कर राखी हिय हार ।

किलकिंचित्-लक्षण

श्रम अभिलाषा लाज भय रस रिस गर्ब लखाय ;
नाम कहैं तिहि हाव कौ किलकिंचित कबिराय ।

उदाहरण

आय अचानक अँगन बिच अंक चही तिय लैन ;
हँसी खिसी रूसी रसी लजी भजी सुखदैन ।

मोट्टायित-लक्षण

प्रगट होय उर लालसा प्रिय दरसन की चाह ;
मोट्टायित तासौं कहत लखि ग्रंथन की राह ।

उदाहरण

पिय सुखमा तिय की सुनी तिय पिय की सुन काँह ;
पिय कौ जिय तिय मैं धरो, तिय कौ जिय पिय माँह ।

ललित-लक्षण

बोलनि हँसिबो हेरिबो होहि सरस छबि अंग ;
ललित हाव ताकों कहत कबि-कोबिद रस रंग ।

उदाहरण

मृदु हँसिबो मृदु बोलिबो अनुपम दृष्टि रसाल ;
अंग अंग सुखमा भरे मोहै लख छबि लाल ।

कुट्टमित-लक्षण

जहँ पूरन रस समय तिय भ्रूठिहु रिस दरसाय ;
हाव कुट्टमित कहत हैं ताकों सब कबिराय ।

उदाहरण

रही रूसि छाती छुवत, तानति भौंहँ कमान ;
अति हरषित हिय होत तिय, अजब अनोखी बान ।

बिहृत-लक्षण

पाते समोप अति सुख सजै सकै न कछु बतराय ;
बिहृत हाव तासों कहत कबि-सज्जन-समुदाय ।

उदाहरण

बसी रात ब्रजराज सँग गसी लाज की गोल ;
सिसकि थकी छबि में छकी जकी सकी नहिं बोल ।

बिब्बोक-लक्षण

पिय आएँ कछु बचन कह करै अनादर जोय ;
तहाँ हाव बिब्बोक यह कहत सकल कबि लोय ।

उदाहरण

हँसत हलत टेक न टलत, चलत छलत ब्रजबाल ;
प्रेम पगत रसबस ठगत, लाज न लगत गुपाल ।

वियोग शृंगार-लक्षण

जब दंपति बिछुरन महैं बाढ़त बिरह अपार ;
सो बियोग शृंगार है बरनत चार प्रकार ।
इक पूरब अनुराग कह, दूजो कहियतु मान ;
तीजो भेद प्रबास है, चौथो करुन बखान ।

पूर्वानुराग-लक्षण

लखत सुनत जब दुहुँन कौं उपजत अति अनुराग ;
सो पूरब अनुराग है जानत जे बड़ भाग ।

उदाहरण

जा दिन सें औचक बिलोकी छबि रावरे की,
ता दिन सें गोरी गैल जोवत जगी रहै ;
कहत 'बिहारी' भूल भूषन बसन अंग,
पीड़ित अनंग स्याम रंग में रँगी रहै।
झीन पटवारी कुच पीन तटवारी वह
छीन कटिवारी प्यारी प्रेम ही पगी रहै ;
मोहन तिहारे मुख मंजुल मनोहर को,
झाँकिबे कौं झलक झरोखा सें लगी रहै।

❀ ❀ ❀

आज यहि खोर ह्वै अकेलौ अलबेलौ बाँकौ
निकसौ कन्हैया दैया जादू सौ कियैं गयौ ;
मोद मतवारौ मंजु मदन छकौ सौ छैल
झूमत झुकत प्रेम मद सौ पिर्‌यैं गयौ।
कहत 'बिहारी' नैंन नजर तिरोछी तीखी,
तकन त्रिसूल हियैं हूल सी दियैं गयौ ;
छीन मन मेरौ हँस हेर फेर जोरा जोरी
जुलफ जँजीरन में जकड़ैं लियैं गयौ।

❀ ❀ ❀

ठाड़ी द्वार आपने अचानक ही आय आली,
स्यामले सरीर कौ सनेह में सना गयौ ;
देखैं बिन बिरहा बिहाल कियैं देत बीर,
जालिम जसीलौ ओर जुलम जना गयौ।
कहत 'बिहारी' नयौ निठुर ठगौरी डार,
नैंनन की नोंकैं हेर हिय में हना गयौ ;

आव अरी आव री बुलाव री वा बाँकुरे कौं,
घाव री लगाकैं मोहि बावरी बना गयौ।

मान-प्रवास-लच्छण

लच्छन मान* प्रबास के नामहि मैं रहे भास ;
मान मानिनी मैं मिलत प्रोषित मिलत प्रबास।

❀ ❀ ❀

उदाहरन तासें यहाँ पृथक न कहियत साज ;
भेद नायिका में सकल लख लीजौ कबिराज।

❀ ❀ ❀

करुन भेद के भेद जो कहिहौं बहुरि बिचार ;
प्रथम बिरह की दस दसा बरनत ग्रंथ निहार।

❀ ❀ ❀

यह पूरब अनुराग में बाढ़त बिरह निदान ;
ताकी दस बिधि दसा हैं समुझौ सब बुधिवान।

बिरह की दस दशा

दोहा के पूर्वार्द्ध मैं लच्छण ललित लिखंत ;
उदाहरन उत्तर कहत समुझौ सब बुधिवंत।

अभिलाषा

ल०—भेद प्रथम अभिलाष है, अभिलाषा जिय भाख ;
उ०—कब ह्वै है पूरन अली, मो मन को अभिलाख।

चिंता

ल०—मिलन हेत चिंता करै, सो चिंता जिय जोर ;
उ०—कब मोहन मुख-चंद्र सखि, लखिहैं नयन-चकोर।

---

* मान में बिरह मानने का कारण यह है कि वियोग या संयोग-शृंगार चित्त की वृत्ति पर निर्भर है, और मान में प्रेमी और प्रेमपात्र के हृदयों की वृत्तियों का एकीकरण न होकर उनका पार्थक्य हो जाता है। दो हृदयों के विलग-विलग रहने के कारण ही मान में बिरह माना गया है, भले ही प्रेमी और प्रेमपात्र एक ही तल्प पर क्यों न रहें।—संपादक

स्मरण

ल०—पिय संबंधी बात कौं सुमिरहि सुमिरन जान;
उ०—अजहुँ न भूलत कान्ह की वह मधुरी मुसक्यान।

उद्वेग

ल०—बेगोत्कर्ष मिलाप हित सो उद्वेग कहाय;
उ०—पिय पाती फिरि फिरि पढ़ति छाती लेति लगाय।

प्रलाप

ल०—सो प्रलाप बिन ही समझ बोलै बिरह बिहाल;
उ०—कान्ह कहाँ कासौं कहत, कहा बकत ब्रजबाल।

गुण-वर्णन

ल०—जो पिय गुन बर्नन करै, गुन बर्नन सो ग्यात;
उ०—सुखमा स्याम सरीर की उपमा कही न जात।

उन्माद

ल०—चरित करै उन्मत्त ह्वै, सो उन्माद बिसाल;
उ०—भवन भजत भरमत भटू, भेंटति तमकि तमाल।

व्याधि

ल०—दीर्घ स्वास अति छीन तन, बिबरन व्याधि कहाय;
उ०—बिरह भरी तिय कुस खरा, सेज परी न लखाय।

जड़ता

ल०—चेष्टा-हीन सरीर जब सो जड़ता जड़ मूल;
उ०—तिय लालन तुव नेह में गई देह-सुधि भूल।

मरण

दसम दसा अति रस-रहित, काहुय कही न जात ;
कहतन मैं सोभित नहीं, रस बिरुद्ध हो जात ❀ ।

करुण

बाहिर में करुना झलक, भीतर में रति भाव ;
ऐसे बिषम बियोग कों करुन कहत कबिराव ।

❀ ❀ ❀

मिलन आस पिय की न जहँ, अथवा होय बिरक्त ;
कहत करुन सिंगार तहँ, जे कबि कबिता-भक्त ।

उदाहरण

बासर बसंत के बिलोक बनमाली ढिग
बोल पहुँचाये ह्वै स कब लों बितावेंगी ;
भाँति भाँति बिरह सँदेस पहुँचाये, जंत्र
मंत्र पहुँचाये प्रेम ऐस ही बढ़ावेंगी ।
कहत 'बिहारी' देम दूत पहुँचाये, स्याम
अजहूँ न आये तौउ साहस न ढावेंगी ;
आन पहुँचाये पत्र पान पहुँचाये मन ,
ध्यान पहुँचाये अब प्रान पहुँचावेंगी ।

❀ ❀ ❀

चैत्र चाँदिनी रैंन पाय प्रियतम नहिं पाऊँ ;
बिरह बीच यदि प्राननाथ बिन प्रान गमाऊँ ।
तौ प्रभु जन्म जो देव ब्याध कोकिल हित कीजौ ;
पूर्न चंद्र हित ग्रसन राहु कौ रूप सु दीजौ ।

❀ मरण-दशा-वर्णन में कविराज को यहाँ रस-विभिन्नता की आशंका से अंतर जान पड़ता है, पर अनेक आचार्यों ने विरहजन्य रोगादि से उत्पन्न मूर्च्छारूपिणी मरण की पूर्वावस्था को मरण-दशा माना है। पंडितराज जगन्नाथ ने लिखा है—
'रोगादिजन्या मूर्च्छारूपा मरणप्रागवस्था मरणम्।' (रसगंगाधर)—संपादक

कह कबि 'बिहार' यह मदन हित शिव-दृग-ज्वाल जनाइयौ ;
अरु प्रीतम मोहन-मदन हित मोकहँ मदन बनाइयौ ।

विरक्त भाव

खेद सरसानी बेष बचन बिहानी बानी,
बेसुध लखाई खाई संखिया समुल* सी ;
कहत 'बिहारी' झपे नयन निरीह दीह,
अंगन अचेत छरी मल्लिका मृदुल सी ।
गौरि कैसो मूर्ति गौरिगृहिणी गुसाईंजू की,
व्यथित बियोगिनी बियोग-झार-झुलसी ;
हाय कहि हार, खा पछार पुहुमी पै परी,
स्रवन सुनानी जो कि योगी भये तुलसी ।

*   *   *

बस्तु बिमल सुचि सुभ सुखद, दर्शनीय जो होत ;
सो सब रस श्रृंगार में बरनत कबि जग जोत ।
यह बिधि भावादिक सहित अंग रूप रुचि रोर ;
रस श्रृँगार पूरन भयौ, (श्री) कृष्ण-कृपा की कोर ।

हास्य रस-वर्णन

विभाव

भेष, बचन, रचना, चलन, प्रकृति अन्यथा जान ;
ये आलंबन हास्य के समुझौ सब बुधिवान ।
तिनसें ताकी तिहि समय चेष्टा तैसी होय ;
ते उद्दीपन हास्य के समुझौ सब कबि लोय ।

---

* समुल = सुम्मल, एक प्रकार का विष ।

अनुभाव

आनन अधर बिकास पुनि दृष्टि कपोल सुभाव ;
स्पंदन कुंचन आदि यह सब समुझौ अनुभाव ।

स्थायी-रंग-देवता

हास्य स्थाई हास्य को, प्रथम देव, सित रंग ;
अश्रु हर्ष आदिक तहाँ गण संचारी अंग ।

उदाहरण

श्रीमहादेवजी का कुँवर-कलेऊ

बिधि हरि संग हर हिम के भवन ठाढ़े,
कुँवर-कलेऊ कौं दिगंबर सुमेष कै ;
कहत 'बिहारी' सजो पन्नग-लँगोटी एक ,
जानकैं मृजाद राजभवन बिशेष कै ।
तौ लौं गये गरुड़ बिलोक सो भुजंग भाज्यो ,
शंभु सकुचाने हँसे साथी प्रभा पेख कै ;
ब्रह्मा हँसे टारी दै दै बिष्णु हँसे तारी दै दै,
नारी हँसीं सारी दै दै दूलहा देख देख कै ।

दुर्योधन का यज्ञ में जाना

गये दुर्योधन युधिष्ठिर की यज्ञ माहिं ,
देखौ सीस-भौन जामैं झलक अपारो है ;
जहाँ थल रहो जल जान कें गये न तहाँ ,
जहाँ जल रहो थल जान करी त्यारी है ।
कहत 'बिहारी' डग भरत भराय गिरे ,
बेग उठ हेरे, हँसे भोम दई तारी है ;
हास कियौ द्रौपदी बिहँसि मुख बोलो बैन ,
आँधरे के पुत्र कौं इतेक कौन भारी है ।

❀ ❀ ❀

एक दिना सैल पै सबेरे शिवा शंकर की
बिजया रही है छन रौचक रचै गए ;
सुन धुन धाए बंधु सहित बिनायक जू
पारबती डाटे दोउ दाँत्र सो बचै गए।
कहत 'बिहारी' कार्तिकेय भंग पीवन को
मचल मही पै लोट रार सी मचै गए ;
जौ लौं लगी गिरिजा गजानन मनावे, तौ लौं
सुंड डार कुंड कौं गजानन अचै गए।

वीर-रस-वर्णन

आलंबन तथा उद्दीपन

बिजैतब्य* इत्यादि जहँ, आलंबन लख लेहु ;
बिजैतब्य चेष्टा तथा उद्दीपन कह देहु।

स्थायी संचारी

साधन सरुचि सहायकै, तहाँ होत अनुभाव ;
रोंम, गर्ब, धृति, मति सहित, संचारी चित ल्याव।
सुर, सुरपति, कंचन बरन, थाई जिहि उत्साह ;
दान, दया, अरु धरम मिल युद्ध बीर इमि आह।

उदाहरण

श्रीरामजी का दान

धन्य ग्यानबीर दानबीर रघुबीर धन्य,
बैठ सिंधु-तीर पीर जग की नसै दई ;
कहत 'बिहारी' रघुबंस रीति रच्छन कौ
भुजन भरोसें कीर्ति-बेलि बिस्व बै दई।

---

* बिजैतब्य = जिस पर विजेता विजयी होने की आकांक्षा करता है।

सत्रु कौ सहोदर सरन आयौ दीन ह्वैकैं,
आवत ही आइये लँकेस ऐसी कै दई ;
जौन द्रब्य ईशन लई है दससीसन, सो
आप सम्हें कीशन बिभीसन कों दै दई।

बलि का दान

देखो द्वार ठाढ़ो ठीक बाँवन सुरूप सत्व,
माँगनौं मिलो है पुन्य पूरब महान सैं ;
एसौ जिय जान कैं प्रमान दृढ़ ठान लियौ,
दियौ मुँह माँगो नहीं पलटो जबान सैं।
कहत 'बिहारी' महाबीर बलवान बली
बँधिगौ बिशेष हू त्रिबिक्रम के पान सैं ;
सक्र बैर जोरौ सुक्र नीति सें निहारौ सब,
साथी संग छोरौ पै न मोरौ मुख दान सैं।

दयावीर—गज-रक्षा

बिचार नीर पान कों प्रबेस सिंधु तीर भौ,
तहाँ गुमानि ग्राह से बिहार रार सी मड़ी ;
निहार हार आपना गुहार दीनबंधु का,
दयालुदीन दीन पै दया करौ यही घड़ी।
बिहाय बेग बाहिनें उपाहिनें प्रभू तहाँ,
गयंद के बचायबे में शीघ्रता करी बड़ी ;
चिकार दीन भाव सें पुकार राम जो कही,
रकार सिंधु बीच औ' मकार पार पै कढ़ी।

धर्मवीर—श्रीभरत-प्रशंसा

राज कौ सयोग भोग छोड़ कौन लेतौ जोग,
कौन कंद-मूल खाय एतौ ब्रत करतौ ;

हूजिये सुभक्त श्रीगुपाललाल जू के यह
गोवन की ओर सें असीस आप लीजिये।

युद्धवीर—भीष्म-प्रतिज्ञा

स्यंदन समेत ध्वज धरनि परैगी देख,
पार्थ भट भीम साधु साधु कह भाखैंगे;
कहत 'बिहारी' झुंड झुंड पुंडरीकन से
धारक त्रपुंड मुंड माल अभिलाखैंगे।
छोड़ रथ चक्र धार धाहैं क्रोध लाहैं कृष्ण,
मेरे बीर बानन कौ साँचौ स्वाद चाखैंगे;
प्रभु को प्रतिग्या जंग आज रन रंग बीच
भंग ना करैं, तो भीष्म नाम नहिं राखैंगे।

❀ ❀ ❀

पारथ की बीरता अकारथ सी जैहै सबै,
भारत रचूँगौ ऐसौ जोम जुर जंगा कौ;
कहत 'बिहारी' छत्र कीर्ति कौ तनाऊँ अत्र,
गोबिंदै गहाऊँ औ' दिखाऊँ दृश्य दंगा कौ।
स्रोन भर देहौं सर जाल रच देहौं लाल,
रंग कर दैहौं कृष्ण पीत पट झंगा कौ;
एक एक बान एक एक पल माँहि रथो,
काटौं जो नकैयौ तौ न कैयौ पुत्र गंगा कौ।

श्रीलक्ष्मण-प्रतिज्ञा

जो कदाच रघुबीर बीर अनुसासन पाऊँ;
तौ कंदुक सम सहज सकल ब्रह्मांड उठाऊँ।
काचे कुंभ समान फोर फैंकहुँ छन माँहीं;
मेरु मूल-सम टोर सोर मंडों जग माँहीं।

कह कबि 'बिहार' शिव-दंड यह खंड खंड खंडन करहुँ ;
एतो न करों प्रभु-पद-सपथ पुनि न चाप सर कर धरहुँ ।

रौद्र रस-वर्णन

आलंबन—रुष्ट रूप रन सत्रु यह आलंबन दरसात ;
उद्दीपन—सस्त्रादिक छेपन बचन उद्दीपन सरसात ।
अनुभाव—बाहुस्फोटन रद रगर अधर दसन अनुभाव ;
संचारी—गर्ब उग्रता आदि ये संचारी चित ल्याव ।

स्थायी-रंग-देवता

रुद्र देव है रौद्र को, लाल रंग छबि देत ;
क्रोध स्थाई भाव जिहि कहत सुकबि चित चेत ।

उदाहरण

जबहिँ राम धनुबान क्रुद्ध रावन पर तन्नव ;
तबहिँ अग्र भुज बाम भुजा दच्छिण समन्नव ।
भोजन भोग बिहार माँहि प्रथमं पद रोरिय ;
अब्ब युद्धसन मुख्य लख्ख किमि मुख्ख मरोरिय ।
तब कर जंप्यो मुहि भय न कछु रचहुँ न भय कर तंत्र है ;
सिर दसहु इक्क सर हतहुँ कहु करहुँ ये श्रुत लग मंत्र है ।

श्रीहनुमत्-युद्ध

आवत अच्छकुमार दिख्ख कुप्यो कपि योधा ;
हृष्ट पुष्ट लख रुष्ट मुष्ट मारौ कर क्रोधा ।
गिरो भूमि तन तज्ज स्रोन धारा धर धाइय ;
पुनि बहु भट्ट बिकट्ट हथ्थ लच्छन किय घाइय ।
कह कबि 'बिहार' हंका बिकट संका अरि दल दल करी ;
बंका दियब्ब डंका बिजय लंका-गढ़ खलबल परी ।

पंचाननचरित्र*

तब हजूर दोनौ हुकम सुभटन बीर बुलाय ;
बाँसन बोदन बाघ बर, चुल बिच देहु चलाय ।
साँस बाँस आवत लखे सेर हाँस मन लाय ;
अभिमानी मानो न कहि, चाबन लिये चबाय ।
जबहिं लखौ निकसत न यह है अभिमानी ऐन ;
तब भूपत सावंत किय कछु रिसराते नैन ।
उठिव भूप वह ठौर से कर उर क्रोध प्रकास ;
बहुरि बीर ब्राजत भयौ चलकर चुल के पास ।

* * *

भूप बीर रस मध्य रौद्र रस भाव प्रकास्यौ ;
आन भाँति रुख रंग कछू सभटन मन भास्यौ ।
झपट्यौ पंचमसिंह और जंगी रन रंगी ;
बल्लारौ बलवान भये तीनौ इक संगी ।
नंगी कृपान चंगी चपिट चुल धसि मृगपति घिर लियब† ;
हिय हरष हवाई रफल कौ आग ठोक ठक्कौ कियब ।

* * *

सुन ठक्कौ भर ठसक ठैर शेहर‡ हुर हंक्यौ ;
फेर फूल तन फैल बाँध फिर फाल× फलंक्यौ§ ।
उच्च टिगर÷ धर टेक जोई चढ़िढब लँयँ लाली ;
तब लगि श्रीसावंत देख दई दपट दुनाली ।

---

* ये छंद बिजावर-नरेश श्रीमान् महाराजा सावंतसिंहजू देव द्वारा सिंह के मारे जाने के समय के हैं। शेर चुल (गुफा) में था, महाराजा के साथी वीरों ने उसे चुल से निकाला और महाराजा ने शेर मारा। उसी समय का पूरा वर्णन यहाँ किया गया है।
† घिर लियब = घेर लिया। ‡ शेहर = शेर। × फाल = छलाँग। § फलंक्यौ = उछला। ÷ टिगर = टगर, पहाड़ की तराई का उच्च स्थान।

सुइ परी चौकपै चौकसो ढड़क धरनि गिरि सुख सन्यौ ;
घनघोर घोघरा* बिपिन बिच्च काढ़ि कठिन केहरि हन्यौ ।

* * *

आजो बीर भर रंग ओप आनँद उमंग ,
ब्याघ्र देख और ढंग किय बिमल बिचार ;
ज्वान चुल में पिठार दिय बाँसन कौ डार ,
कढ़ो केहरि करार घली तुपक तरार ।
धँन धँन बलुवान बीर सावत महान ,
करौं कहँलौं बखान भन सुकबि 'बिहार' ;
नहिं कीनी कछु देर जाय घेर वही बेर ,
चहुँ फेर बन हेर मारो सेर ललकार ।

* * *

भूपर भूप बलिष्ठ अति सावतसिंह नरेंद्र ;
घग्घग्घोघर बन हन्यौ, दद्दद्दपट मृगेंद्र ।
दद्दद्दपट मृगेंद्रभभ्भपट भ्भमंकक्कर वर ;
जंपह जुवल उर्चपह उपल सुकंपह तरवर ;
चल्लिय चुपक भरल्लिय तुपक सुघल्लिय ऊपर ;
हक्कत हिरव भभक्कत गिरव ढडक्कत भू पर ।

करुणा-रस-वर्णन

आलंबन

इष्ट मनुज की नष्टता बंधन साप बियोग ;
बयसन दुःख दारिद्रता, आलंबन कहँ लोग ।

उद्दीपन

चेष्टा दाहादिक बहुरि दृश्य दैन्यता होय ;
ये उद्दीपन करुन कर जानत सब कबि लोय ;

* घोघरा = बिजावर-राज्य का जंगली स्थान ।

अनुभाव

दीर्घ स्वास रोदन रटन देहाघात प्रलाप ;
निंदा दैवादिक कहत ये अनुभाव प्रताप ।

संचारी

निःस्वासा वैवर्ण्यता, चिंता मोह बिषाद ;
अश्रु आदि व्यभिचारि तहँ कह कबि सुगुन प्रसाद ।

उदाहरण

राम-विलाप

बार बार छबि लखन की निरख निरख रघुराय ;
हृदय बिलख बोले बचन, भुज भर कंठ लगाय ।

❀ ❀ ❀

हे तात उठौ क्यों भए नींद बस ऐसे ;
ये भ्रात तुम्हारे राम लहैं कल❀ कैसे ।
वो प्रेम कहाँ जो हृदय बीच रखते थे ;
तुम हमें न इतना दुखी देख सकते थे ।
क्यों कठिन नींद बस लाल लगा रहे तारी ;
उठ जगो तात प्रिय भ्रात देर भई भारी ॥ १ ॥
मुझ सिया हान के हितू तुम्हीं थे प्यारे ;
सो तुमहुँ अचानक आज होत हौ न्यारे ।
जग के जितनें सुख साज बित्त सुत नारी ;
सब प्राप्त मनुज कौ होत हजारन बारी ।
पर भ्रात सहोदर मिलन कठिन संसारी ;
उठ जगौ तात प्रिय भ्रात देर भई भारी ॥ २ ॥

❀ कल = चैन ।

ज्यों गरुड दीन पर हीन तनह तलफावै ;
मनि हीन फनी कर* हीन करी† दुख पावै ।
त्यों तुम बिन भ्राता लखन दसा भई मेरी ;
मुहिं दैव जिवावत बृथा करत जड़ देरी ।
हमसें क्यों इतनी आज निठुरता धारी ;
उठ जगौ तात प्रिय भ्रात देर भई भारी ॥ ३ ॥
अब हाय अवध कों जाउँ कौन मुँह लीनैं ;
हा ! एक त्रिया के हेतु लखन खो दीनैं ।
रावन ने राम की सिया लई जग कहतौ ;
ये अपजस को भी भली भाँति मैं सहतौ ।
अब सिया सोक अरु भाई बिछुरबौ तेरौ ;
धिक अजहूँ सहत कठोर निठुर मन मेरौ ।
हा ! प्यारे प्रानाधार राम हित - कारी ;
उठ जगौ तात प्रिय भ्रात देर भई भारी ॥ ४ ॥
अति परम हितू अरु परम प्रेम जिय जानी ;
जननी ने सौंप्यौ मोहिं तुमहिं गहि पानी ।
दैहौं मैं उत्तर कौन अवध में जाई ;
उठ करिकैं क्यों नहिं मोहिं बतावत भाई ।
सुन सुन यों बिबिध बिलाप सोक उर धारैं ;
बानरगन बैठे बिकल नैन जल ढारैं ।
करुना यों करत कृपाल त्रिलोक - बिहारी ;
उठ जगौ तात प्रिय भ्रात देर भई भारी ॥ ५ ॥

* * *

तौ लग आये पवनसुत, दई सजीवन मूर ;
लखन जगे प्रभु सुख पगे, भगे सोक दुख दूर ।

---

* कर = सूँड । † करी = हाथी ।

बीभत्स-रस-वर्णन

आलंबन विभाव

स्रोन* प्रवाहादिक जहाँ माँस मज्ज समुदाय ;
ये आलंबन भाषही कबि - कोबिद - समुदाय ।

उद्दीपन

कृमि प्रसरन संचलन अरु दुरगंधित चल पौन ;
ये उद्दीपन जानिये, बर्नत कबि गुन-भौन ।

अनुभाव-संचारी

थुकी चलन दृग संकुचन मुख मोरन अनुभाव ;
अपस्मार मोहादि यह संचारो दरसाव ।

स्थायी-रंग-देवता

थाई घृना बखानिये, महाकाल सुर जान ;
नील रंग बीभत्स कौ, समुझौ सब बुधिवान ।

उदाहरण

रामदल दल्यौ दल दोह दसकंधर कौ,
लोथन पै लोथैं लगीं लाखन दिखाती हैं ;
काक करैं चोटैं उड़ैं आँतन अगोटैं, बँधी
अद्धन की जोटैं देख फूली ना समाती हैं ।
कहत 'बिहारी' त्योंहा जुग्गिन जमातीं मातीं,
माँस हम चातीं खातीं रकत चुआती हैं ;
कौंचन के किलक कलेऊ कर कर्र कर्र,
चूस चूस चर्र चर्र चरबी चबाती हैं ।

---

* स्रोन = रक्त ।

भयानक-रस-वर्णन

आलंबन-उद्दीपन

बस्तु भयानक ही यहाँ आलंबन पहिचान ;
त्यों ही चेष्टा तासु को उद्दीपन मन मान।

अनुभाव संचारी

बिबरन गद्‌गद स्वरादिक ये याके अनुभाव ;
स्वेद रोम कंपादिहू ब्यभिचारी चित ल्याव।

स्थायी-रंग-देवता

भाव स्थाई भय लखो, काल देवता जासु ;
स्याम बरन कबिजन कहत, नाम भयानक तासु।

उदाहरण

नृसिंह-अवतार

महा बक्र बिकराल अग्र दंतन दुति जग्गिय ;
रक्त इव्व जग जिह्व कंठ केसर नभ लग्गिय।
घोर सद्द किय नद्द हद्द जलसिंधु सटक्किय ;
कमठ कोल कंकुरित फनी फन फनन फटक्किय।
कह कबि 'बिहार' नरसिंह तन खंभ फार कड्ढिय जबह ;
दिस्सान दसहु दिग्गज दबिय भय त्रिभुवन बड्ढिय तबह।

❀ ❀ ❀

बिकट भेष बिकराल चर्म केहरि सज्जिय तन ;
धर बिचित्र खट्वांग पास आकृति अति भीषन।
सूक्ष्मांग दुति नीलबर्ण उज्जल दंतालिय ;
सीस लग्ग आकास चरन जनु पैठि पतालिय।
कह कबि 'बिहार' बिस्तृत बदन रक्त जिह्व सिरमालिका ;
जय चंड-मुंड-खल-दल-दलनि जयति जयति जय कालिका।

❀ ❀ ❀

मुखमंडल विस्तीर्ण नेत्र गंभीर अरुण अति ;
रक्त जिह्व संचलित हलित भीषण भय उपजति ।
निज गर्जन घनघोर व्याप्त दिगमंडल किन्नव ;
उग्र वेग भर भूरि सद्य संगर चित दिन्नव ।
कह कबि 'बिहार' उद्दित अवनि इंद्रादिक सुरपालिका ;
जय चंड-मुंड-खल-दल-दलनि जयति जयति जय कालिका ।

❀ ❀ ❀

तब हजूर दीनौ हुकम इक बनरक्षक पेख ;
तू चल सन्मुख बिटप यह तिहि पर चढ़िकर देख ।

❀ ❀ ❀

चल्यौ अरण्य रक्ष यौं, झपट्ट चड्ढ वृक्ष यौं ;
झुकाय शीर्ष पिक्खियौ❀, मृगेंद्र रूप दिक्खियौ ।
कराल नेत्र तुंड है, महान दीर्घ मुंड है ;
कडंत दंत भौंह है, सुहत्थ हत्थ छौंह है ।
बदन्न बाँय तापयं, रहो मृगेंद्र हाँपयं ;
लफंत जीभ चप्पयं, चुबंत नीर ठप्पयं ।
लखंत रूप भ्यानकं, रहो न कुच्छ ज्ञानकं ;
कछू न मुक्ख जंपही, सुथर्र थर्र कंपही ।
गहै जो डार मुट्ठही, परै सुछुट्ट छुट्टही ;
समस्त अंग डुल्लगे, हवास होस भुल्लगे ।
नरेस पास जायकैं, कह्यो बिनीत आयकैं ;
हजूर अर्ज धारियौ, अवश्य याहि मारियौ ।

❀ पिक्खियौ = पेखा, अवलोकन किया ।

अद्भुत-रस-वर्णन

आलंबन-उद्दीपन

बस्तु यहाँ बिस्मयजनक आलंबन अनुमान ;
ता महिमा गुन कथन सब उद्दीपन पहिचान ।

अनुभाव संचारी

नेत्र विकासादिक तहाँ हैं अनुभाव अनेक ;
बेग बितर्कादिक कहैं संचारी कबि नेक ।

स्थायी-रंग-देवता

थाई बिस्मय होत है, पीत रंग पहिचान ;
देव तासु गंधर्ब कह, अद्भुत नाम बखान ।

उदाहरण

फनन फनन फन फन सें फुकारें भरै,
काली कुल कठिन कराल दरसायौ है ;
ताके सीस सहज कलान सों किलोलैं करै,
निपट निसंक नयौ कौतुक बतायौ है ।
कहत 'बिहारी' परों परौ पलना में लखौ,
आज ये चरित्र याको चित्त में न आयौ है ;
कालिंदी-बसैया महा बिष बरसैया, ताहि
छोटो सौ कन्हैया भैया कैसे नाथ ल्यायौ है ।

❀ ❀ ❀

सीखी कौन बान लगे जान खान माटा कान्ह,
जसुदा कही यों बातैं इतकी इतै रहीं ;
कहत 'बिहारी' मुख मोहन दिखायौ तबै,
सर्वलोक लोकन को तुलना तितै रहीं ।

कोटिन ब्रह्मांड कोटि कोटि बिधु बिष्णु देखे ,
कोटि महादेव देवो रचना रितै रहीं ;
कृष्ण को चरित्र यों बिचित्र नँदरानी हेर ,
कछू देर चकृत सुचित्र सी चितै रहीं ।

❀ ❀ ❀

सावँत नरेंद्र कौं मृगेंद्र मृगया में लख,
भाज्यो भरजोर छूटौ तीर सौ लखायौ है ;
पौन सौ उड़त, कहूँ रेख सी खुलत, कहूँ
झाँईं सी परत काहू लख में न आयौ है ।
दूर द्रुम द्वार रह्यौ भूपति मुहार डार,
कड़तन कड़ी गोली अचरज आयौ है ;
बज्र भौ प्रहार गिरो सिंह खा पछार,
खेल भूप यों सिकार सबै कौतुक दिखायौ है ।

शांत-रस-वर्णन

आलंबन विभाव

जगत दृश्य निस्सारता पुनि अनित्यता जान ;
नित्य रूप परमातमा यह आलंबन मान ।

उद्दीपन

रम्य भूमि सुभ क्षेत्र बन पुण्याश्रम सतसंग ;
ये उद्दीपन जानिए, बरनत कबि रसरंग ।

अनुभाव संचारी

रोमांचादि अनेक बिधि गनि लीजे अनुभाव ;
दया बुद्धि निर्बेद बहु संचारी तहँ ल्याव ।

स्थायी-रंग-देवता

शांति स्थाई भाव है, बिष्णु देवता होय ;
कुंद इंदु सदस बरन, शांत कहावै सोय ।

उदाहरण

झूठौ धन धाम बाम पंच परिवार झूठौ,
झूठौ दिन रैंन छन घड़ी पल याम है ;
झूठे पट अंबर बिचित्र चित्र रंग झूठे,
झूठो हेम हीरा रत्न झूठौ द्रब्य दाम है ।
कहत 'बिहारी' झूठौ सकल समाज साज,
राखै ब्रजराज लाज सोई श्रेष्ठ काम है ;
झूठौ भ्रमजार झूठौ माया कौ पसार, झूठौ
जगत असार, सार साँचौ हरि-नाम है ।

❀ ❀ ❀

पेखौ परमातम बिहाय ग्रेह धातम कों,
आतम अनंद लेव बोलै बेद बानी है ;
कहत 'बिहारी' यह बिस्व कौ बिलास, सो तो
रहिबे कछू न एक कहिबे कहानी है ।
जांच जाँच देखौ तौउ साँच साँच मानत हौ,
साँच कौ न लेस झूँठ रचना दिखानी है ;
स्वप्न कैसी संपति पयोद कैसी छाया भाई,
बादी❀ कैसो खेल मृगतृष्णा कैसो पानी है ।

❀ ❀ ❀

मानकैं ललाट अंक बिधि के लिखे सो सत्य,
चिंतित रहै ना देखै माया के खिलौने है ;

❀ बादी = बादीगर ।

पाय के मनुष्य तन हरि कौ भजन करै,
सीधो चलै चाल बोलै बचन सलौने है।
कहत 'बिहारी' होत होतब* के हाथ सबै,
समझ परै न दिन कैसे कबै कौने है;
कौन ग्राम कौन ठाम कौन दिन कौन घड़ी,
कौन जाने कौन कों कहाँ धौ कहा हौने है।

* * *

धन्य तेरे नैन जो समस्तु बस्तु देख सकैं,
धृक तेरी दृष्टि जो न स्याम छबि छेमी† भौ;
धन्य तेरौ मुख जो अनेक कथ डारै कथा,
धृक तेरौ बोल जो न हरिगुन हेमी‡ भौ।
कहत 'बिहारी' धन्य पौरुष तिहारौ पूर्ण,
धृक तेरौ बल जो न धर्मब्रत नेमी भौ;
धन्य तेरौ भाग जो मनुष्य देह पाई, और
धृक तेरौ कर्म जो न कृष्ण-पद-प्रेमी भौ।

* * *

त्याग दुख द्वंद मोह ममता महत्त्व मित्र,
भज भगवंत भूरि भक्ति भाव भरकैं;
कहत 'बिहारी' तुच्छ धन मद माहिं डूब्यौ,
डगर में डोलै डग डारत न डरकैं।
तेरी कान बात भला साहसी सिकंदर से
साहौ सुख लूट औ' धरा पै धन धरकैं;
रंग रस पीते कर खेल जिय जीते दिन,
उमर के बीते गये रीते हाथ करकैं।

* * *

---

* होतब = होतव्यता। † छेमी = कुशल। ‡ हेमी = अनुरागी।

बैठे कहूँ जाय साधु सज्जन समाज बीच,
कीनौ ज्ञान गाथा फेर सुनबौ सुनायबौ ;
कहत 'बिहारी' जौ लौं भूल्यौ रह्यौ ध्यान चित्त,
भूल्यौ रह्यौ तौ लौं गेह धंधो धौर धायबौ ।
भई नेक देर सोई माया लियौ घेर, कहौ
कहा भयौ ऐसे सतसंग लाभ पायबौ ;
बारू कैसो भीत जोम घरे कैसौ स्वाद,
भई पानी कैसी रेख गजराज कैसौ न्हायबौ ।

* * *

प्रगट पुलस्त पौत्र रावण कियौ तौ प्रण,
स्वर्गलोक श्रेणी कों नसैनी लगवायँगे ;
खारे नीर सागर के स्वाद में सुधा से करैं
होतल दिवाकर कों सीतल बनायँगे ।
कहत 'बिहारी' ते बिचारते बिलाय गए,
समय के बीते कोई कहा कर पायँगे ;
काम जो जरूरे परमार्थ रंग रूरे, तिन्हैं
लोजौ कर पूरे ना अधूरे रह जायँगे ।

* * *

भूले भ्रमजाल में न ख्याल सत साधन को,
आय अवनीतल पै आखिर अचीते जात ;
अमन अबिद्या तामें रमन करैहो, फेर
गमन किये पै कहा जमन से जीते जात ।
कहत 'बिहारी' पगो प्रेम परमेश्वर के,
अमीरस त्याग बृथा बिषय बिष पीते जात ;

बिना रामभजड़ा घड़ी पल प्रति स्वाँसन पै
रोज रोज रीते जात यों ही दिन बीते जात।

❀ ❀ ❀

टोरत न आशा द्रव्य जोरत करोरन की,
संग ना चलैगो देह गेह चाँदी सोना है;
मानत नहीं है महा मूढ़ मतवारो मन,
जानत नहीं कै खाली खाल का खिलोना है।
कहत 'बिहारी' अरे भज भुवनेश्वर को,
रहना सचेत घड़ी चार का मिलोना❀ है;
धर्म-बीज बोना, व्यर्थ औसर न खोना, देख
मानस का छौना जानें होना कै न होना है।

इति रसवर्णनम्

अथ भाव-ध्वनि-निरूपणम्

रस की जहाँ प्रधानता, रसध्वनि सो ठहरात;
केवल भाव प्रधान से भावध्वनि हो जात।
सब भावन में मुख्य हो रस नृप रहत प्रधान;
सँग में सोहत अंगवत†, भाव भृत्य अनुमान।
कौनहु कौनहु समय पर भावहि होत प्रदीप;
ज्यों अखेट आगे छता, पाछें चलत महीप।

भावप्रधान का उदाहरण

बैठी तिय पिय-पद-कमल सेवत कर चित चोप;
यहाँ मुख्य रति भाव है, रस सुरूप हुय लोप।

❀ मिलोना = मेल। † अंगवत् = अप्रधान होकर। तात्पर्य यह है कि अंगी तो प्रधान है और अंग उसका सहायक है। यहाँ रसअंगी का भाव एक अंग है, भले ही वह प्रधान अंग क्यों न रहे।—संपादक

लगी टकटकी ललन दिसि, रही छबि छकी बाल ;
व्यभिचारी जडता यहाँ, प्रगटो भाव बिसाल।

यह बिधि औरौं जानियें भाव मुख्यता जोग ;
पूरब सब लच्छन कहे, लख लोजौ कबि लोग।

रसाभास

जहँ कहुँ अनुचित रीति से रस बर्णत रस होय ;
रसाभास ताकों कहत कबि कोबिद सब कोय।

उदाहरण

मन की संज्ञा क्लीब* लख, पठयौ कर बिस्वास ;
सोइ न आयो अजहुँ लग, रम्यौ रमनि के पास।

भावशांति

जहाँ कहूँ जिहि भाव की पूर्ण शांति ह्वै जाय ;
भावशांति ताकौं कहत सुकबिन के समुदाय।

उदाहरण

तब लग आए पवनसुत, दई सजीवन मूर ;
लखन जगे, प्रभु सुख पगे, भगे सोक दुख दूर।

यहाँ शोक-भाव की पूर्ण शांति है।

भावोदय

जहाँ कहूँ जिहि भाव कौ उदय होय जिहि ठौर ;
भावोदय तासों कहत कबि-कोबिद-सिरमौर।

---

* यहाँ क्लीब (नपुंसक) का रमण करना रस के विरुद्ध हुआ, तथापि कवि-प्रौढोक्ति रस-द्योतक है, अतएव यह रसाभास है। अथवा जैसा कि श्रीगोस्वामीजी ने रामायण में कहा है—

नदी उमँगि अंबुधि कहँ धाई ; संगम करहिं तलाव-तलाई।
पशु-पक्षी नभ-जल-थल-चारी ; भए काम-बस समय निहारी।

यहाँ नीच श्रेणी के जीवों तथा जड़ पदार्थों में शृंगार दिखलाया गया है, अतएव यह रसाभास है। इसी प्रकार और भी जानो।

उदाहरण

कहा तरुनि तन तक रहे, गहे न गृह की बाट ;
लगन देत किन लाडिले टीकौ ललित ललाट ।

नायक के समीप होने से नायिका को रति-कंप तथा स्वेद-भाव उदय होता है, इस कारण तिलक टेढ़ा भी लगकर स्वेद-जल से बह जाता है, अतएव यहाँ भावोदय हुआ ।

भाव संधि

जुगल भाव इक साथ ही मिलें परस्पर आय ;
भाव-संधि तासों कहत कवि-पंडित-समुदाय ।

उदाहरण

काम-कहर ऊँची उठत लाज-लहर दबि जाति ;
नेह-नहर में भावती भँवर परी बिकलाति ।

यहाँ मध्या नायिका को रति तथा लज्जा दोनों भाव प्राप्त हो रहे हैं । इसी प्रकार दोनों भावों की संधि को भाव-संधि कहते हैं ।

भाव-सबलता

भाव अनेकन लख परैं, इक दो के पश्चात ;
भाव-सबलता तिंहि कहैं, कबि-कोबिद-अवदात ।

उदाहरण

आय अचानक आँगन पिय लई अंक तिय धाय ;
हँसी, खिसी, रूसी, रसी, लजी, भजी सतराय ।

यहाँ क्रोध, हर्ष, लज्जा आदि कई भाव एक दूसरे के पश्चात् आए, अतः यह भाव-सबलता है ।

भेद भाव ध्वनि के यहाँ पृथक कहे रस हेत ;
कोऊ कछु भूषण बिषैं इनकी गणना लेत ।
गुणीभूत के भेद यह कोऊ कहत बिचार ;
दृश्य काव्य में है कियौ इनकौ अति बिस्तार ।

इति रसभावअसंलक्ष्यक्रमध्वनिः समाप्ता ।

अथ रसगुणवर्णनम्

दृश्य-श्रव्य द्वै नाम सें काव्य उभय बिधि होत ;
त्यों ही गुन द्वै बिधि कहत जे कबि जग जस जोत ।
दृश्य काव्य के गुन सरस तीन भाँति गन लेव ;
श्रव्य काव्य शब्दार्थ गुन दस बिधि के चित देव ।
काहू कबि नव बिधि कहे, काहू दस बिधि कीन ;
ते आगे कहिहौं सकल लखियौ सुकबि प्रबीन ।
रस - गुन भाषत हौं प्रथम तीन तासु के नाम ;
ओज बहुरि माधुर्य कह पुनि प्रसाद गुनधाम ।

ओज-लक्षण

ओज कहत हैं वाह जोन बिक्रम दरसावै ;
श्रोतन के चित माहिं दीप्ति बिस्तृनता लावै ।
सर्ब बर्ग के बर्ण प्रथम सें दुतिय मिलावै ;
बहुरि तृतिय सें चतुर बर्ग अक्षर जुग लावै ।
कह कबि 'बिहार' श-ष-रेफयुत गुरु समास, ट ठ-ड-ढ धरै ;
बीभत्स - बीर - रौद्रादि कौ यह गुन सें बर्णन करै ।

उदाहरण तुलसी-कृत

भए क्रुद्ध जुद्ध बिरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे ;
कोदंड-धुनि सुनि चंड अति मनुजादि भय-मारुत-ग्रसे ।
मंदोदरी उर कंप कंपित कमठ भूधर अति त्रसे ;
चिक्करहिं दिग्गज दसन गहि महि देखि कौतुक सुर हँसे ।

माधुर्य-लक्षण

मधुर महा माधुर्य अधिक आह्लादित कीबै ;
चित्त होय रस आर्द्र परम पूरन सुख दीबै ।

रस शृँगार अरु शांत बहुरि करुणा में कहिये ;
क-च-त-प-निज निज बर्ग बर्ण अंतहु के लहिये।
कह कबि 'बिहार' र-ण-लघु सहित अनुस्वार पद दीजिये ;
किंचित समास दीजे कि पुनि बिन समास रच लीजिये।

❁ ❁ ❁

कबिता यह माधुर्य की रस बिच कहो समेत ;
तद्यपि एक उदाहरण तुलसी-कृत कौ देत।

❁ ❁ ❁

कंकन-किंकिनि-नूपुर-धुनि सुनि ;
कहत लखन सन राम हृदय गुनि।
मानहु मदन दुंदभी दीनी ;
मनसा बिश्व-बिजय कहँ कीनी।

प्रसाद-लक्षण

सो प्रसाद-जो अधिक सरल कबिता छबि छावै ;
सुनत मात्र ह्वा शब्द अर्थ कौ बोध लखावै।
सूखे इंधन माहिं अग्नि ज्यों देर न लावै ;
भूमि ढार जिमि पाय नीर आपुहिं चलि जावै।
कह कबि 'बिहार' त्यों रसन में सब रचना बिच भाखिये ;
अरु सब समास में सम्मिलित सुद्ध सरलता राखिये।

इति रसगुणवर्णनम्

अथ वृत्तिरीति वर्णनम्

भिन्न भिन्न आचार्य मत वृत्ति रीति पहचान ;
भिन्न भिन्न लच्छन कहे ते इत करत बखान।

अच्छर रचना समय कोउ पंच बृत्ति गन लेत ;
तीन बृत्ति कोऊ गनत तिनके लच्छन देत।

अन्यमतेन रसवृत्तिः

इक मधुरा प्रौढ़ा द्वितिय तीजो परुषा जान ;
चौथी ललिता भद्रिका पंचम बृत्ति प्रमान।

मधुरा

बर्ग बर्ण अनुस्वारयुत ह्रस्व सहित र-ण होय ;
पुनि संयोग लकार कौ मधुरा कहिये सोय।

उदाहरण

कुंज कुंज प्रति गुंज अलि छकि सुगंध छबि देत ;
मुदित मल्लिका मधुर मधु बसि छाकत रस लेत।

प्रौढ़ा

य-ण-जुत अच्छर बर्ग के रेफ सहित रच लेव ;
पंचम तीजो बर्ग के बर्ण मिले नहिं देव।
रचत बर्ग के बर्ण रुचि रखहु ककार यकार ;
प्रौढ़ा बृत्ती कहत हैं ताहि सुबुधिआगार।

उदाहरण

कर्म लखहिं पति सेव सुचि, धर्म लखैं पति ध्यान ;
चित्त लगावहिं चरन प्रति सत्य सतीं तिय मान।

परुषा

ऊपर बर्ग सकार के सकल बर्ण गन लेव ;
ऊपर के नीचे तेऊ रेफ सहित धर देव।

दोउ हकार समेत कर श-ष-अधिकता होय ;
ताकौं परुषा कहत हैं कबि-कोविद सब कोय।

उदाहरण

बिस्तृत दल अस्त्रन दलित, निश्चल किय रनधीर ;
मुदित अपसरागन तबै हृदय सराहहिं बीर।

ललिता

पंच बर्ण ध - भ - द - र - स लघु मिले लकार रकार ;
सो ललिता लच्छ गनो भद्रा शेष बिचार।
उपनागरिका कोमला, परुषा बृति प्रमान ;
इनहो के अंतर लखौ नाम भेद पहचान।

❀ ❀ ❀

जो अच्छर माधुर्य के कोने प्रथम बखान ;
उपनागरिका बृत्ति के सोई लो पहिचान।
उपनागरिका बृत्ति अरु गुन माधुर्य सुरूप ;
होत हास्य-शृंगार में करुणा मध्य अनूप।

❀ ❀ ❀

जो अच्छर गुण ओज के प्रथम कहे समुझाय ;
सो परुषा के जानिये बरणौं कबि समुदाय।
यह परुषा अरु ओज गुन बिलग होत कहुँ नाहिं ;
होत बीररस रौद्र में बहुरि भयानक माहिं।

❀ ❀ ❀

यहै कोमला बृत्ति अरु वहै सु गुण परसाद ;
बर्ण रूप बिच एक है ब्यापक रसन सवाद।
बीभत्स-अद्‌भुत-शांत में कांति कोमलता देत ;
गुण प्रसाद के संग मिलि सब रस कौ रस लेत।

❀ ❀ ❀

वृत्ति-रस-सम्मेलन

करुणा शांत शृँगारहु लहिये ;
इनमें मधुरा बृत्ती कहिये।
बीर भयानक रौद्रहु माहीं ;
प्रौढ़ा परुषा बर्णं सदाहीं।
ललिता भद्रा और सब शेष रसन में लेव ;
अब आगे रस काव्य की रीति चतुर चित देव।

अथ चतुर्विधि रीति-वर्णन

कबिता में पद अर्थ की संघटना अति होय ;
तौन सरस समुदाय को रीति कहत कबि लोय।
बैदर्भी गौड़ी तथा लाटी नाम मिलाय ;
पांचालीयुत चार ये रीति गनत कबिराय।

वैदर्भी

जहाँ बिलोकै बिलग पद नहिं समास की जोत ;
सो बैदर्भी रीति यह रस शृँगार में होत।

गौड़ी

अष्ट नवादिक पदन कौ जहँ समास दरसाय ;
तहाँ रसन बीरादि में गौड़ो रीति कहाय।

लाटी

पंच तथा पद सप्त लगि जहँ समास सुखधाम ;
शेष रसन में रीति कौ कहिये लाटी नाम।

पांचाली

होय चार पद लग जहाँ कछु समास गनि लेव ;
अन्य रसन में रीति तहँ पांचाली चित देव ।

अन्यमतेन वृत्तिरीति संयुक्त रीति

मधुरा बैदर्भी मिलैं, बैदर्भी चित ल्याव ;
प्रौढ़ा अरु गौड़ो मिलैं, गौड़ी रीति गनाव ।
ललिता लाटी के मिलैं, लाटी रीति बखान ;
भद्रा पांचाली मिलें, पांचाला पहिचान ।
चार बृत्ति परुषा रहित, चार रीति में जोग ;
रीति नाम उपरोक्त कहैं, कोउ कोउ कबि लोग ।
यह समास कौ नियम दृढ़, सुरबानी में होय ;
तासें यह रीतीन कौ कथन करत कबि लोय ।
पर प्रसिद्ध भाषा बिषै नहिं समास की चाल ;
उदाहरन तासों पृथक, बरनें नहो बिसाल ।
पूर्व रीति गुन रसन के दृश्य काव्य के दीन ;
श्रव्य काब्य गुन अब कहत समझौ सुकबि प्रबीन ।
वाक्य रसात्मक काब्य के शब्द अर्थ गुन दोय ;
ते दस बिधि बर्णन करत कहूँ कहूँ कबि लोय ।

अथ दशगुणवर्णनम्

श्लेष - समाधि - उदारता, समता ओज प्रमान ;
सौकुमार्य माधुर्य अरु कांति प्रसाद बखान ।
अर्थब्यक्ति संयुत कहे ये दसगुन के नाम ;
गुन भूषन के मेल में मिलत कछू अभिराम ।

कछु लच्छन हैं नाम में कछु गुन में गुन लीन ;
उदाहरन लच्छन नहीं तासों कहे नवीन ।

काव्य-दोष

सुर-बानी बिच बिबिध महाकबि काव्य बनाये ;
तिनमें तीन प्रबीन अग्र आचार्य गनाये ।
दंडी इक इक भरत एक भामहँ लख लीजे ;
तीनहु नाम प्रसिद्ध ग्रंथ इनके लख लीजे ।
कह कबि 'बिहार' इन निज भनित काव्य-दोष बहु निर्मये ;
पर नाम परसपर भिन्न हैं कछू कछू मीलित भये ।

❀ ❀ ❀

प्रथम कहत गूढ़ार्थ बहुरि अर्थांतर धारौ ;
अर्थहीन भिन्नार्थ पुनः एकार्थ बिचारौ ।
अभिप्लुतार्थ समेत न्यायहीनहु चित दीजे ;
विषम विसंधि विलोक शब्दच्युत दसहु गनीजे ।
कह कबि 'बिहार' आचार्य इमि बरनें दोष प्रमानिये ;
अब बहुरि अन्य मत के कहत इनके क्रम इक मानिये❀ ।

❀ ❀ ❀

कविवर काव्यादर्श में कहे दोष कछु मान ;
त्यों काव्यालंकार में वर्णन किये समान ।
दंडी रुद्रट कथन में नेकहु लख्यौ न फेर ;
तासें कछु वर्णन करत समझौ दोउन केर ।

❀ ❀ ❀

❀ प्राचीन आचार्य-कृत—

गूढार्थमर्थान्तरमर्थहीनं भिन्नार्थमेकार्थमभिप्लुतार्थम् ,
न्यायादहीनं विषमं विसन्धि शब्दच्युतं वै दश काव्यदोषाः ।

प्रथमहिँ कहत अपार्थ व्यर्थ एकार्थ बखानो ;
बहुरि ससंशय युक्त अपक्रम हू पहिचानौ।
शब्दहीन यतिभ्रष्ट भिन्नवृत्तहु निरधारी ;
बहुरि विसन्धिक सहित नाम लख लेव 'बिहारी'।
पुनि देश काल अरु कलायुत लोकन्याय आगम कहत ;
ये षटहु विरोधि विचार कर दश षोडश विधि यों कहत*।

अपार्थ-लक्षण और उदाहरण

चरन चरन प्रति ठीक अर्थ पद में प्रबद्ध हो ;
पर सम्पूरन पद्य अर्थ यदि असम्बद्ध हो।
कहियत याहि अपार्थ दोष यह कबहुँ न दीजे ;
उदाहरन हू सुकबि कृपा कर यों लख लीजे।
कह कबि 'बिहार' "ज्ञानी अमर" "बंसीबट सोभा अजब" ;
"श्रीराम उठहु भंजहु धनुष" "पारथ किय भारत गजब"†।

* * *

जो कदाच कहुँ मद्यपी कह इमि अनगढ़ बात ;
तौ वा मुख से' दोष यह गुन-सुरूप हो जात।

---

* अपार्थंव्यर्थमेकार्थं ससंशयमपक्रमम् ;
शब्दहीनं यतिभ्रष्टं भिन्नवृत्तं विसन्धिकम् ;
देशकालकलालोकन्यायागमवि रोधि च।

† अपार्थ-लक्षण

समुदायार्थशून्यं यत्तदपार्थमितीष्यते ;
तन्मत्तोन्मत्तबालानामुक्तेरन्यत्र दुष्यति।
अर्थ न जाकौ समझिये, ताहि अपारथ जान ;
मतवारे उन्मत्त शिशु कैपे बचन बखान। (कविप्रिया)

उदाहरण

समुद्रः पीयते देवैरहमस्मि ज्वरातुरः ;
अमी गर्जन्ति जीमूताः हरेरैरावतः प्रियः।
पिये लेत नर सिंधु कों है अति सज्वर देह ;
ऐरावत हरिभावतो देखौ गर्जत मेह। (कविप्रिया)

व्यर्थ

एक पद्य में होय जहँ पूर्वापरहु* बिरोध;
व्यर्थ दोष तासों कहत जे कबि सुमति-सुबोध।

उदाहरण

स्वप्न में मिलिये अवश निद्रा न पास बुलाइये;
मौंन ही रहिये प्रिये वह गीत तौ फिर गाइयें।
व्यर्थ दोष पद होयँ यदि भाव दूसरे देयँ;
तौ कहुँ कहुँ यह दोष कों कबिजन गुन गन लेयँ।

यथा निर्वाण-पद

भिखारो बनों डोलै रे होकैं साहुकार;
अजब तमाशा देखा यारौ थल में मीन किलोलै।
निरमल रंग रँगै रँगरिजवा भाजन पंक मलिन जल घोलै॥ होकैं०
सुघर जौहिरी रूप रँगीलौ हीरा जान न मोलै।
सूरबीर सम्मर सें भाजत पंडित छोड़हि बेद अमोलै॥ होकैं०
आँखनवारौ आँखन देखौ चालत पंथ थथोलै।
सिंह आपनी सिंहनाद तज रोष छोड गाड़र जिमि बोलै॥ होकैं०
यह पद है निर्बान 'बिहारी' यह झीने पट झोलै।
सो साधू सो जती जानियें जो सुजान यहि भेदहिं खोलै*॥ होकैं०

एकार्थ

जहँ कछु बिनहि बिशेषता कहै कहे कों फेर;
एकारथ तिहि दोष को नाम कहत कबि हेर।

---

* यद्यपि इसमें पूर्वापरविरोधी शब्द आए हैं, जिससे यह व्यर्थ-दोष कहा जा सकता है, परंतु भावार्थ में इसके आत्मदर्शन सिद्ध होता है, इस कारण यह दोष न कहकर गुण कहा जायगा।

उदाहरण

बिकसत चहुँ अरबिंद, खिले अरुन छबि राजहीं ;
गुंजत मधुर मलिंद, फूले कमल तड़ाग लख ।

इस एकार्थ-दोष को पुनरुक्ति, अनवीकृत, कथितपद आदि भी कहते हैं ।

कहो प्रथम अरु पुनि कहै अर्थ दूसरौ पाय ;
तहाँ दोष एकार्थ यह गुन-सुरूप हो जाय ।

यथा

बरसौंहें घन लख रही बरसौंहें ब्रजबाल ;
बरसौंहें कौ अर्थ इत दूजौ प्रगटो हाल ।

यहाँ बरसौंहें शब्द दो बार आया है, परंतु एक का अर्थ है बरसनेवाले, और दूसरे का अर्थ है वर (नायक) के सम्मुख, इस कारण यहाँ एकार्थ-दोष मिटकर गुण ही हुआ ।

अपक्रम

क्रम कौ बर्णन छोड़कर बिन क्रम बरणें चीन ;
सोइ अपक्रम दोष है याहि कहत क्रमहीन ।

उदाहरण

आनन लोचन नासिका निरख तिहारे बीर,
लालन चित चाहत नहीं खंजन कंजन कीर ❀।

यहाँ दोहे के पूर्वार्द्ध में आनन (मुख) से क्रम है, इसी क्रम के अनुसार उत्तरार्द्ध में कमल उपमान शब्द होना चाहिए, परंतु इसके विरुद्ध खंजन शब्द कहा गया है, अतः इसी का नाम अपक्रम—क्रम-हीन दोष है।

❀ अपक्रम का उदाहरण महाकवि दंडी तथा केशवदासजी का समान मिलता है। यथा—स्थितिनिर्माणसंहारहेतवो जगतामयी ; शम्भुनारायणा-म्भोजयोनिरः पालयन्तु वः। (दण्डी)

अर्थात् यहाँ निर्माण, स्थिति और संहार के हेतु यथाक्रम ब्रह्मा, विष्णु, महेश नहीं कहे गए, अतः यही अपक्रम दोष कहलाता है ।

❀ ❀ ❀

जग की रचना कहु कौन करी ; किहि पालन की पुनि पैज धरी ।
अतिकोप कैं कौन सँहार करै ; हरिजू हरजू, विधि, बुद्ध ररै ।

(कविप्रिया)

शब्दहीन

प्रथम पंक्ति में तूँ कहै पुनि तुम करै बखान ;
यों संबोधन देय जहँ शब्दहीन सो जान ।

उदाहरण

ना तूँ जल देवै भरन ना तुम करहु बिचार ;
अनआदर सादर बचन शब्दहीन सो सार ।

यतिभ्रष्ट (यतिभंग)

शब्द चरन बिश्राम को दुतिय चरन लग जाय ;
यतीभ्रष्ट सो जानिये अरु यतिभंग कहाय ।

उदाहरण

जय जय राधारमन गो, बिंद जयति नँदलाल ;
जय त्रिभुवनपति स्याम बाँ, सुरी धरन गोपाल ।

विसन्धिक

संधि दोष आवै जहाँ कहत बिसंधिक ताहि ;
भाषा में कहुँ कहुँ मिलै अधिक संस्कृत माहि ।

अनुचित प्रतिपादन षट्प्रकार

अनुचित प्रतिपादन यहै षट्बिधि कहत बिबेक ;
देस-बिरोधी एक है काल-बिरोधी एक ।
कला-बिरोधी जानिये लोक-बिरोधी होय ;
न्याय-बिरोधी के महिन बेद-बिरोधी सोय ।

देश-विरोध

मरुत देस सरिता चलत बारह मास प्रबाह ;
निर्जल थल में जल कह्यो देस-बिरोध कहाह ।

कहुँ कहुँ कबि-कौशल्य से दोषहु गुन हो जाय ;
सुरगन नीर प्रयाग में जात नहाय नहाय।

अर्थात् पृथ्वी पर देवताओं का स्नान-वर्णन देश-विरुद्ध दोष है, परंतु प्रयाग की महिमा द्योतक होने के कारण गुण है।

काल-विरोध

दिन में कह संपुट कमल निसि में कुमुद बिलाय ;
बर्णन समय बिरुद्ध से काल - बिरोध कहाय।
कहुँ कहुँ कबि-कौशल्य से दोषहु गुन हो जाय ;
दसकंधरपुर दिवस ही गिरे नखत-समुदाय*।

अर्थात् दिन को तारागणों का वर्णन काल-विरोध-दोष है, परंतु लंका में अनिष्ट-सूचक होने से गुण है।

कला-विरोध

प्रकृति कला से भिन्न जो कला-बिरोध कहाय ;
किसलय जड़ संध्या धवल किहि बिधि बरनी जाय।
कहुँ कहुँ कबि-कौशल्य से दोषहु गुन हो जात ;
अरी आज यह सोतकर लग्यौ तपावन गात।

यहाँ शीतकर (चंद्रमा) को तप्त वर्णन करना कला-विरुद्ध-दोष है, परंतु विरह-पीड़ित नायिका की उक्ति से गुण है।

न्याय-विरोध

न्याय - बिरोधी जानिये बरनें न्याय - बिरोध ,
ज्यों तारा मदोदरी करै सती सम बोध।

---

* पुनः उदाहरण श्रीगोस्वामी तुलसीदास-कृत। यथा—

सेन - सहित उतरे रघुबीरा ; कहि न जाय कपि-यूथप भीरा।
सिंधु-पार प्रभु डेरा कीना ; सकल कपिन कहँ आयसु दीना।
खाव जाय फल मधुर सुहाये ; सुनत भालु कपि जहँ-तहँ धाये।
सब तरु फले रामहित लागी ; ऋतु अनऋतुहि काल-गति त्यागी।

अर्थात् कुसमय पर वृक्षों का सफल और सपुष्प-वर्णन करना काल विरोध-दोष है; परंतु यहाँ श्रीरामजी की महिमा द्योतक होने के कारण गुण है।

संसकार नस्वर अहै कहै एक रस ताहि;
न्याय-बिरोधी बचन यह न्याय-बिरोध कहाहि।
कहुँ कहुँ कबि-कौशल्य से दोषहु गुन हो जात;
जो निर्गुन सोई सगुन जानों निश्चय बात।

अर्थात् जो निर्गुण है; वह सगुण हो नहीं सकता। यदि उसको सगुण कह दिया जाय, तो न्याय-विरोध दोष होता है; परंतु ईश्वर में अघटित घटना समर्थ होने के करण निर्गुण, सगुण दोनों शब्द योजित हो सकते हैं। अतएव यहाँ न्याय-विरोध-दोष न होकर गुण माना गया है।

"जय सगुण निर्गुण रामरूप अनूप भूपसिरोमणी।" (तु० कृ०)

आगम-विरोध

प्रथमहि पढ़िये बेद सब, पुनि कीजें उपवीत;
यह आगमहु बिरोध है, बेद-रहित यह रीत।

❀ ❀ ❀

ग्रामदेव सब पूज कें, पुनि पूजौ भगवान;
यह आगमहु बिरोध है, बेद-रहित यह बान।
कहुँ कहुँ कबि-कौशल्य से दोषहु गुन हो जात;
मरा मरा मुख से कहत, मिले मुनिहिं जग-तात।

❀ ❀ ❀

काव्य-दोष दस बिधि कहे, षट बिरोध निरधार;
सब मिल षोड़स बिधि भये, लीजो सुकबि सुधार।
इन दोषन सें हू अधिक और दोष कबि गायँ;
पर इनसें उन अधिक में कछु प्रधानता नायँ।
तासें सब बर्णत नहीं, ज्ञान इते सब देत;
तदपि और कछु लिखत हौं बोध बालकन हेत।

प्रतिकूलाक्षर-दोष-लक्षण

प्रतिकूलाक्षर कर्णकटु, यह द्वै एक समान;
अनुचित रस बर्णन करैं, प्रगट होत यह आन।

जैसे रस शृंगार में करै टवर्ग प्रयोग ;
तो समुझौ वह कर्णकटु, प्रतिकूलाक्षर जोग ।

पंथ-विरोधी*

अली तिहारो तन भरो, शोणित रंग समान ;
कबि बर्णन मारग तजो, पंथ - बिरोधी जान ।
याहि अवाचक कहत हैं, अप्रयुक्त हू नाम ;
शब्दारथ अनुचित यहो, जानहु कबि गुनधाम ।

ग्राम्य दोष†

आज करत तू कौन पै, नैंन ठोंठरे बीर ;
शब्द ठोंठरे में लखो ग्राम - दोष मतिधीर ।

---

* "पंथ-विरोधी अंध", "शब्द-विरोधी वधिर" और "छंद-विरोधी पंगु" ये दोष केशवदासजी-कृत 'कविप्रिया' में वर्णित हैं। कवि की जो ख्याति है, वही कवि का पंथ है, उसके विरुद्ध वर्णन को "पंथ-विरोधीअंध" कहते हैं। जैसे नेत्र, अधर, उरोज, क्रमशः चंचल, मधुर, कठोर, वर्णनीय है, परंतु चंचलता में खंजनादि-से न कहकर वानर-से कहना और मधुरता में अमृत-से न कहकर माखन-से कहना और कठोरता में कंज-कली-से न कहकर खिले कमल-से कहना कवि-पंथ के विरुद्ध है, और देखा नहीं, इसलिये अंध है। अस्तु। इस प्रकार के वर्णन को "पंथ-विरोधी अंध" कहते हैं।

"शब्द-विरोधी वधिर" अर्थात् कविता में जो शब्द-संगठन किया गया, वह विरोध अर्थ का सूचक हो, जैसे "गोत्रसुता अरधंग धरी है" (केशव) अर्थात् गोत्र नाम पर्वत का उसकी सुता पार्वती तिनको शिवजी अर्धांग में धारण किए हैं। किंतु इन्हीं शब्दों से दूसरा विरोधी अर्थ यह भी प्रकट होता है कि अपने गोत्र की कन्या को अर्द्ध अंग में धारण किए हैं। यह महान् अनुचित है, अतएव इस प्रकार के शब्द-प्रयोग को "शब्द-विरोधी वधिर"-दोष कहते हैं। इसी के अंतर्गत वाक् छल और अव्याहत दोष होता है "छंद-विरोधी पंगु" जहाँ छंदशास्त्र के नियम-विरुद्ध पद-योजना की जाय, उसे "छंद-विरोधी पंगु" कहते हैं। इत्यादि और भी जानो।

† कविता में ग्रामीण शब्द जहाँ कहीं आ जायगा, वहाँ ग्राम्य दोष कहा जायगा, किंतु वही ग्रामीण शब्द यदि अलंकार-युक्त होकर रोचकता का प्रतिपादन करता है, तो वह कवि-कौशल्य के कारण दोष की अपेक्षा गुण-रूप हो जाता है, जैसे अगले दोहे में घँघूरत शब्द सानुप्रास आयोजित हुआ है। पुनर्यथा—

सज्जन पै सौ-सौ चलै, शठ पै चलै, न एक ;
ज्यों रहीम पाखान पै ठाटी ठटै न मेख ।

यहाँ ठाटी और ठटै ग्रामीण दोष-सूचक शब्द हैं, परंतु चमत्कार-पूर्ण प्रयोग होने से दोष की अपेक्षा गुण कहा जायगा। यही कवि का कौशल्य है। इसी प्रकार और भी जानो।

ग्राम-दोष भूषन मिलें कहुँ-कहुँ गुन दरसात ;
धन अंगद रन यातुधन घमक धधूरत जात ।

कष्टार्थ

अर्थ कष्ट सें जिहि मिलें अप्रतीत हू होय ;
कुरस अर्थ निकसै जहाँ कष्टारथ गुन सोय ।

उदाहरण

खड़ी नारि इक पाँव सें सीस एक स्रुति चार ;
अर्थ लगाये लवँग भइ, यह कष्टार्थ बिचार ।
किसा कहानी औरहू कष्टारथ यह जान ;
सत्कबि इनको अधिकतर नाहिन करत बखान ।

छंदाभंग

छंदभंग अरु सिथिल पद, ये दुउ एक अभिन्न ;
मिलत रूप यतिभंग में, तासें कहत न भिन्न ।

अभवन्मत योग

जित तित जिन्ह तिन्ह शब्द कौ रखै न उचित प्रबंध ;
सो अभवनमत दोष है, जानत कबि संबंध ।

उदाहरण

तिन बाँधौ सागर यहै, जिनकौ है यह दास ;
तिनकौ शब्द अयोग भौ अभवनमत इमि भास ।

अर्थात् जिन्होंने समुद्र बाँधा है, तिनका यह दास है, जिनके पश्चात् तिन कहना था, किन्तु इसके विपरीत तिन के बाद जिन का प्रयोग किया, अतः यही अभवन्मत दोष है ।

और अनेकन काव्य के दोष बखानैं जाहिं ;
कबिता तौ निरदोष हू कालिदास की नाहिं ।

पर वे दोष न राखिये, जिनसों बिगरत छंद ;
निरबिकार निरदोष तौ केवल श्रीनँदनंद ।

इति दोषप्रकरणम्

रस भावादिक दोषु गुन बृत्ति रीति बहु अंग ;
भई सिंधु साहित्य की पूग्न नवम तरंग ।

स्वस्ति श्रीमन्महाराजाधिराज श्रीकाशीश्वर प्रहनिवार पंचम विन्ध्येलवंशावतंस
श्रीमत्सवाई महाराजा साहब भारतधर्मेन्दु सर सावंतसिहजू देव बहादुर
के० सी० आई० ई० बिजावरनरेशस्य कृपापात्र ब्रह्मभट्ट-
वंशोद्भव कविभूषण कविराज पं० बिहारीलालविरचिते
साहित्यसागरे रसगुणदोषवृत्तिरीत्यादि
प्रकरण वर्णनो नाम नवमस्तरंगः ।

* दशम तरंग *

अथ अलंकार-वर्णन

अलंकार-लक्षण

जहाँ बाक्य बर्णन करै चमत्कार के संग ;
अलंकार तासों कहत जे जानत सब अंग।
अरथ माँहिं वा शब्द में अथवा द्वै में होय ;
रोचक लागे कहे से, अलंकार है सोय ❀।

प्रथम अरोचक वाक्य—उदाहरण

ज्यों काहू कह दीन, यहै नृपति दानी लख्यौ ;
बाक्य चमत्कृत-हीन, अलंकार यह नहिँ भयौ।

रोचक वाक्य—उदाहरण

ज्यों कोऊ कह आय, कर्ण-रूप यह नृप भयौ ;
बाक्य चमत्कृत भाय, अलंकार याकों कहत।
केते सुंदर बरनयुत, केते गुनयुत होय ;
भूषन बिन सोहत नहीं, कबिता कामिनि दोय।

❀ अलंकार—'अलंकरोतीत्यलंकारः' के अनुसार यद्यपि अलंकृत करनेवाली संपूर्ण वस्तुएँ अलंकार के अंतर्गत गिनी जाती हैं, परंतु यहाँ अलंकार शब्द का रूढ़ि से यह अर्थ है कि जो काव्य के अर्थ और शब्द दोनो पर पृथक्-पृथक् रूप में भी और संयुक्त अवस्था में भी सान चढ़ाकर उनमें कुछ चमत्कार-पूर्ण ऐसी शोभा झलका देता है, जैसे हार अथवा अन्य शोभनीय आभूषण सुंदर शरीर की शोभा बढ़ाते हैं। इसीलिये अलंकार को प्राचीन महान् विवेचकों ने शोभाकर माना है।—संपादक

सरल सरस पद गति मधुर, भूषन गुन-युत होय ;
पूरे पुन्यन मिलत इमि कबिता कामिनि दोय ।

अलंकार के मुख्य भेद

अलंकार हैं तीन बिधि, प्रथम शब्द के जान ;
द्वितिय अर्थ के समझिए, तृतिय उभय बिधि मान ।
प्रथम शब्द पहले परत, पीछे प्रगटत अर्थ ;
शब्द ब्रह्म अक्षर अगम, जानत सुकबि समर्थ ।
प्रथम शब्द पीछे अरथ, रूप नाम अनुसार ;
तासों बरनैं प्रथम ही भूषन शब्द प्रकार ।

शब्दालंकार

शब्दहि के योगादि से शब्दहि हो सुखसार ;
शब्दहि में सोभा सजै, सो शब्दालंकार ।

अर्थात्—शब्दों के योग से शब्द ही में रस का सारांश प्रकट होकर शब्द ही से शोभा तथा चमत्कार बढ़े, उसे शब्दालंकार कहते हैं। शब्दालंकार में उस शब्द का पर्यायवाची शब्द दूसरा यदि बदलकर रख दिया जाय, तो अर्थ मे कोई त्रुटि नहीं होगी, परंतु उस शब्द में जो चमत्कार अलंकार का भरा हुआ है, वह लोप हो जायगा।

यथा उदाहरण

सरस सरोवर काहिं सरस ताल कह भाषिए ;
अर्थ त्रुटी कछु नाहिं, पर सकार-रस-लोप भौ ।

सरस सरोवर इस वाक्य में सरोवर के स्थान पर यदि इसी का पर्यायवाची शब्द ताल रख दिया जाय, तो अर्थ सरोवर ही का निकलेगा, परंतु सरोवर सरस मे आदि आदि की सकार का जो चमत्कार है, जिसे 'छेकानुप्रास'-अलंकार कहते हैं, वह लोप हो जायगा ; इस कारण विद्यार्थियों को स्मरण रखना चाहिये कि शब्दालंकार का चमत्कार शब्द ही पर निर्भर है।

शब्दालंकार के भेद

सो शब्दालंकार के दस बिधि नाम बिकास ;
अनुप्रास अरु चित्र वह पुनरुक्ती परकास ।

बदाभास पुनरुक्ति कह अरु प्रहेलिका सोय ;
भाषासमक यमक सहित, बक्रोक्ती पुनि होय ।
संयुत बिप्सा श्लेष यह दस बिधि नाम बखान ;
उदाहरन लच्छन-सहित आगे करत बखान* ।

अनुप्रास

स्वर को सम्मेलन जहाँ चाहै होय न होय ;
ब्यंजन की समता मिलै अनुप्रास है सोय ।
अनुप्रास सो पाँच बिधि प्रथम छेक मन मान ;
बृति स्रुति लाट समेत हूँ अन्य नाम पहिचान ।

छेकानुप्रास

अक्षर एक अनेक की आबृति छिक छिक पास ;
आदि अंत आवै कहूँ, सो छेकानुप्रास ।

उदाहरण

लख रुचि राई रूप की समसर काहु न कीन ;
चंप चप्यौ, दामिनि दुरी, भयौ छपाकर छीन ।

यहाँ चंप चप्यौ, दामिनि दुरी, छपाकर छीन, इन शब्दों के आदि-आदि मे च की द की छ की आवृत्ति छिक छिक के हुई अर्थात् च की आवृत्ति छिककर पुनः द की आवृत्ति हुई, फिर छ की हुई, इसी प्रकार और भी जानो ।

---

* शब्दालंकार दस प्रकार के माने जाते हैं—(१) अनुप्रास, (२) चित्र, (३) पुनरुक्ति प्रकास, (४) पुनरुक्ति वदाभास, (५) प्रहेलिका, (६) भाषा-समक, (७) यमक, (८) वक्रोक्ति, (९) वीप्सा और (१०) श्लेष । इस विषय में ग्रंथकार ने प्राचीन प्रामाणिक महान् आचार्यों और विवेचकों के मतों का अवलोकन कर उन्हीं का अनुगमन किया है ।—संपादक

उदाहरण

जे हरि हाथ न आवहीं, ते हरि चेत अचेत ;
ब्रजनारिन द्वारिन खरे माखन चाखन हेत*।

यहाँ नारिन, द्वारिन, माखन, चाखन, इन शब्दों के अंत मे र, न, ख, न की आवृत्ति छिक-छिककर हुई, अतः यह छेकानुप्रास-अलंकार हुआ। इसी प्रकार और भी जानो।

वृत्यनुप्रास

स्वर व्यंजन की बार बहु आवृति पदन प्रकास ;
वृत्तिन के अनुकूल हो, सो वृत्यानुप्रास।

उदाहरण

कंजन दलन के दलन कों दलन कीनों,
ईंगुर न ओप ऐसी उपमा अथोरी के ;
कुसुम जपा के पाके बिंबा के सुबल थाके,
जावक प्रभा के जाके कौन जग जोरो के।
कहत 'बिहारी' किये मानिक मनिन मंद,
गर गे गुमान गुलेनार रुचि रोरी के ;
सुखमा कनक युत नूपुर झनक ऐसी,
बनक चरन बनैं जनककिसोरी के।

यहाँ जपा के, पाके, बिंबा के, थाके, प्रभा के, जाके, इन शब्दों के अंत मे स्वर-सहित के की आवृत्ति अनेक बार हुई, और मानिक, मनिन, मंद, इन शब्दों के आदि मे मकार की और गर गे, गुमान गुलेनार में ग की तथा कनक, झनक, बनक, जनक, इन शब्दों के अंत में स्वर-सहित नकार ककार की आवृत्ति अनेक बार हुई, अतः इसे वृत्त्यनुप्रास-अलंकार जानो।

* * *

---

* अनेक अन्य आचार्यों के मत से इसमें विरोध उपस्थित होता है, वे नकार की दो से अधिक अर्थात् पूरी चार बार आवृत्ति होने से इस उदाहरण में वृत्त्यनुप्रास मानेंगे। हाँ, रिन और खन शब्दांश की एक-एक बार आवृत्ति होने से इस उदाहरण में छेकानुप्रास भी माना जा सकता है।—संपादक

उपनागरिका बृत्ति अरु गुन माधुर्य सुरूप ;
होत हास्य शृंगार में करुना मध्य अनूप ।

परुषा बृत्ति

नियम जहाँ गुन ओज कौ सब बिधि सों दरसाय ;
परुषा बृत्ती कहत हैं ताहि सुकबि समुदाय ।
जो अक्षर गुन ओज के प्रथम कहे समुझाय ;
सो परुषा के जानियें बरनें कबि समुदाय ।
यह परुषा अरु ओज गुन मिलन होत कहुँ नाहिं ;
होत बीर रस रौद्र में बहुरि भयानक मॉहिं ।

कोमला बृत्ति

जहँ पर नियम प्रसाद गुन सब बिधि सों दरसाय ;
नाम कोमला बृत्ति तिहि कहत कबिन के राय ।
यहै कोमला बृत्ति अरु वहै सुगुन परसाद ;
बर्ण रूप बिच एक है, व्यापक रसन सवाद ।
बीभत्साद्भुत शांति में कांति कोमला देत ;
गुन प्रसाद के संग मिलि सब रस कौ रस लेत ।
उदाहरन इन बृत्ति के तीनहुँ गुन के माहिं ;
पूरब सब बर्णन करे बहुरि बखाने नाहिं ।

श्रुत्यनुप्रास

कंठ तालु से बर्ण जो बिकसत करत प्रकास ;
तिनकी जहँ समता मिलै सो स्रुत्यानुप्रास ।
होत उचारन कंठ से 'अ' 'ह' कवर्ग बिस्सर्ग ;
त्यों ही निकसत तालु से 'ई' 'इ' 'श' और चवर्ग ।

मस्तक से निकसत 'ऋ' 'र' 'ष' अरु टवर्ग सब योग ;
दंतन से प्रगटत 'लृ' 'ल' 'स' बहुरि तवर्ग प्रयोग ।
'ऊ' पवर्ग को निकसिबौ अधरन से जिय जोय ;
'ए' कौ उच्चारन तथा कंठ-तालु से होय ।
कंठ-ओष्ठ से 'ओ' कढ़ै, 'वा' दंतोष्ठ बिचार ;
प्रगट नासिका से तथा अक्षर सानुस्वार ।

❀ ❀ ❀

यहि बिधि बर्ग बिचार, जो कबिता निर्मित करै ;
सो प्रिय होहि अपार, यहि बिरुद्ध अप्रिय लगै ।

❀ ❀ ❀

अन्य रसन कौ बर्ण कहुँ अन्य रसन आ जाय ;
सुनत न यदि नीकौ फबै, तो नहिं दोष कहाय ।

उदाहरण

खीझी मैन बान की, उरीझी प्रेम-जालन की,
पुलक पसीजी रीझी भींजो सो अगर मैं ;
कहत 'बिहारी' प्रेम-पालन-प्रबीन ऐसी,
लालन न देखी ब्रज-बालन बगर मैं ।
रसिक रसीले स्याम सुरति सम्हारो किन,
चाह में तिहारी प्रिया राग की रगर मैं ;
टार-टार घूंघट बिलोकै ठौर-ठौर ठगी,
रूप की लहर डूबी डोलै है डगर मैं ।❀

❀ दूनी ह्वै लागी लगन दियें डिठौंना डीठ ।
(बिहारी)

चंचल बिलोचनी के अंचल उरोजन पै लगी टकटकी टका गोमती में गिरगौ ।
(अज्ञात)

उपटी की टीकी प्रभा टीकी बधूटी की नाभि टीकी धूयं टीकी औ पुटी की संपुटी की है ।
(पजनेस)

जात चली ब्रजठाकुर पै ठमका ठमकी ठुमकीयन । इत्यादि
(पद्माकर)

उपर्युक्त छंदों में टवर्ग का प्रयोग किया गया है, जो शृंगार-रस के विरुद्ध है, परंतु सालंकार संकलन होने से रमणीय अर्थ का प्रतिपादक है ।

लाटानुप्रास

शब्द अर्थ आवृत्ति कौ होय एक सम भास ;
तात्पर्य दूजौ रहै, सो लाटानुप्रास।

उदाहरण

आत्मज्ञान जब भयौ नहिं ज्ञान-ग्रंथ से काम ;
आत्मज्ञान जब भयौ नहिं ज्ञान-ग्रंथ से काम।
अंतर बाहिर यदि हरी, कहु ताकौं तप काहि ;
नांतर बाहिर यदि हरी, कहु ताकौं तप काहि।

अंत्यानुप्रास

जहँ ब्यंजन स्वर के सहित एकहि सम दरसाहि ;
सो अंत्यानुप्रास है अरु तुकांत्य कह ताहि।
कबिता छबिता को धरत यह तुकांत्य के जोग ;
उर्दू - भाषा में यहै कहत 'काफिया' लोग।
यह तुकांत्य भाषा बिषै षट बिधि बरनौ जात :
कहत नाम लच्छन-सहित, समझहु कबि-अवदात।

सर्वांत्य

अंत चरन सब तुक मिलै सो सर्वांत्य कहाय ;
कबित सवैया आदि में मिलत यथाबिधि आय।

समांत्य-विषमांत्य

प्रथम चरन तुक से मिलै, तीजौ चरन तुकांत्य ;
दूजे से चौथौ मिलै, सो समांत्य-विषमांत्य।

उदाहरण

केतिक पंडित होय, बिद्या पढ़ै प्रकार से ;
मुक्ति न पावत कोय बिना ज्ञान-आधार से ।

इसमें विषम से विषम और सम से सम तुकांत्य मिले हैं ।

समांत्य

दूजे चौथे चरन कौ मिलै तुकांत्य सजोत ;
ताकौ नाम समांत्य है, ज्यों दोहा बिच होत ।

उदाहरण

ब्रह्म रूप कस देखिए, भजिए कौन प्रकार ;
ऊधव आँखिन में बसे माखन-चाखन-हार ।

इसमें सम से सम चरणों का तुकांत्य मिला है, अत: यह समांत्य है ।

विषमांत्य

पहले तीजे चरन कौ जहँ मिल जात तुकांत्य ;
तहँ अंत्यानुप्रास कौ कहत नाम विषमांत्य ।

उदाहरण

ये लख दृश्य अनूप लखत लखत होवत अलख ;
लख में अलख सुरूप लख जानै ते लखत हैं ।

इस सोरठे में विषम चरणों के तुकांत्य एक-से हैं, अतः यह विषमांत्य है ।

समविषमांत्य

पहले दूजे चरन कौ जहँ तुकांत्य मिल जाय ;
तीजे सें चौथौ मिलै, सम-विषमांत्य कहाय ।

उदाहरण

प्रातकाल सरजू कर मज्जन ; बैठहिं सभा संग द्विज सज्जन ।
बेद पुरान बसिष्ठ बखानहिं ; सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं ।

(रामायण से)

यहाँ विषम से सम चरणों के तुकांत्य मिले हैं, अर्थात् पहले से दूसरा और तीसरे से चौथा, अतः यह सम-विषमांत्य हुआ।

भिन्नतुकांत्य

जहँ कबिता हो बेतुकी, मिलै तुकांत्य न एक ;
ताकौं भिन्नतुकांत्य कहँ, जिनके बुद्धि - बिबेक।
सुर - बानी में सोह यह नहिं प्राकृत छबि देत ;
भाषा कबिता रुचिरता है तुकांत सन हेत।
कबिता बिना तुकांत की सुनत न नीक सुहाति ;
जैसे बहु रँग के मिलैं एकहु रंग न राति।
आजकाल याकौ कछू लागौ होन प्रचार ;
उदाहरन तासें यहाँ दीजतु समय बिचार।

उदाहरण

फूले फूले सुमन सरसी कांति क्या दे रहे हैं
कोषे कोषे भ्रमर भ्रमतः मंजु मकरंद लेते ;
हंस - श्रेणी तटन तटनी सोह सौंदर्य - शाली
भावै नीकी सरस सुखदा शारदी स्वच्छ शोभा।

चित्रकाव्य

शब्दालंकारन महै चित्रकाव्य हू होत ;
आगे कहिहौं भेदयुत, छमियौ बुद्धि - उदोत।

चित्रकाव्य कई प्रकार का होता है, और उसका चमत्कार शब्दों पर ही निर्भर है, इस कारण उसकी गणना शब्दालंकार ही में की गई है। इसका कुछ विस्तीर्ण वर्णन आगे किया है, यहाँ केवल उन शब्दालंकारों को कहते हैं, जो गणन में मुख्य समझे गए हैं।

पुनरुक्तिप्रकाश

भावरुचिरता अधिक हित परै शब्द बहु बार ;
सो पुनिरुक्तिप्रकाश है, जानत सुकबि उदार।

उदाहरण

छोड़कें जग-जाल जो तूँ राम-पद चित लायगौ ;
नित्य सुख तब पायगौ तूँ पायगौ तूँ पायगौ ।

यहाँ नित्य सुख-भाव की प्राप्ति दर्शित करने को 'पायगौ'-शब्द अनेक बार कहा गया है, इसलिये यह पुनरुक्तिप्रकाश है।

पुनरुक्तिवदाभास

एक अर्थ के शब्द युग परैं पृथक हो अर्थ ;
वदाभासपुनरुक्ति सो भाषत सुकबि समर्थ ।

उदाहरण

बैठि बैठि जिन पर बिहँग बोलत भर अनुराग ;
तीर तीर सोहत सुभग उन्नत ताल तड़ाग ।

यहाँ 'ताल' और 'तड़ाग' पहले एकार्थवाची जान पड़ते हैं, परंतु विचार करने से 'ताल' एक वृक्ष का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। अतः यह पुनरुक्तिवदाभास है। (पुनः+उक्तिवत्+आभास)

तानदार बाँसुरी, प्रमानदार बात जाकी,
सानदार साहबी न ऐसी लोक लखियाँ ;
कहत 'बिहारी' छबिदार मूर्ति मोहिनी पै
बिना मोल बिबस बिकानी ब्रज-सखियाँ ।
जोरवारी जोबन, सुरूप चितचोरवारो,
मोरवारो मुकुट, मयूरवारी पँखियाँ ;
जंग-भरी जुलफैं, उमंग-भरी चाल बाँकी,
रंग-भरी हेरन अनंग-भरी आँखियाँ ।

प्रहेलिका

प्रश्नहि में उत्तर कों लखिए ; ऐसौ शब्द यही में रखिए ।
तिहि प्रहेलिका नाम बखानौ ; शब्द-अर्थगत द्वै बिधि जानौ ।

उदाहरण

शब्दगत प्रहेलिका

एक चीज ऐसी जग सार, जियत मरत है कइ यक बार ;
भोजन देव तौ सब कुछ खाय, अगन पूस में अधिक दिखाय ।
(उत्तर—अगन)

❀ ❀ ❀

देह छुये से रार मचावै, भोजन करै न बैठक लावै ;
नाम कहूँगा में इकिवार, पंडित होय तो करहु बिचार ।
(उत्तर—किवार)

अर्थगत प्रहेलिका

शंकरजी के साथ है, चार वर्ण गिन लेव ;
मध्य युगान्तर छोड़ के हमैं कृपा कर देव ।
(उत्तर—पाती)

❀ ❀ ❀

तेगा के शृंगार में अच्छर वाके दोय ;
सूधे वाकौ अंग है उलटें जेवर होय ।
(उत्तर—दावें)

❀ ❀ ❀

है बंदूख शृँगार में अच्छर तीन प्रकास ;
सो प्रीतम पहुँचाइयौ ऐहों तेरे पास ।
(उत्तर—पालकी)

❀ ❀ ❀

ऐसौ फूल मँगाव पिय, जिह जानै सब कोय ;
दिन के तो नारी बने, रात बसे नर होय । (प्राचीन)
(उत्तर—बेला)

भाषासमक

शब्द छंद बिधि एक हो, भाषा होयँ अनेक ;
कहत ताहि भाषासमक, सरस होय स-बिबेक।

उदाहरण

ख़ुश रँग ख़ुश दिल ख़ुश बदन ख़ुश मिज़ाज ख़ुश हाल ;
बंसीबट-तट लसत इमि नटनागर नँदलाल।

यमक

एक शब्द फिर फिर जहाँ परै अनेकन बार ;
अर्थ औरई - और हो, सो यमकालंकार।

उदाहरण

बसन गए ताकें बसौ, बसन पलट लिय देह ;
बसन हमारौ लाल कछु, बसन आव मम गेह।

मुक्तपदग्राह्य यमक

आदि अंत के चरन पद, गहै तजै हर बार ;
यमक मुक्तपदग्राह्य तिहि कहत सुकबि रससार।

उदाहरण

धारिहै याहि कौ नेंम हिये तरिहै तिहिं सें भवसिंधु अपार है ;
पार है या महिमा कौ नहीं, नित नेति पुकारत बेद प्रचार है।
चार है दैंन पदारथ के, सु 'बिहार' सबै जग और असार है ;
सार है केवल एक यही, कलि में नँदनँदन नाम अधार है।

इसमें कुंडलिवत् आदि अंत के पद एक से लेकर एक में मिला दिए जाते हैं, इसी से इस अलंकार को मुक्तपदग्राह्य कहते हैं, और इसी को सिंहावलोकन।

वक्रोक्ति

दोय भाँति बक्रोक्ति है, श्लेष काकु से सोय ;
और अर्थ कल्पित करै, कहन औरई होय।

श्लेषवक्रोक्ति

श्लेषबक्रउक्ती द्विबिधि एक भंगपद नाम ;
दूजी कहत अभंगपद जानहु कबि गुन-धाम ।

भंगपद

पद शब्दन कों तोड़कर अर्थ लेय कछु आन ;
यह बिधि उत्तर देय जहँ, सो पदभंग बखान ।

उदाहरण

आनत जो सब ब्रह्म-सुख सोइ श्रेष्ठ सब अंग ;
आन तजो सब साँच हू रस-बस मोहन-संग ।

यहाँ उद्धवजी का गोपियों से कहना कि "आनत जो सब ब्रह्म-सुख" अर्थात् संपूर्ण ब्रह्म-सुख को आनत नाम जो धारण करता है, वही सर्वश्रेष्ठ है । गोपियों ने इसको ऐसा समझकर उत्तर दिया कि "आन तजो सब" अर्थात् हमने और सभी कुछ छोड़ दिया एक मोहन (कृष्ण) के साथ में । यहाँ पद को तोड़-फोड़-कर दूसरा अर्थ निकाला, अतः यह 'भंगपद-श्लेषवक्रोक्ति' हुई ।

अभंगपद

पद ज्यों कौ त्यों राखिए, अर्थ लीजिए आन ;
यह बिधि उत्तर दीजिए, सो अभंगपद मान ।

उदाहरण

खोलौ पट राधे रानी, को हौ प्रात बोलौ बानी ?
हैं तौ चक्रपानी, जौन छरीसिंधु रागे हौ ?
नहीं, बनमाली, बन छोड़ यहाँ आए कैसे ?
नाम गिरिधारी, क्यों न राम-प्रेम पागे हो ?
कहत 'बिहारी' हैं गुपाल, पालौ गौवन कौं,
नहीं, घनस्याम, क्यों न बरसन लागे हौ ?
प्यारे हैं तिहारे, तौ हमारे पास होते ? कहूँ
गए रहे, जाव फेर, कहाँ ? जहाँ जागे हौ ।

यहाँ नायक श्रीकृष्ण ने जो अपने नाम 'चक्रपाणी, बनमाली, गिरिधारी, गोपाल, घनश्याम बतलाए, उनका नायिका श्रीराधिकाजी ने दूसरा ही अर्थ लेकर उत्तर दिया, और शब्द जैसे के तैसे रक्खे; अतः यही 'अभंगपद श्लेषवक्रोक्ति अलंकार' हुआ।

काकुवक्रोक्ति

जहाँ कंठ-सुर कहन सें अर्थ दूसरौ होय ;
ताहि काकुवक्रोक्ति इमि कहत सकल कवि लोय।

उदाहरण

जिन गज-रच्छा कीन, जिन तारी गौतम-त्रिया ;
जिन गनिकहिं गति दीन, ते का सुधि लैहैं नहीं ?

यहाँ "ते का सुधि लेहैं नहीं ?" इस वाक्य में कंठ-ध्वनि से दूसरा अर्थ यह निकला कि अवश्य सुधि लेंगे। अतः यह 'काकुवक्रोक्ति अलंकार' हुआ।

वीप्सालंकार

आदर - हित, बिस्वास - हित, बिस्मयादि के हेत ;
एक शब्द फिर फिर परै तिहि बिप्सा कहि देत।

उदाहरण

वीप्सामाला

सखिन की भीरैं भीरैं सरयू के तीरैं तीरैं,
आज राम धीरैं धीरैं झूलत हिंडोरा मैं*।

* * *

उदित उदार बीर पंचम बुँदेल बंस,
टेरीगढ़ कानन अखेट अनुसारे हैं,
सिंह सुधि पाय पाय जाय हेर हेर, घेर
ढेर कर खेल खेल खलन बिदारे हैं।
कहत 'बिहारी' धन्य सावंत नरेंद्र बीर,
आठ दिन बीच आठ सेहर सँहारे हैं ;

* पूरा कवित्त वर्षांतर्गत झूलने के छंदों में देखिए।

कछू झाँक झाँक कछू हनें हाँक हाँक,
कछू दले दूक दूक कछू ढूँक ढूँक मारे हैं।

यहाँ रेखांकित शब्द दो-दो बार आखेटकीय रीति सूचित करने के अर्थ आए हैं, अतः यह 'वीप्सालंकार' की माला है।

आदरमय

धर धर धर तुव चरन सिर कहत जोरि जुग पान ;
हर हर हर कीजे कृपा दीजे प्रभु बरदान।

विश्वासमय

पल पल पल प्रति राम रट बचन हमारे मान ;
राम राम रामहि कहत पैहै पद निर्बान।

आश्चर्यमय

कृष्ण कृष्ण यह कह करत सुनत कथा नहिं कान ;

घृणामय

धृग-धृग तेरे जन्म पर जो न भजत भगवान।

पश्चात्तापमय

राम राम अस कौन जो जाय न संतन पास ;

अहंकारमय

हम हैं हम हैं राम के दास दास के दास।

इसी प्रकार और भी अनेक भाव प्रकट करने को एक शब्द कई-कई बार कहा जाता है, अतः इसी को 'वीप्सालंकार' कहते हैं।

श्लेष

प्रगट अनेकन अर्थ जहँ एक शब्द से होय ;
ताहि कहत श्लेष कबि सो द्वै बिधि कौ होय।
प्रथम भेद कौ नाम यह शब्दश्लेष बखान ;
अर्थश्लेष कहावही दूजौ भेद प्रमान।

शब्दश्लेष का उदाहरण

ता दिन तें दिन-दिन अधिक दिपत दीप तुव देह ;
जा दिन से पूरन प्रिया प्रगट्यौ स्याम सनेह ।

इसमे दीप और स्नेह शब्द में श्लेष है। इसमें कवि का अभिप्राय शोभा और प्रेम (स्नेह) से है, परंतु दीपक और तैल का भी अर्थ श्लेष से भासित होता है। इसी कारण इसकी गणना शब्दालंकार में की है और दूसरा भेद जो अर्थ-श्लेष है, वह आगे अर्थालंकार में कहा है।

भूषन शब्दादिक कथन अंगन सहित प्रसंग ;
भई सिंधु साहित्य की पूरन दशम तरंग ।

स्वस्ति श्रीमन्महाराजाधिराज श्रीकाशीश्वर ग्रहनिवार पंचम विन्ध्येलवंशावतंस श्रीमत्सवाई महाराजा साहब भारतधर्मेन्दु सर सावंतसिंहजू देव बहादुर के० सी० आई० ई० बिजावरनरेशस्य कृपा-पात्र ब्रह्मभट्ट-वंशोद्भव कविभूषण कविराज पं० बिहारीलालविरचिते साहित्यसागरे शब्दालंकारादि प्रकरण वर्णनो नाम दशमस्तरंगः ।

---

* एकादश तरंग *

अर्थालंकार-वर्णन

(पूर्वार्द्ध)

उपमा

जे अर्थालंकार हैं तिन सबही में श्रेष्ट ;
यह उपमालंकार है जानत सुकबि यथेष्ट ।
एक बस्तु सें एक की उपमा देय बनाय ;
सो उपमालंकार है जानहु कबि-समुदाय ।
रूप रंग गुन प्रकृति की समता दीनी जात ;
अलंकार उपमा यही रोचकता दरसात ।
जाकौ बर्णन कीजिये ताहि कहत उपमेय ;
वाहि कहत उपमान हैं जाकी समता देय ।
उपमा गुन की रंग की रूपादिक की होय ;
धर्म बतावहि जो कछू धर्म कहावत सोय ।
सो, से, सी, इव, तुल्य, लौं, सम, समान, अनुहार ;
सदृश, सरिस, जिमि, नाँइ, इमि वाचक शब्द विचार ।
इन शब्दन के होत ही उपमा जानी जात ;
इनही कों वाचक कहत, समझहु कवि गुण-ज्ञात ।

उदाहरण

आदि शक्ति ध्यावहु चरन, जे जग-जीवन-मूल ;
ईंगुर - से राते रुचिर, मृदुल कंज-सम तूल ।

यहाँ श्रीजगदंबा के चरणों का ध्यान कहा है, इस उपमा-वर्णन में चरण उपमेय, ईंगुर उपमान, राते (लाल) धर्म और से वाचक । इसी प्रकार चरण उपमेय, कमल उपमान, मृदुल धर्म, सम तूल वाचक हैं । अस्तु ! ऐसे वर्णन को उपमालंकार कहते हैं । इसके दो भेद हैं—(१) पूर्णोपमालंकार और (२) लुप्तोपमालंकार ।

पूर्णोपमालंकार

धर्म मिलै वाचक मिलै उपमेयरु उपमान ;
जिहि थल ये चारौं मिलैं, पूरन उपमा जान।

उदाहरण

छैल छबीले श्याम पर को न बिकै बिन मोल ;
नील कमल-सी प्रिय प्रभा, सरस सुधा से बोल।

यहाँ श्री कृष्ण उपमेय, नील कमल उपमान, प्रभा धर्म, सी वाचक तथा वचन उपमेय, अमृत उपमान, मधुरता धर्म और से वाचक। यहाँ चारो उपमेय, उपमान, धर्म, वाचक प्रकट हैं। अतः यह पूर्णोपमालंकार हुआ। इसी प्रकार और भी जानो।

मुख कौ प्रकास पूर्ण चंद्र-सौ बिकास देवै,
केसन की कारिख* कुहू-सी अनुमानिये ;
चोटी की लटक जैसें नागिनी अटक रही,
भौंहन बनक बाँकी धनुष समानिये।
कहत 'बिहारी' मीन-मृग-से सरस नैन,
नासिका तरुन तिल-फूल सी प्रमानिये ;
अधर-ललाई बिंब-फल-सी सुहाई, जामें
ऐसी हो निकाई ताहि नायिका बखानिये।

यहाँ नायिका का मुख-तेज उपमेय, पूर्णचंद्र उपमान, सौ वाचक, विकास धर्म है तथा केश उपमेय, कुहू (अमावस) उपमान, सी वाचक, कारिख (श्यामता) धर्म और चोटी उपमेय, नागिनी उपमान, जैसें वाचक, अटक रहना धर्म एवं भौंह उपमेय, धनुष उपमान, सम वाचक, बाँकापन धर्म इत्यादि। इसी प्रकार से चारों अंग—उपमेय, उपमान, वाचक, धर्म—होने से पूर्णोपमालंकार हुआ।

लुप्तोपमालंकार

धर्म और वाचक बहुरि उपमेयरु उपमान ;
इनमें जो जो लोप हो, सो सो लुप्ता जान।

---

* कारिख = कालिमा।

इन लुप्ता के भेद सब किये रीति प्रस्तार ;
बिकसत द्वादस भेद हैं, समझहु बुधि-आगार ।
रूपक अतिसय उक्ति में एक भेद मिल जात ;
जहँ केवल उपमान है, ग्यारा शेष रहात ।
वाचक है पुनि एक में सो छबि नहिं दरसात ;
तासे दस राखे यहाँ, करहु चक्र से ग्यात ।

नं०	नाम	उदाहरण	विवरण
१	उपमेयलुप्ता	नील-पीत-पंकज सम सोहै	यहाँ कमल उपमान, नील-पीत धर्म, सम वाचक । केवल उपमेय का लोप है ।
२	उपमान-लुप्ता	रघुपति-सम दयालु कहु को है	यहाँ रघुपति उपमेय, सम वाचक, दयालु धर्म । केवल उपमान का लोप है ।
३	धर्मलुप्ता	करि-कर इव भुज-दंड सुहाए	भुज दंड उपमेय, करि-कर उपमान, इव वाचक । केवल धर्म का लोप है ।
४	वाचक-लुप्ता	चरण सरोज मृदुल मन भाए	यहाँ चरण उपमेय, सरोज उपमान, मृदुल धर्म कहा है । केवल वाचक का लोप है ।
५	वाचक-धर्म-लुप्ता	वृषभ कंध ध्वज भुज छवि छाजै	वृषभ उपमान, कंध उपमेय तथा ध्वज उपमान, भुज उपमेय । केवल वाचक और धर्म का लोप है ।
६	वाचक-उप-मेयलुप्ता	उदय मंच रवि बाल विराजै	बाल सूर्योदय उपमान, विराजना धर्म । केवल वाचक तथा उपमेय का लोप है ।
७	वाचक-उप-मानलुप्ता	श्याम अंग उप-वीत सुहाए	श्याम धर्म, अंग उपमेय तथा शोभित धर्म, उपवीत उपमेय । केवल वाचक-उपमान का लोप है ।
८	वाचक-धर्म-उपमान-लुप्ता	रामरूप कछु वरण न जाए	राम-रूप उपमेय और वाचक, धर्म, उपमान का लोप है ।
९	धर्म-उपमेय-लुप्ता	शरद - चंद्र सम यह दोउ को है	शरद्-चंद्र उपमान, सम वाचक है । केवल धर्म-उपमेय का लोप है ।
१०	धर्म-उप-मानलुप्ता	राम सदृश को जग मन मोहै	राम उपमेय, सदृश वाचक है, केवल धर्म उप-मान का लोप है ।

मालोपमा

जहाँ एक उपमेय हित कहै बहुत उपमान ;
ताहि कहत मालोपमा जे कबि बुद्धिनिधान ।
सो द्वै बिधि कौ होत है एक धर्म है एक ;
भिन्नधर्म दूजौ कहत समझहु कबि सबिबेक ।

एकधर्मा मालोपमा

रबि कों चहत सरोज ज्यों, ससि कों चहत चकोर ;
घन कों चाहत मोर ज्यों, त्यों तुमकों मन मोर ।

यहाँ सब उपमानों का एक ही धर्म (चाहना) कथन किया, अतः यह एकधर्मा मालोपमा अलंकार हुआ ।

उदित उदंड मारतंड के उदै से जैसे
जोर अंधकार घोर घर्म में धसत है ;
चंद्र के सुवेष में कुमोदिनी कलेस कटै,
फल मन - बांछित में चिंतना चसत है ।
कहत 'बिहारी' हटै मंजन मलीनताई,
ग्यान के प्रकास ख्याल खलुता खसत है ;
पवन प्रचंड देखैं वारिद नसत, तैसे
साँवत नरेंद्र देखैं दारिद नसत है ।

❀ ❀ ❀

इक्क बान ही की बान राखी अलह उदल नें,
इक्क बान ही पै पियौ पौरष पयूस है ;
कहत 'बिहारी' राज राना श्रीप्रताप बीर
इक्क बान ही पै दियौ खलन खरूस है ।
पारथ प्रमान पृथीराज चाहुवान जैसे
इक्क बान ही पै जंग जित्तब जलूस है ;

राख्यौ कर नियत नृपाल साँवतेस त्यों ही ,
एक केहरी के लिये एक कारतूस है ।

❀ ❀ ❀

कीरति तिहारी सिंह साँवत नरेंद्र बीर ,
नीके कै निहारी नई निरमल नीरा सी ;
चंदन सी चाँवर सी चवर सी चंद्रिका सी ,
गंगा सी गजेंद्र❀ सा गुराई गौर गीरा सी ।
कहत 'बिहारी' करपूर सी कुमोदिनी सी ,
कुंद की छरी सी छीर-सागर के छीरा सी ;
हर सी निहारी हरधाम सी हिमंकर सी ,
हँसन सी हंस सो हिमालय सी हीरा सी ।

यहाँ उक्त तीनो कवित्तों में एक उपमेय के अर्थ अनेक उपमान कहे गए और सबों का धर्म एक ही कहा गया, कविजन बुद्धि से विचार लीजिए। इसी प्रकार आगे के कवित्त में जानो ।

चातक कों चैन है सलिल सुचि स्वाँति साथ ,
मोरन को मजा घन घोरन सँदेस लौं ;
बेलिन बिनोद है तमाल तरु छावन में ,
चक्रवाक चित्त चोंप दीपत दिनेस लौं ।
कहत 'बिहारी' मीन मग्न सर सागर लौं ,
कोकिल रसाल पास हरस हमेस लौं ;
मोद है मलिंद को सुपास अरबिंद, तैसे
मौज है कबिंद को नरेंद्र साँवतेस लौं ।

❀ गजेंद्र = शुभ्र रंग का गजराज ऐरावत, जो देवराज इंद्र का प्रधान प्रिय हाथी माना जाता है ।—संपादक

भिन्नधर्मा मालोपमा

खंजन से चितवैं चहुँधा, अरु कंजन से अति ही अरुनारे ;
दीरघ अंग कुरंगन से बहु रंगन मोद छके मतवारे।
सायक ऐसे नुकीले नवीन 'बिहार' बिनोद बढ़ावनहारे ;
साँवरे के सुखदाई सदाँ इमि राधिका नागरी नैन तिहारे।

❀ ❀ ❀

कल्पद्रुम - से सिद्धिप्रद, सुरसरि - से अघ-हर्ण ;
अरुण कमल - से वर्ण हैं राधापति के चर्ण।

रसनोपमालंकार

कहतन में उपमेय जहँ होत जाय उपमान ;
यहि क्रम सों बर्णन, जहाँ रसनोपमा बखान।

उदाहरण

मानिक सम कुज रूप रुचि, कुज सम बिंबा अंग ;
बिंबा सम सोहत प्रिया तुव अधरन कौ रंग❀।

अनन्वयालंकार

जो होवें उपमेय जहँ, सो होवें उपमान ;
उपमा वाको वोहि हो, ताहि अनन्वय जान।

उदाहरण

कृपा करी प्रहलाद पर, गज कों कियौ सनाथ ;
दीनन के दुख-दमन कों तुम से तुम हौ नाथ।
बल प्रताप गुन बुद्धि जस सील स्वभाव सुभेस ;
साँवतसिंह नरेस सम साँवतसिंह नरेस।

❀ इस उदाहरण में सुंदर लाल रंग की उपमा कुज अर्थात् मंगल से, मंगल की उपमा लाल बिंबाफल से और लाल बिंब की उपमा प्रिया के लाल अधरों से दी गई है।—संपादक

उपमेयोपमालंकार

जहाँ परस्पर दुहुन की उपमा दीनी जाय ;
तिहि को उपमेयोपमा कहत सकल कबिराय ।

उदाहरण

कंजन सी छबि नैनन की,
अरु नैनन सी छबि कंज की छाजै ;
धर्म - ध्वजा - सो भुजा है 'बिहार',
भुजा सम धर्म ध्वजा मन माजै ।
अमृत सौ रस बोल सुहावनौ,
बोल सौ अमृत माधुर साजै ।
चंद्र के रूप सौ राजै गुबिंद,
गुबिंद के रूप सौ चंद्र बिराजै ।

यहाँ कमल और नेत्रां की, ध्वजा और भुजा की, अमृत और वचनों की, चंद्र और गुविंद (श्रीकृष्ण) की परस्पर उपमा दी गई, अतः यह उपमेयोपमालंकार हुआ ।

धन धन सावँतसिंह नृप कबिजन मन सुख देत ;
सुजस तिहारौ कमल सम कमल सुजस सम स्वेत* ।

ललितोपमा

उपमेयरु उपमान की समता करै बखान ;
लौं, इव, सम वाचक न हों ललितोपमा प्रमान

उदाहरण

दोष हरत वह नरन के पाप करत यह चूर ;
गंगा सन ठानें बिहस हरि-चरनन की धूर ।

* * *

---

* इस वर्णन में कवि-परंपरा का अनुसरण है । परंपरा से कविजन यश का उज्ज्वल (श्वेत) वर्ण मानते आए हैं ।—संपादक

यहाँ दिब्य दामिनी नबेली वहाँ कामिनी है,
यहाँ इंद्रचाप वहाँ गृह चित्रकारी के ;
यहाँ शब्द साजें वहाँ गायन मृदंग बाजै,
यहाँ जलबुंद वहाँ भूमि मनि वारी के।
कहत 'बिहारी' यहाँ उन्नत अधिक आप,
वहाँ अति उच्च रूप महल अटारी के ;
जैसे तुम सोहिहौ पयोद नभ ठाम, तैसे
अलिकापुरी मेँ धाम समता तुम्हारी के।

❀ ❀ ❀

वा दिन पै दिन बाढ़ै कला यह हूँ दिन पै दिन होत है भारी;
वा कुमदीन को मोद करै यह हूँ मन मित्रन की हितकारी
वा महिमंडल फैल रही यह हू जग जोंति प्रकाशै बिहारी ;
चाँदनी से हँस होड़ करै यह कोरति साँवतसिंह तिहारी❀।

प्रतीपालंकार

उपमा अरु उपमेय को उलट - फेर जहँ होय ;
ताकौ नाम प्रतीप है, जानहु सब कबि लोय।
सो है पाँच प्रकार कौ, लिखहुँ यहाँ सुख पाय ;
अरु उपमा उपमेय के कहत शब्द पर्याय।
प्रस्तुत वर्न्य जहाँ कहौ, तहँ समझो उपमेय ;
अप्रस्तुतऽरु अवर्न्य जहँ, तहँ उपमान गनेय।

❀ इस पद्य में कवि ने श्रीसावंतसिंहजू देव की कीर्ति को चाँदनी से होड़ लगानेवाली कहकर उपमेय और उपमान में समता का निर्णय किया है, अतएव इसमें ललितोपमा की अच्छी छटा है।—संपादक

प्रथम प्रतीप

जहाँ प्रगट उपमेय को बना देत उपमान ;
यहि बिधि बरनन हो तहाँ प्रथम प्रताप बखान ।

उपमा अलंकारों में उपमान उपमान ही कहे जाते हैं, परंतु प्रतीप अलंकार में कभी उपमानों के उपमेय हो जाते है, कभी उपमेय के उपमान हो जाते हैं। इसी उलट-फेर को प्रतीप कहते हैं। प्रतीप=उलटा।

उदाहरण

तुव प्रताप-सम सूर्य है, जस-सम सोहत चंद ;
कर सम कहियतु कल्पतरु, जय जय श्रीरघुनंद ।
उपमा में रबि-ससि यहै कहे गए उपमान ;
ते उपमेय यहाँ भए उलट-फेर इमि जान ।

द्वितीय प्रतीप

मानहीन उपमेय कौ करै जहाॅ उपमान ;
ताकौ द्वितिय प्रतीप कह जे कबि सुमति-निधान ।

उदाहरण

चालत क्यों नहिं चतुर तिय इत कत करत गुमान ;
रूप-रासि तोसे रुचिर रति अति रूप-निधान ।
कहा भुजा निरखत नयन श्रीसावँत नरनाथ ;
तुव हाथन सम हम लखे बहु हाथिन के हाथ * ।

तृतीय प्रतीप

जबै कछुक उपमेय से हीन होय उपमान ;
ताकौ तृतिय प्रतीप कह जे कबि बुद्धि-निधान ।

उदाहरण

करत गुमान गुलाब तूॅ बृथा मृदुलता लायँ ;
तोसैं कोमल कई गुनैं प्रानप्रिया के पायँ ।

* हाथिन के हाथ=हाथियों के सुंड ।

चतुर्थ प्रतीप

समता जहँ उपमेय की कर न सकै उपमान ;
तहाँ चतुर्थ प्रतीप है, यहि बिधि बरनन आन ।

उदाहरण

नँदनंदन सुंदर बदन सखि सुखमा कौ धाम ;
जिहि आगे कह कुमुद-पति कहा कमल कह काम ।

पंचम प्रतीप

जहँ सम्मुख उपमेय के ब्यर्थ होय उपमान ;
तहँ प्रतीप पंचम कहत, जिनको कबिता-ग्यान ।

उदाहरण

वचन वर्ण मुख छबि सरस तुव अति उदित अमंद ;
यह बिधि ने बिरचे बृथा चातिक-चंपक-चंद ।

काह प्रयोजन काहु सें, को बड़ को सिरताज ;
सावँतसिंह नरेंद्र की चहियतु उमर दराज ।

रूपकालंकार

उपमेयऽरु उपमान को एक रूप दरसाय ;
बाचक धर्म न देय जहँ, रूपक सोई कहाय ।
सो द्वै बिधि तद्रूप इक इक अभेद चित देव ;
अधिक न्यून सम त्रिबिधि इमि कबि बुधजन गन लेव ।

जहाँ उपमेय और उपमान दोनो को समान एक रूप मान लें, अर्थात् उपमान उपमेय के आदि अथवा अंत मे धर्म और वाचक शब्द को न रक्खें, तब उसका नाम रूपक होता है । इस रूपक-अलंकार के प्रथम दो

भेद हैं—(१) तद्रूप रूपक और (२) अभेद रूपक । फिर इसी प्रकार तद्रूप रूपक के तीन भेद हैं—(१) अधिक तद्रूप, (२) न्यून तद्रूप और (३) सम तद्रूप । इसी प्रकार दूसरे भेद अभेद रूपक केभी तीन भेद है, यथा—(१) अधिक अभेद रूपक, (२) न्यून अभेद रूपक और (३) सम अभेद रूपक ।

तद्रूप रूपक

जहॉ करै उपमान कौं उपमेयहु के रूप ;
अपर, अन्य, वह शब्द हों, सो रूपक तद्रूप ।

अधिक तद्रूप रूपक उदाहरण

तुव प्रताप-रबि रघुपती रबि से अधिक लखात ;
वह दिन ही दीपत दिसन, यह निसि-दिन दरसात ।

यहाँ श्रीरामचंद्रजी के प्रताप को रवि ही कहकर वर्णन किया, परंतु प्रतापरूपी रवि मे इतना गुण अधिक कहा कि वह दिन को तथा रात्रि को देदीप्यमान रहता है । वास्तविक सूर्य में यह गुण नहीं है ।

न्यून तद्रूप

हो गुन में उपमान से कम उपमेय सुरूप ;
एक रूप दोऊ लखौ तहाँ न्यून तद्रूप ।

उदाहरण

जिनकें दान न धर्म है, गहैं न गुन को गैल ;
ते जन जानो दूसरे बिन सींगन के बैल ।

❀ ❀ ❀

कहा दसन-छबि छक रहे सुंदर स्याम सुजान ;
सिंधु सीप प्रगटे नहीं, जे मुक्ता कछु आन ।

सम तद्रूप

न्यून अधिकता जहँ न कछु, केवल समता होय ;
सम तद्रूप बखानहीं ताहि सकल कबि लोय ।

उदाहरण

दोऊ रुचि रस आगरे हैं सुखमा के साज ;
तूँ राजत दूजी रती, वह दूजो रतिराज ।

❀ ❀ ❀

नृपति बिजावर दिव्य यश द्वितिय कमल छबि देत ;
कबि पंडित अलिगन अपर जिहि सेवत रस लेत ।

अभेद रूपक

उपमेयऽरु उपमान की जंहँ अभेदता होय ;
तिहि अभेद रूपक कहत कबि पडित गुन दोय ।
है अभेद तद्रूप में इतनौ सूक्षम भेद ;
वाकौ कथन सभेद है, याकौ कथन अभेद ।

तद्रूप रूपक तथा अभेद रूपक में इतना ही अंतर है कि तद्रूप मे रूपक शब्द के साथ कुछ भिन्नता-सूचक अपर, अन्य, दूसरा, वह इत्यादि शब्दो का प्रयोग किया जाता है, और अभेद-रूपक में भिन्नता-सूचक कोई शब्द न रखकर केवल उपमान को पूरा-पूरा उपमेय का रूप मानकर वर्णन किया जाता है ।

अधिक अभेद

अधिक कछू उपमान सें गुन में हो उपमेय ;
सोइ अधिक अभेद है यहि बिधि रूपक देय ।

उदाहरण

धन-धन वे जन जगत में हरिपद बिषें निदान ;
प्रेम - नदी जिनकी बहत बारहु मास समान ।

न्यून अभेद उदाहरण

अधर बिंब बिन बेलि के बिन बन कुचगिरि सोंह ;
बिना पनच को चाँप जुग तरुनि तिहारो भोंह ।

❀ ❀ ❀

सावँतसिंह नरेंद्र सें ठानि सकै रन कौन ;
राखत सूर सिपाह हैं बाघ बिना नख जौन ।

❀ ❀ ❀

अंगन सुढार* चारु सोभा के सिंगार सजे,
चंचल चलाके बड़े बाँके दिनकर के ;
रंगन रँगीले गरबीले तड़पीले तेज
छरक छबीले गुनसीले छबिधर के ।
कहत 'बिहारी' सजे जेवर जड़ाऊ जगे,
थिरक थिरात हैं न दूजे सम सर के ;
आनँद के कंद सिंह सावँत नरेंद्रजू के
तरल तुरंग हैं परिंद बिन पर के ।

---

* अंगन सुढार शब्द से तात्पर्य है घोड़े के सुंदर बनाव का, जिसको शालहोत्र में विस्तार पूर्वक कहा गया है, परंतु यहाँ पाठकों के बोधार्थ हम सूक्ष्म रीति से लिखना आवश्यक समझते हैं। यथा—

दोहा

कर्ण जासु के लघु लसें, छाती चौड़ी होय ;
बीचु जाहिके अधिक हैं दुहू कान तें सोय ।
गर्दन लंबी होय अरु चौड़े सुम हैं जाहि ;
कर्ण होयँ ढीले नहीं, लंबो मुख है ताहि ।
पातर मुख को सूक्ष्म वा आँख बड़ी जब होय ;
थुथुनी होय नुकील अरु बाँसा ऊँच न सोय ।
पूँछ पातरी अश्व की चक्र चाकली होय ;
चढ़के जामें पूँछ अरु चौके पुट्ठन सोय ।
ये लक्षण जामें अहै, नीक तुरी सो होय ;
इनतें होय विरुद्ध जो मध्यम जानो सोय ।
जा बाजी की देह में ये लक्षण नहिं आहि ;
होय नहीं सो नीक बहु ऐसो जानौ ताहि ।
होय गामची छोट बहु यही सुलक्षण होय ;
शालहोत्र मुनि के मतें जान लेव तुम सोय ।

अश्व-परीक्षा—कदम चलेगा या नहीं

अगलो जाको पग जहाँ परत धरनि में सोय ;
तातें पिछलो बढ़ परै कदमबाज है सोय ।

सम अभेद

कृष्ण - कथा आनँदकरन, सदा सजीवनि मूर ;
जाके सेवन करत ही होत सकल दुख दूर ।

रूपक के और भेद

न्यायादिक मत से यहै रूपक यहि बिधि मान ;
किंतु भेद कछु और हैं, सो इत करत बखान ।
बर्णन - सैली में कहत इनके तीन प्रकार ;
सांग, निरंग, परंपरित, यहि बिधि नाम बिचार ॥

सांग रूपक

जिते अंग उपमान के तिते सकल दरसाय ;
घटित करें उपमेय में रूपक सांग कहाय ।

उदाहरण

भुज द्वै मंजु मृनाल बदन बारिज अरुनाई ;
स्रौनी तीर्थसिला नितंब नवनीर निकाई ।

इसी प्रकार घोड़ों के क्षेत्र भी अनेक प्रकार के होते हैं, परंतु उनमें जो मुख्य माने गए हैं वे यहाँ उद्धृत किए जाते है । यथा—

क्षेत्र—उत्तम

नीलरोद दरयाई अरब ईरान इराकी ;
बलख बुखारा सिंध चिनी तिब्बत कच्छाकी ।
चक्रवार पुठवार तुर्कि कंधार काठिया ;
खुरासान मुलतान भराथल भक्ख भूटिया ।
कह कवि 'बिहार' पंजाब भनि अदन खुतन पहचानिए ;
तातार तुरिन के मुख्य यह क्रुबिस क्षेत्र बखानिए ।

चख चंचल तहँ मीन केस सैवाल सुहाए ;
चक्रवाक खग जुगल उरज उन्नत अति भाए।
कह कबि 'बिहार' कामाग्निसर दग्ध भयौ जिनकौ हियौ ;
तिन्ह न्हान हेत बिधि तरुनि तन सरवर वर निर्मित कियो।

भृकुटि बंक दृग धरन धनुष सायक संधानिय ;
अंजन रेख कृपान धार तीच्छन तर आनिय।
कम कुसमित कटि पट्ट अग्र कुच दुंदुभि दिन्निय ;
बिजय करन ध्वनि सुभट कंकन किंकिनि भल किन्निय।
कह कबि 'बिहार' ब्रजपति सहित रतिपति जित्त न प्रीति है ;
रनछेत्र सेज रच्चिव रमनि समर सुरत बिपरीति है।

(शृंगार-चूड़ामणि)

सांग-भेद

रूपक सांग प्रकार द्वै, कहत सुकबि गुनभर्त्त ;
बिषयक बस्तु समस्त इक, इक इकदेशविवर्त्त।

यह सांग रूपक दो प्रकार का है— १) समस्तवस्तुविषयक और (२) एकदेशविवर्तित।

समस्तवस्तुविषयक

बिषयक बस्तु समस्त कौ सांगहि सम गन लेव ;
अरु इकदेशविवर्त्त के यों लच्छन चित देव।

मध्यम

पूना रजहरिया समेत करनाट बखानौं ;
बहुरि देश गुजरात खेत्र मध्यम यह जानौं।
जुमिला जैता रंगपुरी मनिपुरी प्रमानी ;
कनकाई कह आदि बहुरि भाखहु भूटानी।
इन मध्य होत टाँघन जिते, ते गणना बिच आनिए ;
कह कबि 'बिहार' शालहोत्र मत तेऊ मध्यम मानिए।
रंगपुरी जुमिला सहित और भुटानी जानि ;
इनमें जे टाँघन अहैं, ते मध्यम कर मानि।

एकदेशविवर्तित

कछु-कछु अँग रूपक-सहित, कछु बिन रूपक होय;
सो इकदेशविवर्त्ति है, जानहु सब कबि लोय।

उदाहरण

प्रेम-नीर निर्मल जहाँ, लीला-लहर समाज;
ऐसे मानस-हृदय बिच बसत सदा ब्रजराज।

यहाँ प्रेम-लीला-हृदय का रूपण नीर-लहर-मानसर से किया गया है। इसी प्रकार ब्रजराज (श्रीकृष्ण) का रूपण भी हंस से करना था, सो नहीं किया। अर्थ करनेवाला अपनी बुद्धि से लगा लेता है।

निरंग रूपक

हो केवल उपमान कौ जो प्रधान गुन अंग;
सो बरनौं उपमेय में रूपक सोइ निरंग।

उदाहरण

भ्रमत फिरत जग-जाल महँ चल मनमानी रीति;
क्यों न करत मन राम के चरन-कमल में प्रीति।

मनीपूर जैता सहित कनकाई अरु मान,
इन देशन के बाज लघु तेऊ मध्यम जान।

अधम

अधम खेत बर्णन करे बाजिन के जे आहिं;
माड़वार खड्हर सहित अति बलहीन कहाहिं।
रंगपुरी जुमिला सहित और भुटानी जानि;
इनमें बड़े तुरंग जे, तेऊ मध्यम मानि।

चांद्रायण

तिरहुत आदिक बिषें तुरँग जो आनिए;
औरें शैलन लजे नीचतर मानिए।
बहुबिधि देश कुदेश बाज प्रगटन कहे;
पर इत देश विशेष साध सूछम कहे।
ऊँच नीच मध्यम की परख सुराखिए;
उत्तम बाजी लेय विजय अभिलाखिए।

यहाँ रामजी के चरणों को केवल कमल रूप से मान लिया है, किंतु कमल के और गुण-अंग कुछ नहीं कहे, अतः जहाँ पूर्ण अंगों का रूपण न किया जाय, वहाँ निरंग रूपक कहा जाता है। इसी प्रकार और में भी जानो।

क्यों न कितक बुधि-बल रचै, पाय सकत कोउ नाँहँ;
सावँतसिंह नरेंद्र के हृदय-सिंधु की थाँहँ।

परंपरित रूपक

इक रूपक के हेतु जहँ दूजौ रूपक होय;
परंपरित रूपक तहाँ कहत सुकबि सब कोय।

उदाहरण

जोग-जग्य-जप-तप कछुक सध न सकत सब साज;
भव-सागर के तरन कों है हरि-नाम जहाज।

यहाँ हरि (श्रीकृष्ण) के नाम को जहाज रूप ठहराया है। यह क्यों? इसलिये कि पहले संसार को समुद्र का रूप कह चुके, अभिप्राय यह कि हरि-नाम को जहाज-सिद्धि के लिये पहले ही संसार को सागर कह दिया है, यदि ऐसा न कहा जाता, तो हरि-नाम पर जहाज का आरोप नहीं हो सकता।

बल-बिक्रम बिख्यात महि, मति उदार बिलसंत;
हनन हेतु दारिद-द्विरद, सिंह सिंह सावंत,

इसी प्रकार घोड़े के रंग भी अनेक प्रकार के होते हैं, परंतु उनमें जो मुख्य हैं, वे यहाँ कहे जाते हैं—

रंग-वर्णन

रंगन में बाजीन के बरने चार प्रधान;
नुकरा मुश्की मानिए सुरखा जरदा जान।
नुकरा मोती रंग है मुश्की कोयल रूप;
सुरखा केसर वर्ण है जरदा स्वर्ण सुरूप।
अबलख पाँच प्रकार के प्रथम हिनाई वाल;
अबलख उज्जल दूसरौ पीरौ कीलौ लाल।
दोय भाँति कुम्मैत है एक तेलिया नाम;
दूजौ, लाखौरी कहौ समझौ सब गुण-धाम।
खंगहु चार प्रकार के रंगहु से लख लेव;
नुकरा सबजा भूअ पुनि सुर्ख खंग कह देव।

परिणाम अलंकार

क्रिया जौन उपमेय की, तौन करै उपमान ;
ऐसौ कथन लखै जहाँ, तहँ परिणाम बखान ।

उदाहरण

दृग मृग - सावक सैन कर उपजावत हिय काम ;
मुख-पंकज सन हँस हरी, बिबस करत ब्रज-ग्राम ।

यहाँ दृगन उपमेय के द्वारा सैन करना न कहकर मृग - शावक उपमान द्वारा कहा है, तथा मुख उपमेय के द्वारा हँसना न वर्णन कर कमल उपमान के द्वारा वर्णन किया है, इससे परिणाम अलंकार हुआ ।

उल्लेख अलंकार

काहु हेत इक व्यक्ति कौ बहु बिधि बर्णन होय ;
ताहि कहत उल्लेख हैं कबि-कोबिद सब कोय ।

प्रथम उल्लेख

सो द्वै बिध जहँ एक कौं बहु जन बहुत प्रकार ;
लखैं - कहैं - मानैं - तहाँ प्रथम उलेख बिचार ।

पूरब चार प्रकार के बरने रंग सुअंग ;
इन रंगन सें होत हैं कैयौ रंग तुरंग ।

यथा

स्यामकर्ण, संदली, संजाफ, औ समद, सब्ज,
सिरगा, सुरंग, गर्रा, हरियल आनें हैं ;
मल्लकच्छ, मगलाष्ट, मोमिया, मधूक, मुश्कि,
नील, नुकराई, लक्खी, तामरा प्रमानें हैं ।
बोसता, बदामी, बिल्लौर, चिनी, चक्रवाक,
कहत 'बिहारी' चाबधार, चहु जानें हैं ;
कागजी, कुमैंत, कुल्ला, कैहरी, खुलंग, खंग,
रंग रंग-रंग के तुरंग के बखानें हैं ।

❀ ❀ ❀

हरियल, हरदक, अबलखा, अरु कबूत, कल्यान ;
जे चालिस रँग तुरँग के पिरतहु पँचकल्यान ।

❀ ❀ ❀

उदाहरण

गौवन ने मोद जानों, ग्वालन प्रमोद जानों,
दूषन खलन जानों, भूषन सुबंस ने ;
प्रेमी प्रेमधाम जानों, गोपीगन काम जानों,
जोगी जन राम जानों पूरन प्रसंस ने ।
कहत 'बिहारी' नित्य रक्षक सुरन जानों,
रंक कल्पबृक्ष जानों, तेज जानों अंस ने ;
दीनन दयालु जानों, दासन कृपाल जानों,
नंद निज लाल जानों, काल जानों कंस ने ।

❁ ❁ ❁

सूर, औ' सिराजी, सेत चर्न, सब्ज पाय, पेख,
चौधर औ' चापदस्त चौपट बखाए हैं ;
चंभा, अहमूसली, मसूखी खंजरेट तूखी
मटिहा सुकाखी धूरिधूसरा बताए हैं ।
जुगख बधिक जमदूत औ' समरदूत
कहत 'बिहारी' नाम जाखिया जताए हैं ;
खालदार अजंख अकबँ दाग अंजनी के
इतनें तुरंग रंग ऐब के गनाए हैं ।

❁ ❁ ❁

वाजी-वर्ण-वर्णन

ब्राह्मण क्षत्री बैस्य अरु सूद्र बर्ण हय जान ; तिनके लक्षण कहत हौ शालहोत्र-मत मान ।

विप्र-वर्ण

सुच्छ सुभाव अनूप छबि जासु तेज अधिकार ; जाको देखत मोह के नमत होत संसार ।
भोजन की रुचि जासु की जल को नहीं सकाय ; अग्नि-पुंज-सम ज्वलित अति रन देखत हो जाय ।
अरु प्रतिभट कों देखकें नहिं भय माने जोय ; पुष्प समान सुगंधि तन जल पीवै मुख धोय ।
रन में दगा करे नहीं, घत तें नहिं अकुलाय ; विह्वल भे असवार कों घरह देय पहुँचाय ।
हट पकरै छोड़ै नहीं टरै न त्रासै त्रास ; विप्र-वर्ण पहचानिए रस सों आवै रास ।

छत्रिय वर्ण

माने हार न नेकहू करै बिरोध जु कोय ; संगर में लख सत्रु को अतिसय क्रोधित होय ।
युद्ध समय असवार के मन के साथ उड़ाय , सत्रु-सस्त्र निज स्वामि पर लागत देय बचाय ।
बार-बार मुख सब्द को ललकारे जनु बीर ; एकाएकी सत्रु को आवै देय न तीर ।
टापै हीं सै बल करै युद्ध समय उत्साह ; ऐसौ बाजी भाग से पावत है नरनाह ।

श्रीसावँत नृप रावरी भुजा भली सुभ जोग ;
धर्मध्वजा जानत प्रजा, कल्पलता कबि लोग।

द्वितीय उल्लेख

जहाँ एक को एक ही बरनें बहु गुन ल्याय ;
ताहि द्वितिय उल्लेख कह कबियन के समुदाय।

उदाहरण

ग्यानिन कौं अगम अखंड तेज-रासि देयँ,
मुनिन मनोरथ की सिद्धिता भरन हैं ;
प्रेमी रस-भक्तन शृंगार अवलंब घनें,
दीनन कों सहज कृपालुता धरन हैं।
कहत 'बिहारी' ब्रजबासिन बिनोदी बेस,
जन मन-भावन के पावनकरन हैं ;
द्वंद के मिटैया औ अनंद बरसैया भव-,
फंद के कटैया ब्रजचंद के चरन हैं।

❀ ❀ ❀

रन देखत परचंड ह्वै पवन-समान उड़ाय ; अस्त्र-चोट मानै नहीं सम्मुख गोल मझाय।
अगर समान प्रस्वेद तनु आवतु जाके बासु ; अथवा और सुगंध कौ तन तें होत प्रकासु।
समय पाय क्रोधित बहुत जल्दी करे अहार ; पानी पीवै डापकें ऐसो तासु बिचार।
अग्नि पवन अरु तो पसों नेकौ नहीं सकाय ; रिच्छ बाघ गज देखके सम्मुख ताके जाय।
घोड़ी लख बोलै नहीं, नाहि न करै सरार, ह्वै पद ठाढ़ो होय, नहिं करै न पायँ प्रहार।
अड़ै न काटै भूलिहू सहज शांतियुत होय ; रस सों रस राखे रहै छत्रिय-बाजी सोय।

वैश्य-वर्ण

तंग कसति सरसति अहै काँप उठे सब गात ; रहै अधीन सवार के क्रोध करें डर जात।
जल्दी चलत न दूर लौं कितनौ करे उपाय ; अरगा अबिया कदम है जाकौ जाति सुभाय।
तेज सहै नहि तोप कौ भयतें अति सकुचाय ; चाह करे घोड़ीन की बार-बार हिहनाय।
घृत-सम बास प्रस्वेद की कै अजया-सम हाय ; कै फिर आवै बास नहिं जान लेहु जिय सोय।
जल पीवत है ओठ सों मोटो होय सरीर ; ये लच्छन सब जानियौ वैश्य-वर्ण तासीर।

ग्यानिन हित ग्याता प्रबल, ध्यानिन ध्याता बेस ;
गुनिगन-हित दाता सरस सावँतसिंह नरेस ।

स्मरण अलंकार

कछुक देखकर कछुक की सुधि आवै जिहि ठौर ;
ताकों सुमिरन कहत हैं जे कबिजन - सिरमौर ।

भाषा-भूषण ग्रंथ में इस स्मरण अलंकार का नाम ही लक्षण बतलाया है। अभिप्राय यह कि किसी वस्तु के किसी संबंध से किसी वस्तु का स्मरण होना, इसे स्मरण अलंकार कहते हैं। वह स्मरण चाहे कुछ वस्तु को देखकर हो, चाहे कुछ सुनकर हो, चाहे स्वप्न करते हो, चाहे चित्र करके हो, ये सब एक प्रकार से दर्शन ही कहलाते हैं। इन्हीं की उपलब्धि से हुए स्मरण को स्मरण अलंकार कहते है।

सदृश वस्तु-दर्शन से स्मरण

मनभावनि सावन सोभा 'बिहारि' घनी अवली घन छावति है,
जब साँझ समें दिन में कबहूँ रँग केसर कांति बनावति है।
वह कारी घटा वह पीरी छटा चढ़ि ऊँचे अटा दिखरावति है,
तब पीत दुकूल सजे उन स्याम की मोहिं सखी सुधि आवति है।

संबंधी वस्तु-दर्शन से स्मरण

(श्रीचित्रकूट का दृश्य)

कहूँ-कहूँ चर्ण-चिह्न दीखत सिलान बीच,
सैन्य सुधि आवै लखैं बानरन गोत हैं ;

शूद्र-वर्ण

मलिन रंग है जासु, सूद्रवर्ण सो जानिये ; तासु प्रस्वेदह बास आवत है सम मीन के।
खाल जासु मोटी अहै, मोटे हैं सब बार, लीद-मूत्र-युत थान पै लोटत बारहि बार।
मंद मंद भोजन करत, झझकै पानी देख ; पलकें मोटी होयँ अरु मुख में गंधि बिसेख।
कहो न करत सवार कौ, मोटो होय सरीर ; खड़े बहुत घोड़ेन सों आवन देय न तीर।
काटै मारै लात अरु द्वै पग ठाड़ौ होय ; करै हरामी बहुत बिधि सूद्र-वर्ण हय सोय।

सूचना—जिन घोड़ों में दो वर्ण के लक्षण पाए जायँ, उन्हें संकरवर्ण जानना चाहिए।

वर्ण-कार्य-कथन

मंगल काज सिद्धि दुज देई ; क्षत्रिय जाति बिजय रन लेई।
धन के काज बैस्य चढ़ जाई ; औरें काज सूद्र सुखदाई।
चारौ वर्ण रहें ये जाके ; संपति भवन तजत नहिं ताकें।

भर्त्तकूप ओप अनुसूया कौ सदन चारु,
चित्रकूट कांति स्रवै सुखमा सुसोत हैं।
कहत 'बिहारी' राम त्रेता के चरित्र तौउ,
हाल में बिलोकें वही भाव जगे जोत हैं;
साधुन की दौरें देख, मंदाकिनि भौरें देख,
लता-तरु झौरें देख औरें मन होत हैं।

कथा-वार्ता सुनकर स्मरण

पारथ प्रत्यक्ष बान भारत अचूक चले,
भीषम की मार महा कठिन कराली की;
संकर त्रिसूल कहूँ भूलहू न खाली जात,
इंद्र बज्र सत्रुन की बिबिध बिहाली की।
कहत 'बिहारी कबि' जब-जब ऐसी कथा
सुनत पुरानन की प्रबल प्रनाली की;

सब बाजिन में मिलत नहिं सब ये लच्छण आन;
एक-दोष जो होयँ कछु लेब बर्ण पहिचान। (शालहोत्र-संग्रह)
भाव लिखत भौंरीन के बढ़ै टिप्पणी रूप। तासें अब गति आयु कौ बरनत सूषम सरूप।

अश्व-आयु-प्रमाण

आयु अश्व की होत है बत्तिस बर्ष प्रमान; यातें नाहिन बाढ़िहै शालहोत्र मति मान।
कितनी बीती ताहिं में बर्तमान कौ ज्ञान; देख रदन जानों परत लेत सुजन पहिचान।
बढ़ै पचीसहि तें उमर तीस बर्ष लौं जान; दाँत जात हैं हाल सब बाजी के यह मान।
कटत घास नहिं दसन सौं वह दृढ़ता चल जात; ता ऊपर बत्तीस लौं बाजी रहन निपात।
अरबी और इराक के बहुरौ जान इरान, इन्हैं आदि जे हैं तुरी दीरघ आयु-प्रमान।
दृढ़ता इनके रदन की छत्तिस बर्ष पर्यंत; बीतत अर्तिस बर्ष के हाल जात सब दंत।
फिर चालिस बर्षन बिषैं बाजी रहन निपात; और तुरिन के रदन से इनमें भेद लखात।

अश्व-कला-दिग्दर्शन

धरन धमाल में कमाल-सौ करत कूँद तुलँग मलंग बेल पलटे भरत हैं;
कदम रहाल झेल भूला कोंड कावा लाय लंगड़ी लँगूरी लेत रंच न थिरत हैं।
कहत 'बिहारी' पूर पोइया पदर्ष खुरी छारकत छिंद छन्द मन कौं हरत हैं;
सावँत महीपति के बाज राजद्वार चारु चाबुकसवार सदा फेरबौ करत हैं।

तब-तब मोहिं सुधि आय-आय जाति बीर,
सावँत नरेंद्र तेरी इंडिया दुनाली की।

श्रीयुत सवाईसिंह सावँत नरेंद्र बीर तुरँग विहारे तकें तेज पर जात हैं;
कहत 'बिहारी' रंग राख निज रंगन को कूँदत कुरंगन को रंग हर जात हैं।
सूक्ष्म सँकेत लै लगाम अंग ओप धार उछल उतंग जोस अंग भर जात हैं;
चक्र-चकरी-से फिरें फेर अंतरिच्छन में चौंक चपला-सी लै कला-सी कर जात हैं।

❀ ❀ ❀

बिमल बिसाल भाल भूषित सुलच्छ तें धवल दुकीलये उत्तम सुअंस के;
लसित सुग्रीव अस्य अयत उरस्थ स्वस्थ पुट्ठन सुपुष्ट पच्छ स्वच्छ सुभ लंक के।
कहत 'बिहारी' बाज सावँत महीपति के छयल छबीले छेम आगर असंख के;
रंजन सुपच्छी सुभअच्छी राज्य-रच्छी लच्छी दलन बिपच्छी लखे पच्छी बिन पंख के।

❀ ❀ ❀

सावँत नरेंद्र राज रावरे तुरंगन की ताक तन तेजी तेज तेजन तरास्त भे;
कहत 'बिहारी' चारु चपल चलाँके बाँके छरक छबीले गरबीले गुनवास्त भे।
चौकन की चौकसी छुरी की खूब खूबी देख बिगत बनस्थ पस्त हिरन हरास्त भे;
चौक गई चंचला अलात चक्र चाक चके प्रगट परिंद पेख परम परास्त भे।

❀ ❀ ❀

चार चार चारों ओर सेवक सईस ठाढ़े सेवत सुढग अंग मोद मनमाने में;
चाबुकसवार सालहोत्र सिख देवैं सदा जाहिर जहान कला-कुसल सिखाने में।
कहत 'बिहारी' खांड खोवन खुराक सजे, सुंदर सरीर युद्ध बीरवर बाने में;
उदित अनूप ऐसे सावँत महीपति के मस्त बल बाजि बँधे अस्तबलखाने में।

❀ ❀ ❀

जीन जरतारी जोत जिन पै जमाल जागै लसित लगाम सजे सुंदर सुढंग हैं;
कहत 'बिहारी' सीस कलँगी किलोलें लोल भूषन अनेक रत्न राजे अंग-अंग हैं।
राजवान राजी बाजी नृपति बिजावर के कैयौ छेत्र छेत्र के छबीले छबि रंग हैं,
काठिया कमान भरे काबुली कमाल भरे गरबी गुमान भरे अरबी तुरंग हैं।

अन्य पशु-पक्षियों का आयु-प्रमाण

अश्व-आयु-परमान उक्त बिधि जानिए,
तैसहि गज की आयु सतायु प्रमानिए।
और जानबे जोग बस्तु चित दीजिए,
जल-थल-जीवन केर आयु सुन लीजिए।

❀ ❀ ❀

जल-जीवन विच कच्छ बरष षट शत अनुमानों;
केतिक अहि अरु मगर मच्छ त्रै शत लग जानों।
ह्वेल मीन शतपंच पंच शश शूकर दश कह;
द्वादश भेड़ मजारि अदश पंद्रह अजया लह।

भ्रम अलंकार

भ्रम औरै कौ और में जब निश्चय कर होय ;
ताहि भ्रांति अरु भ्रम कहत कबि-कोबिद सब कोय ।

उदाहरण

लाड़िली आज प्रभात ही सें ब्रजबालन बोल बिनोद बढ़ावै ;
आप चितैवत चकृत-सी अरु बात सुनाय सबै चकरावै ।
अंग 'बिहार' उमंग भरी समुदाय सखीन के संग लिवावै ;
तीर कलिंदि* सहेलिन कों दिन में बन भीतर चंद्र बतावै ।

❀ ❀ ❀

देहरी द्वार खड़ी दुलही उज़्‌ही अँग अंगन रंग चुऔ है ;
गोल कपोलन कांति घनी दुति दूनि दिपै दिसि दिब्य दुऔ है ।
रूप अपार 'बिहार' निहारत मो मन यों भ्रम-भाव हुऔ है ;
चंद्र अकास कौ बास बिहाय कें आज यहाँ कहाँ आन उऔ है † ।

❀ ❀ ❀

नयन-झलक जल माँझ लख, मीन समझ गहि टेक ;
भाँतिन बहु चाहत गहन, हाथ न आवत एक ।

संदेह अलंकार

निश्चय होय न बस्तु कों, सो संदेह कहाय ;
कांधौं यह धौं यह कि यह, यहि बिधि शब्द जताय ।

कह कवि 'बिहार' पचविंश लग धेनु अवस्था जानिए,
अरु उष्ट्र श्वान शेहर वयस चालिस वर्ष प्रमानिए ।
रोबन द्वादश वर्ष पंचदश भीतर तीतर ;
वय बुलबुल दश आठ बीस लग कहिगे कबूतर ।
तीसक वर्ष कलापि कारिका पचिस लिजिय ;
चील चवल चालीस मुरग पचास गनिजिय ।
सौ वर्ष काग कहिये गुनी गृद्ध शतक द्वै आनिए,
कह 'कवि बिहार' इन खगन की यहि बिधि आयु प्रमानिए ।

*—यमुनातट, कालिंदी के किनारे । † उऔ है = उदित हुआ है ।

कहत 'बिहारी' कीधौं कंचन-लता के फल,
मंडित मँजीर कीधौं राग-रस-केलो के ;
चक्रन के जोड़ किधौं पाले हैं मनोज, किधौं
संपुट सरोज की उरोज अलबेली के ।

❀ ❀ ❀

कीधौं बज्र-बृक्ष की लता है लचकारी यह,
कीधौं चमकीली चंचला की कला-सार है ;
कीधौं बैरि-बृंदन जरावन को ज्वाल, कीधौं
दीनन के पालन की प्रतिमा प्रकार है ।
कहत 'बिहारी' किधौं जोति रस रौद्र की ये,
कीधौं कालिंदी की लोल लहर सुढार है ;
कीधौं घन घटा की छटा है रंगदार, कीधौं
सावँत महीपति की रूमो❀ तलवार है ।

❀ रूमी एक जाति की तलवार होती है, जो रूमी नाम से रूम देश की निर्माण की हुई पाई जाती है । जिसका घाट बड़ा ही सुंदर और सुढार होता है । यदि इसके मध्य में ऊँचापन और दोनो पार्श्व में उतार आम्रगोई के समान हो, तो इसे पिरोजख़ानी कहते हैं, और यदि सर्वांग सम हो, तो रूमी कहते हैं । इसी प्रकार तलवारों के जाति भेद से अनेक नाम होते हैं, परंतु उनमें जो मुख्य हैं, वे यहाँ लिखे जाते हैं —

जाहिर जुनब्बी जुलेखानी जुल्फिकार चारु, खूबी खुरासानी पट्ट पट्टम प्रमाने मैं ;
कहत 'बिहारी' कही कत्तई वलेलखानी, दरिया लहर लीली बनी बर बाने मैं ।
बंदरी जहाजी मोती मीनी सजी सूरती है, कूची कसतूरी ढंग पूरन प्रमाने मैं ;
तेगा तरवार खड्ग भेद भाँति-भाँति देखे सावँत सवाई के सवाई सिलाखाने मैं ।

❀ ❀ ❀

गाई गुजरात जो जुनब्बी औ दुलब्बी नाम, नीमी चार नवी है हिलब्बी बीर बाने मैं ,
ऊना अलेमानी फिरासानी औ नित्राजखानी पेखी है पिरोजशाही पूरन प्रमाने मैं ।
कहत 'बिहारी' रूमी मक्कई नदौठ नाम, मौमियाँ सिरोही सजी मोद मनमाने मैं ;
तेगा तरवार खड्ग भेद भाँति-भाँति देखे, सावँत सवाई के सवाई सिलाखाने मैं ।

अपह्नुति अलंकार

सत्य बस्तु को छिपाकर, असत सत्य दरसाय ;
ताहि अपह्नुति कहत हैं खट बिधि रूप जताय।
शुद्धापह्नुति एक पुनि हेत्वापह्नुति मान ;
परजस्तापह्नुति बहुरि भ्रांत्यापह्नुति जान।
छेकापह्नुति के सहित कैतवऽपह्नुति जोय ;
ना-वाचक सबमें रहत, कैतव में मिस होय।

शुद्धापह्नुति अलंकार

जहँ उपमेय दुराय कें प्रगटावैं उपमान,
वाही कों थापित करै, शुद्धापह्नुति जान।

उदाहरण

स्वेत-लाल फूलन गुँथी बेनी नहिं छबि देत ;
यहै त्रिबेनी है, कोऊ भाग्यवान फल लेत।

यहाँ सफेद रंग के फूल, लाल रंग के फूल और काले रंग की वेणी को छिपाकर त्रिवेणी को स्थापित किया, अर्थात् उपमेय को असत्य बतलाकर उपमान को सत्य ठहराया। इसी प्रकार और जानो।

दंत नही, यह दाड़िम हैं अरु नासिका ये नहिं, कीर सुहायौ ;
हैं न कपोल, गुलाब के फूल, उरोजन श्रीफल दृश्य लखायौ।
जंघन जो इय जुग्म 'बिहारि', नयौ कदलीन कौ जोड़ जमायौ ;
सुंदरी कौ ये सुरूप नहीं, यह काम सुहाग कौ बाग लगायौ।

हेत्वापह्नुति अलंकार

शुद्धापह्नुति में जहाँ हेत-सहित कछु कोय,
और रूप थापित करहि, हेत्वापह्नुति सोय।

शुद्धापह्नुति में कुछ कारण बतलाते हुए और वस्तु की स्थापना करे, वहाँ हेत्वापह्नुति होती है।

उदाहरण

किंसुक-सुमन-समूह सखि, दाहक कबहुँ न होत ;
यह आली, दीपत दिसनि दावानल की जोत ।

यहाँ पलास के फूलों का रूप छिपाकर दावानल को स्थापित किया, यह रूप शुद्धापह्नुति का है, परन्तु इसमें दावानल होने का कारण भी बतलाया है कि यह जलाती है, इससे हेत्वापह्नुति हुई (इसमें विरहिणी नायिका का वाक्य है सखी-प्रति) ।

पर्यस्तापह्नुति अलंकार

धर्म और कौ और में जहँ थापित कर देय ;
परजस्तापह्नुति कहत ताहि सुकबि गुन - ज्ञेय ।

एक वस्तु का धर्म-निषेध करके दूसरी वस्तु में उस धर्म को स्थापित करे, वहाँ पर्यस्तापह्नुति अलंकार होता है। इसमें विशेषता यह है कि जिस वस्तु का निषेध किया है, उस वस्तु का नाम प्रायः दो बार कहा जाता है, तब चमत्कार आता है। पर्यस्त शब्द का अर्थ है फेका हुआ।

उदाहरण

वह अमृत अमृत नहीं, अमृत यहै अमोल ;
भरो तिया तुव बदन बिच, निकसत मीठे बोल ।

भ्रांत्यापह्नुति अलंकार

भ्रम-बस संकित होय कछु कारन पाकर कोय ;
ताहि निवारन देय कर, भ्रांत्यापह्नुति सोय ।

उदाहरण

क्यों न अँगन आवत भटू, दै किन रही किवार ?
यह दरसत खद्योत-गन, बरसत नहीं अँगार ।
चंद्र जानि चौंकति बृथा, धसति न क्यों जल माँहिं ;
यह तुहिं दीखत बावरी, तुव मुख की परछाँहिं ।

छेकापह्नुति अलंकार

पूछे से सत बात कों तुरतहिं राखै गोय ;
उत्तर औरहि देय कछु, छेकापह्नुति सोय ।

उदाहरण

बानिक बनी है घनी गोल मुख मंजु प्यारी,
सोने-से सरीरवारी भ्राजो* प्रिया पालकी ;
गाँस गरबीली गहरीली औ छबीली ऐसी,
रुचिर रसीली मिली नीको लिखी भाल की ।
कहत 'बिहारी' हम हाथ सों गही जो जाय,
औचक छुटक चली रस गति जाल की ;
सोच मन माँहिं, रस चाख पायो नाँहिं, कोई
नायिका तौ नाँयँ, नहीं साँयँ है रसाल की ।

❋ ❋ ❋

स्याम घन-घटा की छटा है मन भाई, छाई
धुंधर-रहित नोखी नीलता निराली है ;
तड़िता तड़प चाल चंचल चपल चारु,
पानी ठौर - ठौर पौन सकत न टाली है ।
कहत 'बिहारी' दस दिसन गराज घोर,
पूरित प्रचंड ध्वनि महा मतवाली है ;
रितु बरसा की यहै सुखमा सम्हाली, नहीं
सावँत नरेंद्रजू की इंडिया दुनाली है ।

इसी प्रकार की एक कविता इसी अलंकार से छोटे छंदों मे और कही जाती है । इसे मुकरी कहते हैं ।

उदाहरण

देखत ही मन बस कर लेय ; छतियन सों लग आनँद देय ।
को ऐसी जो चहै न नार ; क्यों सखि, साजन ? नहिं सखि, हार ।

❋ ❋ ❋

* भ्राजी = सुशोभित की ।

सोवत सेज सतावत आय; अधरन में दत कर-कर जाय।
रात होत ठानें अनरीत; क्यों सखि, साजन? नहिं सखि, सीत।

❀ ❀ ❀

नंदीगन बाहन सुबिसाल; धारैं उर मुंडन को माल।
परै नीर गंगा को छाँट; कहु सखि शंकर? नहिं सखि, राँट❀।

कैत्वापह्नुति अलंकार

ब्याज, बहानौं, मिस, जहाँ इन शब्दन कौं लाय;
कहै और को और कछु, कैत्वापह्नुति आय।

उदाहरण

जा दिन से हरि हाथ लगो अधरामृत पीकैं गुमान बढ़ावै;
पाय सुहाग कौ राग मढ़ी स्वर ब्याज मों बोल कुबोल सुनावै।
नींद न लावन देत 'बिहारि' बिचक्षण बैरिन बैर बढ़ावै;
सौत है ये कबहूँ की कोऊ बल बाँसुरी के मिस मोहिं सतावै।

❀ ❀ ❀

नैन मूँद परजंक पर परी प्रिया मुँह तान;
निपट नींद मिस मोहिनी लगी जतावन मान।

संदेहापह्नुति अलंकार

देय अपह्नुति बचन से जहँ संदेह निवार;
संदेहापह्नुति कह्यौ भूषन ताहि बिहार।

जहाँ दूसरे का संदेह सत्य बचन कहकर निवारण किया जाय, वहाँ संदेहापह्नुति अलंकार होता है।

उदाहरण

कैधौं रूप-रासि ये प्रकास-सी करत जात,
कैधौं चपला कौ बिंब बदलो दिखात है;

❀ राँट = राँड़।

कैधौं काहु जोति ने बिराट ठाट ठाट्यौ यह ,
कैधौं मनि-बृंदन कौ मंडल लखात है ।
कहत 'बिहारी' किधौं तारन कौ जूट जुट्यौ ,
ऐसौ कौन दीप, जो इतेक प्रगटात है ;
दीप है, न तारे हैं, न मनि है, न बिज्जु-रासि ,
चंद्र-रूप पै ये चंद्ररूपा चली जात है ।

यहाँ अस्थिर प्रकाश देखने पर किसी व्यक्ति को संदेह हुआ कि यही कोई सौंदर्य की राशि संचलित ज्ञात होती है, या बिजली का सुरूपांतर है, या बिराट् ज्योति, मणि-मडल, सितारों का समूह, बृहत् दीप आदि है, तब दूसरे व्यक्ति ने नहीं-बाचक से निषेध करके "चंद्ररूप पै ये चंद्ररूपा चली जात है" इस सत्य बाक्य को कहकर संदेह दूर किया, अतः यह संदेहापह्नुति अलंकार हुआ ।

किधौं बिड़ौजा बज्र-ध्वनि, किधौं प्रलय जुर जंग ;
किधौं सिंधु - संगर, नहीं, राम कियौ धनु भंग ।

अर्थ सुगम । इसी प्रकार और भी जानो ।

भ्रांत्यापह्नुति में भ्रम का और इसमें संदेह का निवारण होता है, यही अंतर है ।

उत्प्रेक्षा

करै जहाँ संभावना, सो उत्प्रेक्षा नाम ;
लखिकैं सबल प्रधानता यहै अर्थ जिहि ठाम ।
मनु, जनु, इव, मानो, मनो, यहि बिधि बाचक धार ;
उपमा को कल्पन करै उत्प्रेक्षालंकार ।

उत्प्रेक्षा का शब्दार्थ यह है—उद् = बलपूर्बक, प्र = प्रधानता, ईक्षण = देखना, अर्थात् किसी उपमान की बल-पूर्बक प्रधानता देख कल्पना (संभावना) करना उत्प्रेक्षा कहलाती है, और इसके बाचक मनु, जनु, मानो, मनो, इव इत्यादि होते हैं । यह उत्प्रेक्षालंकार तीन प्रकार का होता है । यथा—

उत्प्रेक्षा त्रय भाँति यह वस्तु, हेतु, फल नाम ;
लक्षण और उदाहरण समझौ कबि गुण - धाम ।

काहू के अनुरूप जहँ नियत करै उपमान ;
वस्तूत्प्रेक्षा है तहाँ, सो द्वै बिधि की जान।
एक उक्तविषया, जहाँ विषय प्रथम कह देय ;
इक अनुक्तविषया, जहाँ विषय नाम नहिं लेय ।

उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा का उदाहरण

साँझ समै तान कान्ह बाँसुरी सुधारैं चले
लूटत बहारैं बेस ब्रज-गलियान कीं ;
तहाँ सुन गोपीं रागीं झपट झरोखें लागीं,
अंजुलीं सुमंजु त्यागीं कुँद-कलिकान कीं ।
ते वे स्वेत अवली अमंद कृष्णचंद्रजू कै
नील तन ओर छूटीं छटा छहरान कीं ;
मानो स्याम तरुन तमाल पै बसेरौ लैन
बाँधकैं जमातैं आईं पाँतैं बगुलान कीं ।

❀ ❀ ❀

बालम बिनोद बीच पूरन प्रमोद पगी,
जाग जोर जोबन बिताई जौन्ह जामिनी ;
कहत 'बिहारी' भोर छीन-सी छटा में छई,
छज्जन अटा पै आन ठाढ़ी भई भामिना ।
नींद की निकाई नैन जात न जँभाई लैकें,
अंग अलसानी अँगड़ानी काम कामिनी ;
ऊँचे हाथ जोरकें छराक छोर दीने दोउ,
मानो नभ-खंड में दुखंड भई दामिनी ।

❀ ❀ ❀

रुचिर रँगीली लिएँ लालिमा ललित लोनी,
चारु चिकनाई त्यों सुढार छबि छाका है :

गाँठ गुन-बीधी सुद्ध सीधी सान-बानवारी
नृपति कृपान लौं निवास नित्य जाका है।
कहत 'बिहारी' महा महिमा मढ़ी है, साम
सुघर जड़ी है, देख अरि-बल थाका है;
चमक चढ़ी है, बेस बजनी पढ़ी है, ऐसी
बाँस की छड़ी है, मनौ लोहे की सलाका है।

उपर्युक्त उदाहरणों में प्रथम उत्प्रेक्षा का विषय बतला दिया गया है, पीछे संभावना की गई है। इसी को उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार कहते हैं।

अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा का उदाहरण

अरी, आव भज भीतरै, पावस प्रेरत प्रान :
बाहर बरसत री मनो पंचबान के बान।

यहाँ वर्षा का समय है, जोर से पानी पड़ रहा, यह जो उत्प्रेक्षा का विषय है, सो पहले कुछ नहीं कहा गया, परंतु उत्प्रेक्षा उसकी की गई कि मानो कामदेव के बाणों की वर्षा हो रही है। इस प्रकार के कथन को अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार कहते हैं।

हेतूत्प्रेक्षा

जहँ अहेतु कों हेतु कर उत्प्रेक्षा कर लेव;
हेतूत्प्रेक्षा तिहि कहत, सो द्वै बिधि चित देव।
सिद्ध होय आधार जहँ, सिद्धास्पद सो जान;
सिद्ध न हो आधार जहँ, असिद्धास्पद मान।

सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा का उदाहरण

चिबुक चुभे तिल तीर* तू नील बिंदु हिय और;
मानहुँ ससि तें शतगुनो किय मुख-ससि सिरमौर।

किसी व्रज-सुंदरी की ठोढ़ी पर एक तिल-बिंदु है, उसके समीप (अंगराग कर) एक नील बिंदु का चिह्न और बनाया। उस पर सखी कहती है कि मानो तूने अपने मुख-चंद्र को चंद्र से सौगुना सुंदर बतलाया है, क्योंकि चंद्र की संख्या१,

* तीर = निकट, पास।

तिस पर एक तिल-बिंदु होने से १० हुआ, तिस पर एक नील बिंदु होने से १०० हुआ। यहाँ नायिकाओं का अंगराग (बिंदु) बनाना स्वाभाविक धर्म है। किंतु उसका हेतु यह कल्पित किया कि यह चंद्रमा से सौगुना बतलाने के लिये किया गया, और १ की संख्या पर दो बिंदु रख देने से १०० का अंक होना यह सिद्ध आधार (संभव) है। इसीलिये यह सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा अलंकार हुआ। इसी प्रकार और भी जानो।

असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा का उदाहरण

नयन नीक नासा निरख मानहु मनह लजाय ;
नीर बसे बारिज सकल, कीर बसे बन जाय।

यहाँ नायिका के नेत्र और नासिका देखकर लज्जित होकर कमल नीर में और कीर वन मे रहने लगे, यह उत्प्रेक्षा की गई। किंतु इन उपमानों का इस प्रकार लज्जित होना असिद्ध आधार (असंभव) है, और जल तथा वन में रहने का जो कारण कल्पित किया, यह भी वास्तविक हेतु नहीं। अतः इस प्रकार के वर्णन से यह असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा अलंकार हुआ।

सिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा का उदाहरण

लख बिरही सब रैंन के चक-चकही दुख - सेत ;
जनु तिन सुखद सँयोग-हित दिनकर दिन कर देत।

सूर्य का नित्य उदय होना सिद्ध आधार है, परंतु कल्पना की गई कि मानो रात्रि-भर के बिछुड़े हुए चक्रवाकों को अत्यंत दुखी जानकर सूर्यदेव फिर से दिन उत्पन्न करके मिलने का मौक़ा देते हैं। सूर्य का उदय इस लक्ष्य को लेकर नहीं होता है कि चक्रवाकों को मिलने का मौका मिले, वह उदय तो स्वयं सिद्ध आधार है, और चक्रवाकों का मिल जाना, यह अफल है, उसे ही फल कल्पित किया, अतएव यह सिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा अलंकार हुआ।

असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा का उदाहरण

छीन छला-सो छोट अति कटि तुव प्रगट प्रभास ;
जनु तिहि समता लहन हित सिंह करत बन-बास।

सिंह स्वतः ही वन में रहते हैं, नायिका की-सी कटि हो, इस फल के लिये नहीं। किंतु यहाँ इस अफलता को फल कल्पित किया, और सिंह के विषय में कटि-समता की इच्छा होना भी असंभव है, इसे संभव कल्पित किया, अतः यही असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा अलंकार हुआ।

उत्प्रेक्षा के भेदों की सरल परिभाषा

(१) सिद्धास्पद वह है, जिसकी उत्प्रेक्षा का आधार सिद्ध हो, अर्थात् संभव हो।

(२) असिद्धास्पद वह है, जिसकी उत्प्रेक्षा का आधार असिद्ध हो, अर्थात् असंभव हो।

(३) वस्तूत्प्रेक्षा वह है, जिसकी क्रिया न किसी फल के लिये की गई हो, न किसी कारण के लिये।

(४) फलोत्प्रेक्षा वह है, जिसकी क्रिया से किसी फल की प्राप्ति झलकती हो।

(५) हेतूत्प्रेक्षा वह है, जिसकी क्रिया में कुछ हेतु अर्थात् कारण दिखाई दे।

प्रत्येक के उदाहरण प्रत्येक उत्प्रेक्षा के साथ पूर्व ही लिख चुके है। पाठक स्वयं विचार लेंगे। जिस उत्प्रेक्षा में मनु, जनु, मानो, मनो, इव इत्यादि वाचक न हो, उसे गम्योत्प्रेक्षा, गुप्तोत्प्रेक्षा तथा प्रतीयमाना व्यंग्योत्प्रेक्षा और ललितोत्प्रेक्षा कहते हैं।

गम्योत्प्रेक्षा

जनु, मनु, मानो आदि यह बाचक जहाँ न सोय ;
उत्प्रेक्षा होवै तहाँ गम्योत्प्रेक्षा होय।

उदाहरण

चूड़ामनि सिथलित रजनि खिसक परौ तज थान ;
पुन्य छीन कोउ स्वर्ग तें पतित भयौ भुवि आन।

❀ ❀ ❀

सुबरन तुव समता लहन ढरयो, गल्यो तन गार ;
कुटयो, कटयो, घिसटयो, तप्यो, छियो, सुध्यो बहु बार।

❀ ❀ ❀

बंगदेस की बिमल बारि बनितन के नैना ;
हैं सुखमा से सरस, सुखद, कछु कहत बनैं ना।
तिनहिं निरखि मृग-बृंद मंद लज्जित भे सारे ;
परम चतुरता ठये देस तज गए बिचारे।
कह कबि 'बिहारि' कुच-कुंभ लख गज हारे बिचरत वहीं ;
अपमान दंड मूरख सहै, तउ घमंड छोडत नहीं।

❀ ❀ ❀

नृप सावँत कौ राज्य में फैल्यो प्रगट प्रभाव ;
याही तैं इत खलन कौ हो नहिं सकत निभाव ।

सापह्नुवोत्प्रेक्षा

सहित अपह्नुति के कहूँ उत्प्रेक्षा जब होय ;
सापह्नुव उत्प्रेक्ष तिहि कहत सकल कबि लोय ।

उदाहरण

कुच-समता कंदुक करत मानो तिहि अपराध ;
पुनि-पुनि पटकत पुहुमि पर, नहिं क्रीडा कृत साध ।

यहाँ गेंद का पृथ्वी पर पटकना, उछालना इत्यादि साधन क्रीड़ा (खेल) के लिये हैं, परंतु इसे निषेध करके यह उत्प्रेक्षा की कि इसने नायिका के कुचों की बराबरी करनी चाही। उसी अपराध का यह दंड है कि जो फिर-फिर पृथ्वी पर पटका जाता है। इस प्रकार के कथन को सापह्नुवोत्प्रेक्षा अलंकार कहते हैं!

मोहनि मनोभव की मुद्रा सिद्ध कर्नवारी,
सुंदरी सुबेष सदा सर्ब सुखदाई है ;
ताकौ छोड़ भोग धरैं जोग फिरैं लोग, तिन्हैं
साधु नहीं जानौं वामें बात यह पाई है ।
कहत 'बिहारी' उन्हें मदन महीप मानौं
दीनौं यह दंड दया छोड़ चित लाई है ;
नग्न करवायकैं, रखाय जटा चोटी सीस,
कर में कपाल दैकें भीख मँगवाई है ।

अतिशयोक्ति

अतिसय अस्तुति जहँ करै सीमा हू नकि जाय* ;
ऐसी अतिसय उक्ति पर अतिसय उक्ति कहाय ।
भेदक, संबंधहु, चपल, अक्रम, रूपक जान ;
अत्यंतहु युत भाँति षट अतिसय उक्ति बखान ।

* नकि जाय = उल्लंघन कर दी जाय ।

सहित अपह्नुति भेद इक और कहत कवि लोय ;
उदाहरन लच्छन-सहित निरख लीजियौ सोय ।

भेदकातिशयोक्ति

औरै, न्यारे शब्द यह बाचक के जिहिं देव ;
भेदक अतिसय उक्ति तहँ सुकबि सुबुध लख लेव ।

उदाहरण

जब से तन जोबन बढ़ौ, तब से भइ गति और ;
नयन और, औरै नजर, रति औरै, मति और ।

❀ ❀ ❀

गमन भयौ काहू भवन, रमन करत ब्रज-मीत ;
निरखी यह नँदगाम की जग से न्यारी रीत ।

❀ ❀ ❀

ससि-बदनी केती न ब्रज, किती न छबि-अभिराम ;
वहै रूप कछु और है, जापर रीझत स्याम ।

❀ ❀ ❀

कोउ चलावत है चल लच्छ पै,
कोउ करै थिर लच्छ पै गौर है ;
मूँठ मुहावरौ कोउ करै,
अरु काहुयै सोक बिनोद बतौर है ।
गोली चलावन बीच 'बिहारि'
हरेकन की हर भाँतिन दौर है ;
सावँत भूप बिजावर कौ
वौ बँदूक कौ घालनौई कछु और है ।

संबंधातिशयोक्ति

जहँ अयोग्य कह योग्य कों, बहुरि अयोग्यह योग ;
संबंधातिशयोक्ति इमि द्वै बिधि कह कबि लोग ।

संबंधातिशयोक्ति दो प्रकार की है। प्रथम वह, जहाँ किसी संबंध से अयोग्य वस्तु को योग्य कहकर वर्णन करे, और दूसरी वह, जहाँ योग्य वस्तु को अयोग्य बनाकर वर्णन करे।

प्रथम संबंधातिशयोक्ति का उदाहरण

आज भवन भीतर भटू, ग्रहन समय नियराहु ;
लैहै तुव मुख-चंद्र ग्रस तज रजनीपति राहु।

यहाँ नायिका का मुख-मंडल राहु द्वारा ग्रसा जाना असंबंध (अयोग्य) होने पर भी ग्रसा जाना योग्य संबंध बतलाया है। अतः यही चमत्कार है।

देख परत दृग दूर लग आभा अधिक अमंद ;
धवल महल कंचन-कलस चुंबन चाहत चंद।

यहाँ राजमहलों के स्वर्ण-कलसों की ऊँचाई का लक्ष कर कलसों द्वारा चंद्र-चुंबन वर्णन किया गया, यही असंबंध (अयोग्य) वस्तु को योग्य कथन करने से प्रथम संबंधातिशयोक्ति अलंकार हुआ।

❀ ❀ ❀

कंचन के काम धाम-धाम रुचि राखे रचि ,
बेलिन प्रसून रहे खासे खूब खिलकैं ;
कहत 'बिहारी' चौक चित्रन-बिचित्र सजे,
संग मनि-मोती झूम झालरन झिलकैं।
सावँत-भवन भूप सावँत बनायौ बेष
बँगला बुलंद जाके रंग चारु चिलकैं ;
दिसि-दिसि दामिनि के दीपक जहाँ के दिव्य
दीपत कतारन सों तारन सों मिलकैं।

द्वितीय संबंधातिशयोक्ति का उदाहरण

पेख प्रिया के पद जुगल सुठि सुखमा के भौन ;
ईंगुर अंबुज अरुन कों आदर देवै कौन।

❀ ❀ ❀

आनन ओप अमंद लसैं, भला को बिधु-बिंब बिलोक बिमोहै ;
बोल 'बिहारि' सुनें प्रिय कोमल, कोकिल को भल कौनें कहो है।
अगन रंग तिहारौ तकैं, फिर चंपक कौन पै जात चहो है ;
तो अधरान कौ लीनों सवाद, पियूष के पान कों पूछत को है।

❀ ❀ ❀

जाके देस हेत रहैं बिमल बिचार सदा,
उदित उदारता बिसेष बिलसानो है ;
जाने बहु गुनिन के गौरव बढ़ाय दीन्हें,
कीनें बहु कार्य कीर्ति कबिन बखानो है।
कहत 'बिहारी' जाकी ओर हँस हेर देय,
दारिद नसात, भरै संपति प्रमानी है ;
आँखिन से ऐसौ अब सावँतेस देखौ, अब
कानन सुनै को कल्पबृक्ष की कहानी है।

उपर्युक्त उदाहरणों में ईंगुर, अंबुज, पियूष, कल्पवृक्ष को स्वशक्ति में परिपूर्ण योग्य (संबंध) होते हुए अयोग्य (असंबंध) कहकर वर्णन किया गया है, यही अलंकारता है।

चपलातिशयोक्ति

कारन के देखे-सुने होय शीघ्र ही काज ;
सो चपलातिशयोक्ति है बरनत सब कबिराज।

उदाहरण

आज अचानक मग मिल्यौ नटवर नंद-किसोर ;
रूप-झलक झाँकत भटू, लटू भयौ मन मोर।

यहाँ श्रीकृष्ण की रूप-झलक झाँकने-मात्र (कारण) से मन मोहित हो जाना कार्य बतलाया गया है, यही चपलातिशयोक्ति का चमत्कार है।

❀ ❀ ❀

सावँत नरेंद्र कों मृगेंद्र मृगया में लख
भाज्यो भर जोर, छूट्यो तीर-सौ लखायौ है ;
पौन-सौ उड़त कहूँ रेख-सी खुलत, कहूँ
झाँई-सी परत, काहु लक्ष में न लायौ है ।
दूर द्रुम छार रह्यौ भूपति मुहारदार,
कढ़तन, कढ़ी गोली अचरज आयौ है ;
बज्र भौ प्रहार, गिरो सिंह खा पछार, खेल
भूप यों सिकार सबै कौतुक दिखायौ है ।

यहाँ शीघ्रातिशीघ्र दौड़ते हुए अदृश्य सिंह के एक स्वल्प अवकाश में किंचित् दृश्यमान (कारण) होते ही तत्क्षण बंदूक चलाकर शिकार कर लेना कार्य वर्णन किया गया, यही लाघवता की लोकोत्तरता है । इसी प्रकार और भी जानो ।

अक्रमातिशयोक्ति

कारन औ कारज दुहूँ एक संग जब होय ;
अक्रम अतिसय उक्ति तहँ कहत सबै कबि लोय ।

उदाहरण

करि-करुना सुन कृपानिधि दीनबंधु जदुनाथ ;
चक्र और गज-फंद दोउ छोड़े एकहि साथ ।

यहाँ गज की पुकार पर परमेश्वर के कर-कमल से सुदर्शन चक्र छूटना कारण है, और गज का फंदा छूटना कार्य । यहाँ कारण एवं कार्य, दोनो का एक साथ हो जाना वर्णन किया गया है, यही लोकोत्तर चमत्कार है ।

❀ ❀ ❀

सैल-सिला पर भ्राजत भौ, तहँ केहरि केर परी सुन बोली ;
यों इत बीर तयार भयौ, उत सिंह कढ़्यौ दपटैं मृग-टोली ।
सावँतसिंह महीपति ने मृगराज पै घालो दुनाली अमोली ;
छूटत एकहि संग लखी तब शेर की स्वाँस, बँदूक की गोली ।

यहाँ आखेट में श्रीमान् बिजावर-नरेश का गोली चलाना कारण और सिंह का शिकार हो जाना कार्य, इन दोनो का बिना क्रम के ही एक साथ होना वर्णन किया गया, यही अक्रमातिशयोक्ति है।

रूपकातिशयोक्ति

कहै अर्थ उपमेय कौ कहै प्रगट उपमान ;
रुपक अतिसय उक्ति तहँ बरनत बुद्धि-निधान ।

जहाँ उपमेय न कहकर केवल उपमान ही कहा जाय, और उन उपमानों से उपमेयों का बोध ग्रहण किया जाय, वहाँ रूपकातिशयोक्ति अलंकार होता है।

उदाहरण

सोभित कमल सनाल पर पूर्ण चंद्र छबि धाम ;
तहाँ मीन मुक्ता झरहिं, निरखि रहे घनस्याम ।

यहाँ नायिका मान के समय अपनी हथेली का आश्रय कपोल-स्थल को दिए हुए है, एवं नेत्रो से अश्रु-कण टपक रहे हैं, इस उपमेय विषय को न कहकर केवल सनाल कमल, उस पर पूर्ण चंद्र, वहाँ पर मीन, उससे मुक्तागण गिर रहे, इन उपमानों का उल्लेख कर प्रथम कहे हुए उपमेयों का बोध कराया गया है, और एक उपमान पर दूसरे उपमान की स्थिति बतलाई गई है, यही लोकोत्तर विचित्रता है।

❀ ❀ ❀

जहाँ रैन अँधियारि, तहाँ दीपत दिन-दूलह ;
जहाँ अमावस-पर्ब, तहाँ चंदा-छबि झूलह ।
जहाँ पन्नगन-पटल, तहाँ केकी कल कुंजहि ;
जहाँ संभु सुख-रासि, तहाँ मनमथ बल-पुंजहि ।
कह कबि 'बिहारि' जहँ केसरी, तहँ निवास गजराज कौ;
तज बैर सकल हिल-मिल रहत, धन्य राज्य रतिराज कौ।

यहाँ नायिका के केश, चूड़ामणि, भ्रुकुटि, मुख, लट, कंठ, वक्षोज, तारुण्य कटि, गति और स्वयं नायिका, इन सब उपमेयों का वर्णन न करके क्रम-सहित इनके उपमान रात्रि, सूर्य, अमावस्या, चंदनाग, मयूर, शंभु, काम, सिंह, हाथ, एवं राजधानी का वर्णन कर पूर्वोक्त उपमेयों का बोध कराया गया, तथा परस्पर विरोधी उपमानों का एक साथ मैत्री-भाव दिखलाकर राज्य-धर्म बतलाया, यही अलौकिकता है।

सापह्नवातिशयोक्ति

रूपक अतिसय उक्ति जहँ होय अपह्नुति साथ ;

सापह्नवातिसयोक्ति तहँ बरनत कबि गुन-गाथ ।

जहाँ रूपकातिशयोक्ति अपह्नुति अलंकार की रीति से निर्माण हुआ हो, उसे सापह्न व रूपकातिशयोक्ति अलंकार कहते हैं ।

उदाहरण

जहँ कपोत जहँ आम्रफल, जहँ बिद्रुम जहँ कीर ;

तहाँ मीन-मंडित प्रभा तू जिन जानहि नीर ।

यहाँ काष्ठादिक उपमेयों-सहित उस मीनाक्षी के नेत्र उपमेयों का वर्णन न करके 'तू जिन जानहि नीर' अपह्नुति के इस निषेधवाची वाक्य द्वारा मीन आदि उपमानों का ही कथन किया गया है, जिससे उपमेयों का ज्ञान होता है ।

❀ ❀ ❀

जो आवत कछु आस करि सो पावत रुचि दान ;

नर-ढिग हू सुरतरु लसत, सुर-ढिग ही मति मान ।

यहाँ कल्पवृक्ष को 'सुर-ढिग ही मति मान' इस निषेधवाची वाक्य द्वारा नर-ढिग हू अर्थात् मनुष्यों के पास भी कल्पवृक्ष है । इस कल्पवृक्ष उपमान द्वारा राजा उपमेय का बोध कराया गया, और कल्पवृक्ष का मनुष्यों के पास होना वर्णन करना यही विचित्रता है ।

अत्यंतातिशयोक्ति

जहँ कारन के प्रथम ही कारज-सिद्धि बताय ;

अत्यंतातिसयोक्ति तहँ बरनत कबि-समुदाय ।

जिसमें कारण की ऐसी लाघवता हो कि कार्य उससे पहले ही हो जाय, वहाँ अत्यंतातिशयोक्ति अलंकार होगा ।

उदाहरण

मित्र सुदामा दान लै चले सदन सुख पाय ;

आप न पहुँचे गैल लौं, संपति पहुँची जाय ।

यहाँ स्थान पर सुदामा की उपस्थिति-कारण से पहले ही संपत्ति-उपस्थिति का कार्य हुआ है ।

❀ ❀ ❀

धन नृप सावँत रीति तुव लखी कबिन-हित निच्त ;
पहिले दारिद को हनत, पाछे सुनत कबित्त।

यहाँ कविता सुनना कारण है, जिससे पहले ही दरिद्र दूर हो जाना कार्य वर्णन किया गया है।

तुल्ययोगिता

क्रिया तथा गुन द्वार जहँ निकसे एक हि धर्म ;
तुल्ययोगिता तिहि कहत जे कबि जानत मर्म।

जहाँ क्रिया या गुण के द्वारा अनेक का एक ही धर्म निकले, अर्थात् अनेक धर्म का तुल्य योग (एकता) हो, उसे तुल्ययोगिता कहते हैं।

सो भाषा भूषन बिषै भाषी तीन प्रकार ;
चार भाँति कोऊ कहत बरनत सह बिस्तार।
धर्म एक, उपमेय बहु, पहली ताकौ मान ;
धर्म एक, उपमान बहु, दूजी ताहि बखान।

उदाहरण

जन जड़ता मन मलिनता बुधि-भ्रमता अघ भाय ;
श्रीहरि-पद सुमिरन किएँ छन महँ जात नसाय।

❀ ❀ ❀

ब्रतपालक बालक सुबुध द्विजगन पथिकसमाज ;
होत सकल मन मुदित अति उदित देख दिनराज।

❀ ❀ ❀

द्विजगन हिय हर्षित अधिक कबिगन सुख सरसंत ;
बीरन हिय हौंसन भरत निरख नृपति सावंत।

उपर्युक्त उदाहरणों में अनेक उपमेयों के धर्म की एकता बतलाई है, इसी भाँति और भी समझो।

द्वितीय तुल्ययोगिता

होवै बहु उपमान कौ धर्म एक हो योग ;
तुल्ययोगिता दूसरी ताहि कहत कबि लोग।

उदाहरण

तो तन आगे सुंदरी कौन प्रभा ठहराहि ;
चामीकर चंपक कहाँ मंद लगत नहिं काहि ।

❀ ❀ ❀

मंद-मंद जब तें भई चंदमुखी तुव चाल ;
मन मलीन तब सें भए मत्त मतंग मराल ।

उपर्युक्त उदाहरणों में उपमानो (अवयवों) के धर्म की एकता बतलाई गई है ।

तृतीय तुल्ययोगिता

बहुतन के उत्कृष्ट गुन इक महँ देय लखाय ;
तुल्ययोगिता तीसरी जहँ तुलना दरसाय ।

उदाहरण

कंज खज अरु मीन मृग नवल नवेली नैन ;
सब कबि छबि छाकत तऊ बरनत बनक बनै न ।

❀ ❀ ❀

इहि असार संसार में सार पदारथ तीन—
मधुर असन, कबि की कहन, बंक तकन तरुनीन ।

❀ ❀ ❀

दानिन दीपत गुनिन-हित भोज सिवा सिरजेस ;
यहि अवसर अब देखियत सावँतसिंह नरेस ।

उपर्युक्त उदाहरणों मे उत्कृष्ट गुणवाले उपमानों के साथ उपमेय का वर्णन किया गया है ।

चतुर्थ तुल्ययोगिता

हित मैं अनहित मैं जहाँ सम ब्यवहार दिखाय ;
तुल्ययोगिता कहत तिहि चौथी कबि-समुदाय ।

उदाहरण

गीध नैं का गुन-गाथा रची, गज नैं कहा ज्ञान-बिहार लए हैं ;
का बड़ काम कियो बलमाक❀ अजामिल कौन से दान दए हैं ।

❀ बलमीक = महर्षि वाल्मीकि ।

है हरि-नाम को ये महिमा जस नाम के तीनहुँ लोक छए हैं ;
पापी सरापी जतो अजतो, सब नाम-प्रभाव सौं पार भए हैं ।

❀ ❀ ❀

इक पाषान प्रहार कर इक सिंचन जल सेय ;
धनि रसाल की रीति यह फल दोउन को देय ।

❀ ❀ ❀

धन सावँत नृप को नियम दान नित्य जहँ होय ;
गुनी निर्गुनी द्वार सौं बिमुख न जावह कोय ।

यहाँ उपर्युक्त उदाहरणों में समान व्यवहार वर्णन हुआ है ।

प्रथम मे—हरिनाम द्वारा पुण्यात्मा एवं पापात्माओं के साथ समान व्यवहार किया गया है ।

द्वितीय मे—रसाल द्वारा सींचनेवाले एवं पत्थर मारनेवाले को समान फल-प्राप्ति का वर्णन हुआ है ।

तृतीय मे—श्रीमान् बिजावर-नरेश द्वारा गुणी एवं निर्गुणी को दान-प्राप्ति का समान व्यवहार वर्णन किया गया है । इसी प्रकार और भी जानो ।

दीपक

बर्ण्य अबर्ण्यन की जहाँ धर्म क्रिया इक होय ;
ताको दीपक कहत हैं कबि-कोबिद सब कोय ।

जहाँ उपमेय और उपमानों की एक ही धर्मवाची क्रिया कही जाय, वहाँ दीपक अलंकार होता है ।

उदाहरण

फल से सोहत तीर्थ-थल, जल से सोहत कूप ;
रस से सोहत सुमन-दल, जस से सोहत भूप ।

यहाँ भूप उपमेय है, शेष सर्व उपमान हैं; और सबका 'सोहत' यह क्रिया-वाची एक ही धर्म कहा गया है ।

❀ ❀ ❀

तेज-तप-साधन में सिद्धि कौ प्रकास देख्यौ ,
बुद्धि कौ बिकास देख्यौ निग्रह निबेस में ;
कहत 'बिहारी' हर्ष देख्यौ हरि-भक्तन में ,
हृदय हुलास देख्यौ सूरन सुबेस में ।

नेह कौ निवास देख्यौ प्रेम की उपासना में,
भावना कौ भाव देख्यौ भारत प्रदेश में ;
रूपक रजायस कौ राजन में देख्यौ और
राजसी कौ रूप देख्यौ सावँत नरेस में ।

यहाँ नृपति उपमेय, शेष सर्व उपमान और सभी का 'देख्यौ' क्रियावाची धर्म एक ही है। इसी प्रकार और भी जानना।

दीपकावृत्ति

क्रिया पदन को लख परै आवृत्ती जिहि ठोर ;
सो दीपक आवृत्ति है जानत कवि-सिर-मौर ।

जहाँ क्रियावाची पदों की आवृत्ति का प्रयोग किया गया हो, वहाँ दीपकावृत्ति अलंकार होता है।

दीपकावृत्ति के भेद

त्रिबिध दीपकावृत्ति सो पदावृत्ति इक सोय ;
अर्थावृति दूजौ, तृतिय पद अर्थावृति होय ।

पदावृत्ति दीपक का उदाहरण

घुमड़ घुमड़ घन घोर कर होड़ करत यह हूढ़ ;
गरज एक जानत सखी, गरज न जानत मूढ़ ।

यहाँ क्रियावाची एक ही 'गरज' शब्द की दो बार आवृत्ति हुई है, और दोनो के 'गर्जना' एवं 'मतलब' यह भिन्न-भिन्न अर्थ निकले।

❀ ❀ ❀

बिपिन बीर सामंत की तड़पत जबहिं दुनाल ;
तड़पत देखे भुवि परे बनपति ब्याघ्र बिहाल ।

यहाँ क्रियावाची 'तड़पत' शब्द दो बार आया है, जो दुनाली के अर्थ में तड़ाका होना और शेरों के अर्थ में बेचैनी होना बतला रहा है। इसी प्रकार और भी जानो।

अर्थावृत्ति दीपक

शब्द भिन्न अरु अर्थ इक यहि बिधि आवृति होय ;
अर्थावृति दीपक कहत ताहि सकल कबि लोय ।

जिसमें क्रियावाची शब्द भिन्न-भिन्न हों, और अर्थ की आवृत्ति अनेक बार हुई हो, उसे अर्थावृत्ति दीपक कहते हैं।

उदाहरण

देख चारुता चातुरी, निरख स्याम-छबि-जोत ;
लख बिहँसन, मुख-माधुरी बरबस मन बस होत।

यहाँ एकार्थ क्रियावाची देख, निरख, लख, शब्द भिन्न-भिन्न आए हैं, किंतु तीनो शब्द 'अवलोकन' के अर्थ में घटित हुए हैं। एक ही अर्थ की अनेक बार आवृत्ति होने से यह अर्थावृत्ति दीपक है।

❀ ❀ ❀

भाल दिपत चंदन-तिलक, उर सोहत श्रीकंत ;❀
बचन बिराजत माधुरी धन्य नृपति सावंत।

यहाँ दिपत, सोहत, बिराजत, ये भिन्न-भिन्न शब्द एक ही शोभित अर्थ मे प्रयुक्त किये गए है।

पदार्थावृत्ति दीपक

जहाॅ अर्थ पद दुहुँन को आवृति पुनि पुनि देख ;
तहाॅ पदार्थावृत्ति युत दीपक भूषन लेख।

अर्थ सुगम।

उदाहरण

हरौ क्लेश गजराज कौ, हरौ ग्राह कौ मान ;
हरौ भार भुवि कौ सकल जय हरि कृपानिधान।

❀ ❀ ❀

सरन देत बहु नरन को, करन देत बहु दान ;
ध्यान देत हरिचरन बिच नृप सावँत बलवान।

उपर्युक्त उदाहरणों में प्रथम में 'हरौ' एवं द्वितीय में 'देत' क्रियावाची एक ही शब्द और एक ही अर्थ की अनेक बार आवृत्ति हुई है।

❀ ❀ ❀

प्रजहि बनाय दियौ योग्य बहु भाँतिन सों ,
रोचक बनाय दियौ कबि-गुनी-ज्ञानी कौ ;

❀ श्रीकंत = श्रीकांतमणि।

गज रथ बाज साज सैनहिं बनाय दियौ,
महल बनाय दियौ संपति प्रमानी कौं।
कहत 'बिहारी' सिंह सावँत सवाई भूप,
लेखौ बहु भाँति पै न देखौ तुव सानी कौं;
डगर-डगर प्रभा जगरमगर कीनी,
नगर बनाय दियौ रूप राजधानी कौं।

यहाँ 'बनाय दियौ' क्रियावाची पद का 'बना दिया' अर्थ में पाँच बार प्रयोग हुआ है, पद एवं अर्थ एक ही है, अतः पदार्थावृत्ति दीपक सिद्ध हुआ, और पाँच बार के प्रयोग से माला है।

कारक दीपक

जहँ क्रम से बहु क्रियन कौ करता एकहि होय;
कारक दीपक ताहि कौ कहत सयाने लोय।

जहाँ क्रम-पूर्वक अनेक क्रियाओं का कार्य एक ही कर्त्ता द्वारा वर्णन किया जाय, वहाँ कारक दीपक अलंकार होता है।

उदाहरण

देख सुदामा मित्र प्रभु आगे आए धाय;
हँसकर, गहिकर, भेंटकर निज घर गए लिवाय।

यहाँ क्रमशः हँसना, हाथ पकड़ना, भेंट करना, इन अनेक क्रियाओं के कर्त्ता श्रीकृष्ण भगवान् ही कहे गये हैं।

❀ ❀ ❀

एक समै अँगरेजी सभा महि राजन रोप निसानो लियौ है;
तीर सरोवर भीर तहाँ सर से प्रन बेधन केर कियौ है।
धन्य 'बिहार' महीपति सावँत नैक न बीर बिलंब लियौ है;
बान उठाय कमान लगाय कै लक्ष मिलाय उड़ाय दियौ है।

यहाँ क्रम-सहित बाण को लेना, कमान से लगाना, लक्ष मिलाना, निशाना उड़ाना आदि क्रियाओं के कर्त्ता एक ही बिजावर-नरेश कहे गए हैं।

❀ ❀ ❀

तुपक, तमंचा, तेग, तुमल, तुनीर, तीर ,
बरछी, बिनौट खेल खेले औ' खिलाए हैं ;
चौसर की चातुरी, सुचाल चतुरंगिनी की ,
चित्र-कला, अश्व-कला, कार्य बहु लाए हैं ।
कहत 'बिहारी' नाद, बेद, ज्ञान, भक्ति-भाव ,
काव्य-कला, कोक, छंद-भेद छबि छाए हैं ;
कासीसुर पंचम बुँदेल बीर सावँतेस
भूप, आप एक में इतेक गुन पाए हैं ।

यहाँ क्रमशः अस्त्र-शस्त्र, चौसर, चतुरंगिनी, नाद, वेद, काव्य-कला आदि कार्यों के करनेवाले एक बिजावर-नरेश ही कहे गए हैं ।

माला दीपक

दीपक एकावलि जहाँ ये दोनों मिल जात ;
माला दीपक ताहिकौ कहत सकल गुनि ज्ञात ।*

दीपक का अंग (एक ही क्रिया-शब्द का प्रयोग) एवं एकावलि का अंग (ग्रहीत-मुक्त-रीति का प्रयोग), इन दोनो का समावेश जहाँ जिस छंद में हो, वहाँ माला दीपक अलंकार होता है ।

उदाहरण

बिद्या सन पावत सुबुधि, बुधि से पावत ज्ञान ;
ज्ञान पाय पावत बहुरि पूरन पद निर्बान ।

यहाँ विद्या से सुबुद्धि अर्थात् विवेक बुद्धि और बुद्धि से ज्ञान तथा ज्ञान से निर्वाण (मोक्ष) की प्राप्ति ग्रहीत-मुक्त-रीति से कही गई है । इन सबमें क्रियावाची 'पावत' एक ही धर्म का कथन होने से इस उदाहरण में माला दीपक अलंकार है ।

❀ ❀ ❀

राम-रसरूप में सुरूप रस रूप बसै ,
रस बसै मंजुल सुमाधुरी रतन में ;

---

* चंद्रालोककार का भी यही मत है । लिखते हैं —"दीपकैकावलीयोगान्मालादीपक-मिष्यते ।" अर्थात् दीपक और एकावली के योग से माला दीपक होता है ।—संपादक

माधुरो सुधा में बसै सुधा अमृता* में बसै,
अमृता बसत सर्ब देवन के तन में।
कहत 'बिहारी' सर्ब देव बसैं बिष्णु बीच,
बिष्णु बसैं सर्बदा सुलक्षमी के मन में;
लक्षमो बसत भूप सावँत करन मध्य,
सावँत बसत कृष्ण-राधिका-सरन में।

यहाँ सभी शब्द ग्रहीत-मुक्त-रीति से कहे गए और सबमें 'बसत' एक ही धर्म क्रिया का निर्माण हुआ है। इसी प्रकार और भी जानो।

देहरा दीपक

जुग बाक्यन के बीच में परै एक पद आन;
दुहूँ ओर देवै अरथ दिहरी दीपक जान।

उदाहरण

दुःख बिभीषन कौ हरौ, रावन कौ अभिमान;
देवन मन निर्भय कियौ जग जस कृपानिधान।

* * *

सेवक प्रन राखत सदा कबि पंडित को रूप;
दान देत सुख सुजन मन धन-धन सावँत भूप।

उपर्युक्त दोनो उदाहरणों के रेखांकित शब्द दोनो ओर अर्थ दे रहे हैं। शब्द के ऐसे प्रयोग को देहरी दीपक अलंकार कहते हैं।

दीपयोग

रचै एक पद यमक को एक दीप को धार;
दीपयोग भूषन तिन्हैं बरनन कियौ 'बिहार'।

जहाँ क्रियावाची पदों की आवृत्ति होती है, वहाँ दीपकावृत्ति एवं जहाँ अक्रिया पद की आवृत्ति होती है, वहाँ यमक होता है, किंतु जहाँ एक पद यमक और एक पद दीपकावृत्ति का मिलकर आवृत्ति रूप से आवे, वहाँ दीपयोग नाम का अलंकार होता है।

---

* अमृता अमरता का विकृत रूप है।

उदाहरण

आपुस की रार में फरार कहूँ होत देखे,
कहूँ-कहूँ कोउ कछू पावै सोई दावै है;
काहू की अवाज पै समाज चित्त देवै नहीं,
काहू की अवाज पै स्वकाज तज धावै है।
कहत 'बिहारी' कोउ जोगी हो जगावत है,
जगत जरूर, किंतु सोय-सोय जावै है।
कीजिए बखान का जहान की बिचित्र बात,
जगत नहीं है, तौउ जगत कहावै है।

यहाँ 'जगत' पद आवृत्ति रूप से दो बार आया है—प्रथम बार क्रियावाची रूप से, द्वितीय बार अक्रिय रूप से। अत: यह दीपयोग अलंकार हुआ। इसी प्रकार नीचे के दोहे मे जानना।

❋ ❋ ❋

करिए कृपा कृपायतन, करिए करन प्रकार;
आ, तुर पै आनंदघन आतुर करी सम्हार।

संकर संसृष्टि में पूरे-पूरे अलंकारों का मेल होता है, और यह अर्थयोग से होता है, यही इसमे अंतर है।

प्रतिवस्तूपमा

वर्ण्यावर्ण्य पृथक जहाँ धर्म एक ही होय;
धर्म शब्द सब भिन्न हों, प्रतिवस्तुपमा सोय।❋

जहाँ उपमान-उपमेयवाची पृथक् वाक्य हों और उन वाक्यों का धर्म एक ही हो, किंतु धर्म के वाचक शब्द एकार्थवाची होते हुए भी भिन्न-भिन्न हो, उसे प्रतिवस्तूपमा अलकार कहते हैं।

❋ इस अलकार के लक्षण में काव्यप्रकाशकार आचार्यप्रवर श्रीमम्मटाचार्यजी लिखते हैं—
"... ..प्रतिवस्तूपमा तु सा। सामान्यस्य द्विरेकस्य यत्र वाक्यद्वयस्थितिः।" अर्थात् जहाँ एक समान धर्म की उपमेय और उपमान, दोनो वाक्यों में दो बार स्थिति हो, वह प्रतिवस्तूपमा अलंकार है। यद्यपि यह लक्षण बहुत ही समीचीन है, तथापि इसमें यह स्मरण रहे कि शब्द-भेद से ग्रहण किए जानेवाले उपमान में ही प्रतिवस्तूपमा अलंकार है, क्योंकि "प्रतिवस्तुप्रतिवाक्यार्थमुपमासमानधर्मो:स्यामिति व्युत्पत्तेः।" कविराज बिहारीलालजी के लक्षण में "धर्म शब्द सब भिन्न हों" बहुत ही विचार-पूर्वक रक्खा गया है।—संपादक

उदाहरण

लसत सूर सायक धनुधारी । रबि-प्रताप सन सोहत भारी ।

यहाँ वीर पुरुष उपमेय वाक्य को शस्त्र-संयुक्त 'लसत' कहा गया और सूर्य उपमान वाक्य को प्रताप-सहित सोहत कहा गया, किंतु 'लसत' और 'सोहत' दोनो शब्दों का 'सुशोभित होना' एक ही धर्म कहा गया है ।

❀ ❀ ❀

मूरख कों गुन के दिए औगुन ही अधिकात ;
सर्पहिं पय प्यावौ जितौ, तितौ गरल ह्वै जात ।

यहाँ पूर्वार्द्ध उपमेय वाक्य उत्तरार्द्ध वाक्य उपमान रूप है, और 'औगुन ही अधिकात' एवं 'गरल ह्वै जात' ये एकार्थवाची शब्द भिन्न-भिन्न है, तथा उनका एक ही धर्म 'प्रभाव बदल जाना' कहा गया है ।

❀ ❀ ❀

सावँतसिंह नरेंद्र हैं गुन-ग्राहक जग साँच ;
सुरभित सुमन सुगंध की मधुकर जानत जाँच ।

यहाँ भी पूर्वार्द्ध उपमेय वाक्य उत्तरार्द्ध उपमान वाक्य है, और 'गुण की ग्राहकता' एवं 'सुमन सुगंध की जाँच' ये धर्मवाची वाक्य भिन्न-भिन्न होते हुए भी 'मर्मज्ञता' धर्म एक ही कहा गया है ।

कहीं-कहीं यह अलंकार काकु से तथा विधिनिषेध रूप से भी होता है और धर्म एक ही कथन किया जाता है ।

काकु से उदाहरण

हरि-पद-रज-महिमा कहौं किहि बिधि बुद्धि बिचार ;
तृन-तरनी पर बैठ कोउ भयो कि सागर पार ।

यहाँ पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध वाक्यों में 'असमर्थता' धर्म प्रकट है, किंतु पूर्वार्द्ध मे स्पष्ट रूप से और उत्तरार्द्ध मे काकु से असमर्थता कही गई है ।

विधिनिषेध से उदाहरण

बचन-मधुरता मधुर की बिनहिं बनाय मिठाय ;
बायस बकहि मल्हार कर, तऊ न कटुता जाय ।

पूर्वार्द्ध की 'मधुरता' उत्तरार्द्ध की 'कटुता' दोनो में 'बना रहना' धर्म एक ही है, अर्थात् मधुरभाषी की मधुरता बनी रहती है और कटुभाषी की कटुता बनी रहती है, किंतु पूर्वार्द्ध वाक्य में मधुरता का बना रहना विधि वाक्य से एवं उत्तरार्द्ध में

कटुता का बना रहना निषेध वाक्य से कहा गया है। दोनो वाक्यों में एक ही धर्म 'बना रहना' वर्णन किया गया है।

❀ ❀ ❀

कक्कर औ' सक्कर समान बाँध पक्खर में
खच्चर पै लादौ वह स्वाद अनुमानै का ;
बेद औ' पुरान सास्त्र-सम्मत सुनाओ, फेर
पूछौ कहा सुन्यौ मूक, मुख से बखानै का।
कहत 'बिहारी' इत्र अंबर, गुलाब, मुश्क
स्वान को सुँघाओ, तौ सुगंधि सुख सानै का ;
जाँच तौ जवाहिर की जौहरी ही जानै नीके,
गुन की गँभीरता गँवार पहिंचानै का।

यहाँ कवित्त के अंतिम चरण में विधिनिषेध रूप से 'जानै' और 'का जानै' (का पहिचानै) ये दो वाक्य कहे गए, परंतु एक जानने में बढ़ा-चढ़ा है और एक न जानने में बढ़ा-चढ़ा है, धर्म दोनो का एक ही है।

अर्थालंकारन महँ पूरबअर्ध प्रसंग ;
भई सिंधु साहित्य की दसइक पूर्न तरंग।

स्वति श्रीमन्महाराजाधिराज श्रीकाशीश्वर अहनिशार पचम विंध्येलवंशावतंस श्रीमत्सवाई महाराजा साहब भारतधर्मेंदु सर सावंतसिंहजू देव बहादुर के० सी० आई० ई० बिजावरनरेशस्य कृपापात्र ब्रह्मभट्ट-वंशोद्भव कविभूषण कविराज पं० बिहारीलालविरचिते साहित्यसागरे अर्थालंकारे पूर्वार्द्धप्रकरण-वर्णनो नाम एकादशस्तरंगः।

* द्वादश तरंग *

अर्थालंकार-वर्णन

(उत्तरार्द्ध)

दृष्टांत *

रीति बिंब - प्रतिबिंब से वर्ण्यावर्ण्य लखाय ;
भिन्न धर्म, दृष्टांत युत, सो दृष्टांत कहाय।
ज्यों, यों, जैसे, याहि के बाचक होत प्रधान ;
बाचक, बिन बाचक तऊ बरनत सुकबि सुजान ।

जहाँ उपमेय और उपमान वाक्यों के भिन्न धर्म कहे जायँ, और दोनो वाक्यों की रीति बिंब-प्रतिबिंब भाव से कही जाय, जैसे दर्पण में बिंब के समान ही प्रतिबिंब दीखता है, वैसे ही उपमेय के समान एक उपमान वाक्य दृष्टांत रूप से कहा जाय, वहाँ दृष्टांत अलंकार होता है।

ज्यों, यो, जैसे, इसके वाचक भी होते है, किंतु कवियों ने कहीं वाचक-रहित और कहीं वाचक-सहित इसका वर्णन किया है, जो आगे उदाहरणों से विदित होगा। बहुधा कवियो ने इस दृष्टांत के रूप का एक 'उदाहरण'-नामक अलंकार ज्यो, यो, जैसे वाचक देकर भिन्न माना है। किंतु विशेष ग्रथों मे इसका निरूपण नहीं किया गया, इससे हम इसको दृष्टांत के ही अंतर्गत मानते है।

उदाहरण

जो अजान, रीझहि कहा ? लखत न गुन की सोब ;
कोटि कला कामिनि करै, मोहित होत न क्लीब ।

यहाँ पूर्वार्द्ध में उपमेय तथा उत्तरार्द्ध में उपमान वाक्य कहे गए हैं, और 'गुण को न जानना' एवं 'मोहित न होना', ये दोनो वाक्यों के भिन्न-भिन्न धर्म कहे गए और दोनो वाक्यों में बिंब-प्रतिबिंब भाव प्रकट किया गया है। इसी प्रकार आगे भी जानो।

* * *

* दृष्टांत अलंकार में दो वाक्य होते हैं, जिनमें बिंब-प्रतिबिंब भाव रहता है। इनमें एक तो दृष्टांत वाक्यार्थ और दूसरा दृष्टांत की अपेक्षा करनेवाला निश्चित दृष्टांत। यद्यपि दृष्टांत वाक्यार्थ का प्रयोग दृष्टांत का निश्चय कराने के लिये ही होता है, परंतु चमत्कार का पर्यवसान प्रधानतया दृष्टांत में होने के कारण इस अलंकार को दृष्टांत कहते हैं।—संपादक

नृप सावँत के सुहृदगन सुखी रहत दिन-रैन ;
सुरतरु-तर-बासीन कों* जब देखहु तब चैन ।

अर्थ पूर्ववत् ।

*

गुन-आगर अल्पज्ञ को यों नहिं निरखत राह ;
जैसे कुंज करील की मधुकर करत न चाह ।

अर्थ पूर्ववत् ।

*

कृपा भूप सावंत को पुजवत कबि की आस ;
जैसे चातक तृषित की स्वाँति बुझावत प्यास ।

अर्थ पूर्ववत् ।

निदर्शना

जुग बाक्यन के अर्थ में समता लगै दिखान ;
समझ परैं दुउ एक सम, सो निदर्शना जान ।

जहाँ उपमान-उपमेय दोनो वाक्यों के अर्थ मे समानता झलके अर्थात् भिन्न होते हुए भी वे एक-से जान पड़ें, वहाँ निदर्शना होता है ।

निदर्शना के भेद

दोय भेद ताके कहत, तीन कहत कोउ आन ;
पाँच भेद कोऊ कहत, तिनमें तीन प्रधान ।
अंतरगत इन तीन के मिलत भेद सब आन ;
उदाहरन लच्छन-सहित ते इत करत बखान ।

पहली निदर्शना

जो, सो, जे, ते, शब्द कर लखिए जहाँ प्रयोग ;
ताकों प्रथम निदर्शना कहत सकल कबि लोग ।

जहाँ उपमान-उपमेय दोनो वाक्यों की अभेद एकता बतलाई जाय, और वह

* सुरतरु-तर-बासीन कों = कल्पवृक्ष के नीचे रहनेवालों को ।

† निदर्शना अलंकार में उपमेय और उपमान वाक्यों में धर्म-भिन्नता होते हुए भी उपमेय वाक्य का निश्चय उपमान वाक्य से होने के कारण उनमें एकता का आरोप परिलक्षित होता है । —संपादक

एकता जो, सो, जे, ते के प्रयोग से बतलाई जाती है, वहाँ प्रथम निदर्शना अलंकार होता है। चारो का उदाहरण एक ही चौपाई से समझ लेना !

उदाहरण

१. जो नर-देह विषय-रस गारै ;
२. सो पियूष सें पायँ पखारै।
३. जे खरचैं वय अधरम लागा ;
४. ते मनि फेंक उड़ावत कागा।

❀ ❀ ❀

जो तंत्री कौ स्वर सुखद, जो रस अमृत अमोल ;
बसीकरन जो मंत्र है, सो तरुनी, तुव बोल।
लेन चहत हरि-भक्ति जे चल कुसंग की गैल ;
ते सहजहिँ चाहत चढ़न बिन ही पाँवन सैल।

अर्थ सुगम।

❀ ❀ ❀

स्वामिधर्म को छोड़कर करहिं जे सुख की आस ;
ते नर मूरख पंख बिन चाहत उड़न अकास।

अर्थ सुगम।

वाचक-रहित उदाहरण

कर्ण-मधुर जाके सदृश बिमल न बानी आन ;
कृष्ण-कथा सुनिबौ सरस है अमृत कौ पान।

इसमें जे, ते, आदि वाचकों का प्रयोग नहीं हुआ है।

❀ ❀ ❀

भौंर अनेकन, थाह गँभीर, जहाँ जल-जंतुन जोर गह्यौ है ;
काम नहीं सब ही कौ यहाँ, यह बाट 'बिहार' कोऊ निबह्यौ है।
नेह कौ पंथ नदी कौ प्रबाह है, या बिच चैन न काहु लह्यौ है ;
पार किनार गह्यौ सो गह्यौ, जो रह्यौ सो रह्यौ, जो बह्यौ सो बह्यौ है।

दूसरी निदर्शना

और बस्तु के गुन जहाँ और बस्तु में आन ;
ताकौ द्वितिय निदर्शना भाषत काव्य-निधान ।

जहाँ और वस्तु के गुण और वस्तु में आरोपित किए जायँ, अर्थात् उपमान के गुण उपमेय में तथा उपमेय के गुण उपमान में ; वहाँ द्वितीय निदर्शना होती है ।

उदाहरण

रसवारे प्यारे परम, अरुनारे अति ऐन ;
कमलन के गुन गह रहे नवनागरि, तुव नैन ।

यहाँ उपमान के गुण उपमेय में आरोपित हुए हैं ।

❀ ❀ ❀

जगत प्रकासित ह्वै रह्यौ उदित अमल अनूप ;
ससधर की छबि धर रह्यौ तुव जस सावँत भूप !

अर्थ सुगम ।

❀ ❀ ❀

तुव दीरघता दृगन की धारी मृगन सबृंद ;
चपलाई खंजन लई, अरुनाई अरबिंद ।

यहाँ उपमेयों के गुणों का उपमान में आरोप हुआ है ।

तीसरी निदर्शना

भले-बुरे ब्योहार की सिच्छा जहँ दरसाय ;
तीजी ताहि निदर्शना कहत कबिन के राय ।

अर्थ सुगम ।

उदाहरण

नीचौ तरुवर ह्वै रह्यौ यहै सिखापन हेत ;
चहिय बड़न में नम्रता, तब बड़पन छबि देत ।

❀ ❀ ❀

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति यह सिखवत सबहिं समच्छ ;
जीव, ईश अरु ब्रह्म कौ यह बिधि करिए लच्छ ।

❀ ❀ ❀

सावँत नृप कबि दुजन कौ आदर करत सहेत ;
बिद्या से गौरव बढ़त, जगत सिखापन देत।

व्यतिरेक *

उपमा सों उपमेय में गुन आधिकता होय ;
तिहि व्यतिरेक बखानहीं कबि-कोबिद सब कोय।
गुणाधिक्य उपमेय में कहै कबहुँ दरसाय ;
कबहुँ हीन उपमान कहँ, कथन उभय बिधि ल्याय।

अर्थ सुगम।

उदाहरण

उपमेय गुणाधिक्यता

नयनन नीरज मैं सखी, समता सब दरसात ;
बंक बिलोकन दृगन मैं यह गुन अधिक दिखात।

❋ ❋ ❋

उनके तन सोह बिभूति घनी, इन्हैं केसर ओप उरूझत है;
उनके सिर चंद्र लसै, इनके नख चंद्रन को छबि छूजत है।
उन्हैं ध्यावत सेवक संत 'बिहार', इन्हैं ब्रज स्यामरो पूजत है ;
प्रिय लाड़लो तेरे उरोज औ शंभु की कैसे बराबरी जूझत है।

❋ ❋ ❋

वे नव नीलिमा कंठ धरैं, यह हू नव नीलिमा रंगत धारे ;
वे निज बास कुटो में करैं, यह कंचुकी बीच बसैं छबिवारे।
शंभु उरोज बराबरी के, पर अंतर एतौ 'बिहार' निहारे ;
शंभु सकोप ह्वै जारो मनोज, उरोज मनोज जियावनहारे।

❋ ❋ ❋

---

* सुप्रसिद्ध प्रामाणिक अलंकाराचार्य सूत्रकार वामन का मत है—"उपमेयस्य गुणातिरेकत्वे व्यतिरेक:" अर्थात् उपमान की अपेक्षा उपमेय के गुणाधिक्य (वर्णन) में व्यतिरेक अलंकार है।—संपादक

उनकी अति नोकैं बनी हैं घनी, यह हू अति पैनी अनी को अरैं ;
वह बाढ़ धरैं खर सान खरी, यह हू नवअंजन-धार धरैं ।
उन बानन की इन नैनन की समता में 'बिहार' ए भेद परैं ;
वह सीधे जो होयँ तौ लाग सकैं, ए तिरीछे भए पर चोट करैं ।

❀ ❀ ❀

ससि में सावँत-सुजस में भेद इतौ चित चेत ;
वह प्रकास निसि में करत, यह निसि-दिन छबि देत ।
सावँत नृप तुव सुजस में पंकज में यह बात ;
वह प्रफुलित दिन में रहत, यह प्रफुलित दिन-रात ।

हीन उपमान-कथन

झुरस जात, झर जात है, कंटक, अधिक न आब ;
तुव पग पटतर किमि लहहि यह जड़ मंद गुलाब ।

❀ ❀ ❀

प्रगट पंक, हिम-संक-जुत, निसि संपुट दरसंत ;
कमल कहहु किमि ह्वै सकत तुव जस-सम सावंत ।

सहोक्ति अलंकार

एकहि सँग बहु बात कौ जहँ कछु बरनन होय ;
सो सहोक्ति भूषन कहैं कबि पंडित सब कोय ।

अर्थ सरल ।

उदाहरण

सखि गोरस-बेंचन कठिन, मग छेड़त ब्रज-नाथ ;
लोक-लाज, कुल-कान सब लूटत दधि के साथ ।

❀ ❀ ❀

रावन कौ तन-तेज अरु राजनीति कौ अंग ;
भाग्य निसाचर सबन कौ गयौ बिभीषन संग ।

❀ ❀ ❀

धन निषाद, रघुबीर-पद तू परसे निज हाथ ;
पाप अनेकन जन्म के धोए चरनन साथ।

❀ ❀ ❀

दान करन भ्राजत जबहि श्रीसावँत नर-नाथ ;
मित्रन कों सुख, अरिन दुख देत एक ही साथ।

विनोक्ति अलंकार

कछु बिन प्रस्तुत न्यून हो, कछु बिन सोभित होय ;
द्वै बिधि कहत विनोक्ति यों कबि-कोबिद सब कोय।

जहाँ प्रस्तुत, किसी वस्तु के रहित शोभन अथवा अशोभनमय, वर्णन किया जाय, वहाँ विनोक्ति अलंकार होता है।

अशोभन (प्रथम विनोक्ति) का उदाहरण

तरु बिन सोह न बाग, कंठ बिन राग न सोहै ;
जल बिन सोह न ताल, ढाल बिन ज्वान न जोहै।
सोह न गज बिन दंत, कंत बिन सोह न कामिनि ;
कुल बिन सोह न जाति, जलद बिन सोह न दामिनि।
कह कबि 'बिहार' गुन-ज्ञान बिन सोहत नहिँ बुधजन-जती ;
अरु ससि बिन सोह न सर्वरी*, जस बिन सोह न भूपती।
ससि बिन नीक न यामिनी, रस बिन बचन न मोह ;
छबि बिन रूप न राजही, कबि बिन सभा न सोह।

शोभन (द्वितीय विनोक्ति) का उदाहरण

बचन रावरे सरस अति, सुख सिरजत मन माहिँ ;
मृदुल मधुरता से भरे, इक कठोरता नाहिँ।

❀ ❀ ❀

* सर्वरी = रात्रि, यामिनी।

धन-धन तूँ तिय पतिब्रता, धन तूँ प्रीति-प्रधान ;
तूँ सब सीखे शुद्ध गुन, एक न सीखो मान।

❀ ❀ ❀

राज्य रुचि रीति राखी, सज्जन सों प्रीति राखी,
नीकी राजनीति राखी छाँह छत्र-छाया की ;
बीरन को बान औ' सिपाहिन की मान राखो,
सास्त्र पहचान राखी बेद नीति न्याया की।
कहत 'बिहारी' सुधि रच्छा की हमेस राखो,
गऊ की गरीबन की जीवन की काया की ;
सावँत नरेंद्र दोय बातें तू न राखी बीर,
सत्रुन की पत और बिपत रियाया की।

मिश्रित विनोक्ति

शोभन विनोक्ति

क्रोध बिना सोभित जती, लोभ बिना महिपाल ;

अशोभन विनोक्ति

गुन-बिहीन सोभित नहीं कबि-बुधजन ज्यों माल।

ध्वनि से विनोक्ति

देह धरे कौ कहा फल, कियौ न संतन साथ ;
धिक तेरौ जीवन जनम, जो न भजे ब्रजनाथ।

❀ ❀ ❀

धन्य तेरे नैन, जो समस्त बस्तु देखि सकैं,
धिक तेरी दृष्टि, जो न स्याम छबि छेमी भौ ;
धन्य तेरौ मुख, जो अनेक कथ डारैं कथा,
धिक तेरौ बोल, जो न हरि-गुन हेमी भो।

कहत 'बिहारी' धन्य पौरुष तिहारौ पूर्न,
धिक तेरौ बल, जो न धर्मब्रत नेमी भौ ;
धन्य तेरौ भाग्य, जो मनुष्य-देह पाई, और
धिक तेरौ जन्म, जो न कृष्ण-पद-प्रेमी भौ ।

समासोक्ति

प्रस्तुत बर्नन में फुरें अप्रस्तुत कछु रूप ;
समासोक्ति तासों कहत जे जग सुकबि अनूप ।
कबि के इच्छित कथन कौ प्रस्तुत ना । बखान ;
फुरै अनिच्छित अर्थ कछु, अप्रस्तुत सो जान ।

कवि के इच्छित वर्णन में किसी शब्द-श्लिष्ट से अथवा विना श्लिष्ट शब्द से अनिच्छित अर्थ अर्थात् किसी दूसरे व्यवहार का भाव झलके, उसे समासोक्ति अलंकार कहते हैं ।

उदाहरण

पूरन चंद प्रकास प्रिय निरखि नैन सुखदैन,
प्रगट्यो चारु चकोर के चित्त चौगुनौ चैन ।

इसमें ग्रंथकर्ता का इच्छित अर्थ (प्रस्तुत) तो यह है कि चंद्र का पूर्ण प्रकाश देखकर चकोर के चित्त में चौगुना चैन प्रकट हुआ ; परंतु अनिच्छित अर्थ (अप्रस्तुत) यह भी झलकता है कि किसी नायिका को प्रिय नायक का दर्शन होने से अत्यंत आनंद हुआ है !

❀ ❀ ❀

चपलता सुकुमार तूँ, धन तुव भाग्य बिसाल ·
तेरे ढिग सोहत सुखद सुंदर श्याम तमाल ।

इसमें ग्रंथकर्ता का (प्रस्तुत) अर्थ चंपे की लता और तमाल का है, परंतु सुंदर श्याम इस श्लिष्ट शब्द से श्रीकृष्ण और श्रीराधिकाजी का व्यवहार झलकता है ।

परिकर अलंकार

अभिप्राय जहँ क्रिया कौ होय विशेषण माहिं ;
परिकर भूषन ताहि को सज्जन सुकबि सराहिं ।

श्लेष

जहाँ सब्द में अर्थ बहु कबि-इच्छा से होय ;
श्लेष नाम तासों कहत बुद्धि चमत्कृत जोय ।

उदाहरण

सोहै रूप सागर उजागर अचल प्रेम,
स्वच्छ पट नील लाल मनिन उजेरौ है ;
गौर-तन-दीप्ति केलि-बन रुचि मानें मोद,
हरी युत हर बाक्य रोचक घनेरौ है ।
कहत 'बिहारी' सक्ति पूरन सगुन दिब्य,
आदि सुर ईस हियैं बिमल बसेरौ है ;
मैंने कियो कथन चरित राधे लाड़ली कौ,
रमा कहैं मेरौ और उमा कहै मेरौ है ।

इस कवित्त में श्रीराधिकाजी और श्रीलक्ष्मीजी एवं श्रीपार्वतीजी का भिन्न-भिन्न अर्थ श्लिष्ट शब्दों में होता है। कविजन विचार लेंगे।

❋ ❋ ❋

धार प्रबल, पानी बिमल, उपजति तरल तरंग ;
किधौं तेग सावंत की, किधौं बिराजति गंग ।❋

❋ ❋ ❋

बरदानी, हरि-भक्ति-रति, सुरधुनि-प्रिय, गुनवंत ;
किधौं संत, शंकर किधौं, किधौं नृपति सावंत ।†

❋ इस दोहे में 'धार प्रबल', 'पानी बिमल', 'तरल तरंग', ये शब्द श्लेष में तेग तथा गंग, दोनो के प्रति कहे गए है।

† यहाँ भी दोहे के प्रथम चरण के शब्द तीन अर्थों में स्पष्ट रूप से घटित होते हैं।
संत-पक्ष—बरदानी, हरि-भक्ति-रति, सुरधुनि-प्रिय = गंगा-तट-प्रिय । गुनवंत = सूत्र-शिखाधारी ।

शंकर-पक्ष—बरदानी, हरि-भक्ति-रति, सुरधुनि-प्रिय = गंगा-प्रिय । गुनवंत = एक गुण के अवतार ।

श्लेष अलंकार वर्णन करने की रीति प्रायः दो प्रकार की होती है—एक रीति इस प्रकार है कि जिसमें ऐसे शब्द रक्खे जायँ कि एक शब्द से ही कवि अपने इच्छानुसार अनेक अर्थ सिद्ध कर सकें। दूसरी रीति यह है कि जिसमें शब्द ऐसे रक्खे जायँ, जिनका अर्थ तो एक ही हो, किंतु वह एक ही अर्थ अनेक अर्थ देने में समर्थ हो।

प्रथम रीति का उदाहरण—जैसे सुबरन, यहाँ सुबरन शब्द का अर्थ सुंदर बरन (रंग), सुंदर अक्षर और स्वर्ण, इन तीन अर्थों मे घटित होता है। तात्पर्य यह कि एक शब्द तीन अर्थ दे रहा है।

दूसरी रीति का उदाहरण- जसे सरसः, सालंकारः, सुपदन्यासः, यहाँ रस-शब्द का अर्थ रस ही है, किंतु वह कविता और कामिनी, दोनो के प्रति घटित होता है। इसी प्रकार अलंकार एवं पदन्यास का भी अर्थ जानना।

अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार

जहँ अप्रस्तुत कथन से प्रस्तुत लक्षित होय;
तहँ अप्रस्तुत प्रसंसा बरनत हैं कबि लोय।

जहाँ प्रस्तुत विषय को न कहकर अप्रस्तुत विषय को इस प्रकार कहे, जिसमें प्रस्तुत विषय प्रकट हो जाय, वहाँ अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार होता है। ऐसा कथन प्रायः पाँच प्रकार से होता है—

(१) कारन कहने है तहाँ कारज कहै बनाय;
(२) कारज कहने है तहाँ कारन रूप लखाय।
(३) जहँ कहने सामान्य सो भाषहि तहाँ बिसेख;
(४) जहँ बिसेख कौ कथन तहँ कह सामान्यहिं देख।
(५) कहूँ बस्तु - समता समुझि कहै और पै ढार;
यहि बिधि याके कथन कों बरनत पाँच प्रकार।

(१) कार्य-निबंधना

जिसमें कार्य कहकर कारण प्रकट किया जाय।

राजा-पक्ष—बरदानी, हरि-भक्ति-रति, सुरधुनि-प्रिय = गंगा-जल-पान [श्रीमान् (बिजावर-नरेश) सदैव गंगा-जल-पान करते हैं, जो हरिद्वारजी से हमेशा मँगवाया जाता है]। गुनवंत = बहुगुन-संपन्न।

उदाहरण

सुन सकोप बोले लखन, प्रभु तव चरन-प्रसाद ;
छन अनुसासन लहत ही मेटहुँ जनक-बिषाद ;

यहाँ जनकजी की आर्त्त वाणी सुन, उत्तेजित होकर लक्ष्मणजी के कहने का तात्पर्य यह है कि आज्ञा हो, तो मैं धनुष तोड़ डालूँ, परंतु ऐसा न कहकर यह कहा कि यदि आज्ञा हो, तो इसी क्षण मैं जनक के विषाद को मिटा दूँ। धनुष टूटना कारण और जनकजी का विषाद मिटाना कार्य है, सो यहाँ कार्य कहकर कारण भाव को झलकाया है। इसी प्रकार आगे के उदाहरणों मे समझना।

❁ ❁ ❁

ब्रजपति वह ब्रज की दसा, बर्नन कीजे कौन ;
बहत सरद हेमंत में ग्रीषम की सम पौन।

यहाँ हेमंत मे ग्रीष्म के समान उष्ण पवन का चलना जो कार्य-रूप है, सो कहा, परंतु (वास्तविक कारण) जो विरहाग्नि-अधिकता है, उसको प्रकट शब्दों में न कहा, इससे यहाँ भी कार्य मिस कारण का कथन है।

❁ ❁ ❁

जिहि कबि की कबिता सरुचि श्रीसावँत सुन लेत ;
ताके अति अनुराग भर भाग सफल कर देत।

पूर्वोक्त कार्य-निबंधना यहाँ भी जानना।

(२) कारण-निबंधना

जहाँ कार्य को कारण के ब्याज से कहा जाय।

उदाहरण

तुव मुख-समता करन-हित बिधु कों बिधि निज ओज ;
रोज-रोज टोरत रहत जोरत रोजहिं रोज।

यहाँ ब्रह्मा द्वारा चंद्रमा का घटाना-बढ़ाना कारण-रूप कहकर श्रीराधिकाजी के मुख-सौंदर्य-रूप कार्य का वर्णन किया गया है।

❁ ❁ ❁

लाड़िली तो पग-लालिमा की सम लालिमा और बिरंचि ने जोरी ,
फेर मिलाई मिली न 'बिहार' बिचार जहाँ तहाँ बाँट बरोरी।

दीनो कछू अरबिंद गुलाब में मानिक में कछु राग में थोरी ;
जावक में कछु बिद्रुम में कछु शेष सरस्वति-धार में घोरी ।

यहाँ भी अनेक कारणों से श्रीजी के चरणो की कार्य-रूप जो ललित लालिमा है, उसका कथन किया गया है।

❀ ❀ ❀

तब लग हौं रिस मान तूँ, कर ले मान-गुमान ;
जब लग नहिं कानन परी कान्ह-बाँसुरी-तान ।

यहाँ भी कारण-रूप बाँसुरी का वर्णन करके आकर्षण-रूप कार्य को बतलाया है।

❀ ❀ ❀

तुम जिन कंथा रूठियौ, तुम्हैं हमारी सौंहँ ;
कठिन जानियौ रिस-भरी नृप सावँत की भौंहँ ।

यहाँ भी कारण के मिस कार्य का कथन जानना।

(३) सामान्य निबंधना

जहाँ विशेष का रूप सामान्य वाक्य कहकर बतलाया जाय, अर्थात् बतलाना है और, कहा जाय सामान्य, उसे सामान्य निबंधना कहते हैं।

उदाहरण

सबल पुरुष सों निबल नर बैर करत हठ जोर ;
ते अपने मुख आप ही पियत हलाहल घोर।

❀ ❀ ❀

बिना बिचारे जे रचत राजद्रोह बिस्तार ;
ते अपने सिर आप ही पटकत प्रबल पहार ।

उपर्युक्त दोनो उदाहरणो में कोई किसी बलवान् पुरुष से वैर करने को निषेध करना चाहता है, परंतु उस विशेष पुरुष का नाम न लेकर सामान्य भाव कहकर उसकी विशेषता बतलाता है।

(४) विशेष निबंधना

जहाँ सामान्य के दिखाने को विशेष कहा जाय।

उदाहरण

पानी पय सँग ना तज्यौ, यहै प्रीति कौ काम ;
खोय खोय निज रूप कों पायौ खोया नाम ।

पानी का दूध के साथ इस प्रकार संबंध वर्णन करना कवि का कोई प्रयोजन नहीं, वरन् यह विशेष उदाहरण देकर (प्रस्तुत सामान्य भाव) वस्तुतः यह सूचित करता है कि मनुष्य को प्रीति ऐसी करना चाहिए ।

❀ ❀ ❀

सेस सहस फन बिस धरैं, नहिं अभिमान अतंक ;
बृश्चिक एकहि बिंदु पै चलत उठाए डंक ।

यहाँ शेष और वृश्चिक के विशेष भाव से यह प्रस्तुत सामान्य भाव बतलाया कि बड़े शक्ति-संपन्न होते भी अहंकार नहीं करते और छोटे थोड़े ही में अभिमान प्रकट करने लगते हैं ।

(५) सारूप्य निबंधना

सदृश के ऊपर ढार के सदृश से बात कहना ।

बात और पर ढारकै कहै और पर आन ;
सो सारूप निबंधना अरु अन्योक्ति बखान ।

उदाहरण

हम अलि आए दूर से तुव समीप रस-हेत ;
कमल, समय पर सकुचिबौ तोहिं न सोभा देत ।

भ्रमरोक्ति से कमल पर ढार के यह बात किसी शक्तिमान् धनी पुरुष से कही गई, जो याचना करने पर अत्यत लोभ कर रहा है। इसमें ग्रंथकर्ता कवि की इच्छा (प्रस्तुत) यही है, और कमल भ्रमर का वृत्तांत अप्रस्तुत है, इसी प्रकार और भी जानो । इसी को अन्योक्ति भी कहते हैं ।

❀ ❀ ❀

एरे सर रावरे समीप इहि औसर मैं
आए हम जानकैं यहाँ से नीर पावैंगे ;
कहत 'बिहारी' ऐसे समैं मैं कदाचित तूँ
करै उपकार, तौ तिहारौ जस गावैंगे ।

बीतैं यह ग्रीषम अवाई बरसा की होत,
देख फेर मेघबूंद नीर झर लावैंगे ;
एही जल कूप हो, तला हो, पोखरीन होकें
गॉव हो, गलीन हो, नदीन हो बहावेंगे ।

प्रस्तुतांकुर

प्रस्तुत मैं प्रस्तुत जहाँ प्रस्तुत अंकुर सोय ;
जा सों कह अरु जो सुनें, लाभ दुहुन कों होय ।

उदाहरण

पूरन प्रेम-पराग प्रसून के ग्राहक हौ, रसिया न नए हौ ;
बात 'बिहार' बिचारत हौ नहिं कौन हौ, कौन की कुंज छए हौ ?
कैसी मलिंद भई मति बावरी, भूल से का वे सुभाव गए हौ ;
छोड़ कैं सोनजुही कौ जहूर बमूर के नूर पै चूर भए हौ ?

❀ ❀ ❀

बावरे पपीहा नेंक नीरद निहारै जहाँ,
तहॉ तोहि दूर ही से दाता से दिखात हैं ;
कहत 'बिहारी' जे बुझाहैं ना बुझाहैं प्यास,
सो न तू बिचारै बीतैं यौंही दिन-रात हैं ।
स्वाति - बूँदवारे वे दतारे मेघ न्यारे होत,
ए हैं रंग प्यारे धुवाँधारे दरसात हैं ;
ऐसे तौ अनेक या अखंड नभ-मंडल में
गरजत आवैं, और गरजत जात हैं ।

❀ ❀ ❀

जाकौ जौन दैव ने प्रमान रच दीनौ जेतौ,
ताकी भाग-रेखैं उही पंथ पाँव धरतीं ;
कहत 'बिहारी' यामैं काहुवै न दोष कछू,
कर्म - अनुसार सबै साखा फूल फरतीं ।
चारौं ओर नभ तैं अखंड भुविमंडल पै
सलिल की धारैं धुरा बाँध-बाँध ढरतीं ;
तौऊ तेरे प्यास-भरे मुख में पपीहा देख,
दो या तीन बूँद रौं अगारूँ नहीं परतीं ।

❀ ❀ ❀

बारिज बियोग की न बाधा की बिचारौ बात,
औसर जो ऐहै, तौ नसैहै सब सूल है ;
येहू स्वच्छ सुमन कहावै मंजु मालती कौ,
कहत 'बिहारी' याहि जानौं सुखमूल है ।
छोड़ियौ न पारा सहबास आस राखे रहौ,
पाओगे पराग भाग-दैव अनुकूल है ;
भावना भरे हो, भौंर धीरज धरौ हो, देखौ,
कली जो समूल है, तौ एक दिना फूल है ।

❀ ❀ ❀

तेरी रुचि राखन रसीले ऋतुराजजू कौ
आगम स्वपासै तासैं धीरधर हाल की ;
चतुर सुजान बुद्धिमान कार्य साधन में
आतुर न होत रीति देखें चक्रचाल की ।
कहत 'बिहारी' दिन टेढ़े ये न रैहैं तेरे ,
बिपत के पीछे बेला आनँद बहाल की ;

तौलौं काल कोयल करीलन में काट, जौलौं
आई ना अमूली फूली फसल रसाल की ।

❀ ❀ ❀

दूर ही से लैकर सुबास सुभ चंदन की
सहसा समीप गयौ अलि ना अबार को ;
देखत ही पन्नग प्रकोप कर धाए चहूँ ,
फूल फुसकार छोड़ गरल अपार की ।
कहत 'बिहारी' जो सिधारो सिद्धि साधन कौं,
सो कछू भई ना परी प्रानन अधार को ;
आफत कौ मारौ भौंर बँधगौ भुजंगन मैं,
लौट घर आवै, तौ कृपा है करतार की ।

❀ ❀ ❀

ऐ हो प्रिय पंथी, हेर हँसत कहा हौ चलौ ,
अनत रमौजू जहाँ छाया सीत बृंद है ;
बाग दिन बीते वे जे तपन निवारत ते ,
अब पतझार झार खारन खरिंद है ।
कहत 'बिहारी' है न गाँस वो गुलाबन की ,
सर चित चोप है, न ओप अरबिंद है ;
छबि है न छंद है, न मंजु मकरंद है ,
न छावत सुगंधि है, न आवत मलिंद है ।

❀ ❀ ❀

एक ओर कठिन करील कुंज - पुंज घनी ,
एक ओर फूल खिले कुसुम कटारी मैं ;

एक ओर कंटक मकोर कोर-कोर जोर,
धरन धतूर पूर आक फूलभारी मैं।
कहत 'बिहारी' पंख फैलत फटत गात
गाँसी गैल कूरन बमूरन की बारो मैं;
पंकज के प्रेमी, अहो मीत मालती के भौंर,
भूल काँ परे हौ यार, ऐसी फुलवारी मैं।

पर्यायोक्ति

द्वै बिधि पर्यायोक्ति है रचना बचन लखाय;
कारज साधै मिस सहित दूजी तौन कहाय।

जो बात कहना है, उसे सीधे न कहकर रचना के साथ घुमाकर कहे, उसे प्रथम पर्यायोक्ति अलंकार कहते हैं।

प्रथम पर्यायोक्ति का उदाहरण

आपने कौन रमणी से रमण किया, सीधे यों न कहकर श्रीराधिकाजी यों कहती हैं—

कसतूरो, केसरी - तिलक कीबो करत कृपाल;
आज लगायौ लाल कहँ जावक भाल बिसाल।

❀ ❀ ❀

ग्रंथकर्ता कवि को यों कहना था कि हाल जमाने में श्रीमान् बिजावर-नरेश धनुर्विद्या में कुशल हैं। किंतु ऐसा सीधा न कहकर यों कहा—

धनु-सायक की क्रिया महँ श्रीयुत सावँत भूप;
हाल दुनी मैं देखियत द्वितिय धनंजय रूप।

❀ ❀ ❀

कवित्त के अंतिम चरण में कहना यह था कि श्रीमान् की अचूक बंदूक शेरों पर बड़ी लाघवता से चलती है। किंतु ऐसा सीधा न कहकर यों कहा—

सावँत नरेंद्रराज रावरी दुनाली दीह,
लक्ष लख पावै फेर धीर ना धरत है;
कहत 'बिहारी' बीर-भुजन-भरोसौ पाय
कोपित प्रचंड चाव चौगुनौ भरत है।

बिपिन अहेर हेर हिंमकन हंक तंक,
तड़प तड़ाक बार बज्र-सी परत है;
बाघ बन बीरन में, भालुन की भीरन में,
सेर के जखोरन में जादू सौ करत है।

द्वितीय पर्यायोक्ति का उदाहरण

बिमल बसन, भूषन बिहिर, उर मुक्तन की माल;
गोरी गोरस बिचन मिस गई जहाँ नँदलाल।

यहाँ नायक से मिलने का जो इच्छित कार्य था, उसे नायिका ने गोरस बेचने के बहाने से किया।

❀ ❀ ❀

मालिन आज न आई अजौं, मिलबै तौ अनूतरो लाख सुनाऊँ;
मोहिं सुहावै सखी तब हों, गहने जब पुंज प्रसून के पाऊँ।
बीर 'बिहार' बिषाद न मानिए, साँची कहौं तुहिं सौंह धराऊँ;
बैठिए भौन भटू, छन कों, मैं कलिंदि के कूल से फूल लै आऊँ।

व्याजस्तुति

कहतन निंदा-सी लगै, समझे अस्तुति होय;
व्याजस्तुति तासों कहत कबि-कोबिद सब कोय।

उदाहरण

का यह न्याय तुम्हारौ प्रभू, कछु जाति औ' पाँति के भेद न लाए;
गीध-अजामिल-से बड़ पातकी घातकी सो सदना अपनाए।
पुन्य 'बिहार' किए जिन्ह नाहिं, तिन्हैं सब सृष्टि से ऊँचे बनाए;
प्रेम दृढ़ाय, प्रतिष्ठा बढ़ाय, बिमान चढ़ाय कैं पास बुलाए।

इसमें कहने से तो भगवान् की निंदा-सी जान पड़ती है, पर समझने से यों स्तुति होती है कि कैसा ही पातकी, नीच क्यों न हो, परंतु हे प्रभु, जो आपकी शरण होते हैं, उन्हें आप अपना ही बना लेते हो।

❀ ❀ ❀

श्रीयुत सावँतसिंह महीपति न्याय भलौ दरसावत हौ जू;
रीति 'बिहार' बिचित्र ए रावरी याहि हमेस बढ़ावत हौ जू।
आवत द्वार कबिंद जो कोउ, तौ वाहि तौ पास बुलावत हौ जू;
वाकौ जो सार्थी दरिद्र सखा तिहिसे तिहि संग छुड़ावत हौ जू।

व्याजनिंदा

अस्तुति कीनैं हूँ जहाँ निंदा दर्सित होय;
ताहि व्याजनिंदा कहत कबि-कोबिद सब कोय।

उदाहरण

नारद सन शिवगन कहत, धन्य रावरौ रूप;
राजकुँवरि के जोग बर को अस और अनूप।

❀ ❀ ❀

सूर्पनखा स्रुतिहीन लखि क्रोध न भौ मन माहिं;
छमावान तुम्हरे सदस धन्य अन्य कोउ नाहिं।

❀ ❀ ❀

हनुमत जारी लंक सब, अंगद रोपी लात;
धरि धीरज देखत रहे, धनि रावन क्या बात।

दूसरी व्याजनिंदा

निंदा औरै की किए, औरै निंदा होय;
व्याजनिंद कौ भेद यह और दूसरौ होय।

उदाहरण

दाह करत बिरहीन तन बरबस ही बेकाज;
कौन मंद यह चंद कौ नाम धरो दुजराज।

यहाँ चंद्रमा की निंदा से चंद्रमा के नामकरण करनेवाले की विशेष निंदा निकलती है।

❀ ❀ ❀

भजन में का यह भेद परायौ।
आयो दूत-रूप बन ब्रज में कपटी कंस पठायौ;
बातन चौंप चढ़ाय लाल कौं बैठि भवन भरमायौ।
आदर लयौ भयौ बड़भागी मंत्रीराज कहायौ;
कौन 'बिहारि' कूर ने याको नाम अक्रूर धरायौ।

आक्षेप

परै रुकावट कार्य मैं, तात्पर्य अस होय;
ताहि कहत आक्षेप हैं, तीन भाँति कौ सोय।

आक्षेप अलंकार उसे कहते हैं, जहाँ किसी क्रिया व कथन से कार्य में कोई बाधा डालने का अभिप्राय निकले। आक्षेप का अर्थ है बाधा तथा रुकावट। यह अलंकार तीन प्रकार का होता है—

(१) उक्ताक्षेप

अपनो ही निज युक्ति पर करै जहाँ आक्षेप;
कहै बदल कछु फिर कहै सो है उक्ताक्षेप।

जहाँ अपनी ही कही हुई बात को निषेध करके उससे और कुछ ऊँची बात कहे, उसे उक्ताक्षेप अलंकार कहते हैं।

उदाहरण

काहू गुरु के ज्ञान मन उर अंतरपट धोय;
ये न करै जो राम भज व्यर्थ समय जिन खोय।

❀ ❀ ❀

सावँतसिंह नरेंद्र कौ सुजस हंसवत मान;
हंस कहा! हिमकर सरिस पुंज प्रकास प्रमान।

(२) निषेधाक्षेप

जो निषेध पहले करै, ताही कों ठहराय;
ताहि निषेधाक्षेप कह कबि - कोबिद - समुदाय।

प्रथम किसी बात का निषेध कर दिया जाय, पुनः दूसरे प्रकार से उसी को स्थापित किया जाय, उसे निषेधाक्षेप कहते हैं।

उदाहरण

मैं न मनावन आइहौं, लखौ तुमहिं मन माहिं ;
हिमरितु सजनी स्याम से बिलग रहे सुख नाहिं ।

❀ ❀ ❀

मैं नहि जानत भक्ति कछु, ना ब्रत-नियम-उपास ;
गह्यो सरन प्रभु रावरो, चरन-कमल कौ दास ।

(३) व्यक्ताक्षेप

आज्ञा दरसै कहन सें, छिपो निषेध लखाय ;
ताको व्यक्ताक्षेप कह जिनको बुधि अधिकाय ।

उदाहरण

हौं न कहत हरि जाव जिन, जाव भलें सुख सुच्छ ;
तुम बिन गोपिन ग्राम गृह गिरि बन ब्रज सब तुच्छ ।

बिरोधाभास

बर्नन माहिं बिरोध कौ भासत होय अभास ;
जाति, क्रिया, गुन, द्रव्य सें होत बिरोधाभास ।

जहाँ वस्तुतः अर्थ में कोई विरोध न हो, किंतु कहे हुए पदसमूह में विरोध का आभास भासता हो, उसे विरोधाभास अलंकार कहते हैं। यह विरोध जाति, क्रिया, गुण, द्रव्यसंज्ञक शब्दों द्वारा प्रस्तार रीति से १० प्रकार का होता है।

(१) जाति-विरोध—जाति से, क्रिया से, गुण से, द्रव्य से ..चार भेद (१ २ ३ ४)
(२) क्रिया-विरोध—क्रिया से, गुण से, द्रव्य से............ तीन भेद (१ २ ३)
(३) गुण - विरोध—गुण से, द्रव्य से........................दो भेद (१ २)
(४) द्रव्य-विरोध—द्रव्य से.. ....एक भेद (१)

यहाँ विस्तार-भय से थोड़े-से उदाहरण लिख देते हैं, पाठक स्वयं विचार लेंगे कि किस संज्ञा के शब्दों का किससे विरोध है।

उदाहरण

राम-कृपा प्रहलाद को सबने सब सुख दोन ;
सैल भयौ सैया-सुमन, गरल सुधा-गुन लोन ।

❀ ❀ ❀

काव्य-कला-साहित्य से बिमुख यहै जग माहिं ;
जे नहिं हैं ते हैं रही, जे हैं ते हैं नाहिं ।

❀ ❀ ❀

बचन कहैं सीतल नरम, गरम कठिन हिय बास ;
बड़े परम छोटे करम, धरम कहाँ तिन पास ।

❀ ❀ ❀

मूक होय बक्ता बड़ौ, सैल होय रज तूल ;
बधिर होय स्रोता सरस, जो ईश्वर अनुकूल ।

❀ ❀ ❀

ज्यों-ज्यों बँधि रह्यौ गोरी गति कौ नियम नीकौ,
त्यों - त्यों छुटि रह्यौ उन्हैं खेलन खयाल ❀ कौ ;
उठिबो चहैं जे ज्यों - ज्यों उन्नत उरोज तेरे,
बैठिबो चहैं वे - त्यों त्यों भवन बिसाल कौ ।
कहत 'बिहारी' बढ़ रहे री नितंब ज्यों - ज्यों,
घटि रह्यो त्यों - त्यों उन्हैं प्रेम परबाल कौ ;
ज्यों - ज्यों तेरो निरखिबो नैनन कौ नीचौ होत,
त्यों - त्यों मन ऊँचौ होत मदनगुपाल कौ ।

❀ ❀ ❀

सूर्य-कुल-कलस कृपालु कीर्तिवान सिद्ध,
शिक्षक सुधर्म राज्यरक्षक हमेस कौ ;
पूरन प्रबीन है प्रसस्त अस्त्र - सस्त्रन में,
जाहिर जहान मान मंडित स्वदेस कौ ।

❀ खयाल = खेल ।

कहत 'बिहारी' बान-चाप के चलावन में
देखो करतब्य बंस भूषन दिनेस कौ;
सो तो तिल एक हू तहाँ से फेर नाहीं चल्यौ,
जापै चल्यौ तीर बीर सावँत नरेस कौ।

विभावना

करै बिलच्छन कल्पना जहँ कारन संबंध;
तिहि बिभावना कहत हैं जे कबि रचत प्रबंध।
षट प्रकार सो होत हैं, इक कारन बिन काज;
दूजी हेतु अपूर्न से कारज सिद्धि बिराज।
तीजो प्रतिबंधक रहै कारज सिद्धि बनाय;
चौथि अकारन बस्तु से कारज प्रगट लखाय।
पंचम कार्य बिरुद्ध हो कारन से लख लेव;
छठय कार्य सों हेतु हो भेद इते चित देव।

क्रमशः उदाहरण

(१) विभावना

बिन सुगंध लावत लली, आवत अंग सुबास;
बिना पान अधरान पै लाली लहत प्रकास।

(२) विभावना

बृथा फिरत भ्रम महँ परत, क्यों न करत मन जाप;
एक नाम नँदनंद कौ हरत हजारन पाप।

(३) विभावना

ऊधव तुम सिखवत जऊँ, अलख लखावत जोत;
तऊ चित्त हरिचरन सें छन-भर बिलग न होत।

❀ ❀ ❀

तुव प्रताप सावंत नृप तेज तरल दरसात ;
सेवत अरि तरु छाँह घन तऊ तपत दिन-रात ।

(४) विभावना

चंपलता से उडि रही गहब गुलाब - सुबास ;
रैन अमावस से लखौ, प्रगट्यो परत प्रकास ।

(५) विभावना

स्याम बिना सखि कुंज की ललित लता छबिऐन ;
जे सुख की कारन हतीं, ते लागीं दुख दैन ।

❀ ❀ ❀

बिरह-निवारन को सखी, कौन कहौं अब बात ;
सीतल चंदन चंद हू लगे जरावन गात ।

(६) बिभावना

ए हो ब्रजराज बड़ी ब्रज को ब्यथा की कथा ,
पंचबान-बान-बृंद हियरैं हिलत जात ;
गहब गुराई गसे गात गन गोपिन के
बिकल ब्रिहानल की झारन झिलत जात ।
कहत 'बिहारी' उन लोल लोल लोचन सें
पानी के प्रवाह महिमंडल मिलत जात ;
सागर में देखिए सरोज ही ढिलत यहाँ,
देखिए सरोजन सें सागर ढिलत जात ।

विशेषोक्ति

जहँ कारन पर्याप्त सों कारज पूर्ण न होय ;
विशेषोक्ति तासों कहत सकल सयाने लोय ।

उदाहरण

धनुष तीर तरकस रह्यो, अर्जुन रए रखवार;
तऊँ भीलन ने गोपिका लूट लई ललकार।

❀ ❀ ❀

लगे उठावन संभु-धनु भूप सहस इक बार;
तऊँ सकल बल करि थके, तिल-भर सके न टार।

❀ ❀ ❀

बिक्रम बनाव की ठनाव की ठसकदार
लक्ष लगिबे में लाग बान और लेखी ना;
कहत 'बिहारी' घोर घन-सी घहर करै,
या बिधि बलिष्ठ बनी दूसरी बिसेखी ना।
रावरी दुनाली भूप योजन चलनवारी,
भोजन करनवारी ऐसी और पेखी ना;
सेरन पै सेर बेर बेर फेर सेर सेर
कैयौ सेर खात पै अघात याहि देखी ना।

असंभव अलंकार

जाको नहिं संभावना, सो होवै तिहि ठौर,
कहत असंभव नाम हैं कबि-कोबिद-सिरमौर।

उदाहरण

सुगम बनाई बानरन लंकागढ़ की गैल;
को जानत तो सिंधु महँ तरिहैं इहि बिधि सैल।

❀ ❀ ❀

बानासुर-से बीर बलि जिहि लख गे हिय हार;
को जानत तो सो धनुष टोरहिं राजकुमार।

❀ ❀ ❀

सावँत भूप रहौ चिरजीवि किये तुम कार्य सभी सिरमौर हैं;
उन्नति राज्य रची बहुभाँतिन राजसो रूप रखे सब ठौर हैं।

बिंध्य को घाट घनी, तिनपै बिरचीं बड़के सड़कें कर गौर हैं;
कौन यहाँ यह जानत तो कि पहाड़ की पोंठन मोटर दौर हैं।

इस अलंकार के वाचक "कौन जानता था" या कोई आश्चर्यवाची शब्द इसी के पर्याय होते है।

असंगति

(त्रिविध)

कारज कारन में जहाँ लखिए रीति बिरुद्ध;
ताहि असंगति कहत हैं जिनकी मति अति सुद्ध।
रूप असंगति के यहै बरने तीन प्रकार;
(१) कारन कहुँ कारज कहूँ प्रथम भेद निरधार।
(२) और ठौर को कार्य कछु और ठौर हो होय;
ताहि असंगति दूसरी कहत सयाने लोय।
(३) और काज चाहै कछू करन करै पुनि और;
ताहि असंगति तीसरी बरनत कबि - सिरमौर।

क्रमशः उदाहरण

(१) आप तौ रहे हो सारो जामिनी जगत लाल,
जागे को ललाई सो हमारे नैन छाई है;
आप तौ कियौ है मोदपान मदपान कान्ह,
घूमत हमारौ चित्त ओज अधिकाई है।
कहत 'बिहारी' नख लागे हैं तुम्हारे हिये,
पीड़ा है हमारे हिये कैसी एकताई है;
हम तुम एक ही हैं कहत रहे जो स्याम,
साँची तौन सिच्छा की परिच्छा आज पाई है।

❁ ❁ ❁

दान देत सावंत नृप जब निज मित्रन हेत;
मित्रन कौ दारिद कुटत, अरिगन रो-रो देत।

❁ ❁ ❁

(२) कंकन कौ धारिबौ लखौ है कर ही में हम,
ताको छबि कान्ह कंठ रावरे निहारी है ;
कज्जल कलित लोल लोचन लगावैं सबै ,
ओंठन लगाएँ आप उपमा अपारी है ।
कहत 'बिहारी' जग जावक पगन देत,
दीने आप भाल लाल जागै जोति न्यारी है ;
ऐसी नई रीति ये सिंगार साजिबे की स्याम,
भेद तौ बताव, कौन बेद सों निकारी है ।

❀ ❀ ❀

बंसी-धुनि धाईं सबै, भूषन की सुधि नाहिं ;
पग पायल माथैं सजीं, सीसफूल पग माहिं ।

❀ ❀ ❀

(३) जगजीवन होकर जलद, कौन तुम्हारी बान ;
चाहत ते बरसन सलिल, बरसन लगे पखान !

❀ ❀ ❀

प्रभु चौसर खेलत समय सुनी द्रौपदी-पीर ;
पाँसौ पारन चहत ते लगे सम्हारन चीर ।

❀ ❀ ❀

बस्त्र मँगाए मोल बड़ श्रीसावँत अवनीस ;
चाहत ते धारन करन किए कबिहिं बखसीस ।

विषम अलंकार

(त्रिविध)

(१) अनमिल बस्तुन कौ जहाँ योग बखानौ जाय ;
प्रथम बिषम ताकौं कहत, जानहु कबि-समुदाय ।

उदाहरण

कौन जोग जुरगी अली, यहै सौत मतिमंद ;
कहाँ बाँस की बाँसुरी, कहँ हरि-अधर अमंद ।

❀ ❀ ❀

मेल मिलायौ है भलौ तुम ऊधव इक ठाम ;
कहाँ कुरूपा कूबरी, कहाँ कृष्ण छबि-धाम ।

❀ ❀ ❀

नील-कमल-सम नवल नैन सुखमा सुभ कीनी ;
आनन ओप अमंद उदित अंबुज-छबि दीनी ।
दंत-पंति-दुति दिव्य कुंद इव कांति सुहाई ;
नव-पल्लव-सम अधर धरी अति ललित ललाई ।
कह कबि 'बिहार' कोमल परम-चंपक दल तन रँग दियौ ;
अरु चित्त कियौ पाषान-सम हे बिधना यह कह कियौ ।

❀ ❀ ❀

(२) हेतु-रंग कछु और हो, कार्य-रंग कछु और ;
दुतिय बिषम तिहि कहत हैं कबि-कोबिद-सिरमौर ।

उदाहरण

रावन तू सीता समझ आदिसक्ति बिख्यात ;
याहि हरे सें बदन तुव पीरो परत दिखात ।

❀ ❀ ❀

धन-धन सावँत नृपति यह जन बिनोद बिलसंत ;
स्याम बरन बंदूक तुव जस उज्जल प्रगटंत ।

❀ ❀ ❀

(३) कीयैं कछु उद्यम भलौ, होय बुरौ फल आय ;
तृतिय बिषम ताकों कहत कबि-कोबिद-समुदाय ।

उदाहरण

धन रावन तुम भल कियौ, लियो कपीस बँधाय ;
पूँछ जरावन चहत ते दैठे लंक जराय ।

❀ ❀ ❀

स्याम-सँदेस 'बिहार' ले ऊधव ज्ञानी बड़े ब्रजमंडल को गए ;
गोपिन कृष्ण-कथा बरनी, तब प्रेम के आँसुन अंचल धो गए ।
सूधीं सुनाई कछू दस-पाँच, बनौ न कछू चुप चंपत हो गए ;
आए ते ज्ञान सिखावन कों, पै गुरू निज गाँठ की अक्कल खो गए।

किसी-किसी कवि ने इस अलकार (विषम) के छ भेद कहे हैं, परंतु वे इसी भेद के अंतर्गत आ जाते है ।

सम अलंकार

(त्रिविध)

अलंकार सम तीन बिध बरनत हैं लख रीति ;
बिषम कहो जो प्रथम ही, ताकौ यह बिपरीति ।
(१) यथायोग के संग कौ बरनन जहाँ लखाय ;
ताहि कहत हैं प्रथम सम कबि-कोबिद-समुदाय ।

उदाहरण

आवत तेज तुरंग नचावत बंक चितौंन भरो कछु टोनों ;
या सुखमा के समान 'बिहार' नई उपमा नहिं सूझत कोनों ।
साँची कहो बिधि कैसे सखी, यह रूप रचे निज हाथन दोनों ;
जैसी सलोनी बिदेह-लली, बर तैस ही सुंदर स्याम-सलोनों ।

❀ ❀ ❀

लखे भूप सावंत मैं यह सुभ योग समान ;
जैसहि बुधि-बल-बीरता, तैसहि दान कृपान ।

❀ ❀ ❀

जैसी धूम-धोर घनो घाटो बिंध्य भूधर को ,
जैसो सिगवारा* कौ अखेट अनुसारो है ;

* सिगवारा = बिजावर-राज्य का एक वन्य प्रदेश ।

जैसी सुध पाई जैसी भई है हँकाई, जैसे
सुभट सिपाही जैसौ नाहर निकारौ है।
जैसौ जग जाहिर है सावँत नरेंद्र बीर,
जैसे ही दुनाली जैसौ घालिबौ तिहारौ है;
जैसी लैन जैसी दैन जैसी ताक जैसी तेजी,
जैसौ नाम भारी तैसौ भारी सेर मारो है।

❁ ❁ ❁

(२) कारन के अनुसार ही बरनौ कारज - रूप;
दूजौ सम ताकौं कहत जे कबि उदित अनूप।

उदाहरण

प्रमुदित ह्वै रसबस उतै मद - रस पियो बिसाल;
एते पर अब क्यों न हों अहो लाल, दृग लाल।

❁ ❁ ❁

बिषधर नाथ्यौ बीर जिन, ते हरि रहे बजाय;
फेर बाँस की बासुरी, क्यों नहिं बिष बगराय।

❁ ❁ ❁

त्रेता से लगाय रहो द्वापर प्रचार याकौ,
कलि मैं कछूक पृथीराज लौं बिसेखी है;
फेर आगे ओरछे बुंदेल बिरसिंहदेव
बाना बली द्वार साह सैन्य हनी तेखी है।
कहत 'बिहारी' फेर मध्य मैं महीप काहू
सीखी ना कमान बान बिद्याहू न लेखी है;
फेर बिजैनग्र बीर सावँत नरेंद्रजू ने
उन्नती बिचारी जब लुप्त होत देखी है।

❁ ❁

(३) होय सिद्धता ताहि की, उद्यम जेहि हित होय ;
तीजौ सम ताऔं कहत कबि-कोबिद सब कोय ।

उदाहरण

गए सुदामा हरि मिलन, मिले स्याम सुख पाय ;
मित्र - मनोरथ जो रहो, पूर्न कियौ जदुराय ।

❀ ❀ ❀

बंसी के प्रशंसी जदुबंसी अवतंसी लाल
बसी-बट-बासी कहूँ बंसीहू दई हिराय ;
हेरत ही हेरत पधारे कान्ह कुंजन में,
प्यारी कों बिलोकौ कै रही हैं जे हियैं लगाय ।
कहत 'बिहारी' तब स्याम कह्यौ स्यामा सन,
मुरली मधुर दीजे, लीनी है कहाँ चुराय ;
बोलीं तब राधे मुसक्याय मनमोहन सों,
बीन है कि बाँसुरी प्रबीन परखौ तौ आय ।

विचित्र अलंकार

इच्छित फल की प्राप्ति-हित करह जतन बिपरीति ;
तिहि बिचित्र भूषन कहत लख ग्रंथन की रीति ।

उदाहरण

जे सत-संगी सत्य-ब्रत, जे सज्जन चित-चेत ;
ते डूबत हरि-प्रेम-रस पार होन के हेत ।

❀ ❀ ❀

जे सज्जन धर्मज्ञ नर, ते मत्सर - मद खोय ,
ऊँची पदवी चहन कौं चालत नीचे होय ।

(१) अधिक अलंकार

जहाँ अधिक आधार से अधिक होय आधेय ;
तहाँ अधिक भूषन यहै कबि-पंडित कह देय।

उदाहरण

तीन लोक चउदा भुवन जो ब्रह्मांड लखात ;
तामें तुव पद-पद्म की प्रभु महिमा न समात।

(२) अधिक अलंकार

जहँ छोटे आधार में कहै बड़ौ आधेय ;
ताहि अधिक दूजौ कहत कबि-पंडित गुन-ज्ञेय।

उदाहरण

लोक चतुर्दस जिहि कियौ रोम-रोम बिच भौन ;
छाँछ हेत सो छिप रहो भटू भौन के कौन।

❀ ❀ ❀

जाके अंग ब्रह्मा बिष्णु संकर बिनोद करैं,
जामें सर्बदेवन कौ रूप बिलसत है ;
जामें सप्त सागर समेत सात द्वीप राजैं,
जामें सर्ब सरित - प्रबाह प्रसरत है।
कहत 'बिहारी' जामें भुवन चतुर्दसहू
कोटिन ब्रह्मांड कौ प्रभाव प्रगटत है ;
तौन सुखकंद नँदनंद कृष्णचंद सदा
सावँत महीपति के मन में बसत है।

❀ ❀ ❀

तीन लोक जाके हृदय तरल तरंगित होत ;
ताहि बिलोकत जानकी मनि-कंकन की जोत।

अल्प अलंकार

होवै लघु आधेय से अति लघु जहाँ अधार ;
सुकबि-सिरोमनि कहत हैं तिहि अल्पालंकार ।

अत्यंत छोटे आधेय से अत्यंत छोटा आधार वर्णन करना इस अलंकार का मुख्य स्वरूप है ।

उदाहरण

साजत सिंगार ही में और भुज कोंचन के
गहने मँगाए गोरी गात छबि छ्वै रही ;
कहत 'बिहारी' तौलौं लाल चलबे की काहु
चरचा चलाई घड़ी याम निसि द्वै रही ।
देह दुलही की सुन दूबरी भई री एती ,
फेर उन भूषन की चाहना न क्वै रही ;
छला छिगुरी ने पौंच काम पहुँचो कौ दियौ ,
पहुँची पहुँच बाँह बाजूबंद ह्वै रही ।

अन्योन्य अलंकार

वर्णन जहँ संबंध कौ कछू परस्पर होय ;
अन्योन्यालंकार तिहि कहत सयाने लोय ।

उदाहरण

वे लावैं रट नाम की वे गावैं गुन-ग्राम ;
प्यारी स्यामा स्याम को, स्यामा के प्रिय स्याम ।

❀ ❀ ❀

जहाँ स्याम राधा तहाँ, जहँ राधा तहँ स्याम ,
बिना स्याम राधा नहीं, बिन राधा नहिं स्याम ।

❀ ❀ ❀

ससि से सोहत निसि भली, निसि ही तैं ससि-रूप ;
भूपति से सोहत सुकबि, कबि से सोहत भूप।

❀ ❀ ❀

साही भोज्य साज में सलीमगढ़ बाग बीच
आए दिब्य दीप्ति लैं महीप देस-देस के ;
तहाँ ओरछेंद्र औ' बिजावर-नरेंद्र दोऊ
बिचरैं प्रसंस बेस भूषन दिनेस के।
कहत 'बिहारी' वा बिलोक बीरताई छटा
लागे फिरैं संग लोग लाखन सुबेस के ;
सावँत नरेस चित्त लेत चित्रकारन के,
चित्रकार चित्र लेत सावँत नरेस के।

विशेष अलंकार

त्रिबिध विशेष बखानिए, प्रथम भेद यह भास ;
जहाँ प्रगट आधार बिन हो आधेय प्रकास।

उदाहरण

बीर बिकट भट भीम के सकै कौन गुन गाय ;
जाके फेके गज गगन अजहुँ रहे मँडराय।

❀ ❀ ❀

नभ निरखी बापी बिमल सुचि सोपान-समेत ;
तापर सिखर सुमेर के अनुपम सोभा देत।

द्वितीय विशेष

थोरहि आरंभै जहाँ अधिक लाभ झलकाय :
ताकौं द्वितिय विशेष कह अलंकार कबिराय।

उदाहरण

निरखे जुगलकिसोर जब सरस रूप-सिरमौर ;
अब सजनी रहु लोक में कह बिलोकिबे और।

❀ ❀ ❀

जोग जो न जानै, जग्य-भोग जो न जानै, कर्म-
कांड जो न जानै, नहीं ताकी कछू टोक है ;
भक्ति जो न जानै, ग्यान-सक्ति जो न जानै, बेद
ब्यक्ति जो न जानै कछू ताही कौ न सोक है।
कहत 'बिहारी' एक बार जो त्रिबेनी-पानि
पैठ कैं नहावै, फल पावै सो अलोक है ;
नारद-समान हाथ बीना लै बिहार करै,
घूमै लोक-लोक, ब्रह्मलोक लौं न रोक है।

यहाँ अज्ञानी को त्रिवेणीजी के स्नान - मात्र से सर्वलोक-गति का प्राप्त होना वर्णित किया गया है (थोरे आरंभ से अधिक लाभ की प्राप्ति)।

❀ ❀ ❀

कह संपति कह साहिबी मान-प्रतिष्ठा-गोत ;
सावँतसिंह नरेंद्र की सुनजर से सब होत।

तृतीय विशेष

एक बस्तु जहँ बहुत थल बरनन कीनी जाय ;
तृतिय विशेष बखानहीं ताकौ कबि-समुदाय।

उदाहरण

जल में थल में पवन में नभ में ठौर तमाम ;
सचराचर में रम रहे राजिव-लोचन राम।

❀ ❀ ❀

फूलन पत्रन पेड़ महिं कुंज लतन बन ग्राम ;
ऊधव सब थल लख परत केवल सुंदर स्याम।

❀ ❀ ❀

जहाँ-जहाँ देखौ तहाँ-तहाँ एक जाति मेरो,
अंतर सभी के विद्यमान मूढ़ - ज्ञानी में;
पोथी-पत्र जेते दिब्य दफ्तर दुनी में देखे,
सबही भरे हैं तेरी कीरति कहानी में।
कहत 'बिहारी' तू ही मंडल मही के मध्य,
अणु-अणु-मात्र तू ही, तू ही बेद-बानी में;
तू ही हार हारन पहारन प्रकास रह्यौ,
तोहियै बिलोकियै प्रबाह-रूप पानी में।

❀ ❀ ❀

जेतिक जहान में इकत्र अत्र दीखैं दृश्य,
तेरे ही जलूस सर्ब, तेरे ही पसारे कौ;
तामैं तू अभिन्न है, अभिन्न है न भिन्न कहूँ,
तेरौ ही प्रभाव मिलो दीखै भेद न्यारे कौ।
कहत 'बिहारी' सींव-युक्त है असींव तू ही,
भान है न तोमैं कहूँ बृद्ध-जुवा-बारे कौ;
तू ही है अनेक तू अनेकन में एक ऐसौ
अगम अथाह है समुद्र बेकिनारे कौ।

❀ ❀ ❀

पोथी में पुरानन में पाठन में पत्रन में,
पटन में पाटिन में प्रतिभा प्रचारी की;
कहन में कागज में कलम कचारिन में
कहत 'बिहारी' कबि कांति सुभ चारी की।
दौलत में दर्सनी में दस्तखत दफ्तर में
देस में दुनी में देखौ उपमा अापरी की;

आनँद के कंद कृष्णचंद की कृपा से आज
हिंद में मची है धूम हिंदवी हमारी की।

प्रथम व्याघात

एक बस्तु से जहँ करै कछू बिरोधी काज ;
ताहि कहत ब्याघात हैं कबियन के सिरताज।

उदाहरण

जिन अलकन की झलक से बंधन कटत बिसाल ;
तिन अलकन आली लखहु मोहिं फँसायौ लाल।

❀ ❀ ❀

रैयत की जिन हाथ सों रच्छा करत हमेस ;
तिन हाथन दारिद हनत धनि सावंत नरेस।

द्वितीय व्याघात

जहँ बिरुद्ध करके क्रिया एकहि साधै काज ;
सो दूजौ ब्याघात है बरनत सब कबिराज।

उदाहरण

बनें रहन कौं समर से कायर भजत अधीर ;
बनें रहन कौं समर में जूझ जात रनबीर।

❀ ❀ ❀

कोऊ उन्नति के लिये इत-उत बिद्या लेत ;
कोउ यही उद्देश धर निज से बिद्या देत।

गुंफ (कारणमाला)

कारन से कारज कढ़ै फिर कारन हो जाय ;
कारनमाला तिहि कहैं अथवा गुंफ कहाय।

उदाहरण

बिद्या से धन होय बहुरि धन धर्म बढ़ावै;
धर्महु से सुभ कर्म होत सुस्मृति स्रुति गावै।
होत कर्म से सुबुधि बुद्धि से न्याय जगावै;
न्यायहु से सत - असत बस्तु कौ बोध लखावै।
सदसद्विबेक से ज्ञान की कबि 'बिहार' जग जोत है;
अरु जोत अखंड प्रकास से मोक्ष परम पद होत है।

❀ ❀ ❀

सुभ मति से संगति मिलत, संगति-गुन-अधिकार;
गुन से फिर इज्जत मिलत नृप सावँत - दरबार।

एकावली (शृंखला)

मिलै शृंखलाबद्ध पद एक एक से जोय;
हेतु कार्य कौ नियम नहिं सो एकावलि होय।

उदाहरण

मनुष वही जो हो गुनी, गुनी जु कोबिद रूप;
कोबिद जो कबि-पद लहै, कबि जो उक्ति अनूप।

❀ ❀ ❀

कलाकंद कैसौ कहिय, जैसौ सुधा - प्रमान;
कैसौ सुधा - प्रमान है, जैसौ रस अधरान।

❀ ❀ ❀

कैसौ है सुधा कौ सिंधु जैसौ पूर्णमासी-इंदु,
कैसौ पूर्णमासी-इंदु जैसी गंग-धारी है;
कैसी गंग-धारी, जैसी बिधि की सवारी, कैसी
बिधि की सवारी, जैसौ सेष धर-धारी है।

कैसो धर-धारी सेष कहत 'बिहारी' कबि,
जैसी नभ - मंडल में चाँदनी निहारी है ;
कैसी नभ-मंडल में चाँदनी निहारी, जैसी
भूपति सावंतसिंह कीरति तिहारी है।

सार अलंकार

बस्तुन की उत्कर्षता या अपकर्ष लखाय ;
ऐसौ बरनन होय जहँ भूषन सार कहाय।

उदाहरण

तिय सें सुर-तिय सुंदरीं, तिनसें रति सु अनूप ;
रति सें अति राजत रुचिर श्रीराधे तुव रूप।

❋ ❋ ❋

अमल कमल सें बिमल जल, जल सें चंदन रूप ;
चंदन सें चमकत सरस तुव जस सावँत भूप।

❋ ❋ ❋

प्रथम कठिन पाषान है, तासें बज्रहु ओज ;
तासें उर तुव कठिन है, उर सें कठिन उरोज।

यथासंख्य क्रम

जिहि क्रम सों कछु पहिल कह सो क्रम पालत जाय ;
यथासंख्य अरु नाम क्रम ताहि कहत कबिराय।

उदाहरण

एरी रसिकेस्वरी रँगीली रूप-रासि राधे,
रम्यौ मन मेरौ रुचि रावरे बिलास मैं ;
कहत 'बिहारी' अंग-अंगन अनंग-ओप,
उपमा न आवै सजी सुखमा बिकास मैं।

देख कें तिहारे नीके, नैन, नासा, केस, मुख,
कंज, कीर, सर्प, ससी भागे हेर हास मैं ;
कोउ कुँदे नीर, कोउ जुदे हो हिराने बन,
कोउ मुँदे भूमि, कोउ उदै भे अकास मैं ।

पर्याय

बस्तु अनेकन कौ जहाँ आश्रय एक लखाय ;
जहँ बहु आश्रय एक कौ, इमि द्वै बिधि पर्याय ।

प्रथम उदाहरण

(अनेक वस्तु का एक आश्रय)

पहिले तन सिसुता रही पुनि तरुनाई आन ;
अब चतुराई सें सुघर मिल मोहन तज मान ।

❀ ❀ ❀

जग महँ तू कह-कह न भौ, अब भौ नर बुधिमंत ;
काम-कपट-जंजाल तज अजहूँ भज भगवंत ।

❀ ❀ ❀

पाय अल्प औसर बिताय व्यर्थ दीजिए न,
लीजिए सरन चल चारु चक्रपानी कौ ;
गर्भ भयौ देह भयौ जन्म भयौ युवा भयौ,
वृद्ध भयौ ऐसो दृस्य माया महरानी कौ ।
कहत 'बिहारी' दिन जातन लगै न बार,
बातन मैं बीतै काल कथन कहानी कौ ;
भोर भएँ साँझ होत, साँझ भएँ भोर होत,
साँझ-भोर होत छोर होत जिंदगानी कौ ।

द्वितीय उदाहरण

(अनेक आश्रयों में एक वस्तु)

कोमलता कंचन रही, बहुरि गुलाब नगीच ;
सिरस-सुमन महिं पुनि रही, अब तुव चरनन बीच ।

❀ ❀ ❀

कछुक रही बस सिंधु में, कछुक कमल के साथ ;
अब निवास कीनो रमा नृप सावँत के हाथ ।

परिवृत

कहूँ अधिक कहुँ न्यून कौ लैबौ-दैबौ होय ;
परिवृत यों द्वै बिधि कहत कबि-पंडित सब कोय ।

(१) परिवृत

थोरक दै लेवै अधिक, ऐसौ बरनन होय ;
ताकौं परिवृत प्रथम ही कहत सयाने लोय ।

उदाहरण

धन्य सुदामा भाग्य तुव, मिले मित्र करतार ;
तंदुल तौ दीनैं तनक, संपति लई अपार ।

❀ ❀ ❀

बिमल बिकासी बासी ब्रज कौ बिलासी बीर
बरबस बिरह ब्यथा कौ बीज बै गयौ ;
कहत 'बिहारी' मुख मोर दृग-कोरन ह्वै
कुसल कलान कौ क्रिया से कछू कै गयौ ।
रसिक रसीलौ रूप-रासि सुखमा कौ साज ,
आज इन बीथिन हो बाँसुरी बजै गयौ ;
बड़न की बान, गुरु लोगन की आन सखी ,
सब कुल-कान एक तान दैकैं लै गयौ ।

❀ ❀ ❀

आवत सावँत नृपति ढिग जो कबि याचन हेत ;
आसिष श्रीफल देत हैं, धन-मनि-मुक्ता लेत ।

(२) परिवृत

थोरक लै देवै अधिक ऐसौ करै बखान ;
ताकों परिवृत दूसरौ कहत सकल गुनवान ।

उदाहरण

लख सनेह सबरी सदन पहुँचे जग-करतार ;
लिए बेर प्रभु प्रेम सों, दिए पदारथ चार ।

❀ ❀ ❀

अजब दुनाली रावरी लख हनत मृगराज ;
चन❀-सी गोली लेत है, घन-सी देत गराज ।

परिसंख्या

बस्तु एक थल से बरज दूजे थल कर थाप ;
परिसंख्या तासौं कहत जिनकी जग में छाप ।

उदाहरण

या ब्रजमंडल में कहूँ छुटपन दीखत नाहिं ;
कां पायौ मग डग धरत, की कामिनि-कटि माहिं ।

❀ ❀ ❀

बहू में लोग कहा करते, दिल को पर मेरे यक़ीन न आया ;
नक़्शो-क़ुलूब हुआ न ज़रा अहा चंद में भी हरचंद बताया ।
ऐसे हज़ारों मुक़ाम 'बिहार' तलाश किए कुछ भी न समाया ;
आबे-बक़ा का मज़ा महरू, हम तेरे लबों में लबालब पाया ।

❀ ❀ ❀

❀ चन = चना ।

नृप सावँत के राज्य में कहूँ टिढ़ाई नाहिं;
कै पाई कछु धनुष में, कै पुनि भौंहन माहिं।

विकल्प

कै तौ यह, कै यह, जहाँ यह बिकल्प-बिधि होय;
ताहि बिकल्प बखानहीं कबिजन ग्रंथन जोय।

उदाहरण

सिय न पाय कपि सोच किय, अस न राम ढिग जाउँ;
कै सिय-सुधि रामहि कहौं, कै तन चिता जराउँ।

❀ ❀ ❀

सावँत महलन-सिखर तैं सुन्यौ मधुर इक सोर;
कै गावत अलिवर कछू, कै बोलत हैं मोर।

समुच्चय

प्रगटै भाव समूह जहँ प्रथम समुच्चय जान;
एक कार्य के हेतु बहु दूजौ ताहि बखान।

प्रथम उदाहरण

रमन रावरे दरस-हित तिय खिरकिन छिन जाति;
झपटि, झटिति, झाँकति, झुकति, रुकति, लुकति, उकताति।

❀ ❀ ❀

जा छिन सें बाँसुरी सुनी है स्यामसुंदर की,
ता छिन सें वाकी दसा देखत बनति है;
भूल्यौ हिय-हास लै उसास दहै दाह दीह*,
आँसुन प्रबाह पान† पोंछ न सकति है।

---

* दीह = दीर्घ, भारी। † पान = पाणि, हाथ।

कहत 'बिहारी' चौंकै चितवहि चक्रित-सी-
उठि-उठि बैठै, फेर बैठति - उठति है ;
गिरै लकरी-सी, चक्र खाति चकरी-सी फिरै,
जाल - जकरी - सो सफरी - सी तरफति है ।

❀ ❀ ❀

तुव प्रताप सावंत नृप, अरिगन गहत पहार ;
गिरत, उठत, फिरि-फिरि गिरत, भजत, तजत घर-द्वार ।

द्वितीय उदाहरण

श्रीसंकर, सबिता, सिवा, गननायक, गोंबिद ;
पंच नाम जिन घर जपत, तिन घर परमानंद ।

यहाँ एक ही नाम परमानद देने मे समर्थ है, किंतु पाँच नाम कहे गए, अर्थात् एक कार्य के अनेक कारण कहे गए। इसी प्रकार और भी जानना ।

समाधि

औचक काहू हेतु मिलि काज सुगम ह्वै जाय ;
ताहि समाधि बखानहीं सुकबिन के समुदाय ।

जहाँ अकस्मात् ही किसी कारण की सहायता से कार्य सुगम रीति से सिद्ध हो जाय, वहाँ समाधि अलकार होता है। समाधि का अर्थ है शक्ति-संपन्न करना ।

उदाहरण

पिय आवन समयौ समुझि तिय सकुची भय खाय ;
तौ लगि लखी परोसिनी लीनी निकट बुलाय ।

❀ ❀ ❀

प्रानप्रिया लखि पिय-गमन कहै न कछु सकुचाय ;
औचक ही घन गगन में गरजे - बरसे आय ।

❀ ❀ ❀

ब्रजबासी डरपे हियैं, कोप कियौ सुरनाथ ;
तौलग लिय जदुनाथ ने गिरि गोबरधन हाथ ।

प्रत्यनीक

सत्रु मित्र कौ पत्त लहि बैर-प्रीति दरसाय ;
प्रत्यनीक ताकों कहत लखि ग्रंथन की राय।

प्रत्यनीक का अर्थ है संबंधी प्रति अर्थात् जहाँ शत्रु अथवा मित्र के संबंधी प्रति वैर अथवा प्रीति का भाव प्रदर्शित किया जाय, वहाँ प्रत्यनीक अलंकार होता है।

शत्रुपत्ती उदाहरण

कर न सको कछु संभु को मदन बीर बलवान ;
ताके सम, ताके उरज हनन लगो हिय बान।

❀ ❀ ❀

सीत प्रसार तुसार की मार से' देत सुखाय लखौ रस पागौ ;
फेर 'बिहार' निसीथिनी पाय कैं संपुट कै नलिनी अनुरागौ।
यौं अपनैं सुत नीरज कौ अरि देख कैं नीर हियैं रिस दागौ ;
चंद कौं पाय सक्यौ न तबै प्रतिबिंब कों पाय बिलोकन लागौ।

मित्रपत्ती उदाहरण

लाल तिहारौ चित्र लखि लली ललक लहि लूमि ;
चाहि-चाहि चितवति चखन चिपकावति चुप चूमि।

❀ ❀ ❀

पिय-पाती छाती परसि बाँचत धरत सहेत ;
बाँचि-बाँचि पुनि-पुनि धरति, पुनि बाँचति धरि लेत।

काव्यार्थापत्ति

यहै कियौ तौ यह कहा इहि बिधि बरनन होय ;
काव्यार्थापति ताहि कौं कहत सयाने लोय।

उदाहरण

सहजहि पान कियौ प्रभू दावानल कौ आप ;
नाथ कठिन कह मेटिबौ सेवक कौ संताप।

❀ ❀ ❀

निडर नुकीले नयन तुव दिपत दिव्य द्युति दौन ;
कंज खंज मृग इन जिते, इन्हैं मीन बड़ कौन ।

❀ ❀ ❀

सावँत नृप आखेट महिं अवलोकत मृग-जात ;
तक-तक तीरन सें हनत कहा तुपक की बात ।

काव्यलिंग

करै समर्थन अर्थ कौ हेतु कछू झलकाय ;
काव्य-लिंग तासों कहत जे प्रबीन कबिराय ।

जहाँ किसी कही हुई बात का समर्थन कुछ हेतुसूचक बात कहकर करे, वहाँ काव्यलिंग अलंकार होगा ।

उदाहरण

उद्धव इन नैनन बसौ स्यामरूप सुखधाम ;
अंतर-बाहर दिसि-बिदिसि सूझत स्यामहिं स्याम ।

❀ ❀ ❀

नजर तिहारी में नृपति राजत रमानिवास ;
जिहि दिसि देखत दया-भर, दारिद रहत न पास ।

अर्थांतरन्यास

प्रथम कथित जो बस्तु यदि हो सामान्य प्रकास ;
तो बिसेष कहँ दृढ़ करै, सो अर्थांतरन्यास ।
अथवा भासित बस्तु में हो बिसेष को भास ;
तो समान्य कहँ दृढ़ करै, सो अर्थांतरन्यास ।

प्रथम कही हुई वस्तु यदि सामान्य हो, तो उसे विशेष उदाहरण से समर्थन कर पुष्ट करे, अथवा कोई कही हुई वस्तु यदि विशेष हो, तो उसे किसी उदाहरण द्वारा सामान्य रूप से समर्थन करे, इस प्रकार के वर्णन को अर्थांतरन्यास अलंकार कहते हैं ।

उदाहरण

(सामान्य की दृढ़ता विशेष से)

गुनग्राहक के पास ही होत गुनी कौ मान ;
निकट जौहरी के खुलत जौहर रतन निदान ।

इस दोहे के पूर्वार्द्ध में सामान्य बात कही गई, पुनः उत्तरार्द्ध में विशेष प्रमाण द्वारा वही बात पुष्ट कर दी गई। इसी प्रकार और भी जानो।

❀ ❀ ❀

गुनी-गुनी जुग जोड़िए, झलकत गुन चित चोप ;
हीरा मिलि हीरा घिसै, बढ़ति दुहुन अविओप।

❀ ❀ ❀

अति सीधे रहिए न जग लीजिय बन बिच जोय ;
सरल वृक्ष छेदत सबै, टेढ़े छुवत न कोय।

उदाहरण

(विशेष की दृढ़ता सामान्य से)

ओप भरे अधिक उतंग गज-कुंभ जुग्म
अंकुस-प्रहारन ने तिन तन छीनौ है ;
ताके डर भाजे, गे समोप सुंदरीन, तहाँ
दोउन उरस्थल पै जाय बास लीनौ है।
कहत 'बिहारी' देखौ उत ही प्रबीन प्यारे,
नाह के नखक्षत कौ भोगबौ सो लीनौ है ;
सत्य कोउ कहूँ जाय, वाह होत वैस ही,
जैसौ भाल-भीतर बिधाता लिख दीनौ है।

यहाँ कवि की उक्ति है कि हाथी के दोनो कुंभ अंकुश के घावों से अधिक पीड़ित हुए, तब बचने के अर्थ नायिकाओं के वक्षःस्थल पर वक्षोज रूप लेकर आ बैठे, परंतु यहाँ भी नायक के नख-क्षत भोगना पड़े। इस विशेष वाक्य को इस सामान्य वाक्य से समर्थन किया कि कोई कहीं जाय, होता वही है, जो विधि ने भाग्य में लिख दिया है।

❀ ❀ ❀

सीप में स्वाँति की बूँद परी मुकता प्रगटो बड़ मोल कौ जीसैं ;
वोही परी कदली तरु सार कियौ घनसार प्रचार वही सैं।

वोही परी अहि के मुख में बिष तीच्छन रूप भयौ तह तीसैं ;
बात 'बिहार' बिचार कही सुधरै बिगरै सब संगत ही सैं ।*

* * *

सावँतसिंह नरेस करत दया द्विज दीन पर ;
पालत प्रजा हमेस, राजन कौ यहि धर्म है ।

विकस्वर

जहँ बिसेष कहिकैं बहुरि कह सामान्य सुठाम ;
पुनि बिसेष कहँ दृढ़ करै, बिकस्वर ताकौ नाम ।

जहाँ विशेष वस्तु कहे, फिर उसे सामान्य कहकर समर्थन करे, पुनः उसके और दृढ़ समर्थन को फिर विशेष कहे, वहाँ विकस्वर अलंकार होता है ।

उदाहरण

बान महाभट से हटिगे पुनि और बली कह नैन निहोरै ;
कौसलराज किसोर सौ-हो-जो बिदेह जू कौ प्रन-बंधन छोरै ।
हैं समरत्थ करैं सो सहो, इन्हसें की 'बिहार' कहो बल जोरै ;
यों सिव-चाप दुटूक कियो, गजराज ज्यों कंज सनाल कौ टोरै ।

यहाँ सवैया के प्रथम दो चरणों मे विशेष वाक्य कहे, पुनः तीसरे चरण में सामान्य वाक्य कहा, पुनः चौथे चरण में (उपमान) विशेष वाक्य कहकर दृढ़ समर्थन किया ।

प्रौढ़ोक्ति

अधिक अधिक कल्पित करै अधिकाई जिहि ठाम ;
अलंकार प्रौढ़ोक्ति तिहि बरनत कबि गुन-ग्राम ।

---

* इस छंद में यह वर्णन है कि स्वाति की बूँद सीप में मोती, कदली में कपूर और सर्प-मुख में विष बन जाती है, यह परंपरा से प्रसिद्ध है । कविवर रहीम ने भी अपने एक दोहे में कहा है—

"मुकुता-कर, कपूर-कर, चातक-जीवन जोइ ;
एतौ बड़ौ 'रहीम' जल ब्याल-बदन बिस होइ ।"—संपादक

उदाहरण

चातिक कोकिल कीर सें सखि सूच्छम मृदु बैन ;
अधिक बान बरछीन सें अनियारे तुव नैन।

चातक, कोकिल और कीर की वाणी कुछ अधिक बारीक नहीं होती, तथापि कल्पना की गई है। इसी प्रकार और भी जानना।

❀ ❀ ❀

नीर गहर अंबुद अवर लेत लहर यह बेग ;
तिनहू सें जौहर जगी नृप सावँत तुव तेग।

संभावना

जो यों होय तो होय यों, यों बर्नन दरसाय ;
अलंकार संभावना ताहि कहत कबिराय।

उदाहरण

सुंदर स्वच्छ सुगंधि बढ़ाय सचिक्कन साफ सुरूप सुजोवै ;
बार अनेक 'बिहार' फलै अरु घाम तुसार सें तेज न खोवै।
कंचन नीर नहावै कछू दिन केलि-कुतूहल-स्वाद समोवै ;
एती करै अदली बदली कदली तव जंघथली सम होवै।

❀ ❀ ❀

बुधि, बल, बिद्या, बीरता, गुन कोऊ कछु लाय ;
तौ सावँत नृप के निकट सकत सभा बिच आय।

मिथ्याध्यवसित

जहाँ असत सत करन कों असत बस्तु दरसाय ;
मिथ्याध्यवसित ताहि कों कहत सुकबि-समुदाय।

उदाहरण

सिर सींग ससा कौ बनें धनुषा, औ अमावस चंद-प्रभा प्रसरै ;
अरु सूखे पलास के पत्रन सें रसरंग 'बिहार' नयौ निसरै।

सुत बाँझ कौ फूल अकास की माल गुहै तमतारन काज सरै ;
अरु हाथ पै पारौ धरै न चरै तब नाह सें नेह नऊढ़ा करै ।

ललित

जो कहने सो ना कहै, कहै तासु प्रतिबिंब ;
ताहि ललित भूषन कहत जे कबि बिद्याबिंब ।

उदाहरण

रीति लखाई यह लली तोहिं कौन मति कूर ;
चाखन चहत रसाल - फल बांवै बीज बमूर ।

सखी की उक्ति नायिका प्रति। यहाँ यह कहना था कि तू मान करके प्रियतम को प्रसन्न रखना चाहती है, सो यह न कहकर उसका प्रतिबिंब-मात्र कहा। इसी प्रकार और भी जानो।

❁ ❁ ❁

ऊधव का कहिए अधिक, यही मूल इक बात ;
जिन रस पियौ पियूष कौ, नीम न चाखन जात ।

प्रहर्षण (तीन प्रकार)

प्रथम प्रहर्षण

चितचाही होव जहाँ बिना जतन के बात ;
प्रथम प्रहर्षन तिहिं कहत जे कबि जग-बिख्यात ।

उदाहरण

चरन छुवत ब्रजराज के भईं कलिंदी थाहँ ;
हर्ष-सहित बसुदेव तब पहुँचे गोकुल माहँ ।

द्वितीय प्रहर्षण

चित चाहे तें हू अधिक होय अर्थ जहँ सिद्ध ;
द्वितिय प्रहर्षन कहत हैं ताकौं सुकबि प्रसिद्ध ।

उदाहरण

धन्य-धन्य रघुबंसमनि, धनि-धनि दीनदयाल ;
चही बिभीषन चाकरी आप कियौ महिपाल ।

❀ ❀ ❀

कंकन की इच्छा करत बखसत गुंज बिसेस ;
माँगत सौ देवैं सहस धन सावंत नरेस ।

तृतीय प्रहर्षण

जतन चलावत जाहिकौ प्राप्त होय सो आन ;
तृतिय प्रहर्षन कहत हैं ताकों चतुर सुजान ।

उदाहरण

ढूँढ़हिं सिय सखियानि सँग राम-लखन जुग जोट ;
तौ लगि लखे किसोर बर खड़े बिटप की ओट ।

बिषादन

जहँ चित चाहे तें कछू होय जाय बिपरीत ;
ताहि बिषादन कहत हैं जे जानत गुन-रीत ।

उदाहरण

लेन चही चितचोर कौ सपनैं रस अधरान ;
नींद निगोड़ी बोच ही दगा दई सखि आन ।

❀ ❀ ❀

बीतैं बासर बहुत प्रान - प्रीतम घर आए ;
बिलसे भीतर भवन देस के चरित सुनाए ।
अर्धरात्रि यों गई अनख बातन रँग छायौ ;
का कहुँ कठिन कुयोग कलह मैंने बगरायौ ।
कह कबि 'बिहार' जौलौं कियौ मान, गई तौलौं निसा ;
आली उदोत भई सौत-सी लाली लै पूरब दिसा ।

उल्लास

गुन औगुन संसर्ग से लगै और को और ;
ताहि कहत उल्लास हैं कवि - कोबिद - सिरमौर।

जहाँ किसी संसर्ग-संबंध से संगति का गुण अथवा दोष और का और में वर्णन किया जाय, वहाँ उल्लास अलंकार होता है। इसका वर्णन चार प्रकार से होता है। यथा—

औरहि के गुन से जहाँ औरहिं गुन प्रगटाय ;
औरहि के जहँ दोष से औरहिं दोष लखाय।
औरहि के गुन से जहाँ दोष और कों होय ;
जहँ औरहि के दोष से औरहिं गुन जिय जोय।
चार भाँति उल्लास के बरनत भेद प्रमान ;
उदाहरन अवलोकिए क्रमशः करत बखान।

(१) और के गुण से और को गुण

ऊँची संगति के किए नीच ऊँच ह्वै जाय ;
धूरि पगन की पवन मिलि रही गगन में छाय।

(२) और के दोष से और को दोष

सुद्ध सच्चिदानंद यह जीव जगत बिख्यात ;
तउ माया के संग बस फिरि आवत फिरि जात।

❀ ❀ ❀

गंगा-जल पावन परम, पर मदिरा के पात ;
मदिरा आप कहावही, है संगति की बात।

(३) और के गुण से और को दोष

उदय भयौ रबि दिवसमनि, तिमिर भयौ सत टूक ;
जगत भयौ सब सूझता, आँधर भयौ उलूक।

❀ ❀ ❀

नृप सावँत कौ ससि-सुजस सीतल सुखद सुहात ;
प्रिय कारन जन सुख लहत, अरि झारन झुर जात।

(४) और के दोष से और को गुण

वे नर कैसे जगत में, जिन बिबेक कछु नाहिं ;
देख पराई आपदा सुखी होत मन माहिं।

❀ ❀ ❀

तर्क* सुनबे की सदा ताक में बनेई रहैं,
अनहित† हेत सहैं कोटि कठिनाई हैं ;
कहत 'बिहारी' आप आपनी बड़ाई करैं,
और की अकारन ही करत बुराई हैं।
गुरुता सुने से काहु गैर की सहमि जात,
न्यूनता सुने से तकैं ताक तन छाई हैं ;
काहू नामवारे की कुनामा कर पावैं फेर
खलन के द्वार देखौ बाजतीं बधाई हैं।

अवज्ञा

जहाँ एक के दोष-गुन दूजौ नेक न लेय ;
तहाँ अवज्ञा नाम कौ भूषन कबि कह देय।

यह अलंकार उल्लास का उलटा है।

(१) उदाहरण

(और के गुण से और को गुण न लगना)

प्याज भूमि बोयौ सरस केसर-क्यारिन साज ;
सींचौ नीर गुलाब सें, जब सूँघौ तब प्याज।

❀ ❀ ❀

कोकिल के सँग में रह्यौ कियौ कीर मिलि सोर ;
तऊ कुबुद्धी काग कौ मिटयौ न बोल कठोर।

---

* तर्क = तर्कना, निंदा। † अनहित = वैर, अपकार, बुराई।

(२) उदाहरण

(और के दोष से और को दोष न लगना)

अखिल विस्व बरसै सलिल बारिद कर - कर रोष
चातक-मुख बूँद न परी, मेघन कौं कह दोष

* * *

श्रीसावंत सदा सबहिं दान देत सुख पाय ;
कर्महीन पावै न जो, तापै कहा बसाय।

अनुज्ञा

दोषहु को गुन मानकर ग्रहन करै जिहि ठौर ;
ताहि अनुज्ञा कहत हैं कबि - कोबिद - सिरमौर ।

उदाहरण

कपट-रूप मृग बनन की भली कही तुम बान ;
राम-बान सहिहौं हिये, लहिहौं पद निरबान ।

यहाँ मारीच को आसुरी संज्ञा से पशु बनना दोष-रूप है, किंतु भगवान् रामचंद्रजी के बाण द्वारा मोक्ष-प्राप्ति होना गुण-रूप मानकर दोष को अंगीकार करना वर्णन किया गया है। इसी प्रकार आगे जानना।

* * *

चैत-चाँदनी-रैन पाय प्रीतम नहिं पाऊँ ;
बिरह बीच यदि प्राननाथ बिन प्रान गमाऊँ।
तौ प्रभु जन्म जु देव ब्याध कोकिल हित कीजौ ;
पूर्न चंद्र-हित ग्रसन राहु कौ रूप सुदीजौ।
कह कबि 'बिहार' यह मदन-हित सिव-दृग-ज्वाल जनाइयौ ;
अरु प्रियतम मोहन मदन-हित मोकहँ मदन बनाइयौ।

तिरस्कार

(अनुज्ञा का विरोधी)

जद्यपि आदरनीय हो निदरिय दोष निहार ;
तिरस्कार भूषन कहत ताकौं गुन - आगार।

उदाहरण

पर कौ भलौ न कर सकत, निज कौ करौ न खात ;
कबि 'बिहार' अस नरन कौ जन्म अखारथ* जात ।

❀ ❀ ❀

जौन नर-देह से' अयोध्या हरिचंद भूप
सत्य सक्ति साध स्वर्गलोक में बसा दई ;
जौन नर-देह से' भगीरथ सगर तारे,
जौन नर-देह धर्म धर्म में धसा दई ।
सुन सुक-बानी जौन देह से परीछित ने
कहत 'बिहारी' ब्याल खलुता खसा दई ;
जौन नर-देह से अलभ्य गति लैंने, तैंने
तौन नर - देह नारि - नेह में नसा दई ।

❀ ❀ ❀

पामर प्रपंचन के पाँयन पलोटो लोटो,
धूतन कौ धाय-धाय कारज सम्हारौ है ;
छोड़ प्रभु-आस बिसवास कर लोगन कौ,
लोक - परलोक सर्ब - साधन बिगारौ है ।
कहत 'बिहारी' कहूँ नीकै कैं न सेए संत,
कहूँ परमार्थ में न नेक तन गारौ है ;
धिक-धिक मूर्ख ऐसौ जीवन अमोल तैंने'
पेट ही के खातर† खराब कर डारौ है ।

❀ ❀ ❀

सूम स्वभाव 'बिहार' भनैं धन देखई देख हियें सुख सानैं,
लै इतते उत जाय धरैं पुनि लै उततें इत ठौरहि आनैं ।

---

* अखारथ = व्यर्थ । † पेट ही के खातर = पेट ही के लिये, खाने-कमाने में ।

दान करै नहिं भोग करै, नित याहि उठा-धरि में मन मानैं ;
जैसे नपुंसक नागरी कौं परस्योई करै बिलस्यो नहिं जानैं।

लेश

गुन को दोषित बरनिए दोषहु गुन कर लेख ;
अलंकार तिहि लेस कह जिनके बुद्धि बिसेख।

(१) उदाहरण

(गुण में दोष-वर्णन)

छोड़कै साथ बिहंगन कौ इत मानुष-चातुरी में चिड़नैं परो ;
वे मनमाने सबाद घने फल फूल स्वतंत्रता से छिड़नैं परो।
काँ वह बृच्छन बेलीं 'बिहार', कहाँ इन ताड़न से भिड़नैं परो ;
सारिका, सुंदर बोलती हौ, इहि कारन पींजरा में पिड़नैं परो।*

* * *

जो न होत हरिचंद में सतब्रत दृढ़ आधार ;
तौ बिकते क्यों बिबस ह्वै हाटन बाट बजार।

(२) उदाहरण

(दोष में गुण-वर्णन)

मैना मधुरी बानि सों परी पींजरन तार ;
कटु-भाषी बायस भलो बिचरत मन - अनुसार।

* * *

धनी न कहुँ निर्भय रहत संकित रहत हमेस ;
उनसे वे निर्धन भले, घूमत देस - बिदेस।

गुणोक्ति

बहुगुन तज जहँ एक कों इक गुन गुरुता देय ;
कबि 'बिहार' गुनउक्ति तहँ भूषन चित धरि लेय।

---

* इस उदाहरण में सारिका के मधुर भाषण के गुण के कारण उसका बंधन में पड़ना वर्णन किया गया है, जो गुण में दोष है। अतएव इसमें 'लेश' अलंकार स्पष्ट है।—संपादक

जहाँ अनेक गुण छोड़कर एक को एक ही गुण से श्रेष्ठता देवे, वहाँ गुणोक्ति अलंकार होता है।

उदाहरण

कबिता वही है जामें बिमल बिभासै व्यंग,
सरिता वही है जामें धार गहराई की;
कहत 'बिहारी' सर सरस वही है जामें
सुखमा सरोज बृंद नवल निकाई की।
बाग तौ वही है जामें सुमन सुगंध फूले,
राग तौ वही है जामें तान तरुनाई की;
कामिनी वही है जाकी प्रीति निज प्रीतम सों,
जामिनी वही है जामें जोति है जुन्हाई की।

यहाँ कविता, सरिता, सर आदि के अनेक गुण छोड़कर व्यंग्य, गहराई, कमल-युक्त होना आदि गुण से ही श्रेष्ठता दी गई, अतः यह गुणोक्ति अलंकार हुआ। इसी प्रकार और भी जानो।

❀ ❀ ❀

सूर वही जो रन थमें सुबुधि वही जो ज्ञानि;
रूप वही जो मन हरै, भूप वही जो दानि।

अर्थ सुगम है।

इस भाव की कविता कुछ-कुछ पहले भी हुई, किंतु इसमें प्रधान रूप से कोई अर्थ अलंकार स्पष्ट घटित नहीं होता है, इसी कारण इस भाव के लिये हमें यह गुणोक्ति नाम का अलंकार नवीन निर्माण करना पड़ा।

मुद्रा

प्रस्तुत वर्णन में कढ़ै और सूचनिक अर्थ;
ताकौं मुद्रा कहत हैं जे कबि सदा समर्थ।

जहाँ प्रस्तुत वर्णन में ऐसे शब्द आ पड़ें, जिनसे प्रासंगिक अर्थ के अतिरिक्त किसी अन्य अर्थ की भी सूचना निकले, वहाँ मुद्रा अलंकार होता है।

उदाहरण

काह करूँ मींजत मदन बृथा रैन गुजरात;
करत उनहुसेनीति कटु अलीमान हुय प्रात।

यहाँ मान-मोचन-संबंधी प्रस्तुत वर्णन के अतिरिक्त रूमी, गुजराती, हुसैनी, अलेमान, इन तलवारों के भी नाम सूचित होते हैं।

❀ ❀ ❀

जिहि तनजेब जराव के भूषन मन हर लेत ;
सो बैठा गुजराइती क्यों नहिं मलमल देत।

यहाँ प्रस्तुत अर्थ के अलावा तनजेब, गुजराइती, मलमल, इन कपड़ों के भी नाम निकलते हैं।

❀ ❀ ❀

कोकलजुग तप कर सकत मोर सीख मन थाम ;
परमहंस पद से सरम भज तू स्यामा स्याम।

यहाँ सदुपदेश प्रस्तुत वर्णन के अतिरिक्त कोकिल, मोर, हंस, श्यामा, इन पक्षियों के भी नाम निकलते हैं।

रत्नावलि

प्रस्तुत वर्णन में कढ़ैं क्रम से नाम जु और ;
रत्नावलि तासों कहत सुकबिन के सिरमौर।

उदाहरण

अर्थ सुनौ समझौ तौ कछू हम काह कहैं तुम काह सिखाओ ;
धर्म 'बिहार' तुम्हारौ रहो सो कहो अब भेद सृँगार लखाओ।
काम कलान त्रिभंग में कूबर कैसो बिधै वा कथा तौ सुनाओ ;
ऊधौ रँगीं हम स्याम के रंग हमें जिन मोक्ष कौ मार्ग बताओ।

यहाँ ऊधव-गोपियों के संवाद के अतिरिक्त क्रमशः अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, इन चारो पदार्थों के नाम निकलते हैं। इस अलंकार में क्रम पर विशेष ध्यान रखना चाहिए।

❀ ❀ ❀

रवि अथये आये न हरि चंद्र कियौ उजियार ;
कित मोहन मंगल रचे यों बुध करत बिचार।

यहाँ उत्कंठिता नायिका के प्रस्तुत वर्णन के अतिरिक्त रवि, चंद्र, मंगल, बुधवार के क्रम-सहित नाम निकलते हैं।

❀ ❀ ❀

स्याम रँगोलीला करत तूँ करहिया प्रसन्न ;
चल गुनाव गुलगंज विचरबिजावर सुखधन्न।

यहाँ मान-संबंधी प्रस्तुत वर्णन के अतिरिक्त बिजावर राज्य की मुख्य चार तहसीलों के क्रमशः नाम निकलते हैं। अर्थात्—रँगोली, करहिया, गुलगंज और बिजावर।

तद्गुण

निज रंगत गुन छोड़ कैं संगत रंगत लेय ;
तद्गुन भूषन ताहि कौं कबि-कोबिद कहि देय।

उदाहरण

मुक्तमाल कत हंस तूँ मम कर लख मुख मोर ;
चाह चाह चंचल चखन चुभ चुभ चुनत चकोर।

❀ ❀ ❀

मुक्ता कर लीनैं लली निरखि जौहरी ताहि ;
मानिक मोल बतावहीं तिया गई मुसक्याहि।

❀ ❀ ❀

मेरा रुचि पायकैं बनायकैं सु आछी भाँति ,
नित्य नई ल्यावै जाकी सुखमा सनी रही ;
कहत 'बिहारी' बलिहारी यहि रूप कीरो ,
मालिन बिलोक माल चकित घनी रही।
चतुर चमेली की सजावै चाँदनी-सो जोति ,
सोनजुही होति यही नौबत ठनी रही ;
साँची मान सजनी सुपेत हार पैरिबे की
हौंस मेरे हिय में हमेस ही बनी रही।

अतद्गुण

संग रहैं हूँ रंग कौ गुन नहिं लागै जाहि ;
अलंकार पंडित सुकबि कहत अतद्गुन ताहि।

उदाहरण

लाल रंग गुन सें गुही फटिक माल छबि देत ;
तऊ न लीनी लालिमा रही सेत की सेत ।

❀ ❀ ❀

सुद्ध सतोगुन ज्ञान कौ ऊधव दीनौ संग ;
मन अनुरागी तियन कौ तऊ न पलटौ रंग ।

पूर्वरूप (दो प्रकार)

पहला भेद

निज गुन रंगत छोड़ कै संगत गुन गहि लेय ;
पुनि निज गुन रंगत लहै, पूर्वरूप कहि देय ।

उदाहरण

नथ-मुक्ता तुव तरुनि यह अधरन अरुन लखात ;
दीप्ति दसन बिहँसन परति, पुनि उज्ज्वल ह्वै जात ।

❀ ❀ ❀

मुकत-हार हिय सें परस पुष्यराज❀ छबि देत ;
हाथ लेत होवै अरुन, हसत सेत कौ सेत ।

दूसरा भेद

दुगुन बढ़ै गुन संग सें पुनि वह संग न होय ;
गुन ज्यों कौ त्यों ही रहै, पूर्वरूप गुन सोय ।

जहाँ किसी वस्तु का गुण किसी वस्तु की संगत से विशेष कहा जाय, पुनः संगत वस्तु के अभाव होने पर भी पूर्ववत् गुण बना रहना वर्णन किया जाय, वहाँ दूसरा पूर्व रूप अलंकार होता है ।

उदाहरण

लाल कपोल गुलाल मिलि लाली अति अधिकाय ;
धोएहू पुनि बदन की दुति दूनी दरसाय ।

❀ ❀ ❀

❀ पुष्यराज = पुखराज ।

दीप बढ़ाये होत कह, भावत भवन उदोत ;
रसना मनि की जोति से वही उजेरौ होत।

अनुगुण*

संगत कौ गुन पायके निज गुन जहँ बढ़ि जाय ;
अलंकार अनुगुन कहत ताहि सकल कबिराय।

इस अलंकार में पिछले तीन अलंकारों की तरह केवल गुण का अर्थ रंग ही न समझना चाहिए, बरन् इसमें सभी प्रकार के गुण समझना चाहिए।

उदाहरण

चमक चहूँधा चारु चौकस रही है चुभ,
प्रगट प्रकास प्रभा पूरन पुजै रहो ;
स्यामले छबीले चितचोर ब्रजचंदहू के
चित्त के चुरायबे की चातुरी चितै रही।
कहत 'बिहारी' बृषभान की दुलारी प्यारी,
देख लली ललित लुनाई लोनो लै रही ;
कंचन सौ रंग तेरौ अंग ताकी जेब पाय,
तेरी पायजेबैं आज दूनी जेब दै रहीं।

❀ ❀ ❀

श्रीयुत सावँतसिंह नृप तुव जस अमल उदोत ;
चंदन मिल चौगुन बढ़त, ससि मिल सौ गुन होत।

मीलित

दोउ बस्तु इक रँग मिलै, भेद न जानो जाय ;
मीलित ताको कहत हैं कबि-कोबिद-समुदाय।

उदाहरण

नायन जावक देत हँसि, पाँयन रँग मिलि लेत ;
निंदित करत महावरी पुनि मीड़ित पुनि देत।

❀ ❀ ❀

---

* अनुगुणगुण का और अधिक बढ़ना।

श्रीसावँत के सुजस में सागर ससि छिप जात ;
मुक्ता चाँदिनि चहन कौं हंस चकोर ललात।

उन्मीलित

मीलित में कछु हेतु सें भेद परै पहिचान ;
उन्मोलित तामों कहत जे कवि चतुर सुजान।

उदाहरण

चंप-सुमन माला मिली तिय तुव तन छवि आन ;
प्रिय पकरत झगरत मिरत झरति परति पहिचान।

❀ ❀ ❀

सावँत नृप तुव सुजस कौं शुभ्र रंग सरसात ;
चीन्ह चमेली तब परत जब मलिंद मड़रात।

सामान्य

जहाँ दोई आकार इक भेद न जानो जाय ;
ताहि कहत सामान्य हैं कवि-पंडित-समुदाय।

इस अलंकार में आकार की एकता कही जाती है।

उदाहरण

निरख चंद पूरन छटा अटा चढ़ी तिय जाय ;
अर्घ-समय जुग ससि निरखि रहे सबै सकुचाय।

❀ ❀ ❀

सुरत समय लख लाड़िली दीप सहस मनि-जाल ;
इत घूँघट पट करत उत मारत मूठ गुलाल।

विशेषक

जहाँ कछू सामान्य में भेद परै पहिचान ;
ताहि विशेषक कहत हैं जे कवि बुद्धिनिधान।

उदाहरण

देख सकल आकार इक नल सुर-बृंद बिसाल;
लखि छाया मेली पतिहिं दमयंती जयमाल।

❀ ❀ ❀

तड़िता अरु यहि तरुनि में भेद न परतो हेर;
जो कदाच होतौ नहीं थिर अस्थिर कौ फेर।

गूढ़ोत्तर

उत्तर साभिप्राय सो गूढ़ोत्तर द्वै सोय;
इक उत्तर बिन प्रश्न के एक प्रश्न पर होय।

जहाँ कुछ साभिप्राय उत्तर दिया जाय, वहाँ गूढ़ोत्तर अलंकार होता है। इसकी उत्तर-विधि दो प्रकार की होती है। एक विना प्रश्न के ही उत्तर वाक्य कह दिया जाय, और उसी उत्तर के भाव से प्रश्न बना दिया जाय। दूसरी वह है, जिसमें प्रश्न पर उत्तर दिया जाय।

उदाहरण

(प्रश्न-रहित उत्तर)

डगर-डगर सुनियत झगर नगर निकट कोउ नायँ;
बसहु बटोही बिमल थल, यह बर सीतल छायँ।

यहाँ स्वयंदूतिका नायिका पथिक-प्रति ठहरने को शीतल वट-वृक्ष की छाँह बतला रही है, जिसके उत्तर वाक्य से "हम कहाँ ठहरें" यह पथिक का प्रश्न बना दिया गया है। और नायिका ने गूढ़ उत्तर देकर अपना संकेतस्थल सूचित किया है। स्वयंदूतिका नायिका के कथन में प्रायः यही अलंकार होता है।

❀ ❀ ❀

को हौ थकि रहे जकि रहे तकि रहे कहा,
भवन हमारो यहाँ ठैरौ ठौर ठंडी है;
कहत 'बिहारी' भई साँझ पौर माँझ परौ,
चैन लो घनेरी ये अंधेरी रैन मंडी है।
राह चलिबे की अब राह तौ हमारी नहीं,
बाट बटवारिन कौं बिकट बितंडी है;

एक बन गैल, दूजैं आड़े परे सैल, तीजैं
चोरन को फैल, चौथैं गैल पग-डंडी है।

उदाहरण

(प्रश्न-सहित उत्तर)

प०—भ्रातृ से शंकर-चाप दुराय कें
लागो 'बिहार' तूँ मोहि खिजावन ;
ल०—छूवत टूटौ पिनाक पुरान,
मुनीस बृथा लगे रार मचावन।
प०—रे सठ बालक, बोलै निसंक ह्वै,
मारिहौं कोई न एहै बचावन ;
ल०—वा महराज बड़े बलवान हौ,
फूँक सें चाहौ पहार उड़ावन।

(परशुराम-संवाद)

❀ ❀ ❀

अहो भ्रात कित जात, वैद्य गृह, कारन काहीं ;
रोग-शांति के लिये, कहा कामिनि घर नाहीं।
जिहि कुच परसत-मात्र बात बातहि में जावे ;
अधर-सुधारस पियत पित्त को कोप नसावै।
कह कबि 'बिहार' मिले अंग जब, आलिंगन अनुसरति है ;
तब श्रम ही सें कफ-दोष के सकल बिकारहिं हरति है।

चित्रोत्तर

चित्रोत्तर द्वै भाँति कौ प्रश्नहि उत्तर होय ;
इक उत्तर बहु प्रश्न कौ द्वितिय भेद गिन सोय।

चित्रोत्तर अलंकार दो प्रकार का होता है—पहला वह, जहाँ जिन शब्दों में प्रश्न हो, उन्हीं शब्दों में उत्तर हो। दूसरा वह, जहाँ अनेक प्रश्नों का उत्तर एक ही हो।

पहले भेद का उदाहरण

काबैरी कलि-कलुष कौं, कालिकाह कह ऐन ;

कासमीर सुरभित पवन, कौमुदिता कहु रैन ।

इस उदाहरण में चार प्रश्न हैं—(१) कलि के पापों का कौन वैरी है ? (२) अत्यंत काली कौन वस्तु है ? (३) सुगंधित समीर कहाँ का है ? (४) रात्रि को मुदिता कौन है ? इनके उत्तर इन्हीं शब्दों में दिए गए हैं—पापों का वैरी कावेरी (गंगा) है, अत्यंत काली कालिका है, सुगंधित समीर काश्मीर का है, रात्रि को मुदिता कौमुदी है ।

दूसरे भेद का उदाहरण

(बहुत प्रश्नों का एक ही उत्तर)

पाठ गया क्यों भूल ? क्यों भाजन दीखत मलिन ?

कस्यौ पतँग क्यौं मूल ? कह 'बिहार' माँजा नहीं ।

इस उदाहरण में तीन प्रश्न हुए—(१) पढ़नेवाला पाठ क्यों भूल गया ? (२) बर्तन मैला क्यों हुआ ? (३) पतंग क्यों कट गया ? इन सबका ग्रंथकर्ता एक उत्तर देता है कि 'माँजा नहीं ।'

❀ ❀ ❀

मसि-भाजन क्यो मसि गिरी ? मृगया भई न नीक ?

सुत मनमानौ क्यों भयौ ? सारद डाट न ठीक ।

(मत्पुत्र-कृत)

इस उदाहरण में तीन प्रश्न हुए—(१) स्याही दावात से क्यों गिर गई ? (२) शिकार अच्छा क्यों न हुआ ? (३) लड़का मनमाना क्यो हो गया ? इन सबका कवि एक ही उत्तर देता है कि 'डाँटा नहीं ।'

❀ ❀ ❀

रन से को भाजत नहीं ? को छत्री छबिवंत ?

कौन बिजावर - भू - पती ? कह 'बिहार' सावंत ।

इस दोहे में तीन प्रश्न हैं—(१) युद्ध से कौन नहीं भागता ? (२) असली क्षत्रिय कौन है ? (३) बिजावर-राज्य का अधिपति कौन है ? इन सबका उत्तर ग्रंथकर्ता एक ही देता है—'सावंत ।'

सूक्ष्म

जहाँ क्रिया अरु सैन से अभिप्राय लखि लेय ;

सैनहि से उत्तर रचै, सो सूक्षम कहि देय ।

जहाँ क्रिया व सैन (इशारा) देखकर क्रिया व सैन से ही उत्तर दिया जाय, वहाँ सूक्ष्म अलंकार होता है।

उदाहरण

चंपकली पिय चूमिकै लीनी हृदय लगाय;
लली जोर जुग अंजुली, दिय उत्तर मुसक्याय।

यहाँ श्रीकृष्णजी ने चंपकली चूमने की चेष्टा से श्रीराधिकाजी से मिलने का संकेत किया, तिस पर श्रीजी ने अंजुली जोड़ संपुटित कमल का दिखाकार खाकर रात्रि का मिलना सूचित किया। नायिका क्रियाविदग्धा के अंतर्गत रूपगर्विता होती है।

❀ ❀ ❀

उत ठाढ़े मोहन रमन, उत राधा बर-बेस;
उन दिखरायौ चंद्रमा, उन दिखराए केस।

पिहित

छिप्यौ वृत्त जहँ दूसरौ समझै बिनहिं बताय;
देय समझ की सूचना भूषन पिहित कहाय।

किसी के छिपे हुए वृत्त को बिना बतलाए दूसरा समझ ले, और अपने समझ जाने की किसी क्रिया से सूचना दे दे, ऐसे प्रकरण को पिहित अलंकार कहते हैं।

उदाहरण

स्रम-जल-कन पलकन चखन लखि पिय-आगम भौन;
समुझि सयानी रिस-पगी, लगो करन पट पौन।

❀ ❀ ❀

निरखि अधर अंजन अली, रिस रोकी मुसक्याय;
आन दिखाई आरसी स्याम रहे सकुचाय।

व्याजोक्ति

औरै मिस कर कह कछू रूप छिपावै जोय;
व्याज-सहित बरनन करै, व्याजउक्ति है सोय।

यह अलंकार गुप्ता नायिका में विशेषकर होता है।

उदाहरण

बागन गई ती बीर चुनन प्रसून-पुंज ,
बहत समीर मंद मोद उर धारे हैं ;
कहत 'बिहारी' तहाँ तन की सुगंध पाय
आन मढ़े मुख पै मलिंद मतवारे हैं।
कीनौ हठ ठान रस-पान इन ओंठन कौ ,
भौतक भगाए, पै भगे न दईमारे हैं ;
डंक छत फूटे बैन मान मत झूठे, मेरे
अधर अनूठे आज जूठे कर डारे हैं।

❀ ❀ ❀

सावँत नृप तुव त्रास अरि फिरत पहार-पहार ;
बिन पूछैं लागत कहन, खेलन आए सिकार।

विवृतोक्ति

गुप्त अर्थ जहँ श्लेष सों देवै सुकबि जताय ;
बिवृतोक्ति तासों कहत कबि-कोबिद-समुदाय।

उदाहरण

इन कुंजन गुंजत भँवर, चल सखि लखिय बहार ;
समुझि सही तिय लज रही मुख घूँघट पट डार।

❀ ❀ ❀

सो भरि है भरपूर सुख, जो करि है उपवास ;
बचन बैद-ब्रजराज के सुन हिय भयहु हुलास।

युक्ति

और क्रिया करिकैं कछू अपनो मर्म छिपाय ;
ताहि युक्ति भूषन कहत सुंदर सुकबि बनाय।

उदाहरण

मीत-गमन सुनि बिरह तन बिलसी तपन तमाम ;
सखिन संग तक तिय तबहि बैठी हरष हमाम।

❀ ❀ ❀

मंजु सुमन लै तिय रही सुंदर सेज सम्हार ;
निरखि सखी आतुर ठगी लगी बनावन हार।

गूढ़ोक्ति

गूढ़ उक्ति जहँ और सें औरहि कहै सुनाय ;
गुप्त रहस की सूचना सो गूढ़ोक्ति कहाय।

उदाहरण

मालिनि नहिं लावत लली सुमन सुमन-अनुकूल ;
जैहौं साँझ निकुंज - बन चुनन चमेली - फूल।

❀ ❀ ❀

आज साँझ ऐयौ अली मम गृह खेलन खेल ;
द्वार देखियौ खिल रही बर बेला की बेल।

लोकोक्ति

जहँ प्रसंगबस लोक की कहनावत दरसाय ;
ऐसौ बर्नन होय जहँ, सो लोकोक्ति कहाय।

उदाहरण

सगुन रूप राँची सकल नहिं निगुन लौं पौंच* ;
बृथा कहत ऊधव यहाँ लगै न गडु़वै गौंच।

❀ ❀ ❀

ना लीनौं कछु लोक-सुख, ना लीनौं उपदेस ;
जैसे कंथा घर रहे, तैसे रहे बिदेस।

❀ ❀ ❀

---

* पौंच = पहुँच।

इत-उत बैठ खोय दिन-रैना ; ज्ञान कहौ तौ स्रवन सुनै ना।
कहत, ज्ञान में है भटभेड़ौ ; नाच न आवै आँगन टेड़ौ।

छेकोक्ति

साभिप्राय प्रयोग से लोक-उक्ति जहँ होय ;
मिलै बाक्य उपमान सम छेकउक्ति है सोय।

जहाँ प्रसंग वर्णन करते हुए उसी अभिप्राय से कोई लोक की कहनावत उपमान रूप से कथन की जाय, वहाँ छेकोक्ति होती है। लोकोक्ति में लोकोक्ति प्रसंग-रूप से कही जाती है, और छेकोक्ति में लोकोक्ति उपमान रूप से कही जाती है।

उदाहरण

राम कहाँ कोउ देव मिलाय ; ढूँढ़ै घर-घर बन-बन जाय।
हिय में बैठो सकैं न हेर ; काँख में लरिका गाँव में टेर।

❀ ❀ ❀

बंधु बिभीषन सौ नहिं भावै; रावन कुंभहकर्न सरावै।
साधु कों साधु गुनी गुनि चाहै ; कान गधा कौ गधा कुकवावै।

वक्रोक्ति

(अर्थमूला)

जहाँ अर्थ कछु श्लेष सों उलट-फेर हो जाय ;
ताहि कहत बक्रोक्ति हैं सुकबिन के समुदाय।

उदाहरण

बिषग्राही कहँ, नंदग्रह, पशुपति, गोकुल गाय ;
बस भुजंग, सो छीर-निधि, रमा रहीं मुसक्याय।

यहाँ लक्ष्मीजी ने पार्वतीजी से हास्यमय शब्द महादेवजी के प्रति संकेतित करके कहे। पार्वतीजी ने उन्हीं शब्दों का विष्णु-प्रति अर्थ पलटकर उत्तर दिया, यही बक्रोक्ति है। वक्रोक्ति का विशेष निरूपण शब्दालंकार में देखो।

स्वभावोक्ति

जैसौ जाकौ रूप, गुन, बचन, बनाव, सुभाव ;
सो बर्नन के करन कों सुभावोक्ति कबि गाव।

जिसका जैसा स्वतः रूप, गुण, वचन, बनावट, स्वभाव हो, वैसा यथार्थ वर्णन कर देने को स्वभावोक्ति अलंकार कहते हैं।

उदाहरण

तानदार बाँसुरी प्रमानदार बात जाकी ,
सानदार साहबी न ऐसी लोक लखियाँ ;
कहत 'बिहारी' छबिदार मूर्ति मोहिनी पै
बिना मोल बिबस बिकानी ब्रज-सखियाँ।
जोरवारो यौवन सुरूप चित-चोर-वारो ,
मोरवारो मुकुट मयूरवारी पखियाँ ;
जंग-भरी जुलफैं उमंग-भरी चाल बाँकी ,
रंग-भरी हेरन अनंग-भरी अँखियाँ।

❀ ❀ ❀

सब्द सुन सूर सेर संकित सिला से उठ्यौ ,
चालौ गति मंद-मंद मस्तक उठायकैं ;
पत्र भहरात जात भुजा ठहरात जात ,
पुच्छ लहरात जात सहज सुभाय कैं।
कहत 'बिहारी' तौलौं सावँत नरेंद्र बीर
देखकै दुनाली दई ग्रीवा में मिलायकैं ;
ताकी गोली खायकैं, धरा पै गिरो धायकैं ,
घरीक मुख बायकैं, सिधारौ स्वर्ग जायकैं।

पुनः वानिक

स्यामल सुरूप स्वर्ण अंकित बिचित्र चित्र ,
मूल्य पंच सहस परै न चोट खाली है ;
लोनी लुक लाइट् कौरडाइट् साइट् सोहै बेस ,
व्लौसिटी बलिष्ठ लखी लाग में निराली है।

कहत 'बिहारी' शब्द घोर थिएटीन वीर,
वैसिलो रिछार्ड आर्ड लेकर सम्हाली है;
आनँद के कंद सिंह सावँत नरेंद्र बीर,
हिंद में प्रसिद्ध राज रावरो दुनाली है।

इस स्वभावोक्ति का भयानक-रस के उदाहरण में वर्णन किया गया है।

भाविक

बर्नन भूत भविष्य कौ बरनै जहाँ प्रत्यक्ष;
ताको भाविक कहत हैं जे कबि कविताध्यक्ष।

उदाहरण

(भूतार्थ प्रत्यक्ष वर्णन)

ब्रज-बन-कुंज-लतान में अजहूँ देखिय जाय;
जान परत निकसन चहत इन बीथिन ब्रजराय।

❀ ❀ ❀

जड़ित जवाहिर की बिमल बनाई भूमि,
सुमन - समूहन मलिंद-पाँति पेखी है;
तहाँ राम-जानकी प्रकास चंद्र कैसे खिले,
सखिन - समूह ओप उपमा बिसेखी है।
सावँत नरेंद्र सक्ति रतनकुमारि धन्य,
कहत 'बिहारी' भक्त ऐसी तौ न लेखी है;
जनक के बाग भई त्रेता में ललित लीला,
सोई आज जानकी-निवास खास देखी है।

❀ ❀ ❀

धर्म सनातन धारहीं धन-धन सावँत भूप;
अपने पूरब नृपन कौ प्रगट बतावत रूप।

उदाहरण

(भविष्यार्थ प्रत्यक्ष वर्णन)

रितु बसंत पिय-गमन लखि चित्र दिखायौ आन ;
पिक, मयूर, घन, दामिनी, मदन सुमन धनु बान ।

यहाँ प्रवत्स्यत्प्रेयसी नायिका ने गमन रोकने के अर्थ वसंत-ऋतु में भविष्य वर्षा का वर्तमान रूप दिखलाया । इसी प्रकार और भी जानो ।

❀ ❀ ❀

जो परदेस कौं जैबौ पिया मन ही बिच राखो भलौ फल दैहै ;
जाहिर जो करिहौ जू कदाच, तौ सुंदरी सोक नयौ नहिं सैहै✻ ।
आतुर होय से होयगो हानि 'बिहार' बिचार ये एक न रैहै ;
आप तौ पीछे चलौगे लला, चरचा चलैं चंद्र-मुखी चलि जैहै ।

उदात्त

उपलच्छन दै बरनिए जहँ महत्त्व कौ भाव ;
संपति की अत्युक्तिहू, सो उदात्त ठहराव । †

✻ सैहै = सहिहै, सहेगी ।

† उदात्त अलंकार के विषय में वाग्देवतावतार श्रीमम्मटाचार्य 'काव्य-प्रकाश' में लिखते हैं—'उदात्तं वस्तुनः संपत् महतांचोपलक्षणम्' । वस्तु की संपदा एवं महत्त्वशालियों के उपलक्षण (अंग-भाव) के वर्णन में उदात्त अलंकार है । आचार्य दंडी ने भी साधिकार लिखा है—

आशयस्य विभूतेर्वा यन्महत्त्वमनुत्तमम् ;
उदात्तं नाम तं प्राहुरलंकारं मनीषिणः ।

जो आशय (मनोवृत्ति) अथवा विभूति का अनुत्तम (अतिश्रेष्ठ) महत्त्व का वर्णन है, उसे उदात्त-नामक अलंकार कहते हैं । हिंदी में श्रीकन्हैयालालजी पोद्दार ने लिखा है—"जहाँ अतिशय समृद्धि का वर्णन हो, उसे 'उदात्त' अलंकार कहते हैं ।"

यद्यपि इस विषय में मतभेद हो सकता है, पर यथार्थ में सभी ने उपलक्षण और अतिशय समृद्धि वर्णन में ही यह अलंकार माना है । कविराज ने भी उपलक्षण और संपत्ति की सापेक्षा से उदात्तता होने में भी इसे माना है, परंतु आपने एक इशारा करके 'संपत्ति अत्युक्ति' में द्वितीय उदात्त का वर्णन बतलाकर द्वितीय उदात्त का अत्युक्ति में अंतर्भाव होना ध्वनित किया है, जो अलंकार-शास्त्री सज्जनों को विचारणीय है ।—संपादक

उदाहरण
(संपत्ति का)

प्रभु की संपति साहिबी को बरनैं कबि हेर ;
खड़े भीख माँगत जहाँ सुरपति और कुबेर ।

उदाहरण
(महानों की उपलक्षणता अर्थात् बड़ो के संबंध से किसी की बड़ाई)

वही सरोवर है यहै गोपीताल प्रबीन ;
जहाँ बिरह-बस गोपिका भईं कृष्ण में लीन ।

❋ ❋ ❋

अति उदार सावंत नृप वह कुल प्रगटो आन ;
जिहि कुल बीर बृसिंह❋ ने स्वर्ण-तुला दिय दान ।

अत्युक्ति

जहाँ कौनहू बिषय कौ बरनैं अतिकर रूप ;
ताहि कहत अत्युक्ति हैं जिनकी बुद्धि अनूप ।
सुंदरता अरु सूरता अरु उदारता सोय ;
प्रेम, बिरह अरु कीर्ति की अत्युक्ती बहु होय ।
पृथक-पृथक वर्णन मिलत बहु ग्रंथन बहु ठौर ;
यहाँ सूक्ष्म वर्णन करत, समुझैं कबि-सिरमौर ।

उदाहरण
(सुंदरता-रूप-गर्विता)

चौंक-चौंक चरन चलाय चपै चौर चहूँ ,
चिरी चुपचाप करैं चूँ न चुटकारे तैं ;

❋ ओरछा-नरेश महाराजा वीरसिंहजू देव, जिन्होंने अकबर के प्रधान मंत्री अबुलफ़ज़ल का वध किया, एवं अपने राज्य का विस्तार कर बुंदेल-वंश की शक्ति संवर्द्धित की थी। इनके बनवाए बड़े-बड़े विशाल दुर्ग, मंदिर और महल एवं सरोवर बुंदेलखंड के वन्य प्रांत की शोभा और वीरता का निदर्शन कर रहे हैं। यह बड़े दानी थे। इन्होंने मथुरा में 'विश्रामघाट' पर ८१ मन स्वर्ण का तुला-दान दिया था। बुंदेलों के इतिहास में यह परम प्रतापी और प्रमुख वीरों में गिने जाते हैं। केशवदासजी ने इनका चरित्र लिखा है।—संपादक

डगर डरात डार देत डग देत डेरा,
बिबस बटोही यहै मारग निहारे तैं।
कहत 'बिहारी' चक्रवाक चकचौंध रहैं,
सरन सरोज रहैं संपुट सकारे तैं;
लाल कौ तौ ख्याल खोलें रहै मुख बाल अरी,
होत एतौ हाल घरी घूँघट उघारे तैं।

(उदारता)

श्रीसावँत तुव दान कौं अति ऐश्वर्य लखात;
जिहि जाचक जाँचौ, तिहै जाचक जाँचन जात।

❀ ❀ ❀

नृप सावँत के दान कौ समझ लेव यह हाल;
रबि के रथ चाहत छुवन कबि के भवन बिसाल।

निरुक्ति

काहु नाम कौ अर्थ कछु कल्पित कहै बनाय;
ताकौ कहत निरुक्ति हैं सुकबिन के समुदाय।

उदाहरण

गो, गोपीं, गोकुल तजो लई न सुधि सखि कोय;
मोहन जाकौ नाम है मोह कहाँ से होय।

❀ ❀ ❀

होत न बेर निकाम किए अरु आमल* कौ मद दूर करो है;
मान मजीरन कौ मजरो अरु गैंदन केर गरूर गरो है।
कंजकली की चली न 'बिहार' औ कुंभ निकाईहू कों निदरो है;
एतन की करनी कुचली तब से इनकौ कुच नाम परो है।

---

* आमल = आँवला।

प्रतिषेध

कौनहु बस्तु प्रसिद्ध कौ जहँ निषेध प्रगटाय ;
ताहि कहत प्रतिषेध हैं कवियन के समुदाय।

उदाहरण

इत राधे के मान-हित कीजिय अधिक उपाय ;
यह न लाल गज-फंद है तुरतै दियौ छुड़ाय।

❋ ❋ ❋

हे मृगराज सुनौ बिनती इत क्यों बिचरौ अभिमान बढ़ायकैं ;
याहि न बौ थल जानियौ जू, जहँ आए हौ गोली अनेकन खायकैं।
राज्य है ये नृप सावँत कौ, जिहि की जग में रहि कीरति छायकैं ;
वाकी अचूक बँदूक घलैं बचिहौ न कहौ यदि पंख लगायकैं।

विधि

सिद्धि अर्थ के कथन में पुनि साधै जिहि ठौर ;
अलंकार बिधि कहत हैं ताहि गुनी कर गौर।

उदाहरण

कृपासिंधु यह रावरौ बिलसत नाम बिसाल ;
कृपासिंधु हौ, तौ प्रभू मोपर होहु कृपाल।

❋ ❋ ❋

बिदित भानुकुल वान ताहि तन-मन सन तक्कह* ;
अति निसंक आतंक बीर कहु कबहुँ न जक्कह†।
दान हेत ह्वै उदित द्रव्य मनि फिर न बिचारै ;
ज्ञान बिबेक अनेक नेक-हित टेक न टारै।
कह कबि 'बिहार' कहँ लग कहहुँ जिहि उत्साह अनंत है ;
इन सब गुन महिं सावंत है तब ही तौ सावंत है।

---

* तक्कह = देखता है। † जक्कह = झिझकता है।

हेतु

प्रथम, हेतु जहँ हेतु के साथहि कार्य बताय ;
दूजौ, कारन कौं जहाँ कार्य रूप दरसाय ।

(१) उदाहरण

दरस करत रघुनाथ के पातक खोय अपार ;
परस करत प्रभु-चरन के दिय निषाद सब तार ।

❀ ❀ ❀

मनमोहन घनस्याम के किहि बिधि दर्शन हौंह ;
चितवत सैं चेरी भई एरी तेरी सौंह ।

(२) उदाहरण

अरब खरब लौं द्रव्य अरु चतुर पदारथ जोर ;
त्रिभुवन की संपति सबै कृष्ण-कृपा की कोर ।

❀ ❀ ❀

कोमल सुभाव भाव राखत प्रसन्नता कौ,
न्याय-भक्ति-ज्ञान कौं प्रमान से निबेरैं है ;
कहत 'बिहारी' सुनैं कबिता बिचार अर्थ,
सिद्ध कर देवैं ताहि फेर नहिं फेरैं है ।
आवत ही आदर समेत पास बैठौ कहैं,
हेरन हमेस ही कृपा की हर्ष हेरैं है ;
कासीसुर पंचम बुँदेल बीर सावँत कौ
मीठौ हँस बोलिबौ अमोल धन मेरैं है ।

उभयालंकार

जहाँ एक थल पाइए भूषन बहुसुख - सार ;
सो उभयालंकार है, सो है उभय प्रकार ।

एक नाम संसृष्टि है, दूजौ संकर जान ;
तिल-तंदुल-सम बिलग हों, सो संसृष्टि बखान।

संसृष्टि

सो संसृष्टि नाम भूषन की स्थिति त्रिबिध बखानौं ;
शब्द शब्द की, अर्थ अर्थ की, शब्द, अर्थ की मानौं।
तिल-तंदुल-सम बिलग रहत सो यह संसृष्टि बिचारी ;
उदाहरन तीनहु के दीजतु एकहि कबित मँझारी।

उदाहरण

बानन सें तीखे करें बात बड़ कानन सें,
पानन सें मानो चतुरानन सम्हारे हैं ;
रंग रतनारे त्यों किनारे लाल डोरि डारे
रूप रसवारे नैन-मीन-मद गारे हैं।
कहत 'बिहारी' देख उपमा न पावें कछू,
भए मतिमूढ़ कबी ढूँढ़-ढूँढ़ हारे हैं ;
देत चित चैन करें सौतिन अचैन ऐन,
स्याम-सुख-दैन नैन नागरी तिहारे हैं।

शब्दालंकार+शब्दालंकार

उक्त कवित्त के तृतीय वा चतुर्थ चरण में छेक और वृत्य अनुप्रास की संसृष्टि हुई है, ये दोनो शब्दालंकार हैं। इसी प्रकार और भी जानो।

अर्थालंकार+अर्थालंकार

पुनः द्वितीय चरण के पूरे दो चरणों में स्वभावोक्ति और प्रतीप की संसृष्टि हुई है, ये दोनो अर्थालंकार हैं। इसी प्रकार और भी जानो।

शब्दालंकार+अर्थालंकार

पुनः प्रथम चरण की प्रथम अर्धाली मे अनुप्रास और द्वितीय में उत्प्रेक्षा की संसृष्टि हुई है, इसमें एक शब्दालंकार और दूसरा अर्थालंकार है। कवित्त-मात्र में संसृष्टि अलंकार सब तिल-तंदुल के न्याय से अलग-अलग स्वतन्त्र रूप से स्थित है। इसी प्रकार और भी जानो। अब आगे संकर कहते हैं, जिसमे पय-पानी की रीति से अलंकारो का मिश्रण होता है।

संकर

पय-पानी को राति सों मिलैं परस्पर आन ;
संकर ताहि बखानहीं, चार भेद तिहि जान।

जहाँ दूध और पानी के समान एक से अधिक अलंकार मिले होते हैं, और उनकी भिन्नता ज्ञात नहीं होती, वहाँ संकर होता है। इसके रूप चार प्रकार से कहे गए हैं—

(१) अंगांगीभाव संकर

एक भाव अंगांगी कहिए वृक्ष-बीज के न्याय ;
बिना एक के एक न होवै समझौ सब कबिराय।

(२) समप्राधान्य संकर

दूजौ समप्राधान्य बखानौं दिन-दिनपति के न्याय ;
साथहिं प्रगटै साथ दिखावै, समझौ अर्थ बनाय।

(३) संदेह संकर

तीजौ है संदेह जहाँ पर दो भूषन छबि जोय ;
याहि कहैं कै याहि कहैं, यह निश्चय ठीक न होय।

(४) एकवाचकानुप्रवेश संकर

एकवाचकानुप्रवेश है नर-हरि-न्याय अछेद ;
एक वाक्य दो भूषन भासें चौथौ संकर भेद।

उदाहरण

(एक ही कवित्त में)

तीर जमुना के केलि कुंजन कन्हाई संग
भर अनुराग फाग मोहिनी मचाई है ;
कहत 'बिहारी' छबि छाके दोउ थाके तहाँ
चंदन की चौकी सजे सुखमा सुहाई है।
छैल की छपाई गाल गोरी के गुलाल लाल
दूर सें दिखाई देति नीकी छटा छाई है ;

रूप की सनद तापै राग कौ सुरंग दैकैं
नृपति अनंग मानो मुहर लगाई है।

इस कवित्त के चतुर्थ चरण मे नायिका के कपोल-स्थल पर गुलाल लगा हुआ है, वह मानो रूप रूपी सनद पर राग रूपी रंग से अनंग ने मुहर लगाई है। यहाँ मानो-शब्द से जो उत्प्रेक्षा है, वह अंगी है, और रूप-सनद, राग-रंग, ये अभेद रूपक उसके अंग हैं, अतएव यह अंगांगीभाव संकर है। इसी प्रकार और भी जानो। पुनः इसमें र, र, रंग, अनंग के अनुप्रास और उत्प्रेक्षा एक ही महा-वाक्य मे दिन और सूर्य के समान साथ ही प्रकट होते हैं, अत इस अर्थ से यह समप्राधान्य संकर है। इसी प्रकार और भ जानो। पुन कवित्त के द्वितीय चरण में नृसिंहाकार न्याय से (एक ही शरीर मे नर और सिंहवत्) एक ही पद 'छबि छाके दोउ' मे पारस्परिक व्यवहार से अन्योन्य और छकार के योग से अनुप्रास भासते है, अतः इसे एकवाचकानुप्रवेश संकर जानो। इसी प्रकार और भी जानो। संदेह संकर इसमे ठीक घटित नहीं होता था, इससे उसका उदाहरण अलग लिख देते हैं।

उदाहरण

बैठी संग सखीन के बोल सकी कछु नाहिं;
पिया-गमन सुन ससिमुखी दुखी भई मन माहिं।

यहाँ पिय गमन कारण विद्यमान है, और दुखी होना कार्य विद्यमान है। कारण से कार्य हुआ, यह चपलातिशयोक्ति है, और कारण हुआ और कार्य हुआ, इन दोनो के वर्णन से प्रथम हेतु है। दोनो की झलक पर्याप्त है, किंतु दोनो में यह निश्चय नहीं होता कि कौन मानना चाहिए, अतः यह संदेह संकर है। इसी प्रकार और भी जानो। विस्तार-भय से हमने अधिक उदाहरण नहीं दिए। बहुत अलंकार ऐसे हैं, जो लक्षणों और उदाहरणों से एक से प्रतीत होते हैं। यद्यपि उनमें अंतर अवश्य है, तथापि वह अंतर अत्यंत सूक्ष्म होने से वे समान ही प्रतीत होते हैं। अलंकारों के कई एक ग्रंथों में इनके अंतर बतलाए गए हैं। 'भारती-भूषण' और 'अलंकार-मंजूषा' ग्रंथ जो एक नए ढंग की शैली से लिखे गए हैं, उनमें यथाविधि सदृश अलंकारों के भ्रम भली भाँति निवारण किए गए हैं। उन्हीं के मत से सहमत होकर हम यहाँ विद्यार्थियों के लिये उन अलंकारों का अंतर लिखे देते हैं, जो समझने में समान प्रतीत होते हैं। प्रत्येक अंतर-निर्णय के अंत में विस्तृत अंतर की परिभाषा को अत्यत सूक्ष्म करके केवल सूत्र-रूप एक-एक दोहा लिखे देते हैं, जिसे कंठस्थ रखने से विद्यार्थियों को उनके अंतर की स्मृति ठीक बनी रहेगी।

विद्यार्थियों के बोधार्थ सदृश अलंकारों का अंतर

रूपक-वाचकधर्मलुप्ता का अंतर

चंद्रमुख—मृगदृग—ये शब्द रूपक अलंकार से अलकृत हैं, क्योंकि यहाँ चंद्र और मुख दोनो को एक ही रूप दे दिया है। तथा मृग और दृग इन दोनो को एक ही रूप कर दिया है। और, यदि चंद्रमुख न कहकर चंद्रमुखी तथा मृगदृग न कहकर मृगलोचनी कहा जाय, तो यह वाचकधर्मलुप्ता हो जायगी, क्योंकि इनमे उपमान और उपमेय भिन्न हो गए, और रूपक में अभिन्न रहते हैं, इसलिये विद्यार्थियों को चाहिए कि इन दोनो के अंतर को ठीक समझ लें, और निम्न-लिखित दोहे को कंठस्थ कर लें—

वर्ण्यावर्ण्य अभेद जहँ तहँ रूपक पहचान ;
वर्ण्यावर्ण्य पृथक जहाँ तहँ उपमा परमान।

कैतवापह्नुति—द्वितीय पर्यायोक्ति

इन दोनो अलंकारों में मिस करके कथन करना कहा है, किंतु अंतर इतना है कि कैतवापह्नुति में मिस, व्याज, बहाना इत्यादि वाचक लाना आवश्यक है; और पर्यायोक्ति में मिस व्याजादि शब्दों का कथन अनिवार्य नहीं है। बिना व्याजादि के भी इसका कथन होता है। किसी विशेष इच्छित कार्य-साधन के लिये ऐसा कुछ युक्त कथन किया जाता है कि जिसे केवल मिस या छल कहा जा सकता है। इसमें मिस, छल या इसके पर्यायवाची शब्द लाने की आवश्यकता नहीं होती। यथा—

कैतवापह्नुति

तीच्छन तियन कटाच्छ मिस बरसत मनमथ-बान ;

द्वितीय पर्यायोक्ति

तुम दोऊ बैठौ यहाँ जाति अन्हावन ताल।

मिस का कथन दोनो का है, किंतु पहला मिस वाचक-सहित है, तथा दूसरा वाचक-रहित है। इसकी स्मृति के लिये निम्न-लिखित दोहा कंठस्थ कर लेना चाहिए—

मिसवाचक सें कह जहाँ कैत्वापह्नुति जान ;
बिन मिस बरनन है जहाँ पर्यायोक्ति बखान।

तीसरी तुल्ययोगिता—दूसरा उल्लेख

तीसरी तुल्ययोगिता उसे कहते हैं, जहाँ एक मे बहुतों की समता आरोपित की जाय, और दूसरे उल्लेख में बहुतों के गुण पृथक्-पृथक् एक में बतलाए जायँ। यथा—

ती० तु०—यही राजा इंद्र है, यही कर्ण, यही युधिष्ठिर।

दू० उ०—यह राजा धनुर्धारियों में अर्जुन, तेज में रवि, वचनों में बृहस्पति। निम्न-लिखित दोहे को कंठ रखिए—

तुल्ययोगिता तीसरी इक में बहु आरोप ;
बहु के बहु गुन एक में सो उल्लेख अलोप।

पहली तथा दूसरी तुल्ययोगिता और दीपक का अंतर

दोनो तुल्ययोगिता मे या तो एक उपमानों का एक धर्म कहा जायगा, या एक उपमेयों का एक धर्म कहा जायगा। और जहाँ उपमेय, उपमान दोनो का एक धर्म कहा जायगा, वहाँ दीपक होगा। इनमें यही अंतर है। यथा—

प० तु०—सूर्योदय से विद्यार्थी, पथिक, द्विज आनंदित होते हैं। यहाँ बहुत से उपमेयों का एक धर्म 'आनंदित' होना कहा गया।

दू० तु०—सुकुमारता देखकर कुंद, कमल, गुलाब कठोर भासते हैं। यहाँ कुंदादि उपमानों का एक धर्म 'कठोर' कहा गया।

दीपक—गज मद सों, नृप तेज सों सोभा लहत बनाय ;

यहाँ उपमान-उपमेय दोनो का एक धर्म 'शोभा' कहा गया। इस दोहे को याद कर लो—

तुल्ययोगिता इक द्वितिय धर्म एक कौ एक ;
दो कौ एकहि धर्म जहँ सो दीपक की टेक।

लाट, यमक, दीपकावृत्ति का अंतर

लाटानुप्रास, यमक और दीपकावृत्ति, इन तीनो में शब्दों की आवृत्ति होती हैं; परंतु भेद यह है कि लाट, यमक में सब प्रकार के अक्रिय शब्दों का आवर्तन होता है, और वह केवल कर्णप्रिय होता है, तथा दीपकावृत्ति के शब्दावर्तन में अर्थ का चमत्कार रहता है, और इसमें जितने शब्द आते हैं, वे क्रियावाची होते हैं। निम्न-लिखित दोहे को याद कर लो—

लाट यमक के सब्द में अक्रिय पद की दौर ;
सब्द दीपकावृत्ति के क्रियबाची सिरमौर।

प्रतिवस्तूपमा—दृष्टांत

प्रतिवस्तूपमा में दोनो वाक्यों का एक ही धर्म होता है, परंतु वे धर्म के एकार्थ-वाची शब्द अलग-अलग आरोपित किए जाते हैं, और दृष्टांत में बिंब-प्रतिबिंब भाव के अनुसार उपमेय वाक्य तथा उपमान वाक्य, दोनो होते हैं, परंतु दोनो वाक्यों के धर्म भिन्न-भिन्न होते हैं। यथा—

प्रतिवस्तूपमा—मूर्ख को गुण देने से औगुण हो जाता है, सर्प को दूध पिलाने

से विष हो जाता है। यहाँ धर्म के शब्द भिन्न हैं, परंतु दोनो वाक्यों का 'प्रभाव बदल जाना' धर्म एक है।

दृष्टांत—मूर्ख गुण का आदर नहीं करता, सुंदरी कुछ भी करे, नपुंसक मोहित नहीं होता। यहाँ दोनो वाक्य बिंब-प्रतिबिंब भाव के हैं, और आदर न करना, मोहित न होना, दोनो धर्म भिन्न भिन्न हैं। इसकी स्मृति के लिये नीचे-लिखा दोहा याद रक्खो—

प्रतिबस्तुप जुग बाक्य में धर्म एक पद भिन्न ;
भिन्न धर्म दृष्टांत में प्रतिबिंबित अवछिन्न।

अप्रस्तुत प्रशंसा, समासोक्ति, पर्यायोक्ति

अप्रस्तुत प्रशंसा में अप्रस्तुत वर्णन में से प्रस्तुत का ज्ञान होता है, और समासोक्ति इसका उलटा है, अर्थात् प्रस्तुत वर्णन में से अप्रस्तुत का ज्ञान होता है, और पर्यायोक्ति मे प्रस्तुत वर्णन ही होता है, किंतु वह सीधा न कहकर कुछ घुमा-फिराकर चतुराई से वर्णन किया जाता है। इसमे अप्रस्तुत का किंचिन्मात्र भी आभास नहीं होता है, इसके लिये यह दोहा याद कर लो—

समासोक्ति, अप्रस्तु यह हैं दोनो बिपरीत ;
प्रस्तुत पर्यायोक्ति में है चतुरइ की रीत।

विरोधाभास—दूसरा विषम

इन दोनो में विरोधी कथन होता है, किंतु विरोधाभास में विरोध-वर्णन केवल आभास-मात्र होता है, और द्वितीय विषम का विरोध कारण-कार्य के संबंध से वर्णन किया जाता है। नीचे लिखा दोहा कंठस्थ कर लो—

हेतु-कार्य संबंध से बिषम बिरोध प्रकास ;
बहुरि बिरोधाभास में है बिरोध आभास।

काव्यलिंग—अर्थांतरन्यास

काव्यलिंग मे कही हुई बात के समर्थन करने की आवश्यकता रहती है। यदि उसे समर्थन न करें, तो पाठक को शंका रहती है। काव्यलिंग में समर्थन कारण-रूप होता है, और अर्थांतरन्यास मे जो समर्थन किया जाता है, वह कारण-रूप नहीं किया जाता, वरन् वह एक प्रकार का उदाहरण-रूप दिया जाता है। इसके अंतर की स्मृति रखने को निम्न-लिखित दोहा याद रखना चाहिए—

काव्यलिंग में हेतु-जुत बाक्य समर्थन जोय ;
बाक्य दृढ़ाई हेतु बिन अर्थांतर मैं होय।

प्रस्तुतांकुर—गूढ़ोक्ति

प्रस्तुतांकुर में कहनेवाले का अभिप्राय उससे होता है, जिसके प्रति कुछ बात

कही जाय, और यदि दूसरा सुने, तो उसको भी लाभ पहुँचे, और गूढ़ोक्ति में जिससे बात कही जाती है, उससे कहनेवाले का तात्पर्य कुछ भी नहीं। उसको जो दूसरा सुन रहा, उससे तात्पर्य है, और उसमें कुछ गूढ़ रहस्य का तात्पर्य होता है। इसके लिये यह दोहा याद रक्खो—

जासन कह अरु जो सुनै दुउ हित अंकुर जोत;
गूढ़उक्ति वह हित कहत जासें मतलब होत।

अन्योक्ति—गूढ़ोक्ति

अन्योक्ती गूढ़ोक्ति में अंतर इतौ अवस्य;
वामैं उपदेसक कथन यामैं गूढ़ रहस्य।

शुद्धापह्नुति—पर्यस्तापह्नुति

शुद्धापह्नुति मे सत्य वस्तु को छिपाकर उसके स्थान में उसी के समान किसी दूसरी वस्तु को आरोपित करना है, और पर्यस्तापह्नुति में एक वस्तु का गुण दूसरी वस्तु में कल्पित किया जाता है। निम्न-लिखित दोहा कंठस्थ कर लो—

सुद्धावस्तु छिपाय सब करै और आरोप;
औरै कौ गुन और में पर्यस्ता कर चोंप।

तृतीय सम—तृतीय प्रहर्षण

इन दोनो अलंकारों में कार्य की सिद्धि कही गई है, किंतु तृतीय सम मे जब उसके लिये उद्यम किया जाता है, तब सिद्धि होती है, और तृतीय प्रहर्षण में यत्न अपूर्ण में ही सिद्धि हो जाती है। यथा—

तृ० सम—हरि ढूँढ़न ब्रज में गई, पाए प्रिय घनस्याम;
तृ० प्र०—चली लली हरि मिलन हित, बीच मिले ब्रजराज।

दोनो के अंतर की स्मृति के लिये निम्न-लिखित दोहा याद करो—

तीजौ सम उद्यम कियें पावहि बस्तु निदान;
जतन करत हीं होय सिधि तृतिय प्रहर्षन जान।

चित्रकाव्य—तृतीय श्रेणी

यामैं ध्वनि अरु व्यंग कौ चमत्कार नहिं होय;
तासें काव्य निकृष्ट यह भाषत सब कबि लोय।
चित्रकाव्य याकौं कहत, भूषन चित्र बिबेक;
है अच्छर की चातुरी याके भेद अनेक।

एक निरोष्ठ कहावही, एक अमत्त बखान ;
एकाक्षर, उभयाक्षरी, तृतिय चतुर पहचान ।
अंतर बाहिर लापिका प्रश्नोत्तर महँ जान ;
पुनि प्रहेलिका, गतागत अरु अनुलोम प्रमान ।
चरन गुप्त, गोमूत्रिका, द्विपदी, त्रिपदी लेख ;
चक्रबंध, धनुबंध अरु भद्रसर्बतो देख ।
कमलबंध, असिबंध अरु धेनुबंध, तरुबंध ;
औरौ बंध अनेक हैं, जानत रचित प्रबंध ।
कछु कछु कहे नवीन इत निज मति के अनुसार ;
है बिचित्र गति चित्र की, को कहि पावै पार ।
अर्धबिंदु नहिं लेखिए अरु बिसर्ग अनुस्वार ;
गुरु लघु होय न होय कछु यामें नहीं बिचार ।
अंध बधिर क्रम रसरहित स्वर गुन होय न होय ;
द्विगन गनागन आदि कौ यामें दोष न कोय ।
ब व ज य र ल ड ल श ष स की यामें समता जान ;
इनमें भेद न मानिए कोबिद करत बखान ।
ध्वनि प्रधान जहँ काव्य है, सो उत्तम ठहराय ;
गुनीभूत जहँ व्यंग है, सो मध्यम मन भाय ।
जामें रचना बरन की करत चित्र बन जाय ;
व्यंग भाव भूषन नहीं, भूषन चित्र कहाय ।
केवल रचना बरन की ऊपर से दिखरात ;
अक्षर अर्थ निकारिए, तब सब गुन दरसात ।
हैं स्वतंत्र याके नियम जानत चतुर सुजान ;
चित्रकाव्य यह काव्य कौ रूप तीसरो जान ।

सर्वतोभद्र-गति
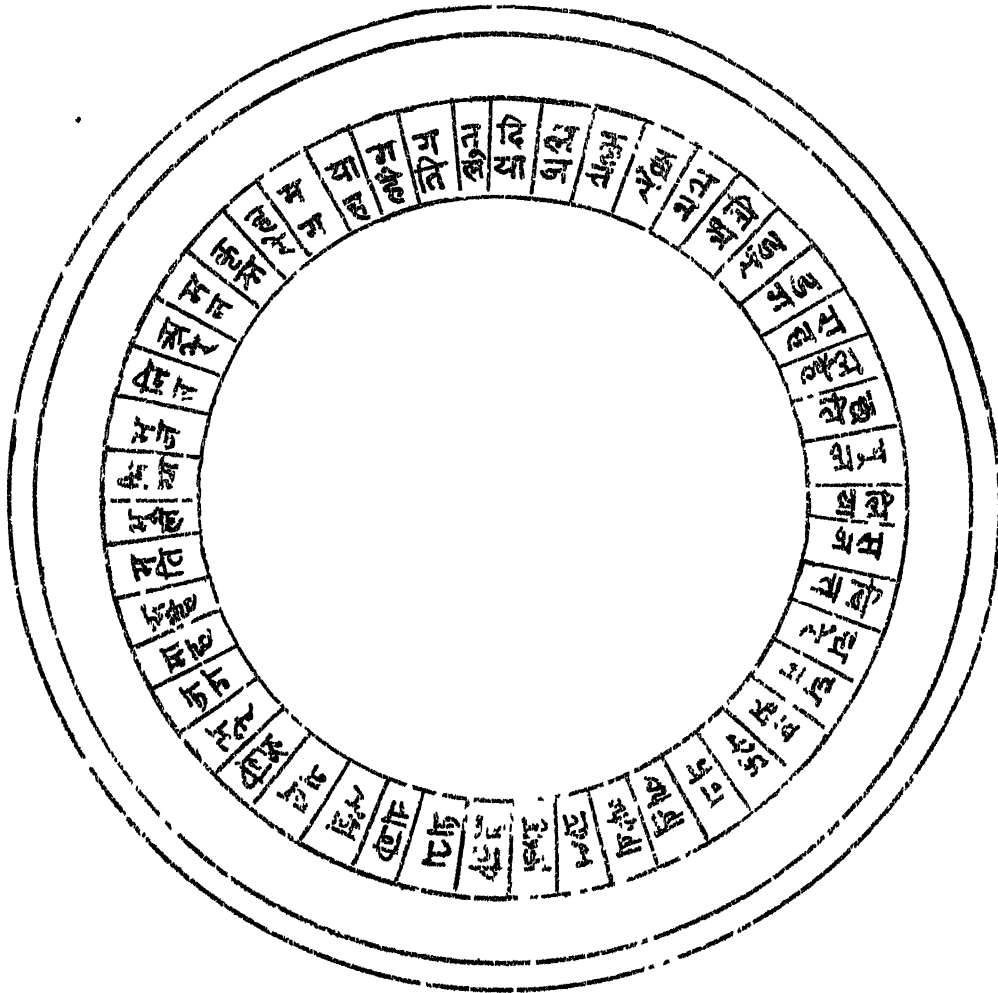
इसमें "प्रग बाहु" से लेकर "कृष्ण हरे" तक बाँचने से पूरा सवैया बन जाता है। इसी प्रकार जहाँ से चाहे सम सम अक्षर के प्रयोग से पढ़ता जाय, बराबर पूरा सवैया बनता जायगा। इसी प्रकार एक सवैया में ४८ सवैया बन [illegible]

कमलबंध

इसमे "राग-राग" से लेकर "जोग" पर्यंत पढ़ने से दोहा बनता है। इसमें कोष का अच्छर 'ग' है। इसमें प्रत्येक पँखुरी के प्रत्येक अच्छर को योग कर पढ़ो।

धनुषबंध
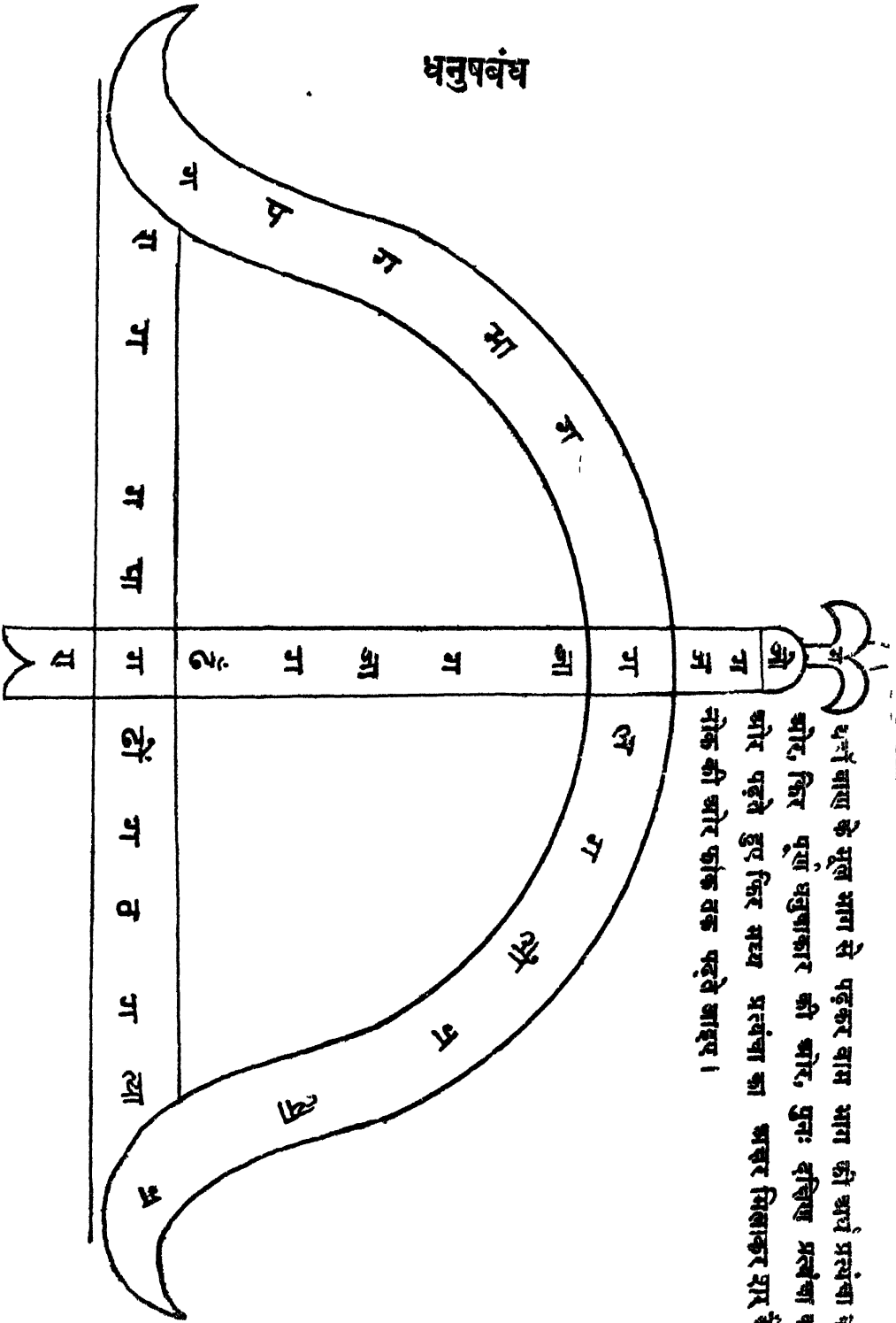
यहाँ बाण के मूल भाग से पढ़कर वाम भाग की अर्ध प्रत्यंचा की ओर, फिर पूर्ण धनुषाकार की ओर, पुनः दक्षिण प्रत्यंचा की ओर पढ़ते हुए फिर मध्य प्रत्यंचा का अक्षर मिलाकर शर की नोक की ओर फाक तक पढ़ते आइए।

कामधनुबंध

मग	याह	गहै	गति	तूल	दिया	लज्ज	कृत्त	धरे	तन	जिम्म	डरे
डग	राह	लहै	कति	मूल	लिया	सज्ज	चित्त	धरे	धन	प्रम्म	फरे
नग	चाह	चहै	रति	भूल	तिया	तज्ज	वित्त	रवरे	धन	निम्म	भरे
जग	माह	महै	मति	भूल	मिया	मज्ज	नित्त	खरे	मन	कृष्ण	हरे

इसमें मग से लेकर हरे पर्यंत एक सवैया होता है। फिर जिस कोष्ठ से पाठक सवैया पढ़ने की कामना करे, उसी कोष्ठ से उसकी कामना पूरी हो सकती है। इसी से इसको कामधेनु कहते हैं।

चामरबंध
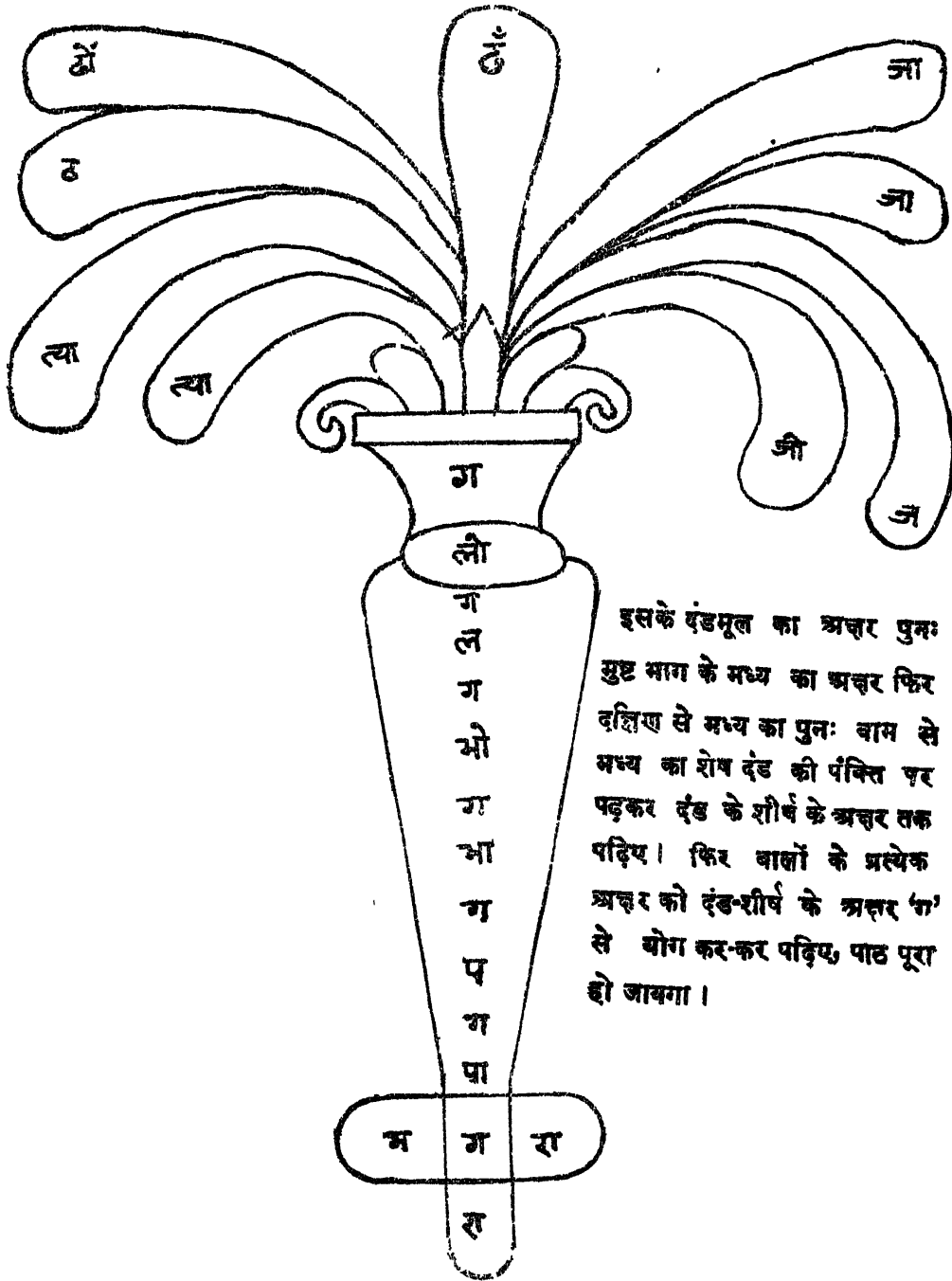
इसके दंडमूल का अक्षर पुनः मुष्ट भाग के मध्य का अक्षर फिर दक्षिण से मध्य का पुनः वाम से मध्य का शेष दंड की पंक्ति पर पढ़कर दंड के शीर्ष के अक्षर तक पढ़िए। फिर बालों के प्रत्येक अक्षर को दंड-शीर्ष के अक्षर 'ग' से योग कर-कर पढ़िए, पाठ पूरा हो जायगा।

असि बंध
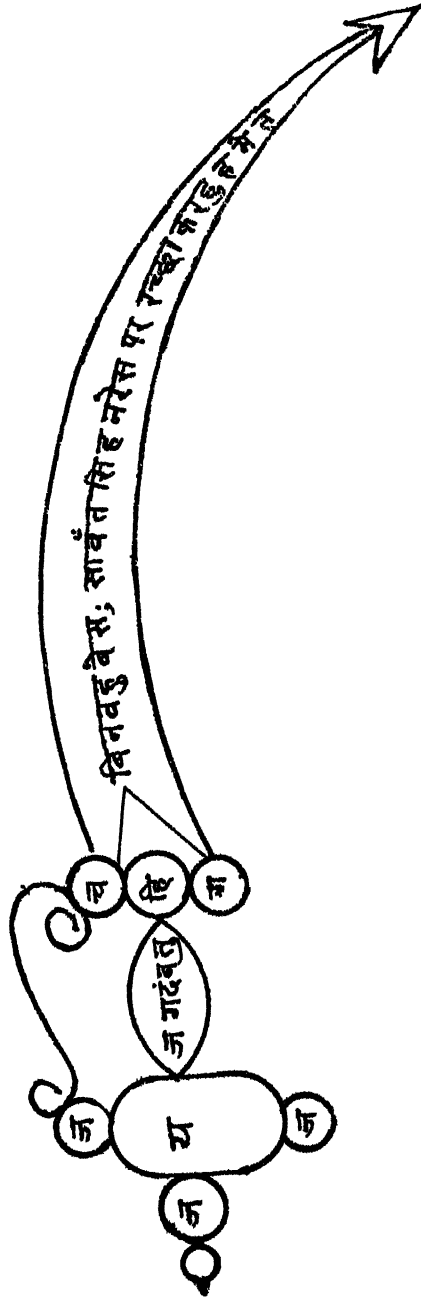
अग्न्यस्त्रबंध
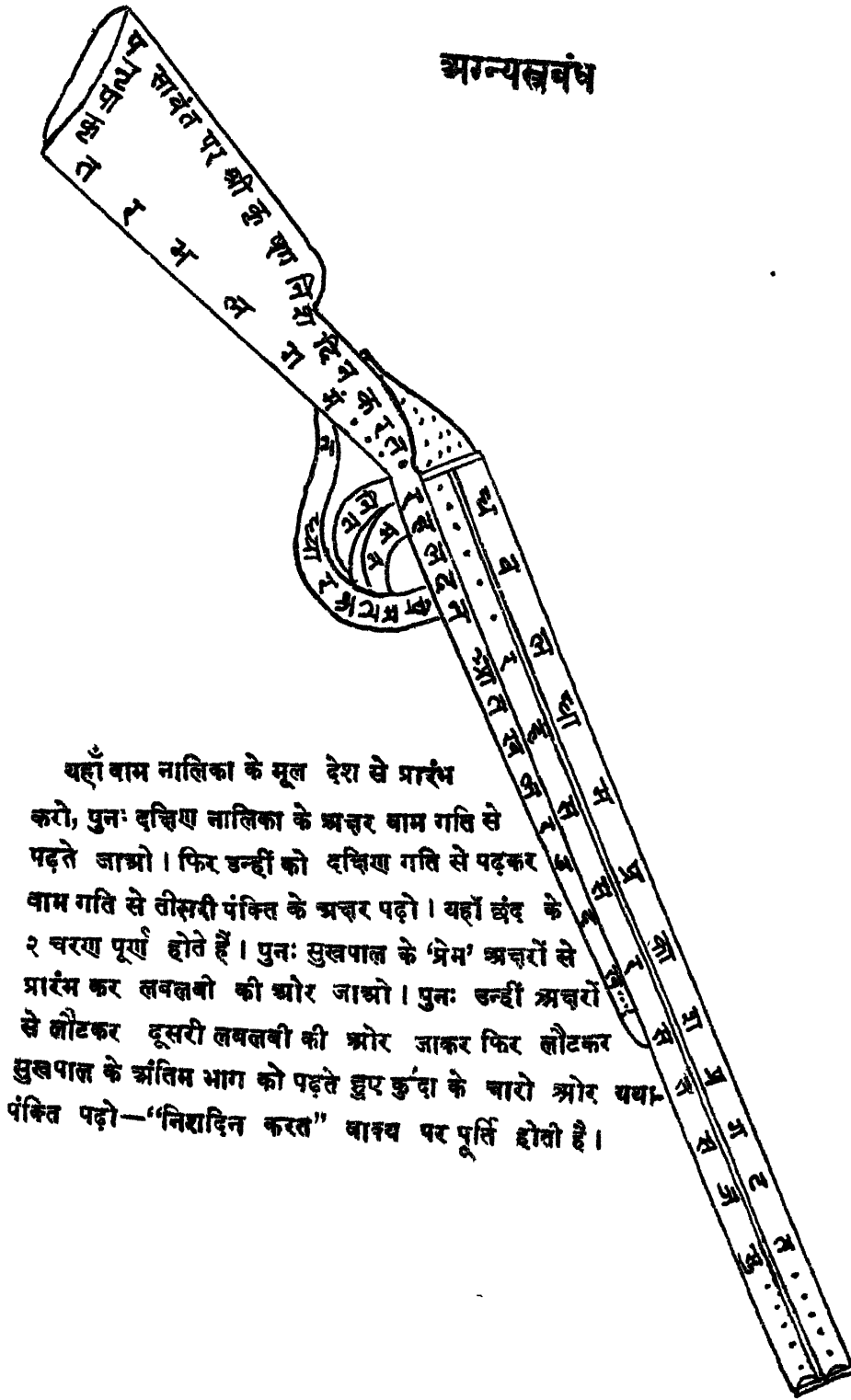
यहाँ वाम नालिका के मूल देश से प्रारंभ करो, पुनः दक्षिण नालिका के अक्षर वाम गति से पढ़ते जाओ। फिर उन्हीं को दक्षिण गति से पढ़कर वाम गति से तीसरी पंक्ति के अक्षर पढ़ो। यहाँ छंद के २ चरण पूर्ण होते हैं। पुनः सुखपाल के 'प्रेम' अक्षरों से प्रारंभ कर लवलबो की ओर जाओ। पुनः उन्हीं अक्षरों से लौटकर दूसरी लवलबी की ओर जाकर फिर लौटकर सुखपाल के अंतिम भाग को पढ़ते हुए कुंदा के चारो ओर यथा-पंक्ति पढ़ो—"निशदिन करत" वाक्य पर पूर्ति होती है।

व्याघ्रबंध

यहाँ पुच्छ के निम्न भाग (अति सबल) से प्रारंभ कर पुनः चरणों के अक्षर सीधे तथा उल्टे अविलोम रीति से पढ़कर अंत में पुच्छ-मूल के समीप "प्रबल है" पर पूर्ति करो। इसमें हरिगीतिका छंद निकलता है।

भूषन अर्थ समस्त अरु कविता चित्र प्रसंग ;
भई सिंधु साहित्य की द्वादस पूर्ण तरंग ।

स्वस्ति श्रीमन्महाराजाधिराज श्रीकाशीश्वर ग्रहनिवार पंचम विंध्येलवंशावतंस श्रीमत्सवाई महाराजा साहब भारतधर्मेंदु सर सावंतसिंहजू देव बहादुर के० सी० आई० ई० बिजावर-नरेशस्य कृपापात्र ब्रह्मभट्ट-वंशोद्भव कविभूषण कविराज पं० बिहारीलालविरचिते साहित्य-सागरे अर्थालंकारउत्तरार्द्धचित्रादिकाव्यप्रकरण-वर्णनो नाम द्वादशस्तरंगः ।

भूमिका

(अध्यात्म नायिका-भेद)

साहित्यिक संसार में श्रृंगार-रस सर्वशिरोमणि माना गया है, और प्रत्येक भाषा के महाकवियो ने कुछ-न-कुछ इस पर कहा है, परंतु हिंदी-साहित्य में जितनी परा काष्ठा पर यह रस पहुँचा हुआ है, उतना किसी में भी नहीं। सृष्टि की रचना में इंसान अशरफ़ुलमख़लूक़ात माना गया है, और इसके गुण-रूप सृष्टिकर्ता के कर-कमल की विचित्र रचना मानी गई है, इसमें भी सुंदरी Delight of the world अर्थात् संसार-सुख कहलाती है। इसी कारण हिंदी-साहित्य के तत्त्ववेत्ताओं ने इसके रूप गुण, हाव-भावों का वर्णन बड़ी विचित्र रीति से किया है, और ऐसा क्रम बाँध दिया है, जो किसी भी साहित्य में नहीं मिलता। इस नई रोशनी के समय में नई सभ्यता का उदय हुआ है, और इस रस के मर्मज्ञ न होने के कारण नायिका-भेद को अधिकांश मनुष्य नीची निगाह से देखने लगे हैं, और मजाज़ मानियों ही की सतह पर घूमकर हक़ीकी की हक़ीकत तक नहीं पहुँचते, जैसे ख्वाजा हाफ़िज़ कैसे फ़िसानुलग़ैब का कलाम पढ़कर यह नतीजा निकालें कि यह शराबख्वारी, ज़ाहिरी हुस्न और इश्क़ के रस का प्याला है। यह नहीं समझते कि यह प्रेम और भक्ति का सरोवर है, और उसकी लहरें लहरा रही हैं। वह खुद फ़रमाते हैं—"मादर पियाला अक्स रुखे-यार दीदयेम; ऐ बेख़बर ज़े लज्ज़तेशुर बेमुदाम मा।" अर्थात् हमने प्याले में अपने प्रियवर के मुखड़े का प्रतिबिंब देखा है; ऐ अनभिज्ञ, तू हमारी शराब पीने की लज्ज़त को नहीं समझ सकता। इसी तरह महात्मा कबीर की वाणी स्थूल जगत् के रूपक में सूक्ष्म संसार के अभ्यतर रहस्य को वर्णन कर रही है। कहते हैं—"आई-गई मैं कइयक बार; मैंने चीन्हें न सैयाँ कौन उनहार।" इसका स्थूल अर्थ तो स्पष्ट ही है, जिसे प्राकृतिक मनुष्य सुनकर विषयानंद में लीन हो जाते हैं, परंतु वास्तविक अर्थ इसका यह है कि इस जीवात्मा का जगत् में वारंवार आवागमन हुआ, परतु अब तक यह न पहचान सकी कि मेरा प्राणपति अर्थात् परमात्मा कैसा है। इसी तरह "कर ले श्रृंगार चतुर अलबेली, साजन के घर जाना होगा।" और भी "समझ-समझ पग धरियो री बहिनी, देस बिराने जाना होगा ; सास बिरानी, ननँद बिरानी, ससुरे कंत बिराना होगा," इत्यादि विचित्र संकेत कर रहे हैं। जो वाणी सुनकर रसज्ञ ब्रह्मानंद की ओर झुकते हैं, इसके विपरीत सुंदरी-सौदर्य का वर्णन सुनते समय विषय-रस-लीन लोगों के हृदय में अपवित्र भाव उत्पन्न होने लगते हैं। यही बात नायिका-भेद के संबंध में है। ईश्वरीय कला जो अपना विकास हाव, भाव और विलास के रूप में दिखला रही है, और जिसकी शान में मौलाना रूम फ़रमाते हैं—"आँ ख़यालाते कि दामेऔलियास्त ; अक्स महरूमान कुस्ताने-खुदास्त।" इसका भावार्थ यह है कि सारा संसार ख्याल के जाल में फँसा हुआ है, और औलिया लोग भी संसार के भीतर हैं, परंतु वे औरों की तरह स्थूल विचारो में नहीं फँसे, किंतु सूक्ष्म जगत् जो परमात्मा का एक तरोताज़ा चमन है, और उसमें जो अप्सरा-रूपी चद्रवदनी विचर रही है, उनकी प्रतिमा की प्रभा स्थूल जगत् की सुंदरियो पर पड़ती है, और इसी प्रतिबिंब के जाल में औलिया मोहित

हैं। किसी उर्दू-शायर ने क्या खूब कहा है—"जी चाहता है सनअ़ते सानए पै हूँ निसार ; बुत को बिठाके सामने यादे-खुदा करूँ।" परम पूज्य स्वामी विवेकानंदजी ने अपनी पुस्तक 'दी रिलीज़न ऑफ़् दी लव' में इस संसार को 'दी वर्ल्ड ऑफ़् सजेशन' कहा है, और यह बतलाया है कि यह स्थूल जगत् सूक्ष्म जगत् का भास है, और इसके बिना दिव्य लोक का आभास हृदय में नहीं आ सकता। इसी बुनियाद पर नायिका-भेद की नींव पड़ी है। नायिका-भेद के निस्वत असभ्य विचार व अपवित्र भाव उदय होते हुए देखकर हमारे प्रिय सखा कविवर बिहारीलालजी कविराज ने आध्यात्मिक रहस्य प्रकट किया है। इस घट-रूपी रंगभूमि में जिस प्रकार आत्मपुरुष नायक के साथ अंतःकरण की वृत्ति अपनी केलि-कला दिखला रही है, उसका वर्णन आप यों करते हैं कि स्थूल जगत् में जिस प्रकार स्वभाव के तीन भेद माने जाते हैं, उसी तरह सूक्ष्म दिव्य लोक में भी वृत्ति-रूपी नायिका के तीन भेद हो गए हैं, जिन्हें सतवृत्ति, रजवृत्ति, तमवृत्ति-रूपी स्वकीया, परकीया और गणिका कहना चाहिए। सतवृत्ति जब तक आत्मपुरुष से अविरल प्रेम रखती है, तब तक वह स्वकीया-स्वरूप है, और जब उसका स्वभाव रजोगुण मे परिणत हो जाता है और विविध देवों में से किसी एक देव के रूप-गुण पर लुभाकर अपने को आकर्षित करती है, तो रजोगुण के कारण एक प्रकार की परकीया बन जाती है। अब आगे क़दम रखने पर, जब इसको अपनी आशाएँ पूर्ण करने की इच्छा होती है, और धन इत्यादि के लोभ में पड़कर अपनी सतवृत्ति को विलीन कर देती है, तो भूत, प्रेतादिक की उपासिका बन जाती है, और तमोगुण के कारण एक प्रकार की गणिका कहलाती है।

अब आप अवस्था-भेद से इनके रूप दिखलाते हैं। इन वृत्तियों मे से किसी एक में जब युवावस्था का आरंभ होकर अपने गुणों का उदय-रूप मे झलकाने लगती है, और आग़ाज़-नौजवानी का जोश दिखलाती है, तो मुग्धा कहलाती है, जब अपने गुणों के वेग में सरमस्त होकर थम जाती है, तो मध्या कहलाती है, और जब अपने रस में निमग्न होकर बेक़ाबू हो जाती तथा अपने को न सँभालकर मज़े लूटने लगती है, तो प्रौढ़ा कहलाती है। अब तीन वृत्तियो में से सतवृत्ति-रूपी सुंदरी के वेग का दिग्दर्शन कराते हैं। इसी के आधार पर शेष दोनो का आभास हो जायगा। पर्णब्रह्म-रूपी पति के मुख-चंद्र का स्मरण कर जब इसके हृदय-सागर में स्नेह की तरल तरंगें उमँगती हैं, तो सारे संसार को तृणवत् बहाकर उसी के प्रेम में निमग्न हो जाती है। परंतु अंग-संग न होने के कारण किंचित् द्वंद्व अर्थात् शुष्क रह जाती है। यह अगोचर, अदृष्ट रहस्य है, इसलिये अनुभवी पुरुष ही इसका रस लूट सकते हैं। अब विस्तार-भय से प्रत्येक नायिका का रहस्य न बतलाकर अष्टनायिका का वर्णन करते हैं।

हृदय-थल में प्रेम का अंकुर अंकुरित होते ही नाना प्रकार के भावों का जो गुलज़ार खिल जाता है, उसे मनोराज्य कहते हैं। प्राणप्रीतम के आगमन की उत्कंठा कर जो तैयारियाँ करती है, उसे वासकसज्जा कहते हैं। हृदय-मंदिर को षट् विकारों से रहित कर स्वच्छ बनाती है, फिर दंभ-तम को दूर कर सात्त्विकी दीपक जलाती है। सुशीलता, लज्जा, उदारता, अनन्यता आदि अलंकारों से अलंकृत हो प्राणप्रीतम के सम्मिलन की चाह करती है, उस सुभाग और सुहाग के समय का कुछ वर्णन नहीं हो सकता। उसका मज़ा मिलनेवाले ही जानते हैं। "पिया-मिलन की आज तयारी ; दुलहिन माँग सँवारत सारी।"

"ख़ुशा वक़्ते व ख़ुर्रम रोजगारे ; कि यारे बर ख़ुरद अज़ वस्ल यारे।" इस इश्तियाक़ और अभिलाषा का चित्र खींचकर कवि ने क्या विचित्र झलक दिखलाई है ! इस अगम सम्मिलन-सुख का और क्या संकेत हो सकता है।

इतनी इंतज़ारी के बाद, विलंब के कारण, जो बेक़रारी पैदा होती है, वह जिसके दिल पर गुज़र रही है, वही अनुभव कर सकता है। इसी उकताहट के कारण वह उत्कंठिता नायिका बन जाती है।

फिर बेताबी के कारण शौक़ की चाबी भरकर चल खड़ी होती है, और आत्मपति की ओर बढ़ती है। इस सूरत में अभिसारिका बन जाती है।

अपने संकेत या लक्ष्य पर पहुँचकर जब प्राणपति का भास नहीं होता, तो निराश होकर विप्रलब्ध होने से विप्रलब्धा बन जाती है।

कुछ समय व्यतीत होने पर दिल को सँभालकर फिर प्रयत्न करती है, और उस ज्योति की झीनी झलक देखकर खंडित आभास देखती है, तब वह खंडिता हो जाती है। और, सम्मिलन में विक्षेप आ जाने के कारण वह रस-रीति-प्रीति घट जाती है, और प्रतीति हट जाती है। फिर पिया से विमुख होकर वह वृत्ति-नायिका जगत् की ओर झुक पड़ती है। परस्पर प्रेम का व्यवहार है, इसने उससे छिन के लिये मुख मोड़ा ; उसने इससे उससे भी अधिक दिन के लिये रिश्ता तोड़ा। फिर इस तकरार और रार का विचार कर बहुत बेक़रार होती है, और फिर दर्शन की अत्यंत लालसा करती है। तथा बिन पानी की मछली और धन खोए हुए रंक की तरह सिर धुन धुनकर पछताती है, तब वह वंचित वृत्ति कलह के अंत में पछताने के कारण कलहांतरिता कहलाती है।

प्रेम का प्याला पी जाने और उसके मज़े से वाक़िफ़ होने के सबब उसका जी कहीं नहीं लगता। यद्यपि सत्ता व्यवहार में विचर रही है, पर वह हमेशा उसी की सुरत करती है। जैसे स्थूल जगत् में नायिका निराश होकर सखियों से संयोग की सहायता लेती है, उसी तरह यह वृत्ति-नायिका गुरु-चरण की शरण ग्रहण करती है। तब तक इस भ्रमण में वह प्रिय रमण दूरदेशी-सा प्रतीत होने लगता है, और यह वृत्ति उस समय प्रोषितपतिका बन जाती है।

फिर समय बीतने पर गुरु-ज्ञान-प्रकाश से अज्ञान की अवधि बीत जाती है, और अवधि बीतने पर फिर सम्मिलन के सगुन होने लगते हैं, तथा अखंड आत्मप्रकाश के दर्शन कर, प्राणप्रीतम के आगमन की प्रतीति कर वह फिर आगतपतिका बन जाती है। जिसका सुख अकथनीय है। फिर तो अपने हाव-भावों से रिझाकर, अलौकिक प्रीति दिखलाकर, अपने लक्ष्य-रूपी पति को स्ववश कर स्वाधीनपतिका कहलाने लगती है। सगुण स्वरूप मे यह प्राणप्रीतम को नाना प्रकार नाच नचाती है, और निर्गुण हो, तो लक्ष्य को कभी विलग नहीं होने देती। इस प्रकार प्रीतम की स्ववशता के कारण स्वाधीनपतिका कहलाती है।

इस तरह आत्मलक्ष्य कर अथवा प्रभु की प्राप्ति कर फिर कभी बिछुड़न नहीं होती, और विविध कर्म करते हुए भी अपने लक्ष्य से नही हटती है, न कुछ प्रीति घटती है। जीवन्मुक्त वृत्तिवालों का यही रहस्य है, और यही जीवात्मा का उद्देश्य और लक्ष्य है। आध्यात्मिक नायिका-भेद के अंत में आपने निर्वाण निरूपण भी कहा है, क्योंकि मुमुक्षु

को स्वरूप-ज्ञान और ज्ञान की सप्तभूमिका जानने की अत्यत आवश्यकता है । वाह ! क्या इने-गिने शब्दों में एक विस्तीर्ण रहस्य झलका दिया है । यह अपनी शैली का नवीन नायिका-भेद है । इस नई रोशनी के समय में इसकी बहुत आवश्यकता थी । इतना छोटा पैंफ़्लेट होने पर भी कूजे में सागर भर दिया है ! कमाल किया है । इसके अतिरिक्त इन कविवर के रचे हुए और भी प्रशसनीय ग्र थ हैं । कविवर कालिदासजी के मेघदूत और शृ गार तिलक आदि का अनुपम, सरस कवित्तों और छप्पयों में अनुवाद किया है, जिसका कुछ अश 'भ्रमर' में प्रकाशित हुआ है । आपका मौलिक ग्र ंथ साहित्य-सागर है, जो श्री १०८ श्रीमान् सवाई महाराजा साहब श्रीश्रीश्रीसावतसिंहजू देव बहादुर के० सी० आई० ई० बिजावर-नरेश के आज्ञानुसार लिखा गया है ।

कविराजजी से हमारा गहरा स्नेह—एक प्राण दो देह है । इनके सत्संग में गहरे रंग छनते हैं । अलौकिक आनद का स्वाद मिलता रहता है । साहित्य-सुमन का गुलज़ार खिलता रहता है । यह हमारे लौकिक और पारलौकिक आनंद के सहायक हैं, जीवन-बहार के सुखदायक हैं । परमात्मा से हमारी यही प्रार्थना है कि इनके ग्र थ शीघ्र प्रकाशित होकर साहित्यानुरागी आनंद लूटें ।

देवीप्रसाद 'प्रीतम'
बिजावर

* त्रयोदश तरंग *

अथ आध्यात्मिक नायिका-भेद

दोहा

प्रनवहुँ प्रथम अखंड अज राम सर्बसुख-सार ;
गुरु अभिबंदन कर कथहुँ अध्यात्मिक सिंगार ।

चांद्रायण

जिते जगत में दृस्य अनेकन रूप हैं ;
जिते बिबिध बिस्तार अपार अनूप हैं ।
जिते रूप अरु नाम चरित गुन ज्ञान हैं ;
जिते कथन स्रुति सास्त्र प्रबंध पुरान हैं ।
तिन सबमें त्रय भाँति भेद ज्ञानात्मकं ;
अधिभौतिक अधिदैव और अध्यात्मकं ।
याके भेद अगाध, न सब पहिचानिहैं ;
जिनके हिये बिबेक, नेक सोइ जानिहैं ।
त्रेता में श्रीराम मनुज - तन धार कैं ;
किए मानुषी कार्य चरित्र सम्हार कैं ।
ते चरित्र रचि संभु - उमा - संबाद में ;
अध्यात्मिक में कथे सु इष्ट-प्रसाद में ।
राम-जन्म से और राज्य-अभिषेक लौं ;
घट ही में सब घटित करे सत बेष लौं ।

सार तत्त्व को रहस दिव्य दरसाव हैं ;
लक्ष्मण प्रति श्रीराम यही समझाव हैं।
कृष्ण सच्चिदानंद चरित बहु कीन हैं ;
राचे रास - बिहार सुनित्य नवीन हैं।
यह चरित्र रस - केलि कृष्ण को ऐस ही ;
जो जैसों करि लखै, ताहि पुनि तैस ही।
जो अधिभौतिक लखौ, तो काम - बिकास है ;
जो अधिदैविक लखौ, तो भक्त-प्रकास है।
जो अध्यात्मिक लखौ, तो ब्रह्म - बिलास है ;
जामें जितौ अभास, तितौ तेहि भास है।
अध्यात्मिक में कृष्ण - आत्म पहिचानिए ;
गोपी-गन गुन - बृत्ति भेद बहु मानिए।
नायक आतम वही स्वामि पति जानिए ;
सुघर नायिका प्रिया बृत्ति मन मानिए।
बृत्ति-भेद से बिबिध नायिका - भेद हैं ;
समुझहु लच्छन नाम सुबुध गुन बेद हैं।

दोहा

जिनकौं स्वकिया, परकिया, गनिका कहत सिंगार ;
ते सुचि अंतःकरन की बृत्ति तीन निरधार।

तत्र प्रथम स्वकीया-वृत्ति

स्वकिया है सत बृत्ति सुद्ध जिहि रीति है ;
आत्मपुरुष प्रति प्रेम वही प्रति प्रीति है।

सात्त्विकी वृत्ति अपना संबंध केवल आत्मा ब्रह्म से रखती है। इसी सात्त्विक ज्ञान कहते हैं। यथा—

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ;
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्।

सब बृत्तिन सुख-रूप सबन सिरमौर है ;
आतम ब्रह्म सिवाय न जानत और है।

सोरठा

उदाहरन निरधार करत ग्रंथ बढ़िहै अधिक ;
सूछम कहत प्रकार, बहुत समझ लेहैं सुबुध।

द्वितीय परकीया-वृत्ति

द्वितिय बृत्ति सत की गुन पद्धति त्याग कै ;
वाहि तुच्छ कर रमत रजोगुन राग कै।
ज्यों पंथी पथ छोड़ कुमारग गहत है ;
चलत-चलत स्रम सहत सांति नहिं लहत है।
त्यों यह आतम ब्रह्म स्वामि तज टेक सों ;
प्रीति करत यक्षादि काहु सुर एक सों।

जब सत से रजोगुण की वृत्ति विकसित होती है, तब सतोगुण, तमोगुण, दोनो को दबाकर अपना उत्कृष्ट प्रभाव दर्शित करती है। यथा—

रजस्तमश्चाभिभूयसत्त्वं भवति भारत !
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्वं रजस्तथा।
यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः।
(श्री० भ० गी०)

सात्विक वृत्तिवाले उच्च देवों की, राजस-वृत्तिवाले यक्षों, कुबेर तथा राक्षसों की पूजा करते है।

वाही सें चह रमन प्रेम-रस-रंग में ;
राखन प्रीति अगाध लेत सुख संग में।
परकीया कर तत्त्व वास्तविक है यही ;
समझत वे तत्त्वज्ञ बुद्धि जिनकी सही।

तृतीय गणिका-वृत्ति

तृतिय बृत्ति गनिका यह कपट सुभाव है ;
रचना रचत बिचित्र अनेकन भाव है।

करत मोह बस बेग सुबुद्धि हिरात है ;
उभय लोक जिहि हानि-लाभ नहिं ज्ञात है ।
भूत-प्रेत इन माहिं सनेह बढ़ाय कैं ;
पूजत अपनो आस जगत भरमाय कैं ।*
यह गनिका तम-बृत्ति अधम है याहि सें ;
जो याके सँग रमत रमत यह जाहि सें ।
ताकी तबहिं अवश्य अधोगति † होति है ;
कहत सकल बुधिवान लखी जिन जोति है ।
यह गनिका को तत्त्व वास्तविक है यही ;
समुझत वे तत्त्वज्ञ, बुद्धि जिनकी सही ।

अथ अवस्था-बृत्ति

मुग्धा अरु मध्या बहुरि प्रौढ़ा परम प्रबीन ;
सब बृत्तिन की जानिए यहै अवस्था तीन ।

छंद

बृत्ति उदय जब होत, होति मुग्धा तबै ;
थिरता जब कछु लहत, तबहि मध्या फबै ।
जब निज कर्मन मध्य कुसलता लहति है ;
तब प्रौढ़ा कौ रूप बृत्ति वह बनति है ।

---

* तामस- बृत्तिवाले भूत, प्रेत, पिशाचादिक की ही सेवा करते हैं, क्योंकि यह बृत्ति इसी ओर को झुकाती है । यथा—

प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः ।
(श्री० भ० गी०)

† सतवृत्ति से ऊर्ध्वलोक अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है, और रजवृत्ति से मध्यलोक की प्राप्ति होती है, एवं तमोगुण की अधम वृत्ति से अधोगति की प्राप्ति होती है । यथा—

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ;
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधोगच्छन्ति तामसाः ।
(श्री० भ० गी०)

सत्त-बृत्ति जब प्रौढ़ रूप कौं धरति है;
तबही पूरन ब्रह्म भाव कौं भरति है।
तिहि अवसर पर होत जगत अध्यास है;
पर निर्द्वंद* न होत द्वंद कौ भास है।
जे कछु अनुभव करत, तिन्हैं यह ज्ञान है;
प्रौढ़ा कौ सुख अल्प तिया का जान है।

दोहा

यहि बिधि जेतीं नायिका, तिती बृत्ति निरधार;
पृथक-पृथक को कहि सकत, यह थल अगम अपार।
मुख्य भेद तासें कहत, इनही से सब भेद;
भेद तत्त्व वे जानिहैं, जे जानें स्रुति-बेद।

अथ वृत्त्यष्टअवस्था

अष्ट अवस्था बृत्ति को कहियत यों समुझाय;
कथत सूक्ष्म समुझत बहुत, जिनहिं लक्ष अधिकाय।

छंद

अंतःकरन पवित्र बृत्ति जब चहत है;
काम क्रोध मद मोह बिकारन तजत है।

---

* जब केवल सत्य प्रकाश ही आत्मा से रह जाता है, तब 'मैं असंग सच्चिदानंद परिपूर्ण निरवयव एकरस हूँ' इस प्रक.र का चित्त में समाधान होता है, अर्थात् समाधि-रूप होता है, परंतु मैं 'यह हूँ', यह भाव रहने से निर्द्वंद्व समाधि नहीं होती है, क्योंकि ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय इत्यादि त्रिपुटी का भाव रहता है।

समाधि दो प्रकार की है—(१) सविकल्प और (२) निर्विकल्प। निर्विकल्प त्रिपुटी-रहित होती है और सविकल्प त्रिपुटी-सहित होती है—ध्याता ध्यान ध्येय, प्रमाता प्रमाण प्रमेय, ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय, इसको त्रिपुटी कहते हैं। सविकल्प समाधि में जो उक्त चिंतवन होता है, उस वृत्ति का नाम रसास्वाद है। इस रसास्वाद को अनुभवी पुरुष जानते हैं।

सतगुन-दीप-प्रकास दंभ-तम मेट कैं ;
लैंन चहत प्रिय-दर्स-पर्स सुख भेंट कें ।
भूषन सत्त्व* समस्त धार चित चाह सें ;
रहत प्रिया लौ लाय अधिक उत्साह सें ।
चौग्रिद सम्पति दिव्य दिव्य दरसाय कैं ;
को कहि बरनै पार रही छबि छाय कैं ।
जेतौ फिर आनंद बृत्ति हिय ज्ञात है ;
सो वह धन-धन समय कह्यो नहिं जात है ।
यों सब साज राजाय बुद्धि थिर करत है ;
मिलै मोहिं पिय आज चित्त यों चहत है ।
जो मुमुक्षु - पद हेत लेत अधिकार है ;
यहि बिधि ताकी बृत्ति होत जग सार है ।
वासकसय्या तत्त्व वास्तविक है यही ;
समुझत वे तत्त्वज्ञ, बुद्धि जिनकी सही ।
आत्मलक्ष-पति-प्राप्ति होत नाहीं जबै ;
सो बृत्ती उकताति होति उत्का तबै ।
तदपि न होवै प्राप्ति सर्बसुख-सारिका ;
लक्ष ओर चल जाति होति अभिसारिका ।

---

* जो सात्त्विक वृत्ति की धारणा करने की सामग्री है, वही इसका भूषणादि धारण करना है। यों तो सात्त्विक वृत्ति की धृति (धारणा) बहुत प्रकार की है, किन्तु तिनमें मुख्य यह है। यथा—

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः ;
योगेनाऽव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ।
(श्री० भ० गी०)

अर्थात् जिस अनन्य धृति करके योग के द्वारा मन, प्राण और इंद्रिय इनकी क्रियाओं को धारण किया जाता है, उसे सात्त्विक धारणा कहते हैं ।

पहुँचत लक्ष समीप भास नहिं होवही ;
बिप्रलब्ध तब होत बृथा बुधि खोवही।
पुनि बीते कछु काल लखत वह जोत है ;
खंडित पावत लक्ष खंडिता होत है।
लक्ष पूर्ववत लखो नहीं अनरीति है ;
रही न पुनि वह प्रीति न वह परतीति है।
गई जहाँ परतीति प्रीति हूँ जात है ;
फिर पिय सें ह्वै बिमुख जगत भरमात है।
याने वासें कियौ फेर एक बार कौ ;
वाने वासे कियो सु कोस हजार कौ।
फिर पीछू पछतात कीन्ह कह रार ने ;
तलफत ब्याकुल फिरत दरस के कारने।
ज्यों दरिद्र पथ माहिं परी निधि पावही ;
काहू बिधि खो जाय ध्वनित पछतावही।
ज्यों मछली जल कूद थलह बिलगात है ;
पुनि जल भेंटन हेत अधिक तड़फात है।
त्यों यह बंचित बृत्ति पतिहि पछतात है ;
कलहंतरिता होत गुरुन कौं ज्ञात है।
कलहंतरिता लखहु बास्तविक है यही ;
जानत वे तत्त्वज्ञ, बुद्धि जिनकी सही।

दोहा

जबहिं बृत्ति वह लक्ष से बिबस बिमुख ह्वै जात ;
तब सच्चा ब्यवहार में परतन मन पतियात।

पुनि ज्यों तिय प्रिय सखी की लै सहाय सुख लेत ;
त्यों यह सत गुरु-चरन में बृत्ति बढ़ावत हेत।
तब लगि ताकौ लच्च वह दूर देस चलि जात ;
अनभ्यास के कारने अति अंतर अधिकात।
मन बृत्ती चंचल अधिक थिर न रहत कछु पास ;
याके निज बस करन कौं है उपाय अभ्यास।❀

छंद

दूर देस चलि जात लच्च नहिं मिलत है ;
प्रोषितपतिका-रूप बृत्ति तब बनत है।
जब गुरु ज्ञान लखाय पंथ निरवान की ;
तब वह बीतै पूर्ण अवधि अज्ञान की।
बहुरि लच्च कौ उदय होत सुखसार है ;
दरसत आतमप्रकास अखंड अपार है।
आवत लच्च समच्च उच्च सुख लहति है ;
आगतपतिका-रूप बृत्ति तब बनति है।
फिर वाकौ सुख वही अनुभवी लै सकै ;
ज्यों गूँगौ गुड़ खाय, स्वाद नहिं कै सकै।
जब वह आतमलच्च स्वबस निज करत है ;
स्वाधिनपतिका-रूपबृत्ति तब बनत है।

❀ अंतःकरण की वृत्ति संकल्प-विकल्प अर्थात् मन इनकी स्थिरता केवल अभ्यास करने ही से होती है, अन्यथा नहीं। मन को अत्यंत चंचल जानकर इसके रोकने (निग्रह करने) का उपाय अर्जुन श्रीकृष्णचंद्रजी से पूछते हैं, तब श्रीभगवान् कहते हैं—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ;
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।
(श्री० भ० गी०)

अर्थात् हे महाबाहो! यह मन निःसंदेह चंचल और कठिनता से वश में होनेवाला है, तथापि यह अभ्यास और वैराग्य से वश में हो जाता है।

वृत्ति सगुन की होय तो प्रभु बस* रहत है ;
जस-जस चाहह भक्त प्रभु तस करत है ।
भक्तन इच्छा पाय सगुन बपु धरत है ;
भक्तन कौ सुख पाय चरित बहु करत है ।
निर्गुनसेवी होय तो नित्य प्रकास है ;
लच्छन छोड़त साथ रहै नित भास है ।
स्वाधिनपतिका तत्त्व बास्तविक है यही ;
जानत वे तत्त्वज्ञ, बुद्धि जिनकी सही ।
जो इमि आतम लक्ष माहिं भरपूर है ;
सो प्रभु कों नहिं दूर, न वहि प्रभु दूर है ।
चाहै जग व्यवहार रचै चित चीन है ;
लिप्त न वामें होत ब्रह्म-लवलीन है ।†

---

* श्रीभगवान् भक्तों के वश रहते हैं, यह बात अनेक शास्त्र, पुराण, रामायणादि से सिद्ध है । जब भक्तजन अधर्म आदि से पीड़ित होते हैं, और अपने प्रभु का स्मरण करते हैं, तब भगवान् अत्यंत अधीर हो भक्तों के क्लेश हरण करने को प्रकट शरीर धारण करते हैं । रामायण में स्वयं श्रीशिवजी का वचन है—

चौपाई—जब जब होय धरम की हानी ; बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ।
करहिं अनीति जाय नहिं बरनी ; सीदहिं विप्र धेनु सुर धरनी ।
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा ; हरहिं कृपानिधि सज्जन-पीरा ।

भक्तों की इच्छा को भगवान् कभी निष्फल नहीं जाने देते, जिस समय अपने दीन दासों की आर्तवाणी की किंचित् झनक प्रभु के श्रवण में पड़ती है, उस समय भक्त-वत्सल प्रभु को प्रत्यक्ष होने का वरवश प्रण सुनाना ही पड़ता है । यथा—

जान समय सुर भूमि मुनि बचन समेत सनेह ;
गगन गिरा गंभीर भइ हरनि सोक संदेह ।
जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा ; तुमहिं लागि धरिहौं नरभेसा ।
(तु० कृ०)

† यदि आत्मा विषे आत्म-बुद्धि रख कर मनुष्य चाहै जौन सा व्यावहारिक कार्य करे, परंतु कर्ता स्वयं न बने, तो उसका कोई भी किया हुआ कर्म उसे नहीं लगता है, क्योंकि वह सर्व कर्मों से आप अकर्ता को भिन्न समझ रहा है । यही सिद्धांत गीता का है । यथा—

नैव किंचित् करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ;
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन् ।

सब्दादिक रस रंग संग जोगै सबै ;
इंद्रिन जेते बिषय तिते भोगै सबै ।
चाह जोगिया रंग रंग पट ले वही ;
चाह रेसमी बस्त्र बिबिध तन सेवही ।
चाहे तुलसी-माल कंठ बिच धारही ;
चाहे सुबरन-गुंज गरे बिच डारही ।
देखै बोलै चलै रहै चह जैसहू ,
कर्म न लागत वाहि करै पुनि कैसहू ।
वह जग माहीं रहत सदा अबिछिन्न है ;
ज्यों पुरहिन-दल जल रह जल सें भिन्न है ।
याको जीवनमोक्ष नाम सुखदाय है ;
कहिहौं आगे भेद जो अनुभव आय है ।
सूक्ष्म नायिका-भेद कह्यौ अधियज्ञ में ;
घटित कियौ क्रम-सहित क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ में ।
आयौ अनुभव माहिं कहो सो सार है ;
बिना गुरू करतार लहो किन पार है ।
तत्त्वज्ञानी बिमल बात मम धारियौ ;
बालक-सी हठ समझ न दोष बिचारियौ ।
यह अध्यात्मिक अर्थ नायिका-भेद कौ ;
दरसायौ निज लक्ष लक्ष यह बेद कौ ।
यहै नायिका-भेद कथन छबि छायगो ;
जो समझै अरु सुनै ब्रह्म-सुख पायगो ।

प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ;
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ।

अर्थात् इंद्रियों के समस्त कर्म करता हुआ भी तत्वज्ञानी यों निश्चय किए रहता है कि मैं कुछ नहीं करता ।

भेद नायिका-तत्त्व बास्तविक है यही ;
समुझहिं वे तत्त्वज्ञ, बुद्धि जिनकी सही।

दोहा

जो बाँचै अरु जो सुनै, जो समुझै सुखकंद ;
ताको जय गुरुदेव की जयति सच्चिदानंद।
अध्यात्मिक सृंगार महिं भेद नायिका अंग ;
भई सिंधु साहित्य की पूरन त्रिदस तरंग।

स्वस्ति श्रीमन्महाराजाधिराज श्रीकाशीश्वर ग्रहनिवार पंचम विंध्येलवंशावतंस श्रीमत्सवाई महाराजा साहब भारतधर्मेंदु सर सावंतसिंहजू देव बहादुर के० सी० आई० ई० बिजावरनरेशास्य कृपापात्र ब्रह्मभट्ट-वंशोद्भव कविभूषण कविराज पं० बिहारीलालविरचिते साहित्य-सागरे आध्यात्मिकनायिका-भेदवेदांत-प्रकरण वर्णनो नाम त्रयोदशस्तरंगः।

---

* चतुर्दश तरंग *

निर्वाण-निरूपण

जय-जय आतमब्रह्म परमेश्वर निगुन निरंजनरूपा ;
अलख अनादि अखंड एकरस अज अव्यक्त अनूपा ।
अक्षर अचल अपार अगोचर अगम अकथ अबिनासी ;
परमातम परमेस परात्पर पूरन प्रगट प्रकासी ।
जज-जय सगुन रूपनारायन रामकृष्ण सुखदानी ;
रावन-कंस-दनुज-कुल-घालक पालक सुर-मुनि-ज्ञानी ।
जय-जय मुख्य बिभूति कृष्ण की गीता बिमल बखानी ;
जय सप्तर्षि जयति जग-तीरथ जयति ब्रह्मबिद ज्ञानी ।
जय-जय ईश्वररूप प्रजा के ओसावंत सवाई ;
राज्य बिजावर भूप धर्मधर प्रगट पूर्ण प्रभुताई ।
जिन मुहिं सदा समीप राखकर प्रेम प्रबोध कियौ है ;
ज्ञान लक्ष अभ्यास करन कौं समय स्वतंत्र दियौ है ।
सार तत्त्व तासैं कछु भाषत, जो अनुभव में आयौ ;
याकौ भेद अपार मुनीसन छंद-प्रबंधन गायौ ।
सूत्र ब्रह्मप्रतिपादक आदिक सब महिं दर्शित होई ;
यद्यपि कहि न सकत कोउ तद्यपि बिन कहँ रहा न कोई ।
तासें हौं कछु कहत लक्ष लै निज अनुभव कौ ज्ञाना ;
नित्य 'बिहार' तत्त्व जो समुझै पावै पद निर्वाना ।

दोहा

जौ लगि अपने रूप से करी नहीं पहिचान ;
तौ लग ताकौ है कहा जप-तप-पूजन-ज्ञान ।
केतिक जप-पूजन करै, केतिक भापै ज्ञान ;
बिना रूप-पहिचान के मिटै न आवन-जान ।

स्वरूप-ज्ञान विधि

(सार छंद)

यथा जौहरी बिबिध मनिन में साँची मनि कर धारै ;
यथा पारखी द्रब्य परखकर खोटी-खरी निकारै ।
यथा हंस पय पानि मिले में पय पय गहिवै खासा ;
तैसहि यह सरीर इंद्रिन में हम की करै तलासा ।
हम हैं कौन कहाँ हम रहियत हम हैं रंक कि भूपा ;
हममें कौन बस्तु है हमकी हमकौं कौन सुरूपा ।
जो हम बुद्धि देह प्रति राखौ, तौ को स्वप्न बिमोहै ;
जो हम बुद्धि स्वप्न प्रति राखौ, तो सुषुप्ति में कोहै ।
जो सुषुप्ति में जोई स्वप्न में, है जाग्रत् में सोई ;
जो हम कौ यों करै निबेरो सोहम् सोहम् होई ।
हम की यों पहिचान भई फिर भयौ रूप कौ ज्ञाना ;
नित्य 'बिहार' तत्त्व जो समभै, पावै पद निर्वाना ।
कछुक समय एकांत बास कर रमै आपने रूपा ;
होवै यों अभ्यास करे से जीवन-मोक्ष-सुरूपा ।
जीवन-मुक्ति, विदेह-मुक्ति, यह भेद मुक्ति द्वै गाए ;
तिनके भेद पृथक कहियत हैं ज्ञान-पंथ जो पाए ।

उत्तम, मध्यम, अधम, तीन बिधि जीवन-मोक्ष प्रकारा;
कियौ बुधन बेदांत सास्त्र बिच निर्णय बिबिध बिचारा।
जीवन माहिँ ब्रह्म आतमरस रहै एकरस सानों;
छिन-भर कहूँ बिलग नहिं होवै आपुन भान भुलानों।
निर्बिकल्प ह्वै जाय समाधी सहज स्वभाविक जब हीं;
उत्तम जीवन-मोक्ष, रूप यह बुध-जन जानों तब हीं।
कर बहु यतन बहिरबृत्तिन कौ भीतर करै निरोधा;
देखै निज सुरूप, सो मध्यम जीवन-मुक्ति प्रबोधा।
सुख, दुख, धर्म देह के लखकर हर्ष-बिषादह माने;
वामें कबहुँ लिप्त ना होवै, भिन्न आतमा जाने।
तीजी जीवन मोक्ष कही यह आतमज्ञान-बिधाना;
सब जोगन जोगेस जोग यहि जानें परम सुजाना।
दूजौ भेद बिदेह-मुक्ति यह, जहँ उपाधि नहिँ कोई;
कहँ लगि कहैं अनंत पंथ यह, याकौ अंत न होई।
साधन में कछु और रूप है, सिद्ध रूप कछु आना;
नित्य 'बिहार' तत्त्व जो समुझै, पावै पद निर्वाना।

दोहा

जेतो जग निर्मित कियौ आतमज्ञान - बिधान;
सात भूमिका तासु की समुझौ मुख्य प्रधान।

पहली भूमिका

प्रात स्नान सौच सुचि सुंदर अरु आचार-बिचारा;
गंगा आदि तीर्थ कौ सेवन धार्मिक पंथ प्रचारा।
राम कृष्ण शिव आदि देव की मूर्ति प्रतिष्ठा कीवौ;
भाव-भक्ति पूजन बिधि साधन इष्ट-चरन चित दीवौ।

यथाशक्ति यज्ञादिक करिवौ सात्त्विक नियम निभैवौ ;
द्विजन अतिथि अभ्यागत इनको अन्न-बस्त्र कर दैवौ ।
यहि प्रकार के कर्म और बहु यथासमय अनुहारा ;
श्रद्धा-शक्ति-सनेह राखकर साधै सबहि प्रकारा ।
लक्षण प्रथम भूमिका कौ यह बरनौं सूक्ष्म बिधाना ;
नित्य 'बिहार' तत्त्व जो समुझै, पावै पद निर्वाना ।

दूसरी भूमिका

सगुन रूप परमेश्वर प्रभु के चरन-कमल चित दैवौ ;
लीला ललित चरित सुन सुनके अति आनंद मनैवौ ।
प्रभु की कथा सुनत पुलकित तन परम प्रेम अधिकाई ;
प्रभु के भक्त शुद्ध साधन सन मिलै प्रीति प्रगटाई ।
बिन प्रभु-कृपा मिलैं नहिँ साधू यह मन राख बिचारा ;
मन, बानी, शरीर अरु धन से करै बिबिध सतकारा ।

मन-सत्कार

जो कहुँ कबहुँ साधु घर आवैं, मन आनंद मनावै ;
पुनि माने बड़ भाग आपनो मन-सतकार कहावै ।

वाणी-सत्कार

भले आए महराज, आइए धन बड़ भाग हमारा ;
आए गृह पबित्र मम करिवे यों बानी - सतकारा ।

शारीरिक सत्कार

हाथ जोर आज्ञा-पालन में रहै निछल बुधिवंता ;
सेवा आदि टहल कौ करिवौ करै शुद्ध लख संता ।

शारीरिक सत्कार यहै लख धन सैं धन सतकारा ;
यों सतकार सत्य साधन हित भाखै चार प्रकारा।
लक्षण द्वितीय भूमिका कौ यह बरनौं सूक्ष्म बिधाना ;
नित्य 'बिहार' तत्त्व जो समुझै, पावै पद निर्वाना।

तीसरी भूमिका

जेते जग पदार्थ कहियत हैं देखै-सुनै बिभागा ;
तिन सबमें अनित्यता लखकर प्रगट करै बैरागा।
ज्यों बिराग श्रीरामचंद्र कौ कह्यौ बसिष्ठ अनूपा ;
जिन समान बैभव में को है, को पुनि ब्रह्म सुरूपा।
साधन अंतःकरनचतुष्टय पूरन ज्ञान प्रमाना ;
स्रवन करै बेदांत सास्त्र कौ मनन करै धर ध्याना।
लक्षण तृतिय भूमिका कौ यह बरनौं सूक्ष्म बिधाना ;
नित्य 'बिहार' तत्त्व जो समुझै पावै पद निर्वाना।

चौथी भूमिका

मृग-तृष्णा में नीर-भ्रांतिवत जब समझो संसारा ;
निज स्वरूप में लक्ष लगो है जहँ आनंद अपारा।
चतुर्भूमिका के साधन कौ उदाहरन इमि जानो ;
जैसें नर समुद्र-तट ठाड़ो दृश्य लखै मनमानो।
जल की ओर जबै वह देखै, जल-ही-जल दिखरावै ;
जब पुनि लखै लौटकर पोछूँ गृह-बृक्षादि लखावै।
त्यों वह निज स्वरूप जब देखै रमैं ब्रह्म सुखजोगै ;
अरु देखै ब्यवहार जगत जब,तब सुख दुख सब भोगै।
पर ब्यवहार-कर्म सब जग के भुँजे अन्नवत वाही ;
भुँजो अन्न ज्यों भूख मिटावै, जमिबे कौ वह नाहीं।

त्यों वाको ब्यवहार-कर्म है सुख-दुख हेतु प्रमानी ;
पुनर्जन्म कौ हेतु नहीं है जानहु पंडित ज्ञानी ।
लच्छन चतुरभूमिका* कौ यह बरनो सूच्छम बिधाना ;
नित्य 'बिहार' तत्त्व जो समझै, पावै पद निर्वाना ।

पाँचवीं छठी, सातवीं भूमिका

चतुरभूमिका के लच्छन में नर समुद्र-तट मानो ;
पचईं में आधे सरीर लौं जल में धँसिबो जानो ।
बहुतक कहा बिचार करे से तट बृक्षादिक भासें ;
नतु केवल समुद्र-जल चौगृद देखत जहाँ-हाँ से ।
त्यों ब्यवहार प्रतीति वाह उत लखैं, सुनैं कछु होई ;
नतरु ब्रह्म सब ओर निहारत अन्य बस्तु नहिं कोई ।
परमहंस मज्जूब औलिया यही हद्द के जानो ;
बहुतक कहो तनक तब ऊनें पिये रंग मनमानो ।
छठो भूमिका माहिं कंठ लौं जल कल्पन कर लैवौ ;
सतईं† में पुनि पूर्ण रूप से जल प्रविष्ट हो जैवौ ।

---

* चतुर्भूमिका साधक (पुरुष) को संसार के व्यावहारिक कर्मों के सुख दुःख अवश्य भोगने पड़ते हैं, परंतु वह अज्ञानी के सदृश सुख-दुःखों में निमग्न नहीं होता । सांसारिक कर्म उसे भुँजे अन्न के समान प्रतीत होते हैं, जैसे भुना अन्न भूख दूर करने को समर्थ है, परंतु जमने को नहीं, इसी प्रकार उस ज्ञानी को समस्त व्यवहार सुख दुःख का हेतु तो है, परंतु जन्म का हेतु नहीं । ज्ञानी का देहावसान चाहे चांडाल के घर में हो, चाहे श्रीकाशी में, चाहे मूर्च्छादि से हो, चाहे लोटते-पोटते हो, मुक्ति में संदेह नहीं । वह तो मुक्त उसी समय हो चुका, जिस समय उसको ज्ञान हुआ । मूर्च्छादि होने से ज्ञान नष्ट नहीं होता, जैसे पढ़ी हुई विद्या को स्वप्न, सुषुप्ति या मूर्च्छादि में भूल भी जाता है, परंतु कुछ अगले दिन को नहीं बढ़ता । पंचदशी, वेदांतसार, तत्त्वानुसंधान इत्यादि का यह सिद्धांत है ।

† सात भूमिका में पहली तीन भूमिका साधन अवस्था की हैं । ये चारों एक-से-एक सरस हैं । चौथी भूमिकावाले से लेकर एक-से-एक अधिक ब्रह्मविद् कहे जाते हैं । चौथी भूमिकावाला 'ब्रह्मविद्', पाँचवींवाला 'ब्रह्मविद्वर', छठीवाला 'ब्रह्मविद्वरीयान्' और सातवींवाला 'ब्रह्मविद्वरिष्ठ' । मूर्ख लोग कहते हैं कि जैसा पाँचवीं, छठी, सातवीं भूमिका

याकों तुर्यातीत कहौ, पुनि चाहै त्रिगुनातीता ;
समयातीत कहौ पुनि चाहै, चाहै ब्रह्म पुनीता ।
कहि का सकत कहा है कहिबे, कहिबो किहि बिधि होई ;
जो पदार्थ है अकथ अगोचर, ताहि कहै का कोई ।
सातहु ज्ञान भूमिका कौ यह बरनौ सूक्ष्म विधाना ;
नित्य 'बिहार' तत्त्व जो समझै, पावै पद निर्वाना ।
चतुरभूमिका के साधक कों लोग कहत मनमानी ;
जे सब जग-व्यवहार करत हैं, ते कैसे हैं ज्ञानी ।
सुख में सुख, दुख में दुख मानत उद्यम करत अनेका ;
बैठत चलत उठत हँस बोलत खात पियत गहि टेका ।
इनमें बात ज्ञान की हमकों एकहु नाहिं दिखानी ;
सुख दुख कछू इन्हैं ना ब्यापहि, तब जानैं हम ज्ञानी ।
ऐसी तर्क अनेकन यामें करत लोग अज्ञानी ;
तिनकों हम समझा के कहियत सुनैं सकल दै कानी ।
जेते जड़ पदार्थ हैं जग में, सुख-दुख उन्हैं न आवै ;
ज्ञानी मनुष देहधारी है, देह धर्म कहँ जावै ।
जापै कहौ जगत ना भासै तोउ कहा बड़ ज्ञाना ;
ये तौ सबहि सुषुप्ति समय में अनुभव होत निदाना ।
जांपै कहौ बचन ज्ञानी कौ निष्फल जाव न चाही ;
तो यामें कह ज्ञान-प्रयोजन, ये तप कौ फल आही ।
दो प्रकार तप कहो जात है एक ज्ञान प्रगटावै ;
साप और बरदान देन में एक समर्थ करावै ।

का लक्षण लिखा है, ऐसे ज्ञानी होते हैं। चौथी भूमिकावाले में बहुत-सी तर्क करते हैं। उनका खंडन अनेक वेदांतशास्त्रों में विस्तार-पूर्वक लिखा है। कुछ-कुछ प्रश्नोत्तर रूप से इसमें भी आगे कहा है।

जाने दोउ तप किए, भयौ सो ज्ञानी अरु बरदाता ;
जाने एक ज्ञान-तप साधो, सो ज्ञानी निज ज्ञाता।
आतमब्रह्म पहिचानत आपुन बृत्ति अखंड जमी है ;
ज्ञानी में तप दूजौ नाहीं, तौ कह ज्ञान कमी है।
जैसे सुघर जौहरी परखा पट को परखि न आने ;
तौ वाकी वह रत्न - परख में कौन कमी अनुमाने।
त्यों ज्ञानी मंत्रादि यंत्र कछु रच न सकै बड़ छोटौ ;
तौ वाके परमात्मज्ञान में कहौ कौन बिधि टोटौ।
यहि बिधि तर्क-बितर्क अनेकन समाधान बहु होई ;
ज्ञानी की गति ज्ञानी जाने और न जाने कोई।
बिद्या पढ़ी बिबाद करन कौं कह परिनाम सुहायौ ;
देह धरी यदि पेट भरन कौं कहा जन्म-फल पायौ।
सुनी न ज्ञान-कथा कानन सें, लखो न रूप सुदेसा ;
जैसे कंथा रहे गेह में तैसे रहे बिदेसा।
जग मिथ्या भ्रम-जाल समझकर लखै रूप निज खासा ;
जगत प्रगट कैसे भयौ, याकी करने कौन तलासा।
है यह कहा, भयो यह कैसे, रच्यो कौन करता कौ।
कारन कौन, कबै यह प्रगटो, कहा रूप है याकौ ;
इन बातन में कहा लाभ है अरु का निकसो सारा ;
बाजीगर को इंद्रजाल है यहि बिधि करै बिचारा।
जैसे लगो काहुवै कंटक यों न बिचारै बातें ;
केहि बिधि लगो, कौन पेड़े कौ, कैसे आओ वहाँ ते।
यामें कहा उपाय बिचारै दूर करन कौ वाकौ ;
वैसे जग-निबृत्ति को सोचै करै न झगरो ताकौ।

वेह निवृत्ति साँची तब होवै, जब निज रूप निहारै ;
आत्मब्रह्म की करै एकता यह सिद्धांत बिचारै ।
भक्तियोग अरु ज्ञानयोग यह काहू में रम जावै ;
करतब निफल न होत काहु कौ करनी से सब पावै ।
यों निर्वाण निरूपण भाष्यौ सहज रूप को ज्ञाना ;
नित्य 'बिहार' तत्त्व जो समझै, पावै पद निरवाना ।

दोहा

सबहि कह्यौ हौंहू कह्यो कहि हैं और सम्हार ;
कहिबे में है कथन ही करिबे में है सार ।
जो करि है करतब समझ यह बिबेक बुधिमान ;
नित्य 'बिहार' निसंक सो पैहै पद निरवान ।
जो बाँचै अरु जो सुनै, जो समझै सुखकंद ;
ताको जय गुरुदेव की जयति सच्चिदानंद ।
साधन मोक्ष प्रकर्ण कौ, कथन ज्ञान कौ अंग ;
भई चतुरदस पूर्व यह साहित - सिंधु - तरंग ।

स्वस्ति श्रीमन्महाराजाधिराज श्रीकाशीश्वर ग्रहनिवार पंचम विंध्येलवंशावतंस श्रीमत्सवाई महाराजा साहब भारतधर्मेंदु सर सावतसिंहजू देव बहादुर के० सी० आई० ई० बिजावरनरेशस्य कृपापात्र ब्रह्मभट्ट-वंशोद्भव कविभूषण कविराज पं० बिहारीलालविरचिते साहित्य-सागरे निर्वाणनिरूपणो नाम चतुर्दशस्तरंगः ।

परिशिष्टांश

दान-प्रकरण

दोहा

ग्रंथ स्रवन कर नृपतिमनि किय जिमि दान प्रदान ;
सो वह उच्च उदारता हौं इत करत बखान।

सोरठा

जिमि रुचि नियम निबाह, ग्रंथ सुन्यौ नृप-मनि-मुकुट ;
महरानी तिमि ताहि सानुराग कछु स्रवन किय।

छंद

सावँत नरेंद्र नृप गुननिधान, तिहि जुगल महारानी सुजान ;
महरानि ज्येष्ठ गुनरूप-धाम, जिहि रत्नकुँवरि जगबिदित नाम।
सतबृत्ति परम पतिब्रत प्रवीन, सियराम-चरन रति नित नवीन ;
जिन तीर्थ अनेकन किये जाय, दिय दान यज्ञ किय सुचि सुभाय।
बहु सुनें स्रवन पूरन पुरान, द्विजदेव पुन्य पूजे प्रमान,
नृप-द्वार साधु सनमान पाय, सुख लहत राम-गुन गाय-गाय।
हरिधाम-तीर्थ निर्मित सुकीन, रुचि रहहि धर्म प्रति नित नवीन ;
महरानि द्वितिय छबि-सील-धाम, जगजाहिर कंचनकुँवरि नाम।
सहधर्म स्वामिब्रत धार नेम, सियराम - भक्ति पालहि सप्रेम ;
परिपूर्ण प्रेमरस भक्तिमान, गुन पृथक कहौं कहँ लग बखान।
जो कहे पूर्व गुन प्रथम पाहिं, सोइ दिपत द्वितिय महरानि माहिं ;
नृप सक्ति जुगल साधहिं सुकर्म, मिलि जुगल करहिं नित दान-धर्म।

है जुगल दया-गुन-निधि सुदेस, द्विज दीन दान पावहिं हमेस ;
सुन जुगल ग्रंथ कबिता प्रमान, दिय जुगल बिबिध सनमान दान।
सियराम सुमिर गौरी गिरीस, मन-बचन-कर्म दीजतु असीस ;
ऐस्वर्य बढ़हि सुभ जस सुबित्त, सौभाग्य सुखद सुख लहहु नित्त।

दोहा

भोगहु भल सौभाग्य सुख, सकल फलहु मन काम ;
दिन प्रति पति-पद-रति रुचिर कृपा करहिं सियराम।
दिव्य दिवस बिजयादसमि, नृप सावँत बलवान ;
ग्रंथ हेतु दिय दान जिमि, गो अब करत बखान।

छप्पय

१ ८ ६ १
संबत ससि बसु अंक चक्ररबि बिक्रमाब्द भल ;
आस्विन सुदि बिजयादसम्मि दिन दिव्य सुखद थल।
सिंहासन आसीन अवनिपति अति छबि छाइय ;
तदिन ग्रंथ परिपूर्ण स्रवन कर सरुचि सराइय।
हौं हर्ष-सहित सम्मुख भयव अर्पण कर आसिस दियव ;
धन धन्य सिंह सावंत नृप सानुराग स्वीकृत कियव।

छंद

जगबिदित बंस रबि अति उदार, कासीस्वर पंचम गिहिरवार ;
बुदेल बंस अवतंस बीर, महराज बिजावर धर्मधीर।
सुन काव्यग्रंथ अभिरुचि लखाय, मंत्री समीप नृप लिय बुलाय ;
चित अति प्रसन्न कर सहज भाव, मन मुदित भूप भर चित्त चाव।
सनमान दान प्रति बचन भाख, सुन सचिव हुक्म निजसीस राख ;
उठ सभा मध्य मंत्री प्रबीन, कबिता प्रसंस भाषन सुकीन।
सुन सर्ब सभासद समझ भाव, मिलि सकल सराहहिं नृप-सुभाव।

दियौ खानखाना सुगंगं बिचारो ; दियौ दान जैसाह पूर्बं बिहारी।
दियौ दान बिरसिंह चतुर्भुज्ज काही ;दियौ दान छत्रसाल भूषन्न पाहीं।
यथा आज सावंत श्रीछत्रधारी ; सभा दान दिन्नं* सुलिन्नं† बिहारी।
बली भूप कीरत्त बोई नबीनी ; तथा कर्न भूपत्ति द्वैपत्र कीनी।
महीपाल बिक्रं सुभोज्यं बढ़ाई ; पृथ्वीराज सम्हरि सम्हारी रखाई।
परी फेर लुंजं लता जोग पाई ; तबै देव बिरसिंह किन्नो सिचाई।
करी छत्रसालं सुपुष्पं प्रबीनी ; कली कीर्ति को सुच्छ सोही नबीनी।
दिपी चंद्रिका-सी सुभा-सी अनूपं ; बिकासी तिहै आज सावंत भूपं।
अहो धन्य स्वामी सबै सौख्य जोऊ; बिजैनग्रधीसं चिरंजोवि होऊ।
जितै राजद्वारं गुनीबृंद आवैं ; मुनीसं कबीसं सभी मान पावैं।

दोहा

श्रीरबिबंस बुँदेलपति, सीलसिंधु सिरताज ;
नृप सावँत निज कुल-कलस, करहु अकंटक राज।
जिह ढिग रह लह सर्बसुख, सुकबि बिहारीलाल ;
चिरजीवहु कबि - कल्प - तरु श्रीसावंत भुवाल।

देवाभिवंदन

चेतन सक्ति अखंड जो बिस्व अचर चर व्याप्त ;
ताकी कृपा - कटाक्ष भौ सादर ग्रंथ समाप्त।
परमातम आतम कहौ नित्यरूप सुखधाम ;
ऐसे रूप अनंत कों पुनि पुनि करत प्रनाम।
अनिल अंब अंबर अवनि अगन अचल चल ठाम ;
दिसन द्रुमन बन हेर हरि, पुनि पुनि करत प्रनाम।

---

* दिन्नं = दिया। † लिन्नं = लिया।

सवैया

व्यापक विस्व अनादि अनंत स्वरूप है एक अनेक दिखावै ;
राम रहीम करीम कहौ वह ब्रह्म कहौ कहते बनि आवै।
रूप अरूप अनेकन रूप अनूपम जाहि सुबेद बतावै ;
ताहि 'बिहार' बिचार सबै थल संतत सादर सीस नवावै।

❀ ❀ ❀

सागर सौ सब ठौर भरयौ सब ठौर अकास सौ व्यापक भावै ;
पौन सौ पूरौ समाय रह्यौ रबि तेज सौ तेज महाछबि छावै।
जो छिन को नहिं छोड़त साथ सदा सबमें समता सरसावै ;
ताहि 'बिहार' बिचार सबै थल संतत सादर सीस नवावै।

❀ ❀ ❀

गय में गय सौ हय में हय सौ जल में जल सौ सुचि सादर है ;
खग में खग सौ मृग में मृग सौ नर में नर सौ अति आदर है।
घट में घट सौ मठ में मठ सौ नभ में नभ सौ नभ जाहर है ;
रबि में रबि सौ ससि में ससि सौ सबमें सब भाँति बराबर है।

❀ ❀ ❀

आप ही पेड़ में आप पहाड़ में आप ही बाग बिनोद लयौ है ;
आप ही तोय में आप तरंग में आप बिहार बिहार ठयौ है।
आप ही स्वप्न में आप सुषुप्ति में आप ही जाग्रत छेम छयौ है ;
आपहि जीव में आपहि ईस में आपहि आपमें मस्त भयौ है ;

❀ ❀ ❀

इक रूप से देखनवारौ बनों बहुरूप से प्रेम सकेल्यौ करै ;
रचके रचना सब लोकन की अपने सुख को सुख मेल्यौ करै।

यह बाग 'बिहार' बिहार करै बहु खेल रचै रसकेल्यौ करै ;
सब खेलत हू नहिं खेले कछू यह खेल हमेसहू खेल्यौ करै ।

दोहा

त्वं शक्तिस्त्वं धूर्जटिस्त्व रवि त्वं गणराय ;
त्वं सर्वं सर्वेश्वरं, नमो वासुदेवाय ।

सम्मतियाँ

सर्वप्रथम देव-पुरस्कार-विजेता, सुधा-संपादक
कवि-सम्राट् श्रीपं० दुलारेलाल भार्गव

ब्रह्मभट्टवंशावतंस कविराज श्रीबिहारीलालजी ने 'साहित्य-सागर' ग्रंथ की रचना करके साहित्यानुरागियों का महानुपकार किया है। रत्नाकर के १४ रत्नों के समान यह 'साहित्य-सागर' भी १४ तरंग-रत्नों से सुशोभित है। इन तरंगों में साहित्य-संबंधी समस्त विषयों का पूर्णरूपेण समावेश है। इस एक ही ग्रंथ का अध्ययन करने से जिज्ञासु साहित्य-शास्त्र का विद्वान् हो सकता है। हम श्रीमान् हिज हाइनेस महाराजा साहब बिजावर को ऐसा ग्रंथ-रत्न लिखवाने पर बधाई देते हैं! आशा है, साहित्यानुरागी सज्जन इस ग्रंथ-रत्न से लाभ उठाकर लेखक को प्रोत्साहित करेंगे। तथास्तु।

श्रीमान् महाकवि पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
हिंदी-युनिवर्सिटी, बनारस

श्रीमान् कविवर बिहारीलाल ने 'साहित्य-सागर'-नामक ग्रंथ की रचना की है। इस ग्रंथ में साहित्य के सब अंगो का वर्णन है। यह ग्रंथ व्रजभाषा में लिखा गया है। जिस समय व्रजभाषा उपेक्षित है, अहम्मन्यता-वश जब कुछ लोग उसे अच्छी दृष्टि से भी देखना नहीं चाहते, उस समय आपने यह सुंदर एवं भाव-पूर्ण ग्रंथ लिखकर हिंदी-देवी की बहुत बड़ी सेवा की है, वरन् मैं तो यह कहूँगा कि एक पुण्य कार्य किया है। ग्रंथ सर्वांग-पूर्ण है। साहित्य का कोई विषय छूट नहीं पाया है। आपने नवीन अलंकारों की भी उद्भावना की है, और इस कार्य में भी पूरी सफलता लाभ की है। व्रजभाषा स्वाभाविक प्रसादगुणमयी है। आपके हाथों में वह और अधिक सुशोभित हुई है। अनधिकारी की बात मैं नहीं कहता, अधिकारी के लिये यह ग्रंथ एक रत्न है। इस ग्रंथ द्वारा जिज्ञासु पुरुष साहित्य के सर्वांग पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर सकता है। मैं ऐसा सुंदर ग्रंथ निर्माण करने के लिये कविवर का अभिनंदन करता हूँ। विश्वास है, योग्य पात्रों द्वारा इस ग्रंथ का आदर होगा, और वह प्रतिष्ठा-लाभ करेगा।

काशीस्थटीकामणिसंस्कृतकॉलेजप्रधानाध्यापकव्याकरणकेसरीव्याकरण-मार्तण्डव्याकरणवाचस्पतिदर्शनाध्यक्षश्रीसत्यनारायणसाङ्गवेदविद्यालयप्रन्सि-पलमहोदयः यू० पी० काशीस्थगवर्नमेंटसंस्कृतपरीक्षाबोर्डप्रधानसदस्यः श्रीपूर्णचन्द्राचार्य्यः

श्रीसुन्दरकन्दमुकुन्दपरमकरुणया कविरत्नकविभूषणश्रीबिहारीलालकविना नूतना कल्पना कल्पिता। सकलपदार्थसहवृत्तित्वरूपसाहित्यसागरनामा प्रबन्धविशेषो महता परिश्रमेण निरमायि। सोऽयं ग्रन्थ आमूलत आपात रमणीको विलोकतोऽल्पीयसा कालेन

साहित्यादिपदार्था अस्मिन् ग्रन्थे सम्यङ् निरूपिताः । अभिधादीनां निरूपणावसरे तत्तल्लक्षणोदाहरणनिर्माणेनानन्दिताः सहृदयाः । समस्तसाहित्योपयोगिपदार्थविलसितो नाद्यावधि केनाऽपि भाषाकविना निरूपित एतादृशः प्रबन्धविशेषस्तथा चैतस्य प्रागल्भं काव्यनिर्माणविषयिकं पर्य्यालोच्य तत्र श्री १०८ सामन्तसिंहमहाराजस्य बिजावराधिराजस्य कीर्तिवर्णनात्मकत्वञ्च विलोक्य सानन्द सन्तुष्यामः । आशास्महे च वयमेतस्योत्तरोत्तरं प्रचारः स्तुतिरूपकारिता च स्यादिति । सोऽयं ग्रन्थो बिजावरनरेन्द्राज्ञया जगदुपकाराय निर्मितः ।

साहित्यसागरं ग्रन्थं पर्य्यालोच्य पुनः पुनः ;
प्रमाणी कुरुते रम्यं काशीवासविशालधीः ।

श्रीयुत मुंशी देवीप्रसादजी 'प्रीतम' (बिजावर)

श्रीमन्महाराजाधिराज श्रीमहाराजा श्रीसवाई महाराजा साहब भारतधर्मेंदु सर सावंतसिहजू देव बहादुर के० सी० आई० ई० बिजावर-नरेश केवल सनातन-धर्म, आचार-विचार और वीर-रस आदि ही के आश्रयदाता नहीं, किंतु आपकी गुण-ग्राहकता में प्राचीन प्रणाली के काव्य-रस और व्रजभाषा का चमन भी फूला हुआ है । साहित्य-सागर के रचयिता कविभूषण बिहारीलालजी भी श्रीमान् के दरबार के रत्नो में से एक रत्न हैं । न्यू लाइट की कविता का जीवन-प्रभात देख व्रजभाषा की झलक झलकाने के लिये और प्राचीन प्रणाली की काव्य-कला दिखाने के लिये कविभूषणजी ने अतिभाव-पूर्ण प्रयत्न किया है, और कविता के कुल अंगों को एकत्र कर गागर में सागर भर दिया है । जिन जिज्ञासुओ को नायिका-भेद, अलंकार, छंद-प्रबंध के पठन-पाठन की उत्कंठा है, उन रसिकजनो के लिये इसी साहित्य-सागर के मथन करने से कुछ रत्न प्राप्त हो जायँगे । कविभूषणजी की दृष्टि बहिरंग वाणी ही की ओर नहीं रही, किंतु अंतरंग दृष्टि से आपने शरीरांतर्गत, महा-रहस्य की ओर भी, नज़र फेकी है । साहित्य-सागर की अंतिम तरंग इस सरबोर हिलोर का प्रत्यक्ष प्रमाण है । आपकी वाणी में अर्थ का गौरव और शब्द-रचना की सरसता सराहनीय है । आपकी वाणी में तबियत की जौलानी और बहर की रवानी लासानी है ।

असर लुभाने का प्यारे, तेरे बयान में है ;
किसी की आँख में जादू, तेरी ज़बान में है ।

श्रीयुत राजप्रतिष्ठित पंडितवर व्याकरणशास्त्री पं० हनुमंतप्रसादजी अग्निहोत्री (बिजावर)

साहित्यसागरोऽयं ग्रन्थः धर्मप्रजासंरक्षकाऽशस्त्रादिसकलकलाकुशलाखण्डप्रतापाखण्डलवद्देदीप्यमानविजयवरनगराधीशमहाराज श्री१०८ सामन्तसिंहनरेशानुशासितकविभूषणकविरत्नकविराजेतिपदवीभूषितविहारीलालकविना समकारि समवलोकितश्चास्माभिः । अस्मिन्नृतुरसगुणलक्षणव्यञ्जनाध्वन्यलङ्कारादीनि साहित्याङ्गानि सुविस्तृतानि सन्ति । नूतनलक्षणोदाहरणादिसमलङ्कृतोऽतो हिन्दीभाषाग्रन्थेष्वपूर्वको वरीवर्त्ति । वयमाशास्महे चैतस्योत्तरोत्तरं प्रचारोपकारिता दुरौ स्यातामिति शम् ।

साहित्यसागरोन्वर्थो निरमायि विहारिणा ;
चतुर्दशतरङ्गैः संयुतो रत्नोपमैः शुभः ।
श्रीमारुतिप्रसादेन मयालोकि समन्ततः ;
प्रमाणी क्रियते चायं कोविदेनाग्निहोत्रिणा ।

कविवर काव्याचार्य ब्रजेशजी, राज्य रीवाँ

श्रीयुत महाकवि विहारीजी का 'साहित्य-सागर'-नामक ग्रंथ संसार में अपूर्व है। जो कुछ विषय आपने लिखा है, बहुत ही शुद्ध है। ब्रह्मभट्ट-कुल मे आज पर्यंत इतना बड़ा ग्रंथ किसी कवि ने नहीं लिखा। एक ही ग्रंथ के पढ़ने से संपूर्ण काव्य-शास्त्र के विषय का प्रबोध हो सकता है। आपको धन्यवाद है !

कुछ चुनी हुई काव्य की अनुपम पुस्तकें

दुलारे-दोहावली

(सप्तम संस्करण)

लेखक, सुधा-संपादक पं० दुलारेलाल भार्गव। गत दो वर्षों में 'दुलारे-दोहावली' की जितनी धूम हिंदी-संसार में रही, उतनी और किसी भी पुस्तक की नहीं! इसीलिये इसके हमें ७ संस्करण निकालने पड़े। इसी पर सबसे पहला देव-पुरस्कार मिला! यह संशोधित, सुंदर सातवाँ संस्करण है। पुस्तक की भूमिका में कविवर निरालाजी लिखते हैं—"हिंदी-ससार में महाकवि बिहारीलाल की कितनी ख्याति है, यह किसी हिंदी भाषा के जानकार से छिपा नहीं। कितने ही विद्वान् समालोचकों का मत है कि वह हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कलाकार हैं। इनके बाद आज तक किसी ने भी वैसा चमत्कार नहीं पैदा किया था, परंतु यह कलंक अब दूर होने को है। अभी कुछ ही विद्वान् ऐसी सम्मति रखते हैं कि सुधा-संपादक कविवर श्रीदुलारेलालजी भार्गव के दोहे महाकवि बिहारीलाल के दोहों की टक्कर के होते हैं, और बाज़-बाज़ ख़ूबसूरती में बढ़ भी गए हैं; परंतु यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि अचिर भविष्य में, जब कविवर श्रीदुलारेलालजी भार्गव के भी कई सौ ऐसे ही दोहे प्रकाशित हो जायँगे, लोगों को उनकी श्रेष्ठता का लोहा मानना होगा। कहा जाता है, ब्रजभाषा में अब पहले की-सी कविता नहीं लिखी जाती, परंतु 'दुलारे-दोहावली' ने इस कथन को बिलकुल भ्रम साबित कर दिया है। हिंदी के वर्तमान कवियों और समालोचकों में जो अग्रगण्य माने जाते हैं, उनमें से कोई-कोई मुक्त कंठ से स्वीकार करते हैं कि कविवर श्रीदुलारेलाल वर्तमान समय में ब्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, और उनकी दोहावली ब्रज-भाषा-साहित्य की वर्तमान सर्वोत्तम कृति।" मूल्य ॥), सजिल्द १)

नल नरेश

कविवर पुरोहित प्रतापनारायणजी कविरत्न-रचित एक महाकाव्य। इसमें नल-दमयंती की पवित्र एवं शिक्षा-प्रद कथा का छंदोबद्ध वर्णन है। इसकी प्रत्येक पंक्ति हृदय को स्पर्श करने-वाली और काव्य की दृष्टि से सुंदर है। साहित्य में महाकाव्य की सृष्टि एक बहुत बड़े सौभाग्य की बात होती है। ४ रंगीन तथा २ सादे चित्रों-सहित, सुंदर रूप में छपी पुस्तक का मूल्य २॥), सजिल्द ३)

देव-सुधा

[लेखक, श्रीमिश्रबंधु]

सुप्रसिद्ध देव-पुरस्कार की प्राप्ति के अवसर पर भार्गवजी ने उतनी ही संपत्ति और मिलाकर ४०००) का मूलधन जिस पुस्तकमाला को समर्पित किया था, प्रस्तुत पुस्तक

इसी देव-सुकवि-सुधा का प्रथम पुष्प है। संग्रहकर्ता और टीकाकार हैं सुप्रसिद्ध काव्य-मर्मज्ञ श्रीमिश्रबंधु। इस ग्रंथ में देव कवि की अनूठी कविताओं का संग्रह है। कठिन शब्दों के अर्थ भी फ़ुट-नोट में दे दिए गए हैं। महाकवि देव की प्रखर प्रतिभा के लिये विज्ञापन की आवश्यकता नहीं। इस पुस्तक में उनके समस्त ग्रंथों से उच्च कोटि की कविताओं को छाँट-छाँटकर रक्खा गया है। देव-सुधा की एक प्रति आपके पुस्तकालय के लिये आवश्यक वस्तु है। इस संग्रहकर्ताओं का दावा है कि अब यह संग्रह ब्रजभाषा का सर्वोत्तम ग्रंथ है, इसके सामने बिहारी-सतसई आदि कोई ग्रंथ नहीं ठहरते। चयन अत्यंत परिपूर्ण और छपाई परम मनोरंजिनी है। मूल्य १), सजिल्द १॥)

ब्रज-भारती

[लेखक, प० कविवर उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश' एम्० ए०]

ब्रजभाषा-साहित्य में युगांतर करनेवाला परमोत्कृष्ट ग्रंथ है। ब्रजभाषा में नवीन शैली के छंद और आधुनिक ढंग के विषयों का सुंदर समावेश करने का सुंदर साधन। इस काव्य ने यह सिद्ध कर दिया कि ब्रजभाषा में जो लोच और लचक है, वह आधुनिक काल की उष्णता और भार को सहन कर सकती है। जो लोग ब्रजभाषा के प्रेमी हैं, वे यह प्रमाणित करने के लिये कि ब्रजभाषा अब भी जीवित-जाग्रत् तथा शक्तिशाली है, लेखक के चिर-कृतज्ञ रहेंगे। मूल्य सादी ॥।), सजिल्द १)

आत्मार्पण

[लेखक, श्रीद्वारकाप्रसाद गुप्त 'रसिकेंद्र']

इसका कथानक टॉड-राजस्थान और मेवाड़ के इतिहास से लिया गया है। राणा राज-सिंह, प्रभावती और वीर चूड़ावत सरदार के अपूर्व चरित्रों के आधार पर इस अत्यंत रोचक, उत्कंठा-वर्द्धक और आदर्श ऐतिहासिक खंड-काव्य की रचना हुई है। सुपाठ्य, स्वच्छ छपाई। बहुत थोड़ी प्रतियाँ बची हैं। मूल्य ॥), १)। शीघ्रता कीजिए।

बिहारी-दर्शन

[लेखक, साहित्याचार्य पं० लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी साहित्यरत्न]

इसमें एक सर्वथा नूतन और अत्यंत रोचक शैली से हिंदी-भाषा के पीयूषवर्षी महाकवि श्रीबिहारीलालजी की कविता पर प्रकाश डाला गया है। इस एक ही ग्रंथ में सरलता का सागर, पांडित्य का पीयूष, काव्य की कलित कौमुदी, भाषा की भव्यता, समालोचना का सौष्ठव, मनोभावों की मनोरमता, प्रकृति-वर्णन में पूर्ण पर्यवेक्षण, भक्ति, नीति, गणित, दर्शन, ज्योतिष, राजनीति और मनोविज्ञान की मनोहर मीमांसा का जमघट देखकर आप इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा किए बिना रह ही नहीं सकते। मूल्य २), सजिल्द २॥)

मिलने का पता—मैनेजर गंगा-ग्रंथागार, लखनऊ